जिन शासन के चमकते हीरे

१०८ जैन चरित्र कथाएँ

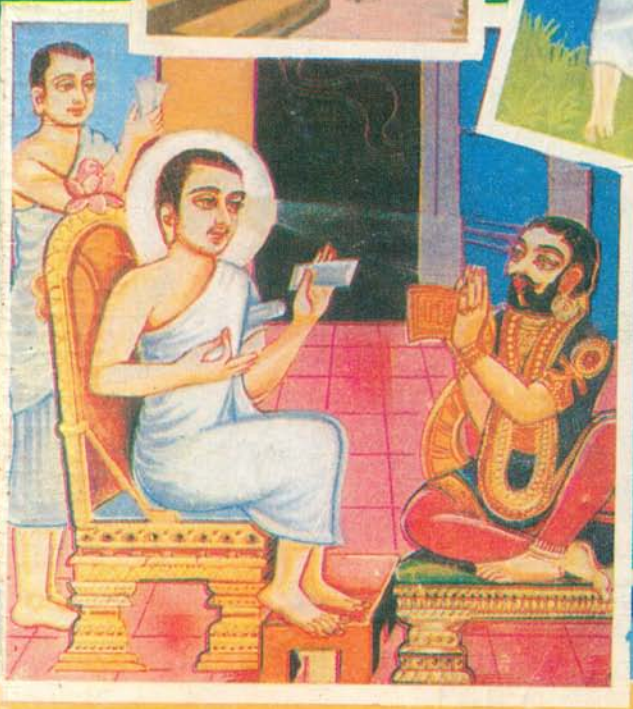

संपादक

वरजीवनदास वाडीलाल शाह

निरीक्षक

पन्यास श्री जयसुन्दर विजयजी

श्री आदिनाथ जैन श्वेताम्बर संघ, चीकपेट, बेंगलोर

श्री आदिनाथ भगवान

जिन शासन के चमकते हीरे

संपादक

वरजीवनदास वाडीलाल शाह

हिन्दी अनुवाद

महेन्द्र ऐच. जानी

R
e.
39
75

निरीक्षण एवं भूल-सुधार

पन्यास श्री जयसुन्दर विजयजी महाराज

JIN SHASAN KE CHMAKATE HEERE

By Varjivandas V. Shah

प्रकाशक :

वरजीवनदास वाडीलाल शाह

मशीन टूल्स ट्रेडर्स (बैंग्लोर)

४१, नरसिंहमहाराजा रोड़, बैंग्लोर ५६० ००२

टे. नं. २२३९५८०, २२३९५२२

फेक्स : २२२५९७९

प्रथम संस्करण : मार्च, १९९७

मुद्रक :

हरेश जयंतीलाल पटेल

प्रिन्टोग्राफ

३३४, सर्वोदय कमर्शियल सैन्टर, जी.पी.ओ. के पास,

अहमदाबाद ३८० ००१ फोन : ५५०५६५०

अर्पण

छोटी उम्र में ही मां बाप का अवसान हो जाने
से बेहाल होते जिन्होंने बचाया, आर्थिक मुसीबतों
के बीच हम सात भाई-बहिनों को अनेक दुःख
सहन करके जिन्होंने बड़ा किया
उन मातृतुल्य बुआ - मणिबुआ को

- बालक वरजीवनदास

निरीक्षण

सुश्रावक वरजीवनदासजी को किसी शुभ घड़ी में यह विचार आया कि विश्वमानव के जीवन वृक्ष को अच्छे से अच्छे संस्कारों द्वारा सींचने के लिये लोकभोग्य प्राचीन कथा साहित्य की खूब आवश्यकता है। 'शुभस्य शीघ्रम' कहावत के अनुसार वे तुरंत ही जैन कथा साहित्य की खोज में लग गए। उपदेशप्रासाद, उपदेश-माला तथा अनेक प्राचीन छोटी-मोटी सज्झाओं वगैरह का विस्तृत परिशीलन करके उन्होंने १०८ कथाओं का चयन किया। उन्हीं पूर्वकालीन महापुरुषों के कथा-ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने कथाओं का सुन्दर आलेखन करना शुरू किया। उसका परिणाम आज सबके सामने शोभायमान हो रहा है।

कथाओं के आलेखन में भावुक वरजीवनदासजी ने एक बात पर खास ध्यान दिया कि कहीं भी अपनी तरफ से कल्पना करके कुछ जोड़ा नहीं जाय या जिसे पढ़कर कोई दुविधा में पडे या व्यर्थ के संशय खडे न हो जाय। इससे प्राचीन महापुरुषों के अनेक ग्रंथों में से उन्होंने नवनीत की तरह इन कथाओं का संचय-संग्रह करके आलेखन किया है। इस प्रकार एक अच्छे संस्कारी रस-थाल का नजराना भद्रसमाज को भेंट में मिलेगा।

वरजीवनदासजी ने अपने इस कथा-संग्रह को अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने के लिये पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज के चरणों में जांच के लिये निवेदित किया। और पूज्यश्री के अनुसार यह कार्य मेरे भाग आया। अत: जहां कहीं जैन शासन के अनुरूप सुधार करने जैसा लगा उसे लेखक ने सहर्ष स्वीकार किया यह आनंद की बात है। खास यह ध्यान रहे कि बालकों को नज़र समक्ष रखकर इन कथाओं का आलेखन होने से कथाओं में आनेवाली अवांतर घटनाओं का विस्तार यहाँ नहीं किया जा सका है। जो जो मुमुक्षु जीव इन कथाओं का रसपान करके सद्बोध प्राप्त करेंगे - उनके लाभ के साथ-साथ लेखक का परिश्रम भी सार्थक होगा, ऐसी अंतर की मंगल कामना —

- जयसुन्दर विजय

इस आलेखन में मेरा कुछ नहीं !

इस आलेखन में मैं एक बात स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि ये कथाएं मैंने सिर्फ गुजराती धर्मग्रंथों में से ली हैं। मैं लेखक नहीं - मैंने कथाओं का सिर्फ संपादन किया है। मैंने अपने मन से कुछ भी जोड़ा नहीं हैं। धर्म ग्रंथों का ही सिर्फ आधार रखा है।

दु:ख की बात है कि मैं संस्कृत, प्राकृत, मागधी, पाली या अर्धमागधी भाषा जानता नहीं हूँ। अपने जैन धर्म के मुख्य ग्रंथ संस्कृत या प्राकृत भाषा में हैं। अर्थात् ऊपर से गुजराती में अनुदित ग्रंथ पढ़कर ये चारित्र लिखे हैं। मूल लेखों में जो मजा है वह मजा इन अनुवादित ग्रंथों में नहीं होगा, इससे थोडी रसक्षति तो है ही।

सात आठ वर्ष का था तब श्री धर्मविजय महाराज (डहेलावाले)ने हमारे मुहल्ले (पाटण) में चौमासा बदला और व्याख्यान में दृष्टांत रूप में श्री धन्ना शालीभद्र की वार्ता कही। इस वार्ता ने दिल को झकझोर दिया। बारंबार मुनि महाराजों के व्याख्यान सुनते सुनते वार्ताओं में रस जगने लगा और व्याख्यान में सिर्फ बार्ताएं ही सुनने जाता ऐसा कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। समय बीतते दिमाग में बहुत वार्ताएं संग्रहीत हो गई।

एक बार विलेपार्ले में पन्यास प्रवर श्री भद्रगुप्त विजयजी वर्तमान आचार्य श्री विजय भद्रगुप्त सूरिश्वरजी पधारे। उन्होंने व्याख्यान में श्री अंवति सुकुमाल की कथा सुनाई। कथा में रुचि तो थी परंतु उनकी व्याख्यान की शैली से मैं बहुत प्रभावित हुआ। उसी दिन से मैंने मन में निश्चय कर लिया कि ऐसी धार्मिक चरित्र कथाएं इकट्ठी करनी चाहिये और उन्हें पुस्तक रूप में छपवाकर समाज को अर्पित करनी चाहिये।

एक दिन प्रात:काल दैनिक पत्र - 'मुंबई समाचार' में मेतारज मुनि की कथा पढ़ी और उसी दिन इस ग्रंथ की पहली कथा मेतारज मुनि की लिख दी। परंतु यह लेखन बहुत धीमी गति से चल रहा था। महिना या पंद्रह दिन में एकाध कथा लिखी जाती। लेकिन पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू आदि कुटुम्बीजन जो कुछ लिखा जाय उसे जल्दी छपवा दिया जाय, ऐसा आग्रह बार बार करते रहे। मन में निश्चय किया था कि १०८ कथाएं एक साथ पुस्तकाकार में छपे इसलिये इस कार्य में तीव्रता आई और सप्ताह में १-२ कथाएं लिखी जाने लगी। इस प्रकार प्रथम से अंतिम कथा लिखने में लगभग ढाई वर्ष लग गए।

मैं मानता हूँ कि ऐसी ज्ञानकथाएं लिखने की मेरी अपनी कोई शक्ति नहीं

हैं। माँ सरस्वती की कृपा से यह सब संभव हुआ है। कहता हूँ कि उसीने ये कथाएं लिखाई हैं। हमेशां एक माला करते हुए उसकी कृपा मांगता हूं और उसकी कृपा होगी तो शायद दूसरी ज्ञान कथाएं भी लिखी जा सकेगी।

एक बात का अफसोस है। कई प्रसिद्ध कथाएँ इसमें नहीं है। यह दृष्टि में था कि हरेक कथा संक्षेप में लिखनी। दो या तीन पृष्ठ में एक कथा पूरी करनी। अर्थात् जिन कथाओं में २० या २५ पृष्ठ चाहिये वे इसमें समाविष्ट नहीं हैं। जिनमें मुख्यत: मयणां सुंदरी, चंदराजा, वस्तुपाल-तेजपाल, विमलशाह, श्रीचंदचरित्र, अंबड चरित्र वगैरह नहीं लिख सका। २४ अरिहंत भगवंत के चरित्र भी - नहीं लिखे। श्री आदिश्वर भगवान, महावीर के २७ भावों में से मरीची-नयसार एवं श्री नंदनमुनि के चरित्र लिये हैं। ऐसे एक एक चरित्र के लिये एक एक पृथक पुस्तक लिखी जा सके इतनी सामग्री अपने भँडार में है। जिज्ञासु पढेंगे तो भावविभोर हो उठेंगे।

यह पुस्तक छपने से पूर्व धार्मिक दृष्टि से कोई लेखन में भूल तो नहीं हो रही है यह सुधारने के लिये परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयभुवनभानु सूरीश्वरजी के चरणों में विनती की। उन्होंने यह काम श्री जयसुन्दर विजयजी को सौंपा। उन्होंने बहुत परिश्रमपूर्वक कई भूलों को सुधार कर मेरे ऊपर बहुत उपकार किया है। उनका मैं अत्यंत आभारी हूँ। उनका आभार व्यक्त करने के लिये मेरा शब्दभंडार छोटा पडता है।

मित्र श्री चीनुभाई गी. शाह (स्वस्थ-मानव)ने इन कथाओं के व्याकरणदोषों को सुधारकर मेरा बहुत सारा बोझ हल्का कर दिया है। उनका मैं खास आभारी हूँ। इसके उपरांत श्री जयंतीभाई (दर्शन प्रिन्टर्स)ने बहुत ध्यान देकर इस पुस्तक को जल्दी से छापकर तैयार कर दिया। इसके लिये उनका भी मैं आभार मानता हूँ।

संक्षेप में इस लेखन में मेरा कुछ भी नहीं है। कारण कि ज्ञान के भंडारों में से ही कथाओं के लिये उपयोगी सामग्री ढूंसकर थोडा स्वाद पाठकों को कराया है।

अंत में वीतराग की आज्ञा विरुद्ध कुछ भी लिखने में आ गया हो तो त्रिविधे मिच्छामि दुक्कडं।

ये चरित्र लिखने में कोई भी क्षति-त्रुटि रह गई हो तो पाठक उनसे अवगत करावें ताकि दूसरी आवृत्ति में वे सुधारी जा सकें।

पंचशील एपार्टमेन्ट
तीसरा क्रोस, गांधीनगर, बैंगलोर ५६० ००९
टे. नं. २२०३६११, २२०३६२२

अज्ञानी
वरजीवनदास शाह

अभिनंदन

परमपूज्य गच्छाधिपति आचार्य देव श्रीमद् विजय जयघोष सूरीश्वरजी महाराज साहब की तरफ से !

इस आलेखन में धर्मकथानुयोग का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन महान जैनाचार्यों नें आर्यप्रजा के नैतिक, धार्मिक आदि सर्वांगीय उत्कर्ष के लिये जिन कथाओं का उपदेश किया है, उसका जोड़ विश्व के समग्र साहित्य में नहीं मिलेगा। कथा साहित्य ऐसा है कि जिसमें पंडित-विद्वान, बाल-युवा-प्रौढ़ सभी को अमाप रस होता है। परंतु जिन कथाओं में से आत्मकल्याण सिद्ध हो सके ऐसा तत्त्व उपलब्ध न हो ऐसी श्रांगारिक या जासूसी कथाएँ व्यथा की गठरी के सिवा और कुछ नहीं देती। खून या बलात्कार, आक्रमण या लूटमार अथवा ढिसूम-ढिसूम जैसी हल्की से हल्की मनोवृत्तियों का पोषण करनेवाली कथाओं की रचना कथाकार के लिये कलंकरूप है। जिससे विकट मानसिक अशांति खडी हो जाय, मन तथा शरीर के स्नायुओं में व्यर्थ तनाव (Tension) या व्यग्रता पैदा हो अथवा मन में हल्के गंदे अश्लील विचारों का ज्वार उठे - ऐसी कथाओं के पठन-पाठन पर यदि राज्य की तरफ से प्रतिबंध हो तो राज्य की प्रजा जरूर सत्त्वशील बने। परन्तु अभी तो ऐसी आशा रखनी ही व्यर्थ हैं क्योंकि लोकमानस को गंदा-हल्का-सत्त्वहीन बनाने वाला कथा साहित्यथोकबंद छपकर बाहर आ रहा है। ऐसे समय में ऐसे श्रेष्ठ कथा साहित्य की जिससे सुसंस्कारों का सिंचन और पोषण हो, आत्मा को स्वतत्त्व की सच्ची समझ आवे, परमात्मा के प्रति आदर भक्ति सम्मान जाग्रत हो, धर्म की साधना में एवं नैतिक प्रामाणिकता वगैरह में वृद्धि हो एवं जीव मुक्ति की दिशा में अग्रसर बने ऐसे कथा साहित्य की अत्यंत आवश्यकता है।

विशेष रूप से इस पुस्तक में बालकों, युवकों तथा सरल जीवों में सद्गुण और सुसंस्कारों का पोषण हो ऐसी जैन शासन की रुचिकारक अनेकानेक कथाओं का संग्रह हुआ है, जो जैन शासन की गौरवगाथा बालकों को परिचित कराने में अपना महत्त्वपूर्ण भाग अदा करेगी। ऐसे सुन्दर कथा ग्रंथ का संकलन एवं प्रकाशन करने के लिये बैंगलोर निवासी सुश्रावक वरजीवनदासभाई को अन्तर से अभिनंदन !

आचार्यदेव श्रीमद् विजयजयघोष सूरीश्वरजी की ओर से
जयसुन्दर विजय का धर्मलाभ

पुस्तक प्राप्ति स्थान

१. **सेवंतीलाल वी. जैन**
२०, महाजन गली, जौहरी बजार,
मुंबई - ४०० ००२

२. **गुर्जर साहित्य भवन**
रतनपोल नाके पर, 'गांधीमार्ग'
अहमदाबाद - ३८० ००१
फोन : 344663

३. **श्री सरस्वती पुस्तक भंडार**
हाथीखाना, अहमदाबाद - ३८० ००१

४. **पार्श्व प्रकाशन**
निशा पोल, झवेरीवाड,
रिलीफ रोड, अमदावाद - ३८० ००१

५. **अमरशी लक्ष्मीचंद कोठारी**
एस.टी. बुक स्टोल, शंखेश्वर तीर्थ,
वाया हारीज, पीन ३८४ २४६

६. **पार्श्वनाथ जैन पुस्तक भंडार**
फाउन्टन के सामने, तलहटी रोड़,
पालीताणा - ३६४ २७०

७. **संस्कृति भवन**
सुभाष रोड़, गोपीपुरा,
सूरत ३९५ ००१

अनुक्रम

क्रमांक	कथा	पेज नं.
१.	मेतारज मुनि	१
२.	अरणिक मुनि	३
३.	अनाथी मुनि	५
४.	अइमुत्ता मुनि	६
५.	श्री अवंति सुकुमाल	७
६.	कपिल ऋषि	९
७.	गजसुकुमाल	११
८.	भरतेश्वर और बाहुबलि-१	१३
९.	भरतेश्वर और बाहुबलि-२	१५
१०.	मरूदेवा माता	१६
११.	नंदीषेण मुनि	१७
१२.	श्री अमरकुमार	१९
१३.	सनतकुमार चक्रवर्ती	२१
१४.	मेघकुमार	२३
१५.	रोहिणीयो चोर	२५
१६.	चंडकौशिक सर्प	२८
१७.	श्री मेघरथ राजा	३०
१८.	श्री दशार्णभद्र	३२
१९.	विजय शेठ - विजया शेठाणी	३४
२०.	ढंढणकुमार	३६
२१.	श्री रहनेमि	३८
२२.	श्री सुकोशल मुनि	३९
२३.	श्री प्रसन्नचंद्र राजऋषि	४२
२४.	श्री त्रिपृष्ट वासुदेव	४३
२५.	श्री नयसार	४५
२६.	श्री सिंह अणगार	४७
२७.	श्री आर्द्रकुमार	५०
२८.	श्री खंधक मुनि	५४
२९.	धन्नो अणगार	५६
३०.	श्री स्कंदकाचार्य	५९
३१.	श्री वज्रबाहु	६१
३२.	रेवती सती	६४
३३.	मदन रेखा	६५

क्रमांक	कथा	पेज नं.
३४.	श्री नमिराजा	७०
३५.	अंबिकादेवी	७२
३६.	राजा मुनिचंद्र	७५
३७.	श्री दृढप्रहारी	७६
३८.	श्री इलाचीकुमार	७८
३९.	श्री झांझरिया मुनि	८१
४०.	कलावती	८३
४१.	अषाढाभूति	८५
४२.	श्री सती सुभद्रा	८७
४३.	वंकचूल	९०
४४.	कुबेरदत्ता	९३
४५.	नंदनमुनि	९५
४६.	सेवामूर्ति नंदिषेण	९८
४७.	चंदनबाला	१००
४८.	श्री चिलाती पुत्र	१०४
४९.	श्री भद्रसेन	१०७
५०.	श्री अषाढाचार्य	१११
५१.	प्रियंकर नृपति	११३
५२.	कंडरिक-पुंडरिक	११४
५३.	मम्मण शेठ	११९
५४.	पुणीयो श्रावक	१२१
५५.	सुदर्शन शेठ	१२३
५६.	श्री हरिभद्रसूरि	१२९
५७.	श्री नागिल	१३३
५८.	जिनदास और सौभाग्यदेवी	१३६
५९.	श्री वज्रस्वामी	१३८
६०.	भवदेव-नागिला	१४०
६१.	सती सुलसा	१४२
६२.	शीलवती	१४७
६३.	सिंह श्रेष्ठी	१५०
६४.	पुष्पचूला	१५२
६५.	जमाली	१५५
६६.	धन्ना / शालिभद्र	१५९
६७.	जीवानंद वैद्य	१६५
६८.	हंसराज	१६८
६९.	श्री कालिकाचार्य और सागराचार्य	१७०
७०.	श्री मानतुंगसूरि	१७४
७१.	श्री धर्मरुचि	१७७

क्रमांक	कथा	पेज नं.
७२.	सती अंजना	१७८
७३.	जितशत्रु और सुकुमालिका	१८३
७४.	पेथड शाह	१८५
७५.	मृगावती	१८७
७६.	श्री शुभंकर	१९५
७७.	शियलवती	१९७
७८.	श्री भोगसार	२००
७९.	निर्मला	२०४
८०.	सुबुद्धि मंत्री	२०८
८१.	मरीचिकुमार	२११
८२.	श्री मोहविजेता स्थूलिभद	२१४
८३.	श्री क्षुल्लककुमार	२२२
८४.	चारुदत्त	२२५
८५.	श्री मृगापुत्र (लोढिया)	२२७
८६.	श्रीकान्त श्रेष्ठी	२२९
८७.	वृद्धवादीसूरि और सिद्धसेन दिवाकरसूरि	२३२
८८.	मदिरावती	२३८
८९.	श्री दामन्नक	२४१
९०.	श्री हेमचन्द्राचार्य	२४४
९१.	श्री कुमारपाल	२५७
९२.	श्री पादलिप्ताचार्य	२७०
९३.	पद्मशेखरराय	२७४
९४.	श्री जंबूस्वामी	२७७
९५.	द्रौपदी	२८२
९६.	श्री नागकेतु	२८७
९७.	मंखलीपुत्र गोशाळो	२९१
९८.	सम्राट संप्रति	२९५
९९.	विश्वभूति और विशाखानंदी	२९८
१००.	श्री काम देव श्रावक	३००
१०१.	श्री उदयन मंत्री	३०३
१०२.	शैलक राजर्षि और पंथक मुनि	३०५
१०३.	क्षुल्लक शिष्य	३०७
१०४.	श्री कुरगडु मुनि	३०९
१०५.	जीरण शेठ	३११
१०६.	महाराजा श्रेणीक	३१३
१०७.	श्री कूणिक	३१६
१०८.	गुरु गौतम स्वामी	३१८

श्री मंगलाचरण

आदिमं पृथिवीनाथमादिं मं निष्परिग्रहम्।
आदिमं तीर्थनाथं च ऋषभ स्वामिनं स्तुमः॥

• • •

कमठे धरणेन्द्रे च, स्वोचितं कर्मकुर्वति।
प्रभुस्तुल्य मनोवृत्तिः, पार्श्वनाथः श्रियेस्तुवः॥

• • •

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतम प्रभुः।
मंगलं स्थूलिभद्राद्याः जैन धर्मोस्तु मंगलम्।

• • •

लब्धिवंत गौतम गण धार,
बुद्धिमांहि श्री अभयकुमार,
प्रहर उठ कर प्रणाम,
शीयलवंत का लीजे नाम।

पहला नेमि जिनेश्वरराय,
बाल ब्रह्मचारी लागुं पाय,
बीजा जंबुकुमार महाभाग,
रमणी आठ को किया त्याग।

त्रीजा स्थूलिभद्र सुजाण,
कोश्या प्रतिबोधि गुणखाण,
चौथा सुदर्शन शेठ गुणवंत
जिसने किया भव का अंत

पांचमा विजयसेठ नर नार,
शियल पाली उतर्या भवपार,
ए पांच को विनंति करूं,
भवसागर ते हेला तरूं।

• • •

यतकृपारसमास्वाद्य, मुखोपि विदुषायते;
देवी सरस्वती वंदे, जिनेन्द्रमुख वासिनीम्।

१ मेतारज मुनि

भगवान महावीर का चौमासा राजगृही नगर में... राजा श्रेणिक, उनकी रानियाँ, पुत्र, नगरजन वगैरह देशना सुन रहे हैं।

श्रेष्ठी श्री मेतार्य को देशना सुनकर वैराग्यभाव जाग उठा। वैराग्य चरितार्थ के लिए भगवान से प्रार्थना की।

संसारी सगे-रिश्तेदारों एवं स्वयं श्रेणिक राजा मेतार्य को समझाते हैं : 'यह वैभव, नौ नौ नारियाँ छोड़कर दुष्कर पथ पर क्यों जा रहे हो? जरा सोचो!'

मेतार्य देशना में भगवान द्वारा दिये गये भेड़ का दृष्टांत देकर समझाते हैं: भेड़ को खिला-पिलाकर क़साई अंत में काटता ही है।

इसे भेड समझता नहीं है। जीव इसी प्रकार खा-पीकर मौज मनाता है, परन्तु एक दिन यमराज प्राण ले लेनेवाले हैं - ऐसा जीव समझे तो चारित्र (दीक्षा) ही एक मात्र उपाय है।

मेतार्य श्रेष्ठी को दीक्षा प्रदान करके भगवान उन्हें मेतारज मुनि बनाते हैं।

मुनि मेतारज ने कठिन तप प्रारंभ किये। लम्बे समय के बाद वे राजगृही में पधारे।

एक माह के उपवास पश्चात मुनि मेतारज पारणा हेतु गोचरी के लिए एक सोनी के घर पधारे। सोनी राजा श्रेणिक के लिए स्वर्ण के जौ घड़ रहा था। गोचरी लेने के लिए वह अंदर के भाग में गया। सोनी के अंदर जाने के पश्चात एक चिड़ा वहाँ आया। स्वर्ण जौ को खरे जौ समझकर चुग गया एवं सोनी के बाहर आने से पूर्व उडकर पास के वृक्ष पर बैठ गया।

बाहर आकर सोनी ने भावपूर्वक मुनि को गोचरी करवाई और मुनि विदा हुए। सोनी फिर से काम पर बैठा और देखा तो स्वर्ण जौ गायब! जौ गये कहाँ ? चौकस मुनि ले गये! दौड़ पड़ा। मुनि को पकड़ा, घर ले जाकर खूब डाँटा, जौ माँगे। मुनि थे सच्चे बैरागी-यदि सच बोलते हैं तो सोनी चिड़े को मारकर जौ प्राप्त करेगा जिससे हिंसा का पाप लगेगा। झूठ बोलेंगे तो मृषावाद का दोष लगेगा। अत: मुनि मौन ही रहे।

सोनी का क्रोध बढ़ता ही गया। सच बात वह जानता नहीं है। यदि

जौ राजाजी को न पहुँचाये तो राजाजी भारी दण्ड देंगे - ऐसा सोचकर साधुने मुनि को कड़ी सजा देने का निर्णय मन ही मन में तय किया। पास ही पड़ी चमड़े की वधी पानी में भिगोकर मुनि के मस्तक पर तानकर बांध दी। 'वधी ज्यों ज्यो मस्तिष्क की गर्मी से सूखेगी त्यों त्यों मस्तिष्क की नसों पर तनाव बढ़ता जायेगा और मुनि मान जायेंगे - वे जौ लौटा देंगे' ऐसा सोनी समझता था।

मुनि तो समता धारण करके खड़े हैं। भूतकाल में कैसे कैसे उपसर्ग सहन करके महानुभावों ने मोक्ष पाया है, सोचते सोचते मस्तिष्क की असह्य पीड़ा सह रहे हैं। चमड़े का तनाव बढ़ रहा है। मस्तिष्क की नसें टूट रही है एवं मुनि अंतर से सर्व जीवों को क्षमा कर रहे हैं। उनके ही कर्मबन्धनों का नाश हो रहा है। 'सोनी का कोई दोष नहीं है, चिड़े का भी कोई दोष नहीं है,' - ऐसा सोचते सोचते समता के सर्वोत्तम शिखर पर पहुँच कर मुनि केवलज्ञानी हुए। कुछ ही क्षणों में देह गिर पड़ती है। मुनि की आत्मा मोक्ष प्राप्त करती है।

कुछ देर के पश्चात् एक बाई लकडे का गठ्ठर वृक्ष के नीचे पटकती है। आवाज़ से चौंककर क्रौंच पक्षी चिरक जाता है और उस चिरक में स्वर्ण जौ देखकर सोनी कांप उठता है - 'अरे...रे...रे... सत्य जाने बिना मैंने कैसा अनर्थ किया! मुनि के प्राण की जिम्मेदारी किसकी? इस गुनाह के लिए राजाजी कड़ी सजा देंगे ही।

घबराया हुआ सोनी मुनि का आशरा लेकर उनके वस्त्र पहिनकर साधु बन गया। कालक्रम से अपनी आत्मा का उद्धार किया।

●

माटी कहे कुम्हार से, तूं क्या रौंदे मोय;
एक दिन ऐसा आयेगा, मैं रोदूँगी तोय।
आये है सो जायेंगे, राजा रंक फकीर,
एक सिंहासन चढ चले, एक बंधे जंजीर।
कबीरा आप ठगाइये, और न ठगीये कोय;
आप ठगे सुख ऊपजे, और ठगे दुःख होय।

२ अरणिक मुनि

अरणिक... भद्रा माता एवं दत्त पिता का इकलौता पुत्र...

माता एवं पिता लम्बे अरसे से दीक्षा भाव सेवन कर रहे हैं, लेकिन नन्हें अरणिक को कौन संभाले? एक दिन भगवान की वाणी सुनकर तुरंत निर्णय लिया। माता-पिता दोनों ने दीक्षा ले ली तथा पिता मुनि ने आरणिक को भी दीक्षा दी। बाल मुनि विद्याभ्यास करते हैं, लेकिन उनका सब व्यावहारिक कार्य पिता मुनि ही करते हैं। संथारा बिछाना या गोचरी लाकर वात्सल्यपूर्वक भोजन कराना वगैरह बालमुनि के सर्व कार्य मोहवश पिता मुनि करते जा रहे हैं। साथ के मुनि महाराज को बहुत समझाते हैं कि आहिस्ते, आहिस्ते बाल मुनि को उनके कार्य स्वयं करने दो। परंतु मुनि जिंदा रहे तब तक मोहवश अरणिक मुनि को कोई व्यावहारिक कार्य करने न दिया। कालानुसार पिता मुनि का स्वर्गवास हुआ।

भिक्षा वगैरह के लिये अरणिक मुनि ने अन्य मुनियों के साथ जाना तय किया। और एक दिन गोचरी के लिए भरी दुपहरी में अन्य मुनियों के साथ वे निकल पड़े।

ग्रीष्म का दिन.. कड़ी धूप... नंगे पाँव चलते अरणिक मुनि के पैर जलने लगे। विश्राम के लिए वे एक मकान के झरोखे के नीचें छाया देखकर रूके। वहाँ सामने के झरोखे में खड़ी एक श्रीमंत मानुनि ने मुनि को देखा। सुहावनी और मस्त काया देखकर मानुनि मोहित हो गई, दासी को बुलाकर मुनि को ऊपर ले जाने को कहा। मुनि आये - थके थे। कड़ी धूप में तपे हुए थे। 'ऐसा संयम भार उठा नहीं सकूंगा' - ऐसा मन ही मन सोच रहे थे कि ऐसी मदद मिली। स्त्रीने सुंदर-मोदक का भोजन कराया और आवास में रहने तथा सर्व भोग भोगने के लिए मुनि को ललचाया। मुनि पिघल गये। मोह में फँस गये एवं दीक्षा का महाव्रत त्यागकर संसारी बन गये।

अच्छा खान-पान एवं सुन्दरी का साथ... संसार भोगते भोगते कई दिन बीत गये।

दीक्षा प्राप्त साध्वी माता को समाचार मिला कि अरणिक मुनि आचरण

(दीक्षा) छोड़कर कहीं चले गये हैं। यह कुठाराघात माताजी सहन न कर सकीं। अरणिक को ढूंढने के लिए जगह जगह भटकने लगी। मार्ग में पुकार उठती : 'मेरा अरणिक कहाँ गया?' 'ओ अरणिक! तूं कहाँ है? अरे अरणिक! तुझे दीक्षा पर्याय से किसने छीना? कहाँ है? कहाँ है?' वृद्ध साध्वी पुकार रही है और साध्वीओ पागल साध्वी समझकर लोगों की टोली उसके पीछे हुल्ला-गुल्ला मचाती दौड़ रही है।

अरणिक एक दिन यह तमाशा झरोखे से देखते हैं। माता की चीख-पुकार सुनकर मन पिघलता है। मेरी माताजी की यह दशा? मेरे लिए? नीचे उतरकर माँ के चरणों में गिरते हैं और माता बिनति करती है : 'तूने यह क्या किया? मेरी कोख लजाई? दीक्षा छोड दी? किसने तुझे ललचाया?'

अरणिक कहते है, 'माताजी! दुष्कर... दुष्कर... मैं संयम पालन नहीं कर सकता।'

माताजी खूब समझाती हैं कि संयम के बिना इस भव भ्रमणा में कोई भी छुड़ा सके ऐसा नहीं है।

अरणिक एक शर्त पर पुनः संयम ग्रहण करने के लिए तैयार होते हैं, 'संयम लेकर तुरंत ही अनशन करके प्राणत्याग करूंगा।' यह शर्त माँ मान्य रखती है, कुछ भी हो, तूं प्राण त्याग करेगा वह मुझे स्वीकार है, लेकिन इस प्रकार संसार भोगकर भवोभव तेरी आत्मा नीच गति प्राप्त करे - वह सहन नहीं होगा। माता पुत्र की शर्त से सहमत हुई। अरणिक पुनः दीक्षा ग्रहण करके दहकती हुई शिला पर सो गये, अनशन करके शरीर को गला दिया एवं कालक्रम से केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पधारें। माता यह जानकर आनंद पाती है। एक जीव जो दुर्गति के राह पर था उसे केवलज्ञानी बनने के लिए बोध दिया, धन्य माता, धन्य मुनि अरणिक...।

●

सुख दुःख जो द्रव्य, काल, भाव से उदित होकर आनेवाला हो, इन्द्रादि भी बदलने के लिये शक्तिमान नहीं है

२ अनाथी मुनि

एक मुनि... अनाथी जिनका नाम...

बन में एक पेड़ के नीचे ध्यानस्थ खड़े हैं। वहाँ मगधराज श्रेणिक अपने रसाले के साथ क्रीडा करने पधारते हैं और मुनि को देखकर चकित हो जाते हैं। मुनि की कंचनवर्णी काया, सुन्दर मुख और गुणशालिनी तरुण अवस्था देखकर मुनि को पूछते हैं, अरे मुनि, यह वेष क्यों धरा है? इस युवा उम्र को क्यों वैराग्यवान् बनाया? इस उम्र में धन एवं यौवन का उपभोग क्यों नहीं करते! अवसर आने पर भले ही बैरागी बनो, लेकिन इस उम्र में कुटुम्ब, धन, यौवन क्यों छोड़ा?!!!

मुनि ने कहा : राजन्! मैं अनाथ हूँ। अनाथ होने से संसार छोड़ा है। श्रेणिक राजाने कहा : मैं आपका नाथ बनूंगा। जो चाहोगे वह दूँगा, चलिये मेरे साथ राज्य में।

मुनि ने कहा, 'अरे भाई! तूं भी अनाथ है, तूं कैसे मेरा नाथ बनेगा? देख! सुन, मेरे घर में इन्द्राणी जैसी सुशील गुण से भरी मेरी स्त्री थीं, मेरे माँ, बाप, चाचा, चाची, मामा, मौसी, बहिन, भानजे थे। सब प्रकार की साहिबी थी। सब प्रकार के भोग मैं भोगता था। एक दिन मुझे रोग ने घेर लिया, असह्य दर्द और पीड़ा हो रही थी। वैद्यों ने दवा दी, मंतर-जंतर किये, लेकिन किसी भी प्रकार से दुःख कम न हुआ। मेरे सगे, सम्बन्धी, माँ-बाप, मेरी स्त्री कोई भी मेरा दुःख लेने तैयार न हुए। दुख मैं भोगता ही रहा। कोई सहायता काम न आई। ऐसे अति दुख के समय मैंने सोचा कि मेरा कोई नहीं है, मैं अकेला ही हूँ. इस दुख से छूट जाऊँगा तो शीघ्र ही संयम ग्रहण करूंगा - ऐसा मन ही मन ठानलिया। धीरे धीरे पीड़ा घटती गई। प्रातः तक तो पीडा पूर्णरूप से गायब हो गई और मैं अपने निश्चय अनुसार घर से निकल पड़ा, संयम ले लिया। हे राजन्! मुझे पक्की समझ आ चुकी थी, मैं अनाथ ही था, अब मैं सनाथ हूँ।' यह सुनकर श्रेणिक महाराजा को बोध प्राप्त हुआ और स्वीकार किया कि सचमुच! आपका कहना सत्य है, मैं भी अनाथ ही हूँ, आपका नाथ कैसे हो सकता हूँ? मुनि की प्रशंसा करके, शीश झुकाकर वंदना करके श्रेणिक अपने महल पधारे। मुनि चारित्र पालन करके शिवपुरी पहुँचे।

४ अईमुत्ता मुनि

राजगृही नगरी में गौतम स्वामी गोचरी के लिए निकले हैं। खेलते हुए बालक अईमुत्ता ने मुनि को देखा और बाल भाव से मुनि को पूछा कि ऐसी तेज दुपहरी में नंगे पाँव क्यों घूम रहे हो? गौतम स्वामी राजकुमार अईमुत्ता को समझाते हैं, हम शुद्ध, दूषण बिना की भिक्षा घर घर से लेते हैं। हमारे आचार अनुसार, पाँव में जूते पहिनते नहीं है तथा गाड़ी वगैरह में बैठकर कहीं भी आते जाते नहीं है।

यह सुनकर अईमुत्ता ने अपने महल में भिक्षा हेतु पधारने के लिए मुनि को प्रार्थना की। गौतम स्वामी बालक की भावना देखकर बालक के महल में गये। बालक की माताने गुरु को वंदना करके भावपूर्वक मोदक की भिक्षा अर्पण की और अईमुत्ता को समझाया, हम बड़े भाग्यशाली है कि श्री महावीर प्रभु के प्रथम गणधर गौतम स्वामी स्वयं पधारे हैं।

भिक्षा लेकर गौतम स्वामी महल से बाहर निकले तब अईमुत्ता उन्हें विदा करने के लिये साथ चला और बालभाव से गुरुजी को कहा : 'लाइये, यह, भोजन का भार अधिक है, मैं लेलूँ।' श्री गौतम स्वामी बोले, 'नहीं... नहीं...। यह अन्य किसीको नहीं दिया जा सकता, यह तो हमारे जैसे चारित्रपालक साधु ही उठा सकते हैं।' यह सुनकर अईमुत्ता ने साधु बनने की हठ ली। गौतम स्वामी ने कहा, 'हम तुम्हारे माँ-बाप की आज्ञा बगैर तुम्हें साधु नहीं बना सकते।' अईमुत्ता ने घर जाकर माता को समझाया। साधु बनने पर क्या क्या करना पड़ेगा, माताने समझाया। अईमुत्ता ने सब कुछ सहन करूंगा - यों कहकर माता को समझाकर युक्तिपूर्वक आज्ञा प्राप्त की और गौतम स्वामी के साथ समवसरण पधारकर प्रभु महावीर से दीक्षा प्राप्त की।

गौतम स्वामी ने अईमुत्ता मुनि को एक वृद्ध साधु को सौंपा। वृद्ध मुनि स्थंडिल के लिए वन में पधार रहे थे। उनके साथ अईमुत्ता गये। मार्ग में एक छोटा सा सरोवर था। वहाँ अईमुत्ताजी ने सहज बालभाव से पत्ते की नाव बनाकर तैरायी। यह देखकर वृद्ध मुनि ने अईमुत्ता को समझाया, हम मुनिगण ऐसा अधर्म नहीं कर सकते। पानी के अंदर ऐसे खेल करेंगे तो छःकाय जीव की विराधना होगी और उसके फलस्वरूप हमारा जीव दुर्गति प्राप्त करेगा। बालमुनि अईमुत्ता बड़े लज्जित हुए। बड़ा पछतावा हुआ। समवसरण पधारकर इरियावही, पडिक्कमर्ता शुक्ल ध्यान लगा दिया। शुद्ध भाव से किये पाप का पछतावा करते करते केवल ज्ञान प्राप्त किया।

●

अवंति सुकुमाल (त्याग)

१. जब अवंति सुकुमाल ३२ पत्नियों के साथ वैभव विलास में मग्न है;

२. तब आर्यसुहस्तिजी ५०० मुनियों के साथ अश्वशाला में रात्रि के समय 'नलिनीगुल्म विमान' नामक अध्ययन का परावर्तन करा रहे थे। वह अवंति ने सुना, उसे जातिस्मरण का ज्ञान हुआ।

३. उन्होने दीक्षा ली, उसी रात्रि को अनशन करके स्मशान मे ध्यानस्थ रहे।

४. वहाँ पूर्वजन्म की पत्नी लोमड़ी उनका पाँव से पेट तक का भाग खा गई।

५. समाधि मृत्यु द्वारा वे नलिनीगुल्म विमान में गये।

६. उनकी माता एवं पत्नियों ने अत्यंत रुदन-विलाप किया।

७. अग्निसंस्कार करके गुरु महाराज के पास पधारीं और वैराग्योपदेश सुनकर दीक्षा ग्रहण की।

८. एक सगर्भा पत्नी घर पर रही, उसे एक पुत्र हुआ।

९. उसने अवंती पिता के स्थान पर उज्जैन में अवंति पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया।

धन्य अवंती सुकुमाल

अवंति
सुकुमाल

५ श्री अवंति सुकुमाल

मालवा देश की उज्जैन नगरी में पिता धन सेठ एवं माता भद्रा सेठानी की कोख से अवंति सुकुमाल का जन्म हुआ। उन्होंने पूर्व जन्म में नलिनी-गुल्म विमान के स्वर्गीय सुख भोगकर यहाँ जन्म पाया था। अति सुख और वैभव वे भोग रहे थे। रंभा जैसी बत्तीस नारियों से ब्याहे थे।

इस उज्जयनी नगरी में मुनि श्री आर्य सुहस्तिजी बड़े परिवार के साथ अश्वशाला में ठहरे थे। उनमें से दो साधुओं ने भद्रा सेठानी के पास आकर स्थानक की माँग की। प्रसन्न होकर इन दोनों साधुओं को भद्रा सेठानीने योग्य स्थान पर ठहराया।

इनमें से एक साधु नलिनीगुल्म का अध्ययन करते हैं, जो अवंति सुकुमाल के कानों पड़ता है। वे ध्यान से एकाग्रता से सुनते हैं। सुनते सुनते उन्हें जाति-स्मरण ज्ञान होता है और नलिनीगुल्म के सुख-साहिबी जो भोगी थी वह याद आती है; उस सुख के सामने वर्तमान संसार के सुख तुच्छ लगते हैं। वे गुरुजी को पूछते हैं कि इस नलिनीगुल्म के सुख मैंने गत जन्म में भोगे हैं। वहाँ कैसे पहुँचा जाय? मुझे इस संसार में अब नहीं रहना है। शीघ्र ही ज्यों हो सके त्यों नलिनीगुल्म जाना है। गुरुजी समझाते हैं, संयम ग्रहण करके ऐसे सुख पा सकते हैं। अवंति सुकुमाल उनसे चारित्र की माँग करते हैं। गुरुजी समझाते है, आप चारित्र कैसे पाल सकोगे? यह तो बड़ा दुष्कर कार्य है। पंचमहाव्रत पालने पड़ेंगे। आप वैभव में पले हो, कैसे ये दुःख झेल सकोगे? और चारित्र लेना है तो माता-पिता की आज्ञा भी चाहिए। यह सुनकर अवंति सुकुमाल माताजी के पास चारित्र लेने के लिए आज्ञा माँगते हैं। माताजी किसी भी प्रकार से सहमत नहीं होती है और कहती है, तुझे किसने भरमाया? किसने तुझे बहकाया?

अवंती सुकुमाल अब क्षणभर भी संसारमें रहना नहीं चाहते। माता ने आज्ञा न दी। साधु महाराज ने दीक्षा देने से इनकार किया। इसलिए केश लोचन

करके योग्य लगा वैसे स्वयं ही दीक्षा लेली।

ऐसा देखकर, अपना कोई उपाय अब काम का नहीं-ऐसा समझकर माताजीने भारी मन से संयम के लिए छूट देदी। बत्तीस नारी एवं माताजी वगैरह मुनिराज के पास पधारे। अवंति सुकुमाल को पांच व्रत ग्रहण कराने की बिनती की। मुनिराज ने प्रेम से व्रत ग्रहण करवाये।

अब अवंति सुकुमाल गुरुजी को हाथ जोड़कर कहते है, 'मैं तपक्रिया-आचार पाल नहीं सकूंगा। आप अनुमति दे तो अनशन करूं और जल्दी मुक्ति पा लूँ।' मुनि महाराज ने जैसे आपको सुख ऊपजे ऐसा कहकर अनुमति दी। अवंति सुकुमाल ने क्षमा-याचना गुरु के पास करके श्मशान में जाकर अनशन प्रारंभ किया। श्मशान में पहुँचते हुए पाँव में काँटे लगे और खून पाँव से बहने लगा था। उसकी गंध से एक लोमड़ी उसके बच्चों समेत वहाँ आई। पाँवो को काटने लगी और धीरे धीरे संपूर्ण शरीर को चीर फाड़कर रुधिर-माँस की ज़ियाफत उडाई। कालानुसार अवंति सुकुमाल ने अपने निश्चय अनुसार नलिनगुल्म विमान में जन्म पाया। दृढ मनोबल से इच्छित सुख पाया।

दूसरे दिन माताजी एवं अन्य स्त्रीयाँ अवंति सुकुमाल की वंदना हेतु गुरुजी के पास पधारीं और पूछा, 'कहाँ है हमारे अवंति?' गुरुजी कहते हैं, 'उन्होंने तो अनशन लिया है। जहाँ से जीव आया था वहाँ वह गया।' सर्व परिवारजनों ने श्मशान में आकर अवंति सुकुमाल का चीरा-फटा शरीर, शरीर के टुकड़े देखे! मोहवश बहुत रोये। अंत में एक नारी को घर छोड़कर, सबने चारित्र ग्रहण करके सद्गति प्राप्त की।

●

तुझसा नहीं समर्थ, अन्य दीन उद्धारक प्रभु,
मुझसा नहीं पात्र अन्य, जग मे दिखेगा विभु!
मुक्ति मंगल स्थान फिर भी न चाह मुझे लक्ष्मी को थोड़ी
दे दो सम्यग् - रत्न श्याम जीव तो तृप्ति होगी बड़ी।

६ कपिल ऋषि

कौशांबी नगरी के राज्य दरबार में काश्यप नामक एक शास्त्री था। उसकी स्त्री का नाम श्रीदेवी था। उनके पुत्र का नाम कपिल... हमारी कहानी का नायक!

कपिल का लालनपालन बड़े लाड़-प्यार से हुआ, सो वह कुछ पढ़ा भी नहीं। वह पन्द्रह वर्ष का हुआ तब उसके शास्त्री पिता स्वर्गवासी हुए। राज्यशास्त्री की पदवी दूसरे एक विद्वान को प्राप्त हुई।

धीरे धीरे बाप की जमापूँजी खत्म हो गई। भोजन के लाले पड़े ऐसी स्थिति हो गई।

एक दिन राज्यशास्त्री की पालकी अपने घर के पास से गुजरती हुई श्रीदेवी ने देखी। अपने पुराने दिन याद आये और सोचने लगी, 'एक दिन मेरे पति भी ऐसी इज्जतदार पदवी भोगते थे। कितने सुख के दिन थे।' ऐसे सोच-विचार में आँखे भर आई और आंसु बहने लगे। कपिल ने यह देखा और माँ को दुःखी होने का कारण पूछा। काफी आनाकानी के बाद माँ ने कहा, 'यदि तूं पढ़ा-लिखा होता तो शास्त्री की पदवी तेरे पिता की तरह तूं भी भोगता और हम कितने अच्छे सुखी रहते।' यह सुनकर कपिल ने कहा, 'माँ! मैं बुद्धिशाली तो हूँ लेकिन पढ़ा नहीं, लेकिन अब मैं योग्य गुरु से विद्याभ्यास जरूर करूंगा।' माँ ने उसे श्रीवस्ती नगरी में रहते उसके पिता के मित्र इन्द्रदत्त के पास जाकर अभ्यास करने को कहा। कुछ ही समय में कपिल श्रीवस्ती जाकर इन्द्रदत्त को मिले। अपने मित्र के पुत्र को आया जानकर अभ्यास कराने के लिए इन्द्रदत्त तैयार हुऐ, लेकिन इन्द्रदत्त अपने घर कपिल को रखने के लिए असमर्थ थे। इसलिए पंडित कपिल को लेकर एक गृहस्थ के पास गये। गृहस्थ ने एक विधवा ब्राह्मणी के घर रहने-खाने की व्यवस्था कर दी। इस प्रकार आजिवीका की चिंता तो समाप्त हुई लेकिन एक झमेला खड़ा हुआ। कपिल जवान था और ब्राह्मण बाई भी जवान थी। दोनों युवा... एकांत में मिलन... एक दूसरे के प्रेम में बंधे। प्रीति बढ़ी और कपिल ब्राह्मणी के साथ संसार भोगने लगे। और विद्या प्राप्त करना भूल गये।

अब गृहस्थाश्रम की आर्थिक जिम्मेदारी, कपड़े-अनाज वगैरह की जिम्मेदारी कपिल के सिर पर आई। पैसे किस प्रकार कमाने वह तो कपिल जानता ही न था। परेशानी बढ़ती गई। एक दिन उसकी चंचल स्त्रीने एक मार्ग बताया कि गाँव का राजा प्रातः जल्दी जाकर प्रथम आशीर्वाद देनेवाले को दो मासा सोना देता

है, तो प्रातः जल्दी जाकर प्रथम आशीर्वाद राजा को दो, जिससे दो मासे सोने से कुछ दिन गुजारा चल जायेगा। कपिल ने सवेरे जल्दी उठकर राजा के पास सर्वप्रथम पहुँचने का प्रयत्न किया लेकिन लगातार आठ दिन तक इस प्रकार करने पर भी उससे पहले कोई और पहुँच जाता था इसलिये राजा को प्रथम उसके आशीर्वाद न मिलते और सोना प्राप्त न होता। सोना न मिला, राजमहल के पासवाले मैदान में सोकर प्रातः राजा के पास प्रथम पहुँचने के विचार से एक रात्रि को मैदान में सो गये। अर्धरात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश को देखकर सुबह हो गई समझकर राजमहल की ओर वे दौड़ने लगे। उनको दौडता देखकर रक्षपाल ने उन्हें चोर समझकर पकड़ लिया और सवेरे राजा के समक्ष पेश किया। कपिल ने जो बात थी वह प्रस्तुत की। राजाजी ने उसका भोलापन जानकर उसे चोर न समझकर प्रसन्न होकर कुछ माँगने को कहा। क्या माँगना कपिल तय न कर सके। राजाजी ने उन्हें सामने के मैदान में बैठकर सोचकर माँगने का समय दिया।

कपिल मैदान में बैठकर सोचने लगे, 'क्या मागूं, कितना माँगूं? दो मासा सोना तो कितने दिन चलेगा, उसके बदले पाँच मुहर माँगनी, अरे! पाँच मुहर से कुछ पूरा नहीं होगा इसलिये पच्चीस मुहरे माँगनी! यों तृष्णा में डूबते गये। सो मुहर, हजार मुहर, दस हजार मुहर यों इच्छा बढ़ती गई। करोड़ मुहर माँगनी ऐसा सोचा परंतु उससे क्या होगा? इससे तो अच्छा राजा का आधा राज्य ही माँग लूँ।' ऐसा सोचते सोचा कि आधा राज्य माँगूं तो भी राजा के पास आधा तो बचेगा ही इसलिये पूरा राज ही माँग लूं।

लेकिन हलबली जीव होने से विचार बदलते गये। जो राजा देना चाह रहा है, उसका ही राज्य ले लेना क्या शोभा देगा? अरेरे... मैंने क्या सोचा? मुझे आधे राज्य की भी क्या जरूरत? अरे! करोड़ स्वर्णमुद्रा मुझे क्या करनी? मुझे हजार की भी क्या जरूरत है? ऐसा सोचते सोचते आखिर मे दो मासे सोना ही लेने का विचार आया।

मैं दो मासे भी क्यों लूं? मैं क्यों संतोष नहीं मानता? क्यों ऐसी तृष्णा करता हूँ? हे जीव! तूं विद्याभ्यास के लिये यहाँ आया था। विद्या लेने के बजाय विषयवासना में डूब गया। मैं बहुत भूला, संतोष मानकर निरुपाधिक सुख जैसा कुछ अन्य नहीं है। कहा जाता है कि ऐसा सोचते सोचते, उनके अनेक आवरणों का क्षय हुआ और विवेकपूर्वक विचारसमाधि में डूबते हुए वे बेजोड़ कक्षा पर पहुँचे और केवलज्ञान प्राप्त किया।

●

क्षमामूर्ति गजसुकुमाल

१. पिता वासुदेवजी, माता देवकीजी, भाई कृष्णजी तथा अनेक सामंत राजा वगैरह परिवार प्रेमभरी नजरों से गजसुकुमाल की प्रतीक्षा करते बैठे हैं। इतने में उन्हें मृगया से लौटते हुए देखकर सब हर्षित हो उठते हैं। कितना सन्मान! कितना वैभव! है कहीं दुख का नामोनिशान भी?

२. गजसुकुमाल का विवाह तय हो चूका है, फिर भी भगवान श्री नेमिनाथ के उपदेश से बैरागी बनकर दीक्षा लेते हैं। कितना भारी त्याग!

३. दीक्षा के पश्चात नेमिनाथ प्रभु की आज्ञा लेकर स्मशान में ध्यानस्थ रहते हैं। गजसुकुमाल के श्वसुर सौमिल ने क्रोधित होकर दामाद के मस्तिष्क पर मिट्टी की ताई में जलते अंगारे रखकर कहा, 'हे मुनि! समता से जो मार रहे हो वह जले नहीं और जो जले उसे मारो मत।' ऐसा कहकर खड़े रहे... जिससे अंगारे नीचे गिरने पर कोई वस्तु जल न जाय।

सकल कर्मों का क्षय करके मुक्त हुए।

४. प्रातःकाल भगवान के पास आकर कृष्णजी भाई को न देखने पर पूछते हैं, 'भाई कहाँ है?' भगवान ने कहा, 'लौटने पर तुम्हें द्वार पर मिलेगा, उसकी सहाय से गजसुकुमाल ने मोक्ष पाया है।'

कृष्णजी मुनिघातक को सजा देने शीघ्र ही लौटते हैं।

५. नगर के द्वार पर ही कृष्णजी को आते देखकर हृदयगति रूकने से सौमिल की मृत्यु हो जाती है। **धन्य गजसुकुमाल**

क्षमामूर्ति
गजसुकुमाल

७ गजसुकुमाल

सौराष्ट्र देश की द्वारिका नगरी के राजा वसुदेव की रानी देवकी के छोटे पुत्र गजसुकुमाल।

एक दिन नेमी जिणंद द्वारिका पधारे। राज्य परिवार सहित सब भगवंत की वाणी सुनते है और गजसुकुमाल को वाणी स्पर्श करती है। चारित्र ग्रहण करके बैरागी बनना मन से तय करते हैं। दोनों हाथ जोड़कर माता से बिनंती करते है, चारित्र लेने के लिए अनुमति दो। माताजी यह सुनकर मोहवश बेहोश हो जाती है। होश में आते ही चारित्र कितना दुष्कर है, यह गजसुकुमाल को समझाती है।

'बेटा, यह समुद्र तैरना मुश्किल है। मोम के दांतों से लोहे के चने नहीं चबाये जा सकते। घर घर घुमकर भिक्षा लानी पड़ती है। नंगे पाँव विहार करना पड़ता है। बालों का लोच हाथों से करना पड़ता है। तूं छोटा है इसलिये यह सब नहीं सह सकेगा।'

गजसुकुमाल उत्तर देते हैं, 'कायर चारित्र न भी पाले। मैं शेर जैसा हूँ। जैसा भी तेरा और वसुदेव का पुत्र हूँ। मोह छोड़कर मुझे चारित्र के लिए अनुमति दे दे।'

मा समझाती है कि तेरा सौमिल की बेटी के साथ पाणीग्रहण तय किया है। उसके साथ संसार सुख भुगतने हैं। तूझ पर उसका अपार प्रेम है। यह सब सुख छोड़कर न जा बेटे! मत जा।

जब माता की कोई युक्ति कामयाब नहीं हुई तो कहा, 'जा! शेर की तरह चारित्र पालना। दुष्कर पंच महाव्रत बराबर पालना।' ऐसी आशिष के साथ अनुमति दे दी।

गजसुकुमाल नेमि जिनेश्वर से संयम ग्रहण करते हैं और आगम का अभ्यास करते हैं।

एक दिन भगवान से आदेश लेकर काउसग्ग ध्यान के लिए श्मशान में खड़े है। अपनी बेटी से ब्याह न करने के कारण बदला लेने के लिए सौमिल, (उसके श्वसुर) श्मशान में आते हैं और गजसुकुमाल के मस्तिष्क पर मिट्टी से मेंड बनाकर बीच में जलते अंगारे रखते हैं। जलती हुई अँगीठी में अँगारे जल रहे हो वैसे ही गजसुकुमाल के मस्तिष्क पर अँगारे जल रहे हैं। गजसुकुमाल असह्य पीड़ा होने पर भी सोच रहे है, मेरा कुछ भी जल नहीं रहा है। मेरे श्वसुर सचमुच मेरे सगे बने। जन्म जन्मांतर में इस जीव ने कई अपराध किये हैं, उन सबकी क्षमा माँग लूँ। इस प्रकार शुक्ल ध्यान में चढ़ गये। श्वसुर ने मुझे मुक्ति की पगड़ी पहनाई। ऐसा सोचते सोचते उनके सब कर्म समाप्त हो गये। सिर अग्निज्वाला से फट गया लेकिन मृत्यु होने से पूर्व ही गजकुसुमाल केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पधारें।

●

हे प्रभु पार्श्व चिंतामणि मेरो
मिल गयो हीरो, मिट गयो फेरो,
नाम जपुं नित्य तेरो..... हे प्रभु पार्श्व
प्रीत बनी अब प्रभुजी शुं प्यारी,
जैसे चंद चकोर..... हे प्रभु पार्श्व
आनंदघन प्रभु! चरण शरण है,
दीयो मोहे मुक्ति को डेरो..... हे प्रभु पार्श्व

उद्यम से मिले लक्ष्मी, मिले दृव्य से मान;
दुर्लभ पारस जगमें, मिलना मित्र सुजान।

८ भरतेश्वर और बाहुबलि १

भगवान आदिनाथ की दो पत्नियाँ : सुमंगला और सुनंदा

सुमंगला और ऋषभ युगलिये रूप में साथ साथ जन्मे थे।

सुनंदा के साथी युगलिये की ताड वृक्ष के नीचे सिर पर फल गिरने से मृत्यु हो गई थी। युगलिये में दो में से एक की मृत्यु हो ऐसा यह प्रथम किस्सा था।

सौधर्मेन्द्र इन्द्र ने ऋषभदेव के पास जाकर कहा, 'आप सुमंगला तथा सुनंदा से ब्याह करने योग्य हो, हालाँकि आप गर्भावस्था से ही वितराग हो लेकिन मोक्षमार्ग की तरह व्यवहारमार्ग भी आपसे ही प्रकट होगा।' यह सुनकर अवधिज्ञान से ऋषभदेव ने जाना कि उन्हें ८३ लाख पूर्व तक भोगकर्म भोगना है। सिर हिलाकर इन्द्र को अनुमति दी और सुनंदा तथा सुमंगला से ऋषभदेव का विवाह हुआ।

समयानुसार ऋषभदेव को सुमंगला से भरत और ब्राह्मी नामक पुत्र-पुत्री जन्मे एवं सुनंदा से बाहुबलि और सुन्दरी का जन्म हुआ। उपरांत, सुमंगला से अन्य ४९ जुडवे जन्मे।

समय बीतते ऋषभदेवने प्रवज्या ग्रहण करने का निश्चय किया। भरत सबसे बड़े होने के कारण राज्य ग्रहण करने को कहा एवं बाहुबलि वगैरह को योग्यतानुसार थोडे देश बाँट दिये और चारित्र ग्रहण किया।

अलग अलग देशों पर भरत महाराज ने अपनी आन बढ़ाकर चक्रवर्ती बनने के सर्व प्रयत्न किये। अन्य अठ्ठानवें भाई भरत की आन का स्वीकार करना या नहीं, इसका निर्णय न कर सकने के कारण भगवान श्री आदिनाथ से राय लेने गये। भगवानने उन्हे बोध दिया, सच्चे दुश्मन मोह-मान, माया, क्रोध वगैरह के साथ लड़ो याने चारित्र ग्रहण करो। चक्ररत्न अलग देशों में घूमकर विजयी बनकर लौटा लेकिन चक्ररत्न ने आयुधर्मशाला में प्रवेश न किया। भरत राजा के कारण पूछने पर मंत्रीश्वर ने कहा, 'आपके भाई बाहुबलि पर आपकी आन नहीं है। वे आपकी शरण में आवे तो ही आप चक्रवर्ती कहे जाओगे और चक्ररत्न आयु धर्मशाला में प्रवेश करेगा।'

भरतेश्वर ने अपना दूत बाहुबलिजी के पास तक्षशिला भेजा। तक्षशिला का राज्य बाहुबलिजी भोग रहे थे। दूत ने आकर बाहुबलिजी को भरतेश्वर की शरण में रहने को समझाया, जिससे भरत महाराज सच्चे अर्थ में चक्रवर्ती बन सकें। लेकिन बाहुबलि ने भरतजी का स्वामीत्व स्वीकार करने का साफ इनकार कर दिया। भरत और बाहुबलि दोनों युद्ध पर ऊपर आये। युद्ध लम्बा चला। खून की नदियाँ बहने लगी। दोनों में से किसीकी भी हार जीत न हुई।

यह हिंसक लड़ाई अधिक न चले इसलिये सुधर्मेन्द्र देव ने दोनों भाईयों को आमनेसामने लड़ने को समझाया। दोनों भाई आमनेसामने लड़ने तत्पर हुए। प्रथम भरतेश्वर ने बाहुबलि के सिर पर जोर से मुष्टि प्रहार किया। बाहुबलि घुटनों तक जमीन मे धंस गये। बाहुबलिजी की बारी आयी। हुँकार कर उन्होंने मुष्टि तानी। लेकिन विचार किया कि यदि मुष्टिप्रहार करूंगा तो भरत मर जायेगा। मुझे तो भ्रातृहत्या का पाप लगेगा। अब तानी हुई मुठ्ठी भी बेकार तो न जानी चाहिये, एसा सोचकर बाहुबलिजीने उस मुठ्ठी से उसी समय अपने सिर के बालों का लोचन कर डाला और वहीं पर चारित्र भी ग्रहण कर लिया।

भरतेश्वर को बड़ा दुःख हुआ। संयम न लेने के लिए उन्हें बहुत समझाया लेकिन बाहुबलिजी चारित्र ग्रहण के लिए अटल रहे। और भगवान द्वारा कहे गये पांच महाव्रत भी धारण किये। उस समय उन्होंने भगवान को वंदन करने जाने का सोचा, लेकिन इस समय भगवान के पास जाऊँगा तो मुझे प्रथम अठ्ठानवें छोटे भाइयों को वंदन करने पडेंगे, वे उम्र में छोटे हैं, उनको क्यों नमस्कार करूं? ऐसा सोचकर वहीं उन्होंने कायोत्सर्ग किया और तपस्या करके केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद ही भगवान के पास जाने का मनमें ठान लिया।

●

'मैं कुछ जानता नहीं हूँ' - ऐसा कहने की हिंमत जिसमें है वही सच्चा जानकार बन सकता है। 'मैं सब कुछ जानता हूँ' - ऐसा कहनेवाला अज्ञानी एवं मिथ्याचारी होता है।

९ भरतेश्वर और बाहुबलि २

बाहुबलिजी ने एक वर्ष तक उग्र तपस्या की। शरीर पर सैंकडों शाखाओंवाली लताएँ लिपट गई थी। पक्षीयोंने घोंसले बना लिये थे। भगवान श्री ऋषभदेव ने ब्राह्मी एवं सुन्दरी को बुलाकर बाहुबलिजी के पास जाने को कहा और बताया कि मोहनीय कर्म के अंश रूप मान (अभिमान) के कारण उन्हें केवलज्ञान प्राप्त नहीं हो रहा है। बाहुबलि जहाँ तप कर रहे थे वहाँ आकर ब्राह्मी एवं सुन्दरी उपदेश देने लगी और कहा, 'हे वीर! भगवान ऐसे हमारे पिताजी ने कहलाया है कि हाथी पर बैठे हुए को केवलज्ञान होता नहीं है।' यह सुनकर बाहुबलिजी सोचने लगे, 'मैं कहाँ हाथी पर बैठा हुआ हूँ? लेकिन दोनों बहिनें भगवान की शिष्या हैं, वे असत्य नहीं बोल सकतीं।' ऐसा सोचते ही उन्हें समझ आयी कि उग्र में मुझसे छोटे लेकिन व्रत में बड़े भाइयों को मैं क्यो नमस्कार करूं - ऐसा जो अभिमान मुझमें है - उसी हाथी पर मैं बेठा हूँ। यह विनय मुझे प्राप्त नहीं हुआ, वे कनिष्ट है ऐसा सोचकर उनकी वंदना की चाह मुझे न हुई। इसी समय मैं वहाँ जाकर उन महात्माओं को वंदन करूंगा। ऐसा सोचकर बाहुबलिने कदम उठाया। और उनके सब दैहिक कर्म टूट गये। उसी समय महात्मा को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

भरत महाराजा एक दिन स्नान करके, शरीर पर चंदन का लेप लगाकर सर्व अंगो पर दिव्य रत्न आभूषण धारण करके अंत:पुर के आदर्शगृह में गये। वहाँ दर्पण में अपना स्वरूप निहार रहे थे तब एक अंगूलि से मुद्रिका गिर गई। उस अंगूलि पर नज़र पडते वह कांतिविहीन लगी। उन्होंने सोचा कि यह अंगूलि शोभारहित क्यों है? यदि अन्य आभूषण न हो तो ओर अंग भी शोभारहित लगेंगे? ऐसा सोचते सोचते एक एक आभूषण उतारने लगे। सब आभूषण ऊतर जाने के बाद शरीर पत्ते बगैर के पेड़ समान लगा। शरीर मल और मूत्रादिक से मलिन है। उसके ऊपर कपूर एवं कस्तूरी वगैरह विलेपन भी उसे दूषित करते है - ऐसा सम्यक् प्रकार से सोचते सोचते क्षपकश्रेणी में आरूढ़ होकर शुक्लध्यान प्राप्त होते ही सर्व घाति कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

●

१० मरूदेवा माता

प्रथम केवलज्ञान ऋषभदेव को हुआ है और मोक्ष पहले मरूदेवा माता पधारीं हैं। ऋषभदेव अथवा आदिनाथ दादा की माताजी मरूदेवा। शास्त्र कहता है कि अठ्ठारह क्रोडा कोडी सागरोपम वर्ष में कोई मोक्ष न जा सका था। माता मरुदेवा सर्वप्रथम कालानुसार मोक्ष पधारीं। उनके बाद असंख्य जीव केवली हुए और मोक्ष गये इसलिए ऐसा कहा जाता है कि मोक्ष के द्वार मारूदेवा ने खोलें।

मेरा पुत्र ऋषभ जो बड़े लाड-प्यार से पला है, वह हस्ती आदि वाहन पर घूमता था, जो अब नंगे पाँव विहार करता है, जो दिव्य आहार का भोजन करता था वह भिक्षा मांगकर अन्न भोजन करता है। कहाँ उसकी पूर्वस्थिति और कहाँ वर्तमान स्थिति! ऐसा दु:ख वह कैसे सहन करता होगा? ऐसे विचारों से मातृहृदय रोया करता था और पुत्र विरह से खूब कल्पांत करने से आँख पर झिल्लियाँ चढ़ आई थी।

एक दिन प्रात:काल विनयी पौत्र भरत चक्रवर्ती दादी को नमस्कार करने आये और नमस्कार करके माता ने समाचार पूछे। माता ने पुत्रविरह की बात कही। भरतजी ने दादी को आश्वासन देते हुए कहा, 'आपके पुत्र के प्रभाव से फिलहाल शिकारी प्राणी भी उपद्रव करते नहीं है। उन्होंने कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करके दु:सह्य परिषद सहे हैं परंतु अब वे तीनों जगत के नाथ बने हैं, केवलज्ञान पाया है। आपको उनकी आजकी रिद्धि-सिद्धि देखनी हो तो चलो - ऐसा समझाकर दादीमाँ को हाथी पर बिठाकर, प्रभु को दिखाने ले गये जो हाल ही अयोध्या पधारे थे। प्रभु के समवसरण को दूर से देखकर भरतजी ने मरूदेवा माता को कहा, यह समवसरण आपके पुत्र के लिए देवों ने रचा है। 'यह जय जय शब्द उच्चारित हो रहा है वह आपके पुत्र के लिए देव बोल रहे हैं। उनके दर्शन से हर्षित देव मेघ गर्जना जैसे सिंहनाद कर रहे हैं।'

भरत महाराज का ऐसा कथन सुनकर मरूदेवी अति आनंदित हो उठीं और आनंदाश्रु से दृष्टि में पड़ी झिल्लियाँ दूर हो गईं। ऋषभदेव की तीर्थंकररूपी लक्ष्मी अपनी आँखों से निहार कर उसमें तन्मय होकर तत्काल क्षपक श्रेणी में चढ़कर आठों कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान पाया, उसी समय आयुष्य पूर्ण हो जाने से मोक्ष पधारीं।

●

११ नंदीषेण मुनि

राजगृही नगरी के श्रेणिक महाराजा का पुत्र नंदीषेण, एक दिन महावीर की देशना सुनकर वैराग्य की भावना पैदा होने से दीक्षा देने के लिए प्रभु से प्रार्थना की। भगवान महावीर ने उसे थमने को कहा, अभी तूझे संसार के भोग भुगतने बाकी हैं। लेकिन तीव्र वैराग्य का रंग लगने से उसने संसार छोड़कर दीक्षा ली। भगवान ने भावि भाव जानकर उनको दीक्षा दी। दीक्षा समय शासन-देवताओं ने भी दिव्य ध्वनि द्वारा सूचित किया, 'संसारी कर्म भुगतने बाकी हैं, कर्म किसीको भी छोड़ता नहीं है।' लेकिन नंदीषेण ने दीक्षा ली और तप एवं संयमी जीवन बीताते हुए कई विद्याए प्राप्त कर ली। भगवान ने कहे भविष्य को झूठा करने के बहुत प्रयत्न किये, छठ्ठी के पारणे - आयंबिल एव पुनः छठ्ठी-इस प्रकार तप प्रारंभ किये। विकार छोड़ने जंगल में रहने लगे। परंतु लंगूर जैसा मन विकारी विचार न छोड़ सका। मन मनाने के लिए खूब मथे और ऐसे विकारी मन से हारकर आत्महत्या करने के विचार से एक टेकरी पर चढ़े और कूदकर आत्महत्या की तैयारी करने लगे; लेकिन कूदते पहले आत्मा को धक्का लगा कि ऐसा आत्महत्या का पाप कर्म कैसे हो? प्रभु महावीर का नाम लज्जित होगा, आत्महत्या नहीं हो सकती। मन मरोड़कर दीक्षा के दिन व्यतीत करते रहे।

वे एक दिन गोचरी के लिए निकले और एक अनजान आवास पर पहुँचे।

धर्मलाभ बोलकर गोचरी की जिज्ञासा व्यक्त की। कर्म संजोग से वह आवास कोई गृहस्थी का न था। वह तो एक वेश्या का आवास था। वेश्या ने धर्मलाभ का जवाब दिया, 'यहाँ धर्मलाभ का कुछ काम नहीं है। यहाँ तो अर्थलाभ चाहिये।'

नंदीषेण को यह मर्मवचन चुभे। 'ले तूझे अर्थलाभ चाहिये' - यों कहकर एक तिनका हाथ से हिलाकर घर में साड़े बारह कोड़ी की बरसात की।

ऐसी विद्यावाला नवयुवक आँगन में आया देखकर वेश्या ने अपने हाव-भाव, चंचलता दिखाकर मुनि को लुभाया। मुनि साधुता छोड़कर गृहस्थ बन गये। मन को मनाया, भावि भाव संसारी भोग भुगतने बाकी हैं। वह वीरवाणी

सच्ची ही होगी। भोग भुगत ही लूँ।

शासनदेव ने सुनाये भोग कर्मों का उदय हुआ जिससे बारह वर्ष तक इस आवास पर रहे। रोजाना दस व्यक्तियों को प्रतिबोधने का नियम बनाया। जहाँ तक तक दस व्यक्तियों को प्रतिबोधित न करे तब तक भोजन न करने का पक्का नियम।

एक दिन नौं व्यक्तियों को प्रतिबोधित किया लेकिन दसवां कोई न मिला। भोजन की देर हो रही थी। एक मूर्ख को प्रतिबोधित करने का प्रयत्न किया लेकिन व्यर्थ! वेश्या-वनिता ने हँसते हँसते कहा, 'नौ तो हुए, दसवें आप स्वयं!' 'नंदीषेण की आत्मा प्रज्वलित हो उठी,' हाँ दसवाँ हूँ मैं।' सब कुछ छोड़कर भगवान के पास पहुँचे, पुनः दीक्षा ग्रहण की। शुद्ध चारित्र पालकर, तप-जप-संयम क्रिया साधकर कई जीवों को प्रतिबोध करके देवलोक पधारें।

●

* सामान्य जिन स्तवन *

जिन तेरे चरण की शरण ग्रहुं, प्रभुजी तेरे चरण की शरण ग्रहुं...
हृदय कमलमें ध्यान धरत हुं, शिर तुज आण वहुं। जिन... ॥ १ ॥

तुम सम खोळ्यो देव खलकमें, पेख्यो ना कबहुं। जिन... ॥ २ ॥

तेरे गुणों की जपुं जपमाला, अहर्निश पाप दहुं। जिन... ॥ ३ ॥

मेरे मन की तुम सब जानो, क्या मुख बहोत कहुं। जिन... ॥ ४ ॥

कहे जस विजय करो त्युं साहिब, ज्युं भव दुख न लहुं।
जिन तेरे चरण की शरण ग्रहुं... ॥ ५ ॥

अमरकुमार

१. अमरकुमार एक ब्राह्मणपुत्र था। अत्यंत गरीब था। साथ साथ अत्यंत सीधा-सरल था, लेकिन बेचारा माता पिता को अप्रिय था। माता उसके प्रति भारी द्वेष रखती थीं। कभी भी उसे अच्छा भोजन नहीं देती थी।

२. एक दिन वह लकड़ी काटने जंगल गया। वहाँ जैन गुरु भगवंत से नवकारमंत्र सीखा।

३. वहाँ का राजा महल बनवा रहा था। लेकिन दरवाजा रोज गिर जाता था।

४. तब किसी ज्योतिषी का कहना था, आप एक बत्तीस लक्षणवाले बालक की बलि दो तो ही दरवाजा खड़ा रहेगा। राजा ने जब गाँव में ढिंढ़ोरा पिटवाया कि कोई उत्तम बालक बलि के लिए देगा, उसे सवा लाख सुवर्णमुद्राएँ दी जायेगी। तब माता-पिता धन की लालसा से अमरकुमार को बेचने तैयार हो गये।

५. अमर खूब रोये... सबके पास गिड़गिडाये... बोले कि 'मैं आपकी सेवा करूंगा। कृपा करके मुझे बचाओ। मृत्यु से छुड़ाईये।' परंतु कोई बचा न सका। अंत में राज्य के सिपाही पकड़कर ले गये।

६. जब होम की तैयारी हुई, कोई ने शरण न दी तो जैनमुनि ने दिये हुए 'सौ' नवकारमंत्र' गिनने लगे। एकमात्र उनके स्मरण से एक दैवी चमत्कार हुआ। अग्नि शांत हो गई। देव सिंहासन पर बिठाकर अमरकुमार को ले गये। राजा प्रजा सबकी मृत्यु हो गई।

बालक के जल छिड़कने पर सब जीवित हो गये। पश्चात् अमरकुमार ने दीक्षा ली, फिर भी उनकी माता ने उन्हें मार दिया।

७. अंत में समाधिभाव से मृत्यु होने से स्वर्ग पधारे।

धन्य अमरकुमार

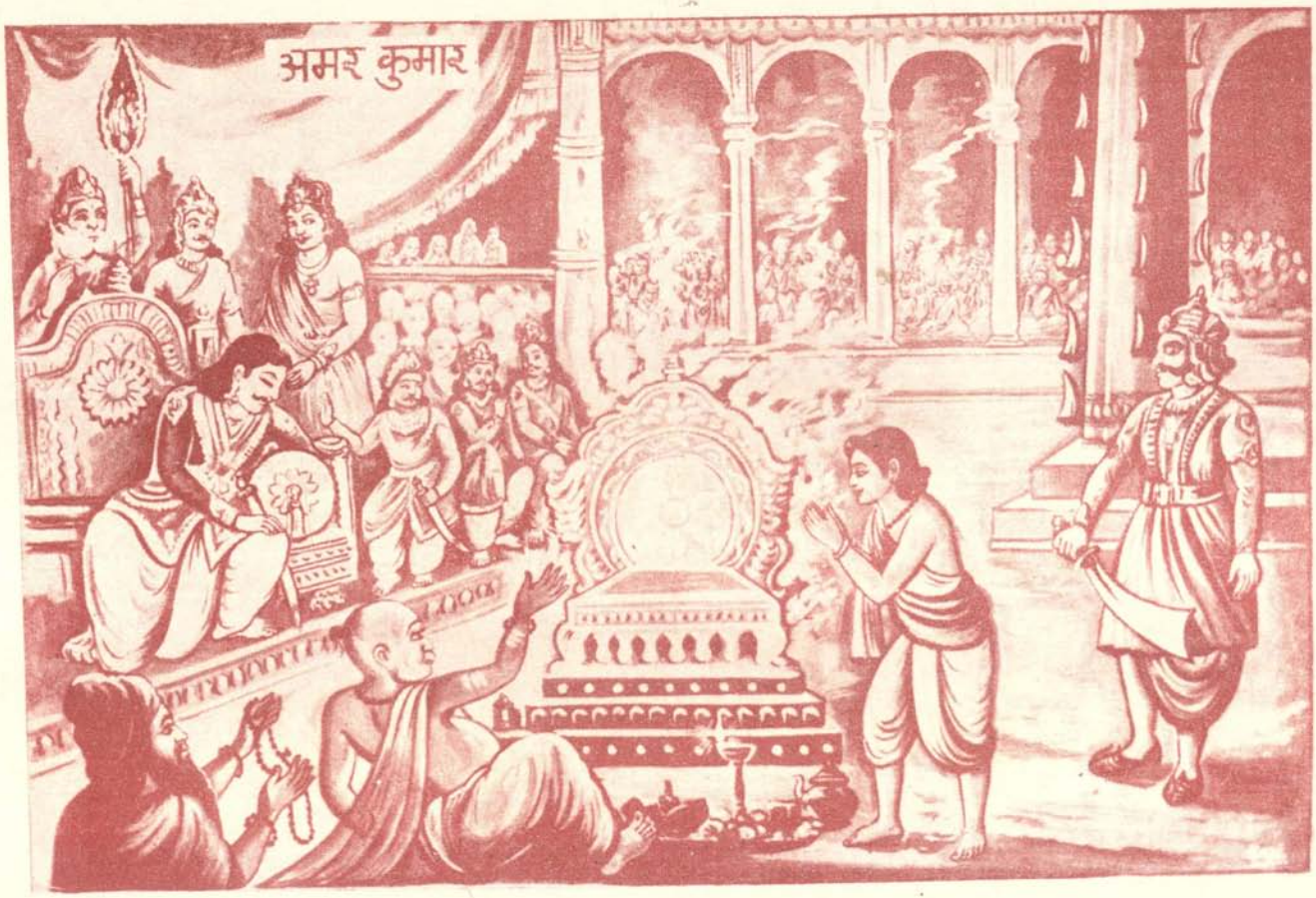
अमर कुमार

१२ श्री अमरकुमार

राजगृही नगरी के श्रेणिक राजा जब धर्मी न थे, वे चित्रशाला के लिए एक सुंदर मकान का निर्माण करवा रहे थे। कोई कारण से उसका दरवाजा बनवाते और टूट जाता था। बार बार ऐसा होने से महाराजा ने वहाँ के पंडितों और ज्योतिषियों को बुलवाकर इसके बारे में राय मांगी।

ब्राह्मण पंडित कोई बत्तीस लक्षणवाले बालक की बलि चढ़ाने की राय दी, इसलिये बत्तीस लक्षणवाले बालक की खोज प्रारंभ हुई। ऐसा बालक लाना कहाँ से? इसके बारेमें राजा ने गाँव में ढिंढोरा पिटवाया कि, जो कोई बालक बलि के लिए देगा उसे बालक के वजन जितनी सुवर्णमुद्राए दी जायेगी।

इसी राजगृही नगरी में ऋषभदास नामक एक ब्राह्मण रहता था। भद्रा नामक उसकी स्त्री थी। उनके चार पुत्र थे। कोई खास आमदनी या आय न होने से दरिद्रता भुगत रहे थे। उन्होंने चार में से एक बेटा राजा को बलि के लिए सौंपने का विचार किया, जिससे सुवर्णमुद्राएँ प्राप्त होने के कारण कंगालपन दूर हो सके।

इन चार पुत्रों में एक अमरकुमार माँ को अप्रिय, एक बार जंगल में लकड़ी काटने गया था तब उसे जैन मुनि ने नवकार मंत्र सिखाया था। उसने माँ बाप को बहुत प्रार्थना की - 'पैसे के लिए मुझे मरवाओ मत।' ऐसे आक्रंद के साथ चाचा, मामा आदि सगे-सम्बन्धियों को खूब बिनतियाँ की लेकिन उसकी बात किसी ने न मानी। बचाने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ। इसिलिये राजाने उसके वजन जितनी सुवर्णमुद्राएँ देकर अमरकुमार का कब्जा ले लिया।

अमरकुमार ने राजा से बहु आजिज़ी करके बचाने के लिए कहा। राजा को दया तो खूब आई लेकिन - इसमें कुछ भी मैं गलत नहीं कर रहा हूँ - यूं मन मनाया। सुवर्णमुद्राएँ देकर बालक खरीदा है, कसूर तो उसके मातापिता का है जिन्होंने धन के खातिर बालक को बेचा है।

मैं बालक को होम में डालुंगा तो वह मेरा गुनाह नहीं है - ऐसा सोचकर अंत में सामने आसन पर बैठे पण्डितों की ओर देखा।

पंडितों ने कहा, 'अब बालक के सामने मत देखो। जो काम करना है वह जल्दी करो। बालक को होम की अग्निज्वालाओं में होम दो।'

अमरकुमार को शुद्ध जल से नहलाकर, केसर चन्दन उसके शरीर पर लगाकर, फूलमालाएँ पहिनाकर अग्निज्वाला में होम दिया।

उस समय अमरकुमार जो नवकार मंत्र सीखा था उसी को आधार समझकर उसका ध्यान धरने लगा। नवपद का ध्यान करते करते अग्निज्वालाएँ बुझ गई, देवों ने आकर उसे सिंहासन पर बिठाया और देवों ने राजा को उलटा गिरा दिया। राजा के मुँह से खून बहने लगा।

ऐसा चमत्कार देखकर राज्यसभा और ब्राह्मण पण्डितों वगैरह ने अमरकुमार को महात्मा समझकर उसके चरणों की पूजा करने लगे और राजाजी को शुद्धि में लाने की बिनती की। अमरकुमार ने नवकार मंत्र से पानी मंत्रित करके राजाजी पर छिड़का। राजा अंगडाई लेकर उठा। ग्राम्यजन कहने लगे, 'बालहत्या के पाप के कारण राजाजी को यह सजा मिली।'

श्रेणिक महाराज ने खड़े होकर कुमार की सिद्धि को देखकर अपना राज्य देने के लिए कहा। अमरकुमार ने कहा, मुझे राज्य की कुछ जरूरत नहीं है। मुझे तो संयम ग्रहण करके साधु बनना है।

लोगों ने अमरकुमार का जयजयकार किया। धर्म ध्यान में लीन होते ही अमरकुमार को जाति स्मरण ज्ञान अर्जित हुआ और पंचमुष्टि से लोच करके, संयम ग्रहण किया और गाँव के बाहर श्मशान में जाकर काउसग्ग ध्यान लगाकर खड़े रहे।

माता-पिता ने यह बात सुनकर मन से सोचा, 'राजाजी आकर सुवर्णमुद्राएँ वापिस ले लेगा।' इसलिए धन आपस में बाँट लिया और कुछ धरती में गाड़ दिया।

अमरकुमार की माँ को पूर्वभव के बैर के कारण रात्रि में नींद न आने से शस्त्र लेकर ध्यानस्थ खड़े अमरकुमार के पास पहुँची और अमरकुमार की हत्या कर दी।

शुक्लध्यान में रहकर अमरकुमार काल अनुसार बारहवें स्वर्गलोक में अवतरित हुए, वहाँ बाईस सागरोपम आयुष्य भोगकर महाविदेह में जन्म लेकर केवलज्ञान पायेंगे।

अमर की हत्या करके माता हर्षोन्मत होती हुई चली जा रही थी, रास्ते में शेरनी मिली। शेरनी भद्रा माता को चीर-फाड कर खा गई। वह मरकर छठ्ठे नरक पहुँची, उसे बाईस सागरोपम आयुष्य भुगतना बाकी है।

●

१३ —सनतकुमार चक्रवर्ती—

कुरू देश के गजपुर नगर में सनतकुमार राज्य करते थे। उन्होंने सर्व राजा-रजवाड़ों को वश करके चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था। वे खूब स्वरूपवान थे। उनके जैसा सुन्दर रूप पृथ्वी पर किसीका न था। इन्द्र महाराजा ने देवों की सभा में सनतकुमार के रूप की प्रशंसा की। इन्द्र महाराज की वाणी सुनकर दो देवों को शंका हुई। खेद पाकर दोनों देव रूप की परीक्षा करने ब्राह्मण वेष धरकर सनतकुमार के पास पधारे। उस समय सनतकुमार स्नान करने बैठे थे। उनका रूप देखकर दोनों देव हर्षित हुए। सचमुच! जगत में किसीका न हो ऐसा रूप देखकर सनतकुमार को कहा, 'आपका रूप देखने के लिए बड़ी दूर से आये हैं, वाकई विधाताने आपको बेमिसाल रूप दिया है।' ऐंसा कहकर खूब बखान किये। सनतकुमार ने कहा,' 'इस समय मेरी यह काया स्नान के हेतु उबटन से भरी हुई है और काया खेह से भरी होने से बराबर नहीं है। मैं नाहकर पोषाक-अलंकार धारण करके राज्यसभा में बैठूं तब मेरा रूप देखना। यथार्थ रूप देखना हो तो राज्यसभा में पधारना।'

राज्यसभा की तैयारी हुई। सनतकुमार आभूषण वगैरह से सजधज कर आये और दोनों देव भी ब्राह्मण वेष में सनतकुमार का रूप निहारने पधारे। सनतकुमार स्नान करने बैठे थे उस समय का रूप उन्हें न दिखा, काया रोग से भरी हुई दिखाई दी। सनतकुमार को उन्होने कहा, 'नहीं, आपकी काया रोग से भरी हुई है।' सनतकुमार को मानसिक ठेस पहुँची लेकिन कहा, 'मेरे रूप में क्या कमी है? मैं कहाँ रोगी हूँ?' देवों ने कहा : 'एक नहीं, सोलह रोग से आपकी काया भरी हुई है।' सनतकुमार ने अभिमान से कहा, 'आप पिछड़ी बुद्धि के ब्राह्मण हैं।' ब्राह्मणों ने कहा, 'एक बार थूंककर देखो तो सही।' सनतकुमार का मुख तांबूल से भरा हुआ था। उन्होंने थूंककर देखा तो उसमें कीड़े बिलबिलाते हुए देखें। वे यह देखकर सोचने लगे, 'अरे रे! ऐसी मेरी काया? इस काया का क्या भरोसा?' ऐसा सोचकर छः खण्ड का राज्य-कुटुम्ब-कबीला सब कुछ छोड़कर चारित्र ग्रहण कर लिया।

उनके सेनापति, उनकी स्त्रीयाँ वगैरह हाथ जोड़कर राज्य में रहकर, राज्य

चलाने की विनती करने लगे, लेकिन कुछ भी सुने बिना वे चारित्र में अटल रहें। किसीको भी उत्तर न दिया और विहार कर गये।

इन्द्र ने पुनः उनके संयम और निःस्पृहता व उनकी लब्धि की प्रशंसा की। पुनः एक देव को सनतऋषि की परीक्षा लेने का मन हुआ। वैद्य रूप धारण कर सनत मुनि के पास पहुँचे और उपचार करने को कहा। सनतकुमार ने कहा, 'मुझे कोई इलाज नहीं कराना है। मेरे कर्मों का ही मुझे क्षय करना है, इसलिए भले ही रोग का हमला हो, इलाज करना ही नहीं है। औषध तो मेरे पास क्या नही है? कई विद्याएँ प्राप्त हुई है। देखो, मेरा यह थूंक जहाँ भी लगाऊँ, वहाँ सब ठीक हो जाता है। काया कंचनवर्णी हो जाती है। ऐसा कहकर अपना थूंक एक अंगूली पर लगाया तो वह भाग कंचन समान शुद्ध हो गया। ऋषि की ऐसी लब्धि देखकर देव प्रसन्न होकर अपने स्थान पर लौटे। सनतकुमार ने इस रोग का परिषह होना चाहिये या परिसर बराबर है ? सातसों वर्ष तक सहा। कभी भी उपचार नहीं किया, समता रखकर कालानुसार तृतीय देव लोक पधारे। तत्पश्चात् दूसरा भव करके मोक्ष पधारेंगे।

●

धूपबत्ती

जगत की अपवित्रता एवं दुर्गन्ध दूर करने स्वार्पण का व्रत लिया... और स्वार्पणयज्ञ में छोटी सी सुगंध रानी बेआवाज़ धीमे धीमे जलकर सुवासपूर्ण आहुति बन गई।

ज्यों ज्यों वह आग स्वीकार करती गई त्यों त्यों उसकी सुगन्ध ज्यादा से ज्यादा फैलती रही।

धीरे धीरे उसकी देह खाक होने लगी और उसका जीवनधूप वातावरण को सुवासित एव शुद्ध बनाता हुआ, सर्वत्र स्नेह और सद्‌भाव की पवित्र महक प्रसारित करता हुआ, समर्पण भावना का मूक संगीत बहाता रहा।

धूपबत्ती जैसी पवित्रता हम भी प्रसारित करें।

१४ मेघकुमार

महावीर प्रभु राजगृही नगरी पधारे। महाराजा श्रेणिक, अभयकुमार, धारणी देवी वगैरह ने भगवान की देशना सुनी, श्रेणिक राजा ने समकित का आश्रय किया और अभयकुमारने श्रावक धर्म अंगीकार किया। देशना के अंत में प्रभु को प्रणाम करके परिवार के साथ वे राजभवन पधारे। तब उनके एक पुत्र मेघकुमार ने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना की, 'श्री वीरप्रभु जो भव्य लोकों के संसार तारणहार है वे स्वयं यहाँ पधारे हुए हैं, उनके चरणों में जाकर दीक्षा ले लूं क्योंकि मैं अनंत दु:खदायी संसार से थक गया हूँ।'

पुत्र के ऐसे वचन सुनकर श्रेणिक और धारणी बोले, 'यह व्रत थोड़ा सा भी सरल नहीं है।' मेघकुमार ने उत्तर दिया, 'सुकुमार हूँ लेकिन संसार से भयभीत हूँ, इसलिए दुष्कर व्रत पालन कर लूंगा।' श्रेणिक राजा ने बिनंति की, एक बारराज्य भार ग्रहण करके मेरे मन को शांति दे दो। मेघकुमार सहमत हुए। बड़ा महोत्सव करके मेघकुमार को राजगद्दी पर बिठाया और हर्षित होकर श्रेणिक महाराजा ने मेघकुमार को कहा, 'अब मैं और क्या कर दूँ?' तब मेघकुमार ने कहा, 'आप वाकई मुझ पर प्रसन्न हुए हो तो मुझे रजोहरण एंवं पात्र मंगवा दो।' वचनबद्ध होने से महाराजा दु:खी मन से ऐसा करना पड़ा। मेघकुमार ने प्रभु के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा की प्रथम रात्रि... छोटे बड़े साधु के क्रमानुसार मेघकुमार आखिरी संथारे पर सो रहे थे इसलिए आते-जाते मुनियों के चरण बार बार उनके शरीर से टकरा जाते थे। इससे वे रात्रि को सो न सके। वे सोचने लगे, 'अब मैं वैभवहीन हो गया इसलिए अन्य मुनि अपने पाँवों से संघट्ट (अपमान) करते जा रहे हैं। वैभव ही सर्व स्थानों पर पूजनीय है। मुझे व्रत छोड़ देना चाहिये।' व्रत छोडना मन ही मन तय करके वे प्रात: प्रभु के पास पहुंचे।

प्रभु केवलज्ञानी होने से मेघकुमार का भाव जानकर उन्हें समझाने लगे, 'तेरे पूर्व भव सुन। पूर्व भव में तूं विंध्याचल हाथी था। एक बार बन में दावाग्नि लगी। घासविहीन एक मण्डल छोटे बड़े सभी प्रकार के हजारों प्राणियों से भर गया। तूं भी वहाँ खड़ा था। खुजली आने से एक पैर तूने खुजलाने के

लिये उठाया। एक खरगोश दावानल से बचने के लिए दूसरा सुरक्षित स्थान न मिलने के कारण पैर तले आकर बैठ गया। तूने नीचे देखा। पैर नीचे रखूंगा तो खरगोश मर जायेगा - ऐसा सोचकर पैर ऊँचे ही रखा। ढ़ाई दिन में दावानल शांत हुआ। सब जानवर अपने स्थान पर लौटने लगे। खरगोश भी अपने स्थान पर चल पड़ा। क्षुधा और तृषा पीडित तूं पानी पीने के लिए दौड़ने तैयार हुआ लेकिन लम्बे समय से पैर उठाया हुआ रखने से अकड़ा गया। तूं दौड न सका और पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस प्रकार भूख-तृषा से पीडित तुमने तीसरे दिन मृत्यु पाई।' भगवानने याद कराते हुए कहा, 'खरगोश पर की हुई दया के पुण्य से तूं राजपुत्र बना। ज्यों त्यों यह मनुष्य भव प्राप्त हुआ है। हाथी के भव में इतनी पीडा सहन कर सका है तो मनुष्य भव में इतने छोटे मोटे कष्ट सह नहीं सकता? एक जीव को अभयदान करने से इतना बड़ा फल मिला तो सर्व जीवों को अभयदान देनेवाले मुनिरूप से प्राप्त होनेवाले फल की क्या बात!!

भवसागर पार करने के लिए उत्तम अवसर मिला है। तूंने जो व्रत स्वीकार किया है उसका भली प्रकार से पालन कर और भवसागर पार कर ले।

प्रभुवाणी सुनकर मेघकुमार व्रत में स्थिर हुए। रात्रि को किये गलत विचार का प्रायश्चित करके विविध तप करने लगे। इस प्रकार उत्तम ढंग से व्रत पालन करके मृत्यु पाई और विजय विमान में देवता बने। वहाँ से महाविदेह में उत्पन्न होकर मोक्ष पायेंगे।

●

असत्य राह पर से प्रभु परम सत्य पर तूं ले जा।
गहरे अंधकार में से प्रभु परम प्रकाश पर तूं ले जा।
महा मृत्यु में से प्रभु अमृत तरफ तूं ले जा।
तूम बिन मैं हीन हूँ प्रभु तेरे दर्शन का दान दे जा।

१५ रोहिणीयो चोर

राजगृही नगरी के नज़दीक वैभारगिरि गुफा में लोहखुर नामक भयंकर चोर रहता था। लोगों पर पिशाच की तरह उपद्रव करता था। नगर के धन भण्डार और महल लूंटता था। लंपट होने कारण परस्त्री का उपभोग भी करता था। रोहिणी नामक स्त्री से उसे रोहिणेय नामक पुत्र हुआ। वह भी पिता की तरह भयंकर था। मृत्यु-समय नज़दीक आता देखकर लोहखुर ने रोहिणेय को बुलाकर कहा, 'तूं मेरा एक उपदेश सुन और उस ढंग से आचरण जरूर करना।' 'रोहिणेय ने कहा,' मुझे जरूर आपके वचन अनुसार चलना ही चाहिये। पुत्र का वचन सुनकर लोहखुर हर्षित होकर कहने लगा, 'जो देवता के रचे हुए समवसरण में बैठकर महावीर नामक योगी देशना दे रहे है, वह प्रवचन तूं कभी भी सुनना मत।' ऐसा उपदेश देने के बाद लोहखुर की मृत्यु हो गई।

कई बार रोहिणेय समवसरण के निकट से गुजरता था। क्योंकि राजगृही जाने का दूसरा मार्ग भी न था। वहाँ से गुजरते समय दोनों कान में अंगुलियां ड़ालकर वहाँ से गुजर जाता जिससे महावीर की वाणी सुनाई न दे और पिता की आज्ञा का भंग भी न हो। एक बार समवसरण से गुजरते हुए पैर में एक कांटा चुभा। कांटा निकाले बिना आगे बढ़ना असंभव था। न चाहते हुए कान से अंगुलि निकालकर कांटा पाँव से बाहर निकाल ड़ाला। लेकिन उस समय दौरान भगवान की वाणी निम्न अनुसार उसे सुनाई दी। 'जिसके चरण पृथ्वी को छूते नहीं हैं, नेत्र निमेषरहित होते हैं, पुष्पमालाएँ सूखती नहीं है व शरीर धूल तथा प्रस्वेद रहित होता है वे देवता कहलाते हैं।' इतना सुनते ही वह सोचने लगा, 'मुझे बहुत कुछ सुनाई दिया। धिक्कार है मुझे। मेरे पिता ने मृत्यु समय दी हुई आज्ञा का मैं पालन न कर सका।' जल्दी से कान पर हाथ रखकर वह वहाँ से चल दिया।

दिन बदिन उसका उपद्रव बढ़ता गया। गाँव के नागरिकों ने इस चोर के उपद्रव से बचाने की बिनती राजा श्रेणिक को की। राजा ने कोतवाल को बुलाकर चोर पकडने के लिए खास हुक्म दिया, लेकिन कोतवाल कड़ी मेहनत के बाद भी रोहिणेय को न पकड सका। राजा ने अपने पुत्र अभयकुमार को चोर पकड़ने का कार्य सौंपा। अभयकुमार ने कोतवाल को कहा कि संपूर्ण

सेना गाँव के बाहर रखो। जब चोर गाँव में घूसे तब चारोंओर सेना को घूमती रखों। इस प्रकार की योजना से रोहिणेय मछली की तरह जाल में फँस कर एक दिन पकड़ा गया।

लेकिन महाउस्ताद चोर ने किसी भी प्रकार से खुद चोर है ऐसा स्वीकार न किया। और कहा 'मैं शालिग्राम में रहनेवाला दुर्गचंद नामक पटेल हूँ।' उसके पास चोरी का कोई माल उस समय न था। सबूत के बिना गुनाह कैसे माना जाय? और सजा भी कैसे दी जाय? शालिग्राम में पूछताछ करने पर दुर्गचंड नामक पटेल तो था लेकिन लम्बे समय से वह कहीं पर चला गया है ऐसा पता चला। अभयकुमार ने चोर से कबूलवाने के लिए एक युक्ति आजमायी। उसने देवता के विमान की तरह महल में स्वर्ग जैसा नज़ारा खड़ा किया। चोर को मद्यपान कैरा कर बेहोश किया, कीमती कपड़े पहिनाये। रत्नजड़ित पलंग पर सुलाया और गंधर्व जैस कपड़े पहनाकर दास-दासियों को सबकुछ सिखा कर सेवा में रखा। चोर का नशा उतरा। वह जागा तब इन्द्रपुरी जैसा नज़ारा देखकर आश्चर्यचकित हो गया। अभयकुमार की सूचना अनुसार दास-दासी, 'आनंद हो - आपकी जय हो' - जयघोष करने लगे और कहा, 'हे भद्र! आप इस विमान के देवता बन गये हों। आप हमारे स्वामी हो। अप्सराओं के साथ इन्द्र की तरह क्रीडा करो।' इस तरह चतुराईपूर्वक बड़ी चापलूसी की। चोर ने सोचा, वाकई मैं देवता बन गया हूँ?

गंधर्व जैसे अन्य सेवक संगीत सुनवा रहे थे। स्वर्ण छड़ी लेकर एक पुरुष अन्दर आया और कहने लगा, 'ठहरो! देवलोक के भोग भुगतने से पहले नये देवता अपने सुकृत्य और दुष्कृत्य बताये - ऐसा एक नियम है। तो आपके पूर्व भव के सुकृत्य वगैरह बताने की कृपा करे। 'रोहिणेय ने सोचा, वाकई यह देवलोक है? ये सब देव-देवियाँ हैं या कबूलवाने के लिए अभयकुमार को कोई प्रपंच है?

सोचते सोचते उसे प्रभु महावीर की वाणी याद आई। इन लोगों के पाँव जमीन पर हैं। फूलों की मालाएँ मुरझाई हुई हैं और पसीना भी खूब छूटता है, आँखे भी पलकें झपकाती हैं, निमेष नहीं है इसलिये यह सब माया है। मन से ऐसा तय किया कि ये देवता नहीं हो सकते इसलिये झूठा उत्तर दिया, 'मैंने पूर्व भव में जैन चैत्यों का निर्माण करवाया है, प्रभु पूजा अष्टप्रकार से की है।' दण्डधारी ने पूछा, 'अब आपके दुष्कृत्यों का वर्णन कीजिये।' चोर

ने कहा, 'मैंने कोई दुष्कृत्य किया ही नहीं है। यदि मैंने दुष्कृत्य किया होता तो देवलोक में आता कैसे?' - इस प्रकार युक्तिपूर्वक उत्तर दिया। अभयकुमार की योजना नाकाम रही। रोहिणेय को छोड़ देना पड़ा।

छुटकारा होते ही वह सोचने लगा, पल दो पल की प्रभु वाणी बड़े काम आई। उनकी वाणी अधिक सुनी होती तो कितना सुख मिलता? मेरे पिता ने गलत उपदेश देकर मुझे संसार में भटकाया है। यों पश्चात्ताप करते हुए प्रभु के पास आकर चरणों में गिरकर वंदना की और कहा, मेरे पिता ने आपके वचनों को सुनने का निषेध करके मुझे ठगा है, कृपा करके मुझे संसारसागर से बचाओ। कुछ समय के आपके अल्प वचनों को सुनकर राजा के मृत्युदण्ड से बचा हूँ अब उपकार करके, योग्य लगे तो मुझे चारित्र ग्रहण करवाईये। प्रभु ने व्रत देने की हाँ कह दी। करे हुए पापों की क्षमायाचना हेतु चोरने श्रेणिक महाराजा के पास जाकर चोरी वगैरह का इकरार किया और अभयकुमार को संग्रहित चोरी के माल का पता दिया। और प्रभु से दीक्षा ग्रहण की। क्रमानुसार एक उपवास से लेकर छःमासी उपवास की उग्र तपश्चर्या करने के बाद वैभार पर्वत पर जाकर अनशन किया। शुभ ध्यानपूर्वक पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुए देह छोड़कर स्वर्ग पधारे।

●

अवसर बेहेर बेहेर नहीं आवे

बेहेर बेहेर नहीं आवे अवसर बेहेर बेहेर नहीं आवे,
ज्यों जाने त्यों कर ले भाई, जनम जनम सुख पावे। अव...१
तन, धन जोबन सब ही झूठा, प्राण पलक में जावे। अव...२
तन छूटे, धन कौन कामको, कायकु कृपण कहावे। अव...३
जाके दिल में साच बसत है, ताकू झूठ न भावे। अव...४
आनंदधन प्रभु चलत पथ में, समरी समरी गुन गावे। अव...५

१६ चंडकौशिक सर्प

साधु था बडा तपस्वी, धरता था मन वैराग्य।
शिष्यों पर क्रोध किया, बना चंडकौशिक नाग॥

पाठकों को प्रश्न होगा कि महानुभावों की कथा में सर्प की कथा आई कैसे?

मूल कथा है एक वृद्ध साधु की, लेकिन इसका नाम साधु के तीसरे भव का याने मर कर सर्प होता है तब के नाम से कथा का नाम 'चंडकौशिक सर्प' दिया है।

एक वृद्ध तपस्वी धर्मघोष मुनि... उनके एक बाल शिष्य दमदंत मुनि। उपवास पश्चात पारणा हेतु शिष्य के साथ गोचरी के लिए निकले। उनके पाँव के नीचे एक मेंढ़की कुचलाकर मर गई। इस की आलोचना करने के लिए बालमुनि ने वृद्ध साधु को टोका। साधु ने बालमुनि को कहा, 'यहाँ अन्य मेंढकिया मरी पड़ी हैं, क्या वे सब मैंने मारी हैं?' लेकिन संध्या के प्रतिक्रमण के बाद बालमुनि ने याद दिलाया, 'मेंढकी की आलोचना की?' बार बार याद दिलाते बालमुनि पर वृद्ध मुनि बड़े क्रोधित हुए और ठहर जा, कहकर मारने दौड़े। अंधेरा था और मुनि क्रोधित होकर दौड पड़े थे। बीच में एक खंभा आया, वृद्ध साधु का सिर टकराया, खूब चोट आई और उनकी मृत्यु हो गई। दूसरे भव में वह तपस्वीयों एव बड़े वनखण्ड का स्वामी बना। अन्य तापसों को वनखण्ड में से वह फूल या फल न तोड़ने देता था। कोई फल-फूल लेता तो उसे मारने दौड़ता था। एक दिन वह फल तोडकर ले जाते राजपुत्र के पीछे कुल्हाड़ी लेकर दौड़ा। कर्मवश वह खड्डे में गिर पड़ा और हाथ की कुल्हाड़ी सिर पर जोर से लगने के कारण तुरंत मर गया।

मरने बाद वह चंडकौशिक दृष्टिविष सर्प बना। एक बार विहार करते हुए प्रभु महावीर श्वेतांबी नगरी की ओर जा रहे थे। मार्ग में यह सर्प रहता था। उसकी फूफकार मात्र से प्राणी वगैरह मर जाते थे। इस कारण से लोग उस मार्ग का उपयोग आनेजाने के लिए नहीं करते थे। इसी राह पर महावीर प्रभु विहार कर रहे थे। वहाँ रहते गोपालों ने प्रभु को समझाया कि इस राह

पर से मनुष्य ही नहीं, पक्षी भी नहीं फड़कते। आप अन्य लम्बे मार्ग से श्वेतांबी नगरी पधारें। अनंत करुणासागर प्रभु ज्ञान से चंडकौशिक के भवों को जानकर प्रतिबोधना के लिए उसी भयंकर मार्ग पर विचरे और अरण्य में नासिका पर नेत्र स्थिर करके कायोत्सर्ग ध्यान लगाया।

कुछ ही समय में सर्प ने प्रभु को यूं खड़े देखा। मेरी अवज्ञा करके कौन घूस आया हैं? भयंकर रूप से फूफकारा, लेकिन प्रभु पर उसका कोई असर न पड़ा। क्रोधित होकर प्रभु के चरणकमल पर डँस लिया। डंस पर रुधिर के बजाय दूध की धारा निकलती देखकर विस्मित हुआ और प्रभु के अतुलनीय रूप को निहारते हुए नेत्र स्तब्ध हो गये और थोड़ा शांत बन गया वह! तब प्रभु ने कहा, 'अरे चंडकौशिक बूज! बूज! मोहित न हो।' भगवान के वचन से सर्प को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रभु की तीन परिक्रमाएँ करके मनसे अनशन करना निश्चित किया। सर्प के भाव को समझकर अपनी करुणा दृष्टि से प्रभु ने उसे सिंचित किया।

अधिक पाप से बचने के लिए अब किसी पर भी दृष्टि न गिरे इसलिये वह बील में मुँह डालकर हिले-डुले बिना अनशन व्रत धर कर पड़ा रहा। उसके उपसर्ग बंद होते ही लोग वहाँ से जाने-आने लगे। सर्प देवता शांत हो गये है, समझकर वहाँ से गुजरती ग्वालिने पूजा के रूप में उस पर घी छिड़कने लगी। घी की सुगंध से असंख्य चींटियां उसके शरीर पर आकर घी खाती और उसके शरीर को काटने लगी। धीरे धीरे सर्प का शरीर छलनी बन गया। यह सर्पराज दुसह्य वेदना सहते रहे और बेचारी अल्प बलवाली चींटियाँ शरीर के वजन से कुंचली न जाय ऐसा समझकर उसने शरीर को थोड़ा सा भी हिलाया नहीं। इस प्रकार करुणा के परिणाम एवं भगवंत की दयामृत दृष्टि से सिंचित सर्प एक पखवाडे के बाद मृत्यु पाकर सहस्रार देवलोक में देवता बने।

●

निंदा करते झूठे जन, उससे कभी डरो मत,
पक्के सत्य विचार से, पीछे कभी हटो मत।

१७ श्री मेघरथ राजा

जंबूद्वीप के पूर्व महाविदेह में पुंडरीकिणी नगरी में धनरथ राजा थे। उनकी प्रियमति नामक पत्नी थी। उनके यहाँ मेघरथकुमार का जन्म हुआ। समयानुसार पिता ने मेघरथ को राज सौंपा। मेघरथ भली-भांति जैन धर्मका पालन करते थे। पौषधशाला में पौषधग्रहण करके एक दिन वे भगवंत भाषित धर्म का व्याख्यान कर रहे थे। उस समय मरमोन्मुख भय से कंपित दीन दृष्टि घूमाता हुआ एक कबूतर उनकी गोद में आ गिरा और मनुष्य भाषा में अभय की रक्षा मांगने लगा। करुणासागर राजा ने 'डरना नहीं, डरना मत' कहकर आश्वासन दिया। कुछ ही क्षणों में, 'हे राजन्! वह मेरा भक्ष्य है, मुझे शीघ्र सौंप दे' कहता हुआ एक बाज पक्षी वहाँ आ पहुँचा। राजा ने कहा : 'तूझे यह कबूतर नहीं दूंगा, क्योंकि यह मेरी शरण में आया है और शरणार्थी को बचाना क्षत्रियधर्म है। ऐसे प्राणी को मार खाना तुझ जैसे बुद्धिमान को शोभा नहीं देता, तेरे शरीर पर से एक पंख उखाडने से तूझे कैसी पीड़ा होगी? वैसी ही पीड़ा अन्य को भी होगी। तूं यह सोचता नहीं है कि किसी को मार ड़ालने से कितनी पीडा होगी? और ऐसी जीव हिंसा करके तेरा पेट तो भर जायेगा लेकिन नरकगामी पाप तूं कर रहा है, जरा सोच तो सही।' तब बाज पक्षी ने कहा, 'आप कबूतर का रक्षण कर रहे हो, मेरा विचार क्यों नहीं करते? मैं भूख से पीड़ित हूँ, मेरे प्राण निकल जायेंगे। मांस ही मेरी खुराक है। मुझे ताजा मांस आप दोगे?' राजा अपने देह का गोश्त देने के लिये तैयार हो गया। कबूतर के वजन जितना मांस देने के लिये तराजू मंगवाया, एक पलड़े में कबूतर को बिठाकर दूसरी ओर अपने शरीर से मांस काटकर रखने लगा।

मांस कटता गया लेकिन कबूतर के वजन से कम ही वजन रहा, अंत में राजा खुद तुला में बैठ गया। यह देखकर पूरे परिवार में हाहाकार मच गया। सामंत, अमात्य, मित्रों ने राजा को कहा : 'अरे प्रभु! हमारे दुर्भाग्य से आप क्या कर रहे हो? इस देह से आपको पूरी पृथ्वी का रक्षण करना चाहिये। एक पक्षी के रक्षण हेतु शरीर का त्याग क्यों कर रहे हो? यह तो कोई मायावी पक्षी लगता है। पक्षी इतना भारी हो ऐसा संभव है ही नहीं।' परिवार और नगरजन वगैरह ऐसा कह रहे थे तब मुकुट, कुण्डल और माला धारण करे

कोई देवता तेज पुंज जैसे प्रकट होते हुए बोले, 'हे नृपपति! आप वाकई मेरू पर्वत जैसे हैं, स्वस्थान से चलित हुए ही नहीं। इशानेंद्र ने अपनी सभा नें आपकी प्रशंसा की वह मुझसे सहन न हो सकने के कारण आपकी परीक्षा करने आये थे। हमारा यह अपराध क्षमा करे।' इस प्रकार कहकर राजा को पूर्वरूप देकर देवता स्वर्ग में पधारे।

तत्पश्चात मेघरथ राजाने संयम ग्रहण किया और बीसस्थानक का तप विधिपूर्वक करके तीर्थंकर गौत्र प्राप्त कर एक लाख पूर्व आयुष्य भोगकर बारहवें भव में अचिराजी की कोक्ष से अवतार धारण कर श्री शांतिनाथ नामक सोलहवें तीर्थंकर बने।

●

अति अधिक न तानिये, ताने से टूट जाय,
टूटे बाद जो जोडिये, बीच में गांठ पड जाय।

इतना तो देना भगवंत

इतना तो देना भगवन्! मुझे अंतिम घडी,
न रहे माया के बंधन, मुझे अंतिम घड़ी (टेक)
यह जिंदगी महँगी मिली, लेकिन जीवन में जागा नहि,
अंत समय मुझे रहे, सच्ची समझ अंतिम घडी। इतना...
जब मरणशय्या पर, मींचूं आखिर अँखियाँ
तूं देना तब प्रभुमय मन, मुझे अंतिम घडी। इतना...
हाथ पैर निर्बल बने, श्वास आखिरी संचरे,
ओ दयालु! देना दर्शन, मुझे अंतिम घडी। इतना...
मैं जीवनभर जलता रहा संसार के संताप में;
तूं देना शांतिपूर्ण, निंद्रा मुझे अंतिम घडी। इतना...
अनगिनत अधर्म मैंने किये, तन-मन-वचन योग से,
हे क्षमासागर! क्षमा मुझे देना अंतिम घडी। इतना...
अंत समय आकर मुझे, दमे न घट्ट दुश्मन,
जाग्रतपन से मन में रहे, तेरा स्मरण अंतिम घडी॥ इतना...

१८ श्री दशार्णभद्र

चंपानगरी से विहार करके महावीर प्रभु दशार्ण नगर पधार रहे थे। वहाँ के राजा दशार्णभद्र को सायंकाल समाचार मिले कि, कल प्रातः वीर प्रभु मेरे नगर में पधारेंगे! सुनकर राजा बड़ा हर्षित हुआ। मेरी समृद्धि से भगवान का अपूर्व स्वागत करके वंदना करूंगा ऐसा सोचकर मंत्री वगैरह को आज्ञा दी, 'मेरे महल से समवसरण तक बड़ी समृद्धि से मार्ग सजाओ।'

राजा की आज्ञानुसार कभी न सजाया हो ऐसे ढंग से नगरपति एवं मंत्रियों ने मार्ग सजाया। मार्ग में कुंकुम जल छिड़का, भूमि पर सुंदर पुष्प बिछाये। जगह जगह सुवर्णस्तंभ खड़े करके तोरण बांध दिये। रत्नमय दर्पणों से शोभित मालाओं से स्तंभ सजाये गये। स्नान करके दिव्य वस्त्र, आभूषण, पुष्पमाला धारण करके उत्तम हाथी पर बैठकर राजा प्रभु की वंदना के लिए चल पड़ा। मस्तिष्क पर श्वेत छत्र था और दोनों ओर चँवर ढल रही थी। उनके पीछे सब सामंत और उनके बाद इन्द्राणी जैसी अंतःपुर की स्वरूपवान स्त्रीयाँ वगैरह चल रहे थे। प्रभु के समवसरण पहुँचकर तीन प्रदक्षिणा देकर प्रभु की वंदना-पूजा की। अपनी समृद्धि से गर्वित राजा अपने योग्य आसन पर बैठा।

अपनी समृद्धि का गर्व दशार्णपति को हुआ देखकर प्रतिबोधना देने के लिए इन्द्र महाराज ने एक अति रमणीय विमान जो जलयुक्त था - उसका विस्तार किया। स्फटिक मणि जैसे उसके निर्मल जल में सुंदर कमल खीले हुए दीख रहे थे। हंस और सारस पक्षियों का मधुर प्रतिनाद हो रहा था। देव वृक्ष और देव लताओं से झडते पुष्पों से विमान शोभित था। विमान से ऊतरकर इन्द्र महाराजा आठ दंतशूलों से शोभित ऐरावत हाथी पर बैठने गये। उस समय हाथी पर बैठी हुई देवांगनाओं ने हाथ का सहारा देकर उन्हें बिठाया। इन्द्र की असीम समृद्धि देखकर क्षणभर के लिए राजा स्तंभित हो गया और विस्मित नेत्रों से आँखे पसारकर सोचने लगा, 'अहो! यह इन्द्र का कैसा वैभव है? क्या सुंदर उसका ऐरावत हाथी है! कहाँ मेरा डबरा जैसा वैभव और कहाँ इन्द्र का समुद्र जैसा वैभव! मैंने बेकार ही समृद्धि का गर्व किया। धिक्कार है मुझे, मैंने झूठा गर्व करके मेरी आत्मा को मलिन किया। ऐसी भावना करते

करते दशार्णभद्र राजा को धीरे धीरे वैराग्य उत्पन्न हुआ। मुकुट, आभूषण निकालकर मानो कर्मरूप वृक्षों की जड़े निकाल रहे हो, वैसे अपनी मुष्टि से मस्तिष्क के बाल खींच डाले और गणधर के पास जाकर चारित्र ग्रहण करके प्रभु की परिक्रमा करके वंदन किया। इन्द्र ने दशार्णभद्र के पास आकर कहा, 'अहो महात्मन! आपके इस महान पराक्रम से आपने मुझे जीत लिया है।' ऐसा कहकर नमस्कार करके इन्द्र अपने स्थान पर लौट पड़े और दशार्णभद्र मुनि ने सुचारूपूर्ण व्रत पालन करके स्वयं को धन्य बनाया।

●

हम मेहमान दुनिया के...

हम मेहमान दुनिया के, आप मेहमान दुनिया के,
सब मेहमान दुनिया के, हैं मेहमान दुनिया के ।१।
यहाँ पल, पहर या दिन माह, या कई साल रहेंगे,
लेकिन कब जायेंगे निश्चित, नहीं सही कहेंगे ।२।
बराबर बाजरा खूटेगा, उठ के तुरंत जायेंगे,
संबंधी रोकेंगे तो भी, बाद पल भर न रहेंगे ।३।
प्रभु की कृपा तब तक, हम यह खेल देखेंगे,
निहारकर, व्योम तो उसका, बड़ा आनंद उठायेंगे ।४।
जमा पूंजी जायेंगे छोड़कर, नहीं साथ कुछ ले सकेंगे,
नहीं है मालिक तो अंत में हम फूटी बादामों के ।५।
न कुछ लाये थे, न कुछ ले जायेंगे,
प्रभुजी के पाहुने, कोई बात की नहीं है कमी ।६।
भले ही प्यार उड़ जाये, हम लेश न रोयेंगे,
हम भी हैं उसी मार्ग में, जानेवाले आखिर जायेंगे ।७।

१९ विजय सेठ-विजया सेठानी

भरत क्षेत्र के कच्छ देश में विजय नामक श्रावक रहता था। बचपन के धार्मिक संस्कारों के कारण कृष्ण पक्ष याने वद के पखवारे में चौथा व्रत पालने का निश्चय किया था। कर्म संयोग से विजया नामक सुन्दर कन्या के साथ उनका ब्याह हुआ। सद्गुरु के योग से विजया ने शुक्ल पक्ष में चौथा व्रत पालने का नियम लिया हुआ था। शुभ दिन उनका विवाह हुआ। शादी के बाद पिया को मिलने सजधज कर रात्रि को विजया शयनकक्ष में पहुँची। कृष्ण पक्ष के तीन दिन बाकी थे इसलिये विजय ने कहा, 'हम तीन दिन के बाद संसारसुख भोगेंगे। मैंने कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचारी रहने का नियम लिया है।' यह सुनकर विजया चिंतातुर हो गई। उसे दिग्मूढ बने देखकर विजयने पूछा, 'क्या मेरे व्रतपालन में तूं सहकार नहीं देगी?' तब विजया बोली, 'आपने कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया है वैसे ही मैंने शुक्ल पक्ष में ब्रह्मचारी रहने का चौथा व्रत धारण किया हुआ है। आप सुखपूर्वक दूसरी स्त्री से ब्याह करो और आपके व्रत अनुसार कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचारी रहना और नई स्त्री के साथ शुक्ल पक्ष में संसारसुख भोगना।'

तब भर्तार ने प्रत्युत्तर दिया, 'अरे! हम लिये हुए व्रत जीवनभर पालेंगे। इसकी जानकारी किसीको भी न होने देंगे। माता-पिता हमारे व्रत की बात जानेंगे तब हम दीक्षा ले लेंगे।' दोनों ने सोच विचार कर तय किया कि जीवनभर व्रत पालन करेंगे।

एक कमरे में एक ही पलंग पर दोनों साथ साथ सोते थे। बीच में एक तलवार रखते जिससे एक दूसरे का अंग एक दूसरे को छू न जाय। इस प्रकार पर्वत समान अटल रहकर दुनिया की नज़र में संसारी लेकिन यथार्थ रूप से बैरागी रहे। इस प्रकार कई वर्ष बीत गये। एक बार चंपानगरी में विमल नामक केवली पधारे। वहाँ केएक श्रावक जीनदास ने कहा : 'जिन्दगी का एक मनोरथ है कि चौरासी हजार साधु मेरे घर पारणा करें।' तब विमल केवली ने कहा, 'यह बात बननी संभवित नहीं है, क्योंकि इतने तपस्वी साधु आये कहाँ से? उनको सुजता आहार कैसे दिया जाय? लेकिन उतना ही फल मिले ऐसा एक

मार्ग है सही। यदि आप कच्छ देश जाकर विजय सेठ और विजया सेठानी जो भविष्य में दीक्षा ग्रहण करनेवाले हैं उन्हें भोजन कराओ तो चौरासी हजार साधु को पारणा कराने का फल प्राप्त होगा।' जिनदास केवली ने पूछा : 'अहो! ऐसे तो उनके क्या गुण हैं?' केवली बोले, 'अनंत गुणों से वे भरपूर हैं। एक ने कृष्ण पक्ष में और दूसरे ने शुक्ल पक्ष में चौथा व्रत पालन का नियम धारण किया होने के कारण शुद्धतापूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत पालन कर रहे हैं।' केवली के मुख की यह बात सुनकर जीनदास श्रावक कच्छ देश पधारे। इन श्रावक-श्राविका को ढूंढ निकाला। दोनों को वंदन करके उन्होंने केवली के मुख से सुनी हुई बात जाहिर की। मातापिता को इस व्रत की जानकारी हो गई इसलिए विजय सेठ, विजया सेठानी ने दीक्षा ली। उन्हें पारणा कराकर जीनदास सेठ धन्य बने और केवली ने कहे चौरासी हजार साधु को पारणा कराने का जो फल मिलता वह इस दम्पती को भिक्षा देकर प्राप्त किया।

विजय सेठ और विजया सेठानी ने केवली के पास जाकर चारित्र ग्रहण किया और अष्ट कर्मों को समाप्त करके केवलज्ञान पाया।

●

बुहारी

खजूरी की चोटी पर जुल रही थी तब उसके मन में एक जीवनव्रत जाग उठा :

जीऊँ तब तक जगत की स्वच्छता के लिए जीऊँ... और बुहारी बनकर सबके घर में वह पहुँच गई।

गृहिणी की मदद से घर का कोना-कोना झाड़-बुहारकर साफ किया और सफाई कर्मचारी की मदद से गलियाँ स्वच्छ बनाई।

खुद के अंग अंग घिस गये और टूट-फूट गये तब तक इस प्रकार स्वच्छता के लिए समर्पण - व्रत जीवित रखा।

बुहारी की तरह स्वच्छता रखें।

२० श्री ढंढणकुमार

श्रीकृष्ण वासुदेव को ढंढणा स्त्री से ढंढणकुमार नामक पुत्र हुआ था। उम्रलायक होते ही नेमिनाथ से धर्म सुनकर संसार से विरक्त होकर उन्होंने दीक्षा ले ली। दीक्षा लेने के बाद वे गोचरी के लिए जाने लगे लेकिन पूर्व भव के कर्मों का उदय होने से जहाँ जहाँ गोचरी के लिए जाते वहाँ वहाँ से आहारादिक न मिलता, इतना ही नहीं उनके साथ यदि कोई साधु होता तो उसे भी गोचरी न मिलती। ऐसा हंमेशा होने लगा। सब साधुओं ने मिलकर श्री नेमिनाथ भगवान को पूछा : 'हे परमात्मा! आप जैसे के शिष्य और श्रीकृष्ण वासुदेव जैसे के पुत्र को धार्मिक, धनाढ्य और उदार गृहस्थवाली इस नगरी में श्री ढंढणमुनि को गोचरी क्यों नहीं मिलती?' भगवान ने कहा, 'उनके पूर्व भव के कर्मों के उदय के कारण ऐसा होता है।' साधुओं ने उनका पूर्व भव जानने की इच्छा प्रकट की। नेमिनाथ भगवान ने उनके पूर्वभव का वृत्तांत सुनाते हुए कहा :

'मगध देशमें पराशर नाम का एक ब्राह्मण रहता था। गाँव के लगों से वह राज्य के खेतों की बुवाई करवाता था। भोजन के समय खाद्यसामग्री आ जाने पर भी वह सबको भोजन करने की छूट न देता था और भूखे लोग व भूखे बैलों से हल जोतकर असह्य मजदूरी करवाता था। उस कार्य के कारण अंतराय कर्म उसने बांधा है। अंतराय कर्मों का उदय होने के कारण वह भुगत रहा है।' इस प्रकार के वचन सब साधुओं के साथ ढंढण मुनि ने भी भगवान से सुने। यह सुनकर उसे अत्यंत संवेग उत्पन्न हुआ और तुरंत प्रभु से अभिग्रह लिया कि आज से मैं पर लब्धि नहीं लूंगा। मेरी लब्धि से जो भोजन मुझे मिलेगा, उसका ही उपयोग करूंगा। इस प्रकार से कुछ काल तक आहार निर्गमन किया। एक बार सभा में बैठे श्रीकृष्ण वासुदेव ने भगवान नेमिनाथ को पूछा : 'इन सब साधुओं में दुष्कर कार्य करनेवाला कौन है?' प्रभु ने कहा : सब मुनि दुष्कर कार्य तो करते ही हैं लेकिन ढंढण मुनि सर्वाधिक हैं, क्यों कि वे लम्बे अर्से से सख्त अभिग्रह पाल रहे हैं।' श्रीकृष्ण वासुदेव प्रभु की वंदना करके महल लौट रहे थे। मार्ग में ढंढण मुनि को गोचरी के लिए जाते देखा। हाथी के ऊपर से उतरकर उन्होंने भक्तिपूर्वक ढंढण मुनि को नमस्कार किया। इस प्रकार श्रीकृष्ण वासुदेव को वंदन करते देखकर एक गृहस्थ को मुनि के लिए मान पैदा हुआ, अहो! स्वयं श्रीकृष्ण वासुदेव जिनको

नमस्कार कर रहे हैं वे मुनि कैसे महान चारित्रशील होंगे। ऐसे विचार से अपने आवास पर मुनि को लेजाकर बहुमानपूर्वक मोदक की भिक्षा अर्पण की। मुनि प्रसन्न होकर स्वस्थान लौटे और प्रभु को पूछा : 'आज मुझे गोचरी मिली है। क्या मेरे अंतराय कर्मों का क्षय हो गया? श्री सर्वज्ञ प्रभु ने उत्तर दिया, 'नहीं... अभी अंतराय कर्म बाकी ही हैं। आज तो गोचरी मिली है वह तो कृष्ण वासुदेव की लब्धि से मिली है। श्रीकृष्ण तुम्हें नमस्कार कर रहे थे - वह देखकर इस आहार के लिए सेठ ने तुझे-प्रतिलाभित किया है।'

ढंढण मुनि जो कि राग आदि से रहित बन चुके है, ऐसा सुनकर सोचने लगे, यह पर लब्धि आहार है जो मुझे स्वीकार नहीं है। इसलिए भोजन का उपयोग किये बिना ही मोदक आदि आहार योग्य भूमि में गाड़ने गये। उस समय 'अहो! जीवों के पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय करना बहुत मुश्किल है। ऐसे कर्म करते हुए मेरी आत्मा ने विचार क्यों न किया' - ऐसा सोचते सोचते ध्यान मग्न हो गये और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

●

इस दुनिया की रंगभूमि...

इस दुनिया की रंगभूमि पर,
कोई बने मोर तो, बने कोई मोरनी
सब आये हैं करने खेल। आये हैं...(१) आये हैं....
कोई बने राजा तो बने कोई भिखारी,
कोई खाये खाजा तो किसी का पेट खाली,
किसी को मिले महल तो किसी को जेल...(२) आये हैं....
कोई बने साधु तो कोई रंगरागी,
माया-मोह में कोई रंगरागी या कोई भोगी,
किसीको मिले न सच्चा खेल...(३) आये हैं...
कोई जाये आज तो कोई जाये कल,
कोई के भाल पर तिलक तो कोई को कलंक
किसीका अंत सुखी तो किसीका अंत दुःखी
पूरा हो जायेगा खेल...(४) आये हैं...

२१ श्री रहनेमि

एक बार भगवान नेमिनाथ अपने साधु समुदाय के साथ विहार करते करते गिरनार पर्वत पर ठहरे थे। भगवान नेमिनाथ के संसारीपन के छोटेभाई रहनेमि गोचरी लेकर प्रभु के पास पधार रहे थे। अचानक वृष्टि हुई। बरसात से बचने के लिए मुनि नजदीक की गुफा में घूसे। उसी समय साध्वी राजीमती प्रभु को वंदन करके लौट रही थी। उन्होंने भी अनजाने में गुफा मे प्रवेश किया। उनके वस्त्र बरसात में भीग गये थे इसलिये गुफा में भीगे हुए वस्त्र सूखाने के लिए निकाल डालें। अपकाय जीवों की विराधना की व्याकुलता के कारण धुंधले अंधकार में समीप खड़े रहनेमि मुनि को उसने देखा नहीं। धुंधले प्रकाश में वस्त्रविहीन दशा में राजीमती को देखकर मुनि कामातुर हुए। उन्होंने राजीमती को कहा, 'हे भद्रे! मैंने पहले भी तुम्हारी आशा रखी थी। आज भी कहता हूँ कि अभी भी भोग का अवसर है।' आवाज़ से रहनेमि को पहचानकर राजीमती ने वस्त्रों से अपना शरीर ढक कर कहा, 'कुलीन जन को ऐसा बोलना शोभास्पद नहीं है। आप नेमिजी के लघु बन्धु हो और उनके शिष्य भी हो फिर भी आप में ऐसी दुर्बुद्धि आई कहाँ से? मैं सर्वज्ञ की शिष्या होकर आपकी इच्छापूर्ति नहीं करूंगी। ऐसी इच्छा मात्र से आप भवसागर में डूबोगे। मैं उत्तम कुल की पुत्री हूँ, आप भी उत्तम कुल के पुरुष हो। हम कोई नीच कुल में उत्पन्न नहीं हुए है जो ग्रहण किये हुए संयम का भंग करें। अनंधन कुल के सर्प भी वमन किया हुआ पुनः खाने की इच्छा नहीं रखते, इससे अच्छा तो वे अग्नि में जाना पसंद करते हैं।

रहनेमि ने इच्छा दुहराई, जवानी भोग ले और धर्म तो बुढापे में भी होगा ऐसा कहा। राजीमती जो महान चारित्रवान थी उन्होंने रहनेमि को प्रतिबोधित करके समझाया, 'उत्तम मनुष्य भव प्राप्त हुआ है और यह चारित्र लिया है तो भवसागर पार करने के बजाय नर्क जाने के लिये क्यों तैयार हुए हो? रहनेमि को बड़ा पश्चाताप हुआ। सर्व प्रकार के भोगों की इच्छा उन्होंने छोड़ दी और राजीमती को बिनंती की, 'मेरा यह पाप किसीको कहना नहीं।'

राजीमती ने कहा, 'प्रभु सर्व है, वे तो सब जानते ही हैं।' रहनेमिने प्रभु नेमिनाथ के पास जाकर अपने दुश्चारित्र की आलोचना की और एक वर्ष तक सुंदर तपश्चर्या और चारित्र पालकर केवलज्ञान प्राप्त किया व मोक्ष पधारे।

●

२२ श्री सुकोशल मुनि

एक समय अयोध्या नगरी में कीर्तिधर नामक राजा थे। सहदेवी नामक उनकी पत्नी थीं। भर जवानी होने से वे इन्द्र समान विषय सुख उपभोग रहे थे। एक बार उन्हें दीक्षा लेने की इच्छा हुई। मंत्रियों ने उन्हें समझाया कि 'जहाँ आपके यहाँ पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ है, वहाँ व्रत लेना योग्य नहीं है। आप अपुत्रवान् व्रत लेंगे तो पृथ्वी अनाथ हो जायेगी। इसलिए स्वामी! पुत्र उत्पन्न हो तब तक राह देखो।'

इस प्रकार मंत्रियों के कहने से कीर्तिधर राजा शर्म के मारे दीक्षा न लेकर गृहवास में ही रहे। कुछ अरसे बाद सहदेवी रानी से उन्हें सुकोशल नामक पुत्र हुआ। पुत्र जन्म जानकर पति दीक्षा लेगा - यूं सोचकर सहदेवी ने उसे छुपा दिया। बालक को गुप्त रखने पर भी कीर्तिधर को बालक की बराबर जानकारी मिल गई। उसे राजगद्दी पर बिठाकर उसने विजयसेन नामक मुनि से दीक्षा प्राप्त की। तीव्र तपस्या एवं अनेक परीसह सहते हुए राजर्षि गुरु की आज्ञा से एकाकी विहार करने लगे। विहार करते करते एक बार वे अयोध्या नगरी पधारे। एक माह के उपवासी होने के कारण पारणा करने के लिए भिक्षा लेने मध्यान्ह को शहर में घूम रहे थे। 'मुनि सांसारिक समय के पति है और यहाँ पधारे होने के कारण सुकोशल उन्हें मिलेगा तो वह भी दीक्षा ले लेगा। पतिविहीन तो हूं ही पुत्रविहीन भी हो जाऊंगी, कीर्तिधर मुनि को नगरी से बाहर राज्य की कुशलता के लिए निकाल देने चाहिये' - ऐसा सोचकर रानी ने अपने कर्मचारियों द्वारा मुनि को नगर बाहर निकलवा दिया। इस बात को जानकर सुकोशल की धाव माता जोरों से रोने लगी। राजा सुकोशल ने उसे रोने का का कारण पूछा तब उसने बताया : 'आपके पिता, जिन्होंने राजगद्दी पर आपको बिठाकर दीक्षा ली है, वे भिक्षा के लिए नगर में पधारे थे। मुनि से आप मिलेंगे तो आप भी दीक्षा ले लोगे, ऐसा मानकर आपकी माता ने उन्हें नगर से बाहर निकलवा दिया है, इस कारण मे रुदन कर रही हूँ क्योंकि मैं यह दुःख सहन नहीं कर सकती।' सुकोशल विरक्त होकर पिता के पास पहुँचे और हाथ जोड़कर व्रत की याचना की। उस समय पत्नी चित्रमाला गार्भणी थीं। वह मंत्रियों के साथ वहाँ आई। और सुकोशल को दीक्षा न लेने

के लिए समझाने लगीं लेकिन सुकोशल ने उसको कहा, 'तेरे गर्भ में जो पुत्र है उसका मैंने राज्याभिषेक कर दिया है' - यूं समझाकर सुकोशल अपने पिता से दीक्षा लेकर कड़ी तपस्या करने लगे। ममतारहित और कषायवर्जित पिता-पुत्र महामुनि होकर पृथ्वी के तल को पवित्र कर साथ ही विहार करते थे। पुत्र और पति वियोग से सहदेवी को बड़ा खेद हुआ। आर्तध्यान में मृत्यु पाकर गिरनार की गुफा में शेरनी रूप में अवतरित हुई।

कीर्तिधर और सुकोशल मुनि चातुर्मास निर्गमन के लिए पर्वत की गुफा में स्थिर ध्यानस्थ अवस्था में रहे। कार्तिक मास आया तब दोनों मुनि पारणा करने शहर की ओर चले। वहाँ मार्ग में यमदूती जैसी उस शेरनी ने उन्हें देखा। शेरनी नजदीक आई और झपटने के लिये तैयार हुई। उस समय दोनों साधु धर्मध्यान में लीन होकर कायोत्सर्ग के लिए तैयार थे। सुकोशल मुनि शेरनी के सन्मुख होने से प्रथम प्रहार उन पर किया, उन्हें पृथ्वी पर गिरा दिया नाखूनरूपी अंकुश से उनके शरीर को फाड़कर बहते रुधिर का पान करने लगी एवं मांस तोड़ तोड़कर खाने लगी। उस समय सुकोशल मुनि, 'यह शेरनी मेरे कर्मक्षय में सहकारी है' - ऐसा सोचते हुए उन्हें थोड़ीसी भी ग्लानि न हुई। इससे वे शुक्ल ध्यान में पहुँचते ही केवलज्ञान पाकर मोक्ष पधारे।

इसी प्रकार कीर्तिधर मुनि ने भी क्रमशः केवलज्ञान पाकर अद्वैत सुख स्थानरूपी परमपद प्राप्त किया।

●

अरिहा शरणं

अरिहा शरणं, सिद्ध शरणं, साहु शरणं चुनिए,
धम्मो शरणं पाकर विनय जिनआणां सिर धरिए।
अरिहा शरणं मुझे, आतम शुद्धि करने,
सिद्धा शरणं मुझे, रागद्वेष को हरने।
साहु शरणं मुझे, संयम शूरवीर बनने,
धम्मो शरणं मुझे, भवसागर पार करने।
मंगलमय चारों की शरणं, सर्व विपत्ति टलें,
चिद्धनकी डूबती नैया शाश्वत नगरी पहुँचाये।

२३ — श्री प्रसन्नचंद्र राजऋषि —

पोतनपुर नगर के राजा प्रसन्नचंद्र... प्रभु महावीर पोतनपुर पधारे हैं और मनोरम नामक उद्यान में रूके हैं - जानकर राजा प्रभु की वंदना के लिए पधारे और मोह का नाश करनेवाली प्रभु की देशना सुनी। संसार से उद्वेग पाया और अपने बालकुमार को राज्यसिंहासन पर बिठाकर उन्होंने प्रभु से दीक्षा ग्रहण की। प्रसन्नचंद्र राजर्षि क्रमशः सूत्रार्थ के पुरोगामी हुए। प्रभु विहार करते करते राजगृह नगरी पधारे। प्रभु के दर्शनार्थ श्रेणिक राजा पुत्र-परिवार तथा हाथी की सवारी एवं घोडों वगैरह विविध दलो-कक्षाओं के साथ निकले। उसकी सेना में सबसे आगे सुमुख एवं दुर्मुख नामक मिथ्या दृष्टि सेनानी चल रहे थे। वे परस्पर विविध वार्ताएँ करते चले जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने प्रसन्नचंद्र मुनि को एक पाँव पर खड़े होकर, ऊँचे हाथ रखकर तपस्या करते देखा। उनको देखकर सुमुख बोला, 'अहोहो! ऐसे कठिन तपस्या करनेवाले मुनि को स्वर्ग-मोक्ष भी दुर्लभ नहीं है।' यह सुनकर दुर्मुख बोला, 'अहो! यह तो पोतनपुर का राजा प्रसन्नचंद्र है। बड़ी गाड़ी में बछड़े को जोडे वैसे ही राजाने राज्य भार अपने बालकुमार पर छोडा है, उसे क्या धर्मी कहेंगे? इसके मंत्री चंपानगरी के राजा दधीवाहन से मिलकर राजकुमार को राज्य पर से भ्रष्ट करेंगे, इसलिए इस राजा ने उलटा अधर्म ही किया है।' इस प्रकार के वचन ध्यानस्थ मुनि प्रसन्नचंद्र ने सुने और मन ही मन सोच-विचार करने लगे, 'अहो! मेरे अकृतज्ञ मंत्रियों को धिक्कार है, वे मेरे पुत्र के साथ ऐसा भेदभाव रखते हैं? यदि इस समय मैं राज्य संभाल रहा होता तो उन्हें कड़ी सजा देता।' संकल्प विकल्प से दुःखी राजर्षी अपने व्रत को भूलकर मन ही मन मंत्रियों से युद्ध करने लगे। आगे बढ़ते हुए श्रेणिक महाराज अपने रिसाले के साथ प्रभु के पास पधारे। वंदना करके प्रभु को पूछा : 'मार्ग में प्रसन्नचन्द्र राजऋषि की ध्यानावस्था में मैंने उनकी वंदना की है, उस स्थिति में वे मृत्यु प्राप्त करें तो कौनसी गति को जायेंगे?' प्रभु बोले, 'सातवे नर्क जायेंगे?' यह सुनकर श्रेणिक राजा विचार में पड़े, 'साधु को नरकगमन! हो नहीं सकता, प्रभु का कहना मुझसे बराबर सुनाई दिया नहीं होगा। थोड़ी देर के बाद श्रेणिक राजा ने पुनः पूछा :

'हे भगवान्! प्रसन्नचंद्र मुनि इस समय कालधर्म प्राप्त करे तो कहाँ जाये?' भगवंत ने कहा : 'सर्वार्थ सिद्धि विमान को प्राप्त करें।' श्रेणिक ने पूछा : 'भगवंत! आप ने क्षण भर के अंतर में दो अलग बात क्यों नहीं?' प्रभु ने कहा : 'ध्यान भेद के कारण मुनि की स्थिति दो प्रकार की हो गई इसलिये मैंने वैसा कहा। दुर्मुख की वाणी सुनकर प्रसन्नचन्द्र मुनि क्रोधित हुए थे और कोपित होकर अपने मंत्री वगैरह से मन ही मन युद्ध कर रहे थे। उस समय आपने वंदना की, उस समय वे नर्क के योग्य थे। उस समय से आपके यहाँ आने के दौरान उन्होंने मन में सोचा कि अब मेरे सभी आयुध समाप्त हो चुके हैं। मस्तिष्क पर रखे सिरस्त्राण से शत्रु को मार गिराऊँ - ऐसा मानकर सिर पर हाथ रखा। सिर पर लोच करा हुआ जानकर 'मैं व्रतधारी हूँ' ऐसा ख्याल आ गया। अहो हो! मैंने क्या कर डाला? इस प्रकार अपनी आत्मा को कोसने लगे। उसका आलोचना प्रतिक्रमण करके पुनः वे प्रशस्त ध्यान में स्थिर हुए हैं। आपके दूसरे प्रश्न के समय वे सर्वार्थ सिद्धि के योग्य हो गये हैं।' इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था तब प्रसन्नचन्द्र मुनि के समीप देव दुंदुभि वगैरह बजते सुनाई दिये। सुनकर श्रेणिक ने प्रभु को पूछा : 'स्वामी! यह क्या हुआ?' प्रभु बोले : 'ध्यान में स्थिर प्रसन्नचन्द्र मुनि को केवलज्ञान हुआ है और देवता केवलज्ञान की महिमा का उत्सव मना रहे हैं। अंतिम घड़ी पर क्षपक श्रेणी में पहुँचते ही प्रसन्नचन्द्र राजऋषि केवलज्ञानी बने हैं।

●

बधाई

दीनानाथ को बधाई बजती है,
मेरे नाथ की बधाई बजती है
शहनाई सूर नौबत बजती है
मोर थनन धन गाजते हैं.....मेरे नाथ की.....
इन्द्रादि मिलकर मंगल गाये
मोतियों से चौक सजाते हैं.....मेरे नाथ की.....
सेवक प्रभुजी क्या अरज करता है,
चरणों की सेवा प्यारी लगती है.....मेरे नाथ की.....

२४ श्री त्रिपृष्ट वासुदेव

त्रिपृष्ट वासुदेव अंत:पुर की स्त्रीयों के साथ सुखपूर्वक विलास करते थे। एक दिन कई गवैये आये। विविध रागों से गान करके उन्होंने त्रिपृष्ट वासुदेव का हृदय हर लिया। रात्रि के समय ये गवैये अपना मधुर गान गा रहे थे। श्री त्रिपृष्ट वासुदेव ने अपने शय्यापालक को आज्ञा दी, 'जब मुझे निद्रा आ जाय तब गवैयो का गान बंद करवा कर उन्हें बिदा कर देना।' थोड़ी देर बाद त्रिपृष्ट वासुदेव के नेत्र में निद्रा आ गई। संगीत सुनने की लालसा में शय्यापालक ने संगीत बंद कराया नहीं। इस प्रकार रात्रि का कुछ समय गुजर गया। त्रिपृष्ट वासुदेव की निद्रा टूट गई। उस समय गायकों का गान चालू था, वे सुनकर विस्मित हुए। उन्होंने शय्यापालक को पूछा : 'इन गवैयों को अभी तक क्यों बिदा नहीं किया?' शय्यापालक ने कहा, 'हे प्रभु! उनके गायन से मेरा हृदय अक्षिप्त सा हो गया था, जिससे मैं इन गायकों को बिदा न कर सका, आप के हुक्म का भी विस्मरण हो गया।' यह सुनते ही वासुदेव को कोप उत्पन्न हुआ, पर उस समय छुपा रखा। प्रात:काल होते ही वे जब सिंहासन पर आरूढ हुये। तब रात्रि का वृत्तांत याद करके शय्यापालक को बुलवाया। वासुदेव ने सेवकों को आज्ञा दी, 'गायन की प्रीतिवाले इस पुरुष के कान में गर्म सीसा और तांबा डालो, क्योंकि उसके कान का दोष हैं। उन्होंने शय्यापालक को एकांत में ले जाकर उसके कान में अतिशय गर्म किया हुआ सीसा डाला। भयंकर वेदना से शय्यापालक शीघ्र ही मरण शरण हो गया। वासुदेव ने घोर अनिष्टकारी अशाता-पिडाकारी कर्म बांधा। ऐसे कई पापकर्मों और क्रूर अध्यवसाय से समकित रूप आभूषण का नाश करनेवाला त्रिपृष्ट वासुदेव नारकी का पाप बांधकर, आयुष्य पूर्ण होते ही सातवें नर्क की भूमि में गया।

इस त्रिपृष्ट वासुदेव की आत्मा काल धर्मानुसार त्रिशला की कोख से पैदा हुए और चोवीसवें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी हुए और शय्यापालक जीव इस काल में अहीर बना। एक दिन प्रभु महावीर काउसग्ग ध्यान लगाकर खड़े थे तब यह अहीर अपने बैलों को वहाँ छोड़कर गायें दुहने गया। बैल चरते चरते कहीं दूर चले गये। अहीर वापिस लौटा, अपने बैलों को वहाँ न देखकर प्रभु को पूछा : 'अरे देवार्य! मेरे बैल कहाँ गये? तूं क्यों बोलता

नहीं है। तूं मेरे वचन क्यों सूनता नहीं है? ये तेरे कान के छिद्र क्या फोगट ही है?' इतना कुछ कहने के बाद जब प्रभु से उत्तर न मिला तो क्रोधित होकर प्रभु के दोनों कान में बबूल की शूलें डाल दीं। शूले आपस मे इस प्रकार मिल गई मानो वे अखण्ड एक सलाई समान दिखने लगी। ये कीले कोई निकाल ले - ऐसा सोचकर वह ग्वाला, बाहर दिखता शूलों का भाग काटकर चलता बना। उस समय शूलों की पीड़ा से प्रभु जरा से भी कंपित न हुए। वे शुभ ध्यान में लीन रहे और प्रभु वहां से विहार करके अपापानगरी पधारें। सिद्धार्थ नामक बनिये के यहाँ पधारे, वहाँ खरल नामक वैद्य ने कान का यह शल्य देखा और प्रभु के कान में से दो सँड़सी द्वारा दोनों कान में से दोनों कील एक साथ खींच निकाली। रुधिर सहित दोनो कीलें मानो प्रत्यक्ष अवशेष पीड़ाकारी कर्म निकल जाते हो उस प्रकार निकल पड़ी। कीले खींचते समय प्रभु को ऐसी भयंकर वेदना हुई कि उनसे भयंकर चीख निकल पड़ी। खरल वैद्य और सिद्धार्थ वणिक ने अंहोरिणी औषधि से प्रभु के कान का इलाज किया और प्रभु के घाव भर गये। इस प्रकार त्रिपृष्ट वासुदेव के भव में शय्यापालक के कान में गर्म सीसा भरने का कर्म प्रभु के भव में भगवान को कान में कीले ठुकवाकर भुगतना पड़ा।

●

पुराना हुआ रे देवल[1] पुराना रे हुआ

पुराना हुआ रे देवल पुराना रे हुआ;
मेरा हंसला[2] छोटा और देवल पुराना रे हुआ...(टेक)
यह काया रे हँसा[3] डोलने लगी रे;
गिर गये दांत, अंदरूनी रेखु[4] तो रही... मेरा०
तेरे मेरे बीच हँसा प्रीत बंध गई रे;
उड़ गया हंस, पिंजरा पड़ा रहा रे...मेरा०
बाई मीरा कहे प्रभु गिरधर के गुण;
प्रेम प्याला आपको पीलाऊँ और पीऊँ रे... मेरा०

१. शरीर, २. जीवात्मा, ३. आत्मा, ४. दांत को जगह

२५ श्री नयसार

जंबूद्वीप में जयंती नामक नगरी थी। वहाँ शत्रुमर्दन नामक राजा राज्य करते थे। उसके पृथ्वी प्रतिष्ठान नामक गाँव में नयसार नामक स्वामीभक्त मुखिया थे। उसे कोई साधु-महात्माओं के साथ सम्पर्क न था। लेकिन वह अपकृत्यों से पराङ्मुख दूसरों के दोष देखने से विमुख और गुणग्रहण में तत्पर रहता था।

एक बार राजा की आज्ञा से लकड़े लेने वह पथ्य लेकर कई बैलगाडियों के साथ जंगल में गया। वृक्ष काटते हुए मध्याह्न का समय हुआ और खूब भूख भी लगी। उस समय नयसार के साथ आये अन्य सेवकों ने उत्तम भोजन सामग्री परोसी, नयसार को भोजन के लिये बुलाया। स्वयं क्षुधा-तृषा के लिए आतुर था लेकिन 'कोई अतिथि आये तो उसे भोजन कराने के बाद भोजन करूँ' - ऐसा सोचकर आसपास देखने लगा। इतने में क्षुधातुर, तृषातुर और पसीने से जिनके अंग तरबतर हो गये थे ऐसे कुछ मुनि उस तरफ आ पहुँचे। 'अहा! ये मुनि मेरे अतिथि बनें, बहुत अच्छा हुआ।' - ऐसा चिंतन करते हुए नयसार ने उनको नमस्कार करके पूछा, 'हे भगवंत! ऐसे बड़े जंगल में आप कहाँ से आ गये! कोई शस्त्रधारी भी इस जंगल में अकेले घूम नहीं सकता।' मुनियों ने कहा : 'प्रारंभ से हम हमारे स्थान से सार्थ के साथ साथ चले थे। मार्ग में हम एक एक गाँव में भिक्षा लेने गये और सार्थ चला पड़ा। हमें कुछ भी भिक्षा न मिली। हम सार्थ को ढूंढते हुए आगे ही आगे बढ़ते गये। लेकिन हमें सार्थ तो मिला नहीं और इस घोर बन में पहुँच गये।' नयसार ने कहा, 'अरे रे! वह सार्थ कैसा निर्दय! कैसा विश्वासघाती! उसकी आशा पर साथ चले साधुओं को साथ लिये बिना स्वार्थ में निष्ठुर बनकर चल दिया। मेरे पुण्य से आप अतिथि रूप में पधारे हैं, यह अच्छा ही हुआ है।' इस प्रकार कहकर नयसार अपने भोजन स्थान पर ले गया और अपने लिये तैयार किये गये अन्न-पानी से मुनियों को प्रतिलाभान्वित किया। मुनियों ने अलग जाकर अपने विधि अनुसार आहार ग्रहण किया। भोजन करके नयसार मुनियों के पास पधारे और प्रणाम

करके कहा : 'हे भगवंत! चलिये मैं आपको नगर का मार्ग बता दूं।' मुनि नयसार के साथ चले और नगरी के मार्ग पर पहुँच गये। वहाँ मुनियों ने एक वृक्ष के नीचे बैठकर नयसार को धर्मोपदेश दिया। सुनकर अपनी आत्मा को धन्य मानते हुए नयसार ने उसी समय समकित प्राप्त किया एवं मुनियों को वंदना करके वापिस लौटा और सर्व काटे हुए काष्ट राजा को पहुँचाकर अपने गाँव आया।

तत्पश्चात् यह दरियादिल नयसार धर्म का अभ्यास करते, तत्त्वचिंतन और समकित पालते हुए काल निर्गमन करने लगा। इस प्रकार आराधना करते हुए नयसार अंत समय पर पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण करके, मृत्यु पाकर सौधर्म देवलोक में पल्योपम आयुष्यवाला देवता बना। यही आत्मा सत्ताईसवें भव में त्रिशला रानी की कोक्ष से जन्मकर चोबीसवें अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी बनी।

●

प्रीतम! मेरे दिल में रहना...

प्रीतम! मेरे दिल में रहना, भूलूं तो तूं टोकते रहना।
माया का कीचड़ ऐसा, पैर धँस जावें,
हिंमत मेरी काम न आये, तूं पकड़ना बाँहे
प्रीतम! मेरे...

मर्कट जैसा यह मन मेरा, जहाँ तहाँ कूदान खावें,
मोह मदिरा उपर पीली, और पाप से प्रवृत्त होवें।
प्रीतम! मेरे...

कर्जा चुकाने आये जग में, कर्जा बढ़ता जावें,
छूटने का एक ही किनारा, अब तो तूं छुडावे तो छूटे।
प्रीतम! मेरे...

पुनित का यह दर्द अब तो मुख से न कहा जावे,
सौंपा मैंने तेरे चरण में खुदको होना हो सो होवे
प्रीतम! मेरे...

२६ श्री सिंह अणगार

महावीर प्रभु के एक दृढ अनुरागी शिष्य - सिंह अणगार। एकांत निर्जन अरण्य में एक घटादार वटवृक्ष के नीचे ध्यान धर रहे थे। भगवान महावीर पर गोशाला ने तेजोलेश्या छोडी उसकी बात वहाँ पर दो पुरुष कर रहे थे।

एक पुरुष कह रहा था - भगवान पर गोशाले ने जब तेजोलेश्या छोडी तब उनके समर्थ शिष्य गोशाले को क्यों नहीं रोक सके?

दूसरे ने उत्तर दिया - भगवान की आज्ञा थी, सब गोशाले से दूर रहें, फिर भी उसने तेजोलेश्या छोड़ी तब परमात्मा से प्रीति रखनेवाले दो अणगार सुनक्षत्र तथा सर्वानुभूति थमे न रहे। और गोशाले को अटकाने के लिए बीच में कूद पड़े लेकिन गोशाले की छोड़ी हुई तेजोलेश्या से दोनों जलकर मौत की भेंट चढ गये।

अरर्र.... घोर हत्या

उस पापी दिन का ये दोनों पुरुष श्रीवस्ती नगर में थे जब मिथ्या- द्वेषी गोशाले ने महावीर प्रभु पर तेजोलेश्या छोड़ी थी। लेकिन तेजोलेश्या परमात्मा की देह में प्रवेश करने के लिए समर्थ न थी। भगवान की प्रदक्षिणा देकर सीधी ही गोशाला की देह में फैल गई।

लेकिन इस तेजोलेश्या की गर्मी से भगवान के अंग अंग में जलन होने लगी। भगवान की रूप कांति थोड़ी सी कमजोर हो गई थी। सब भक्तगण इस आफ़त से हड़बड़ा गये थे।

सिंह अणगार वटवृक्ष के पीछे ध्यान धर रहे थे। उन्होंने यह वार्तालाप सुना। उन्हें इस भयंकर बात की जानकारी नहीं थी लेकिन इस बात को सुनकर उनके दिल में अपार पीड़ा हुई। अपनी कल्पनाशक्ति से परमात्मा की रोगग्रस्त देह को देखा। वे कांप उठे, मेरे नाथ...! आपकी देह में इतनी सारी पीडा? सिंह अणगार की आँख से अश्रुधाराएँ बहने लगी। थोडी देर के बाद अन्य दो मुसाफिर उसी वटवृक्ष के नीचे आकर बैठ गये। दोनों में एक वृद्ध था और एक बालक था। शायद पिता-पुत्र होंगे।

बालक वृद्ध को पूछ रहा था, 'हे पिताजी! भगवान पर गोशाले ने तेजोलेश्या छोड़ी। उस तेजोलेश्या से क्या होता है?'

वृद्ध कहता है - 'यदि यह तेजोलेश्या अन्य किसी पर छोड़ी गई होती तो वह तुरंत जलकर खाक हो जाता - लेकिन ये तो थे तीर्थंकर, इसलिये उनकी मृत्यु न हुई लेकिन...' इतना कहते हुए वृद्ध का हृदय भर आया। वह अधिक न बोल सका। बालक ने कहा, 'पिताजी! अटक क्यों गये? बाद में क्या हुआ?'

'बेटा! भगवान को खून के दस्त हो रहे हैं।' इतना कहते हुए वृद्ध सिसक कर रो पड़ा।

पास खड़े सिंह अणगार दौडकर आये। वार्ता सुनकर उनके हृदय में भयंकर पीड़ा उमड़ पडी थी, अश्रुधाराएँ बह रही थी। उन्होंने पूछा : 'भाई! तत्पश्चात् क्या हुआ?'

'भगवान का निर्मल-चन्द्रमा जैसा मुख तेजोलेश्या के ताप से श्याम हो गया। भगवान के पूरे शरीर पर पीड़ा हो रही है। इस गर्मी से प्रभु छः माह से अधिक नहीं जी सकेंगे।' वृद्ध इससे आगे कुछ नहीं कह सकता।

सिंह अणगार की पीड़ा बढ़ती गई। प्रभु यह सब कैसे सहन करते होंगे? अधिक से अधिक शोकसागर में वे डूबते गये। एक कोने में बैठकर वे करुण रुदन करने लगे।

उस वक्त सब रो रहे थे - गौतम स्वामी से लेकर प्रत्येक साधु की आँखे भर आई थी। चंदनबाला और दूसरे अन्य स्त्री-पुरुष-देव और दानव भी शोक छाया में गिर पड़े थे। सिंह अणगार तो ऐसे रोये कि चुप ही न हो सके। भगवान महावीर श्रीवस्ति से विहार करके मिंढिक गाँव पधारे। वहाँ केवलज्ञान के प्रकाश में उन्होंने सिंह अणगार के आक्रंद से तड़पते हुए जीव को देखा। भगवान ने तुरंत गौतम स्वामी को बुलाकर सिंह अणगार को ले आने की आज्ञा दी। थोड़े ही समय में दो अणगारों ने सिंह अणगार को भगवान के चरणों में उपस्थित किये।

भगवान की पीड़ित देह नजर पड़ते ही उनकी पीड़ा बढ़ गई। वे नीचे बैठ गये। कंठ भर आया। आँखे सुज गई थी।

'सिंह!!!' मधुर वाणी से भगवान ने अणगार को नज़दीक बुलाया।

'प्रभु! आपको इतनी सारी पीडा?' रोते रोते उत्तर दिया।

प्रभु बोले : 'सिंह लोगों के मुख से तूने सुना है न कि छः महिने में मेरी मृत्यु हो जायेगी।'

'हा प्रभु!'

'लेकिन वाकई ऐसा हो सकता है? तीर्थंकर हंमेशा अपना आयुष्य पूर्ण करके ही निर्वाण पाते हैं। उनके आयुष्य को न कोई घटा सकता है, न कोई बढ़ा सकता है।'

'लेकिन प्रभु!' अणगार रोते रोते गिड़गिड़ाये, 'सकल संघ आपकी स्थिति देखकर व्यथित हो रहा है।'

'प्रभु! स्वयं के लिए नहीं तो हमारे मन की शांति के लिए आप औषध सेवन करिये। आपकी पीड़ा क्षणमात्र देखने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ।'

सिंह मुनि के ऐसे आग्रह से प्रभु ने कहा : 'इस गाँव में रेवती नामक श्राविका ने मेरे लिए कद्दू का कटाह पकाया है, वह तू मत लेना, लेकिन उसने अपने लिए बीजोरे का कटाह पकाया है वह ले आ। तेरे आग्रह से वह कटाह मैं औषध के रूप में लूंगा जिससे तुम्हें धैर्य प्राप्त होगा।'

सिंह अणगार नाच उठे। उनका अंग अंग हर्ष से रोमांचित हो उठा। रेवती का ठिकाना ढूंढकर सिंह अणगार उसके आँगन में पधारे।

विनयपूर्वक रेवती ने वंदना की। हाथ जोड़कर पूछा : 'कहो भगवान्! पधारने का कारण ?' 'हे श्राविका! तूंने भगवान के लिये जो औषध बनाया है वह नहीं परंतु जो तेरे स्वयं के लिये औषध बनाया है - उसकी हमें जरूरत है।

रेवती आश्चर्यचकित होकर बोली, 'हे भगवान्! कौन ऐसे दिव्यज्ञानी हैं जो इस गुप्त बात को जान गये।'

'सर्वज्ञ भगवान के सिवा अन्य कौन हो सकता है रेवती!'

रेवती ने आनंदपूर्वक वह औषध सिंह अणगार को अर्पण किया। और जैसे ही पात्र में औषध गिरा, देवों ने महादानम् महादानम् का दिव्यध्वनि किया।

सिंह अणगार त्वरित गति से भगवान के पास आये और भगवान को औषध का आहार कराया। अल्पकाल में भगवान की देह रोगमुक्त हो गई।

चतुर्विध संघ ने आनंद उत्सव मनाया, सिंह अणगार की आँखो से हर्ष के अश्रु की धारा बह रही थी और मुख भगवान के सामने मुस्करा रहा था।

●

२७ श्री आर्द्रकुमार

समुद्र के मध्य में आर्द्रक नामक देश है। आर्द्रक उसका मुख्य नगर है। वहाँ आर्द्रक नामक राजा था। उसकी आर्द्रक रानी से आर्द्रकुमार नामक पुत्र हुआ। युवावस्था प्राप्त होते ही यथा रुचि सांसारिक भोग भोगने लगा।

आर्द्रक राजा और श्रेणिक राजा परम्परागत स्नेह से बंधे हुए थे। एक बार श्रेणिक राजा ने अपने मंत्री को कई उपहारों के साथ आर्द्रक राजा के पास भेजा। वे उपहार स्वीकार्य करके आर्द्रक राजा ने बंधु श्रेणिक की कुशलता पूछी। यह देखकर आर्द्रकुमार ने पूछा : 'हे पिताजी! यह मगधेश्वर कौन है जिनके साथ इतना अधिक स्नेह है?' तब राजा ने कहा, 'श्रेणिक नामक मगध के राजा हैं और हमारी कुल परम्परा से उनके साथ सम्बन्ध चला आ रहा है।' यह सुनकर वहाँ आये हुए मंत्रीश्वर को आर्द्रकुमार ने पूछा : 'इस मगधेश्वर का कोई गुणवान पुत्र है? अगर है तो मैं उसे मेरा मित्र बनाना चाहता हूँ। तब मंत्रीश्वर ने जवाब दिया कि हाँ, बुद्धि के भण्डार अभयकुमार उनके पुत्र है।

यह सुनकर बिदा होते मंत्रीश्वर को आर्द्रकुमार ने मूंगें और मुक्ताफल वगैरह अभयकुमार के लिए मैत्री के प्रतीकरूप भेजें।

आर्द्रकुमार के इस मैत्रीपूर्ण बर्ताव से प्रसन्न होकर अभयकुमार ने सोचा, कोई श्रमणपने की विराधना के कारण यह आर्द्रक अनार्य देश में उत्पन्न हुआ है। उसके एक मित्र होने के नाते उसे धर्मी बनाना चाहिये। ऐसा सोचकर प्रभु आदिनाथ अर्हंत की एक प्रतिमा संदूक में रखकर एक दूत द्वारा आर्द्रकुमार को भेज दी और संदेशा भेजा कि इस संदूक को एकांत में खोलें।

संदूक खुलते ही आर्द्रकुमार को श्री आदिनाथ की मनोहर, अप्रतिम प्रतिमा नज़र आई। कुछ क्षणों तक वह कुछ समझ न पाया। लेकिन सोचते सोचते - ऐसा मैंने पूर्व कहीं देखा है - यों चिंतन करते ही उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसमें उसने देखा कि इस भव से पूर्व तीसरे भव में वह मगधदेश के वसंतपुर गाँव में सामापिक नामक कणवी था। कर्माधीन धर्मविर्जित अनार्य देश में अब मैं उत्पन्न हुआ हूँ। मुझे प्रतिबोधित करनेवाले अभयकुमार वाकई मेरे बंधु और गुरु हैं। इससे पिता की आज्ञा लेकर मैं आर्यदेश जाऊँगा, जहाँ पर मेरा मित्र और गुरु है। लेकिन पिता ने आर्द्रकुमार को मगध जाने की छुट्टी न दी और आर्द्रकुमार किसी भी प्रकार से भाग खड़ा न हो इसलिये सामंतो को सख्त बंदोबस्त रखने का हुक्म दिया।

आर्द्रकुमारने अपने लोगों से एक जहाज तैयार करवाया। उसमें रत्न भरे और एक दिन भगवान आदिनाथ की मूर्तिवाला सन्दूक लेकर सबको चकमा देकर जहाज पर चढ़कर आर्य देश में आ गया।

यहाँ आकर प्रभु प्रतिमा अभयकुमार को वापिस लौटा दी और धन सात्र क्षेत्र में खर्च करके स्वयं अपने तरीके से यतिलिंग ग्रहण किया। उस समय देवताओं ने उच्च स्वर में कहा, 'हे महासत्त्व! तूं अभी दीक्षा ग्रहण करना मत, क्योंकि तेरे कई भोग्य कर्म अभी भी बाकी हैं। उन्हें भुगतने के बाद ही दीक्षा लेना। देवों के ऐसे वचनों का अनादर करके आर्द्रकुमारने स्वयं अपने आप दीक्षा ग्रहण कर ली और तीव्रतापूर्ण व्रत पालते हुए विहार करने लगे।

विहार करते करते वे वसंतपुर नगर में पधारे। नगर के बाहर एक देवालय में समाधि अवस्था में कायोत्सर्ग में खड़े थे।

इस नगरी में देवदत्त नामक एक बड़ा सेठ था। श्रीमती नामक उसे स्वरूपवान पुत्री थी। नगर की अन्य बालाओं के साथ पतिरमण नामक खेल खेलने देवालय में आई, जहाँ आर्द्रकुमार समाधि अवस्था में खड़े थे। खेल खेल में बालिकाएँ बोली, 'सखियाँ! सब अपने पसंद के वर चून लो।' इसलिए सर्व कन्याएँ अपनी अपनी रुचि अनुसार पेड़ के तनो को वर के रूप में पसंद किये। लेकिन श्रीमती ने तो कहा, 'हे सर्व सखियाँ! मैंने तो ये खड़े भट्टारक मुनि का वररूप में चयन किया है।' उस समय देवताओं ने आकाश में रहकर कहा : 'शाबाश, तूंने सही चयन किया है।' इस प्रकार कहकर गर्जना करके देवों ने रत्नों की वृष्टि की। गर्जना से घबराकर श्रीमती मुनि के चरणों से लिपट पड़ी। इससे मुनि ने सोचा कि यहाँ थोडी देर ठहरने से भी मुझे व्रतरूपी वृक्ष के लिये तूफाँन जैसा मन को पसंद हो ऐसा उपसर्ग हुआ, यहाँ ज्यादा देर ठहरना योग्य नहीं है।' आर्द्रमुनि तुरंत वहाँ से विहार करके अन्यत्र चल दिये।

रत्नों की वृष्टि हुई थी, वेरत्न लेने वहाँ का राजा राजपुरुषों के साथ आया तब देवालय में रत्नों के आसपास अनेक सर्प पड़े हुए थे। उस समय देवता ने आकाश में रहकर कहा : ' 'मैंने यह द्रव्य श्रीमती के ब्याह निमित्त दिया है, अन्य किसीका इस पर अधिकार नहीं है।'' यह सुनकर राजा वापिस लौटा। श्रीमती के पिता ने उस द्रव्य को बटोरकर अलग रखा।

ब्याह योग्य उम्र होते ही श्रीमती को वरने के लिये कई युवक वसंतपुर आये। उसके पिता ने योग्य वर का चयन कर लेने को कहा। श्रीमती बोली, 'पिताजी! मैं तो जैन मुनि को वर चूकी हूँ। वही मेरा दूल्हा है और देवताओं ने उसे वरने के लिये द्रव्य भी दिया है, वह द्रव्य आपने लिया है। आप भी उसमें संमत हुए

हो, इसलिये उन मुनिवर के सिवा अन्य कोई वर मुझे मान्य नहीं है। क्या आप नहीं जानते कि राजा एक बार ही बोलता है, मुनि एक बार बोलते हैं और कन्या भी एक ही बार दी जाती है।'

सेठ ने कहा, 'हे पुत्री! अब वे मुनि मिलेंगे कैसे? क्योंकि अब तो वे विहार कर गये हैं। वे एक स्थान पर रहते तो नहीं। वे मुनि यहाँ पुनः आयेंगे कि नहीं? यदि आये तो वे किस तरह पहचाने जायेंगे?'

श्रीमती ने कहा, 'उस समय देवताओं की गर्जना से मैं भयभीत हो गई थी। इससे बंदरिया की तरह उनके पैरों से लिपट पड़ी थी। उस समय मैंने उनके चरण में एक चिह्न देखा था। उस चिह्न से मैं उन्हें जरूर पहचान सकूंगी। हे पिता! आप ऐसी तरकीब लड़ाओ जिससे आते-जाते सब साधुओं को प्रतिदिन देख सकूं।' सेठ पुत्री के लिये ऐसा प्रबन्ध किया गया जिससे हरेक साधू-रोज वहाँ आये और स्वयं भिक्षा देवें। भिक्षा देते समय श्रीमती उनकी वंदना करती, उनके चरण पर के चिह्न देखती। ऐसा करते हुए बारह वर्ष बीतने पर आर्द्रमुनि वहाँ पधारे। श्रीमती ने वंदना करते हुए, चरण पर चिह्न देखकर उन्हें पहचान लिया। और उनसे लिपट कर बोली, 'हे नाथ! उस देवालय में मैं आपको वरी थी। आप ही मेरे पति हैं। उस दिन आप मुझे छोड़कर चल दिये लेकिन आज नहीं जा सकोगे। यदि क्रूरतापूर्वक चले जाओगे तो मैं अग्नि में कूद पड़ूँगी और स्त्रीहत्या का पाप आपको लगेगा।'

व्रत लेते समय उसके निषेध करती हुई दिव्यवाणी हुई थी वह मुनि को याद आई। 'भावि कभी मिथ्या नहीं हो सकता' ऐसा मानकर वे श्रीमती से ब्याहे।

आर्द्रकुमार को श्रीमती के साथ भोग भोगने से ऐक पुत्र हुआ। वह थोडा बड़ा हुआ तो टूटा-फूटा मधुरतापूर्वक बोलने लगा। अब पुत्र बड़ा हो गया देखकर आर्द्रकुमार ने दीक्षा लेने की भावना श्रीमती को बता दी। यह बात पुत्र को बताने के लिए बुद्धिमान श्रीमती रूई की पूनी से चरखा कातने लगी। पुत्र ने पूछा : 'हे मा! साधारण मनुष्यों की भाँति तूं यह कार्य क्यों कर रही है?' वह बोली, 'हे वत्स! तेरे पिता दीक्षा लेने जा रहे हैं। उनके जाने के पश्चात् पतिरहित मैं, इस तकुए का ही सहारा होगा मुझे।' बचपन की तोतली लेकिन मधुर वाणी में पुत्र बोला, 'माता! मैं मेरे पिता को बाँधकर पकड़ रखूंगा, वे कैसे जा सकेंगे?' इस प्रकार कहकर बालक पिता के चरणों को तकुए के सूत से लपेटने लगा। और बोला, 'माँ! अब डरो मत, स्वस्थ हो जाओ, देखो मैंने पिता को बांध लिया है, बंधे हुए हाथी समान वे जायेंगे कैसे?' बालक की चेष्टा देखकर आर्द्रकुमार ने सोचा, 'अहो... इस बालक का स्नेहबंधन कैसा है जो मुझे बांध रखता है। उसके स्नेह से वश मैं शीघ्र दीक्षा

न लूंगा। बालक ने सूत से जितने बट लिये हैं उतने वर्ष मैं गृहस्थाश्रम में रहूँगा।' उन्होंने पैर के तंतुबंधन के बट गिने जो बारह थे। सीस के लीये बारह वर्ष उन्हने गृहस्थाश्रम में निर्गमन किये और एक प्रात: श्रीमती को समझाकर यतिलिंग धारण करके निर्मम मुनि बनकर घर से चल पड़े।

मार्ग में आर्द्रकपुर से उन्हें ढूंढने आये पाँचसौं सामंत मिले। वे आर्द्रकुमार को ढूंढ न सके थे, इसी कारण से राजा को मुँह भी नहीं दिखा सकते थे और आजीविका के लिये चोरी का धंधा करते थे। उन्हें धर्मदेशना सुनाकर उन पाँचसौं सामंतों को दीक्षा दी। विहार करते हुए वे एक तापसों की टोली के पास पहुँचे, जिन्होंने मांसभक्षण हेतु एक हाथी को बांध रखा था। आर्द्रमुनि को कई लोग मस्तक झुका रहे थे। यह देखकर लघुकर्मी हाथी ने सोचा, 'मैं यदि छूट जाता तो शीश झुकाकर इन मुनि की वंदना करता।' ऐसा सोचते हुए महर्षि के दर्शन होते ही लोहे के बंधन टूट गये और गजेन्द्र छूट कर महामुनि की वंदना के लिए आगे बढ़ा। हाथी मुनि को मार डालेगा – उससे बचने के लिएलोग दूर भाग गये, लेकिन मुनि तो वहीं खड़े रहे।

हाथी ने मुनि के पास आकर कुंभस्थल झुकाकर प्रणाम किया और सूंढ से चरणस्पर्श भी किया। गजेन्द्र को खूब शान्ति प्राप्त हुई और वह दूर चला गया। हाथी के छूट जाने से तापस सब आर्द्रमुनि पर क्रोधित हुए थे, उन्हें बोध देकर उन्होंने प्रभु महावीर के समवसरण में भेज दिया। वहाँ जाकर उन सबने संवेगी दीक्षा ले ली।

राजगृही में श्रेणिक राजा और अभयकुमार ने गजेन्द्रमोक्ष की बात सुनी और आर्द्रमुनि के पास पधारें। भक्तिपूर्वक वंदना करके कहा : 'मुनि! आपने किये हुए गजेन्द्रमोक्ष से हमें आश्चर्य होता है।' मुनी बोले, 'हे राजेन्द्र! गजेन्द्रमोक्ष मुझे दुष्कर नहीं लगा लेकिन तकुअे के सूत के चक्कर में से छूटकर मोक्ष पाना दुष्कर लगता है।' राजा ने पूछा, 'किस प्रकार!' मुनिने बालक ने बांधे हुए तकुअे के सूत की कथा कही, जिसे सुनकर राजा एवं अन्य लोग भी चकित हो गये।

पश्चात् आर्द्रकुमार मुनि ने अभयकुमार को कहा, 'हे बंधु! आप मेरे उपकारी धर्मबंधु हैं। आपकी भेजी हुई अर्हंत की प्रतिमा के दर्शन से मुझे जाति स्मरणज्ञान हुआ और मैं आर्हत बना। हे भद्र! आपने मेरा उद्धार किया है। आपकी बुद्धि के प्रताप से मैं इस आर्यदेश में आया और आपसे ही प्रतिबोधित होकर मैंने दीक्षा पाई है। हे बंधु! आपका कल्याण हो।'

राजगृह में बिराजित वीर प्रभु की वंदना और चरणकमल की सेवा करते हुए आर्द्रमुनि ने मोक्ष प्राप्त किया।

●

२८ श्री खंधक मुनि

जीतशत्रु राजा एवं धारणी देवी के पुत्र...। धर्मघोष मुनि की देशना से प्रतिबोध पाया। खंधक मुनि छट्ठी और अष्टमी का तप करते, कठिन परिषह सहन करते थे। तप करते करते काया बहुत सूख गई। हड्डियां गिन सको ऐसा शरीर हो गया। संसार अस्थिर है - यूं समझकर कड़े तप करते गये।

विहार करते करते एक दिन वे उनकी संसारी बहिन जहाँ के राजा के साथ ब्याही थी, उस शहर में पधारे। बहिन ने राज्यभवन में से मुनि को देखा, भाई का प्रेम याद आया और आँख में से अश्रु बहने लगे। राजाजी ने यह देखा और मन में विचार करने लगे, 'यह राजी का पुराना यार लगता है, यह कांटा शहर में नहीं रहना चाहिये।'

राजा ने सेवकों को बुलाकार साधू की चमड़ी उतार लाने की आज्ञा दी। रानी को इस आज्ञा का पता न चला।

ध्यानावस्था में खड़े खंधक मुनि के पास सेवक आये और कहा, 'हमारे राजा की आज्ञा है कि आपकी चमड़ी उतारकर उनको सौंप दे। समता के समुद्र जैसे खंधक मुनि ध्यान से चलित न हुए और मन से आनंद पाकर सोचने लगे कि कर्म खपाने का शुभ अवसर आया है। ऐसे समय पर कायर बनना ठीक नहीं। उन्होंने सेवकों को कहा, 'यह चमड़ी रुक्ष हो गई है, आपको उतारने में कठिनाई होगी, इसलिये आप कहे उस प्रकार मेरा शरीर रखूँ जिससे आपको चमड़ी उतारने में तकलीफ न हो।' ऐसा कहकर काया को भूला डाली (मानसिक तौर पर छोड़ दी) और चार शरणा का ध्यान करते हुए स्थिर रहे। चड़ चड़से चमड़ी उतरने लगी। मुनि ने वेदना का स्वागत हर्षपूर्वक किया, शुक्ल ध्यान लगा दिया और क्षपक श्रेणी में पहुँचकर केवलज्ञान पाया, अजर-अमर पद पर पहुँच गये।

वहाँ खून से लथपथ वस्त्र पड़े थे। उसमें से मुहपत्ती को एक पक्षी चोंच मे ले उडा और खून से लथपथ मुहपत्ती रानी के झरोखे में जा गिरी। यह मुहपत्ती तो मेरे भाई की ही है - पहचान ली। भाई की हत्या की गई है - ऐसा समझकर रानी भाई के विरह में रोने लगीं। राजा को सच बात

स्कंधकमुनि

खंधक मुनि याने स्कंधकाचार्य

१. खंधककुमार जितशत्रु राजा के पुत्र थे। बचपन से धर्मपारायण थे। एक दिन बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत स्वामी भगवान की अमृतमय देशना सुनकर वैराग्य पैदा हुआ और....

२. पाँचसौं राजकुमारों के साथ दीक्षा ली। भगवंत को पूछकर एक दिन वहन के देश की और विहार किया।

३. प्रभु ने कहा, 'आपके पूरे परिवार को मरणोत्तर कष्ट होगा।' तब खंधकसूरीने भगवंत को कहा, 'हम आराधक होंगे या विराधक?'

भगवंत ने कहा, 'आपके सिवा सब आराधक बनेंगे।'

तब विचार करके बहन के देश की ओर चल पड़े, वहाँ के मंत्री को उन पर द्वेष था।

गाँव में पहुंचे, मंत्री को पता चला। उन्हें मार डालने के प्रयत्न प्रारंभ किये। राजा के कान भरे कि ये मुनि-५०० मुनि के वेश में सैनिक बनकर आपको मारकर राज्य छीन लेंगे। राजा ने क्रोधित होकर पापी मंत्री को हुक्म दिया, 'आपको ठीक लगे उस प्रकार से ५०० को खत्म कर दो।' तब दुष्ट... अधम मंत्री कोल्हू बनाकर सर्व मुनियों को उसमें पेरने लगे। खून की नदियाँ बहने लगी। यों ४९८ मुनि समता रस में घुलमिलकर कर्मक्षय करके मोक्ष पा गये। तब बाल मुनि को मारते हुए मंत्रीने खंधक मुनि की 'प्रथम मुझे मारो' - ऐसी पुकार भी न सुनी।

तो मरने से पूर्व प्रतिज्ञा करते हुए, खंधक मुनि ने कहा, 'मैं अलगे जन्म में मंत्री के साथ पूरी नगरी के लोगों को मार डालूंगा' - पश्चात् प्रतिज्ञा के प्रभाव से अग्निकुमार देव बने। नगरी जला डाली। इस प्रकार क्रोध करने मोक्ष न जा सके। क्रोध - से कल्याण नहीं है, क्षमा से सिद्धि मिलती है। **धन्य स्कंधकाचार्य**

ज्ञात हुई। क्रोधावस्था में भयंकर पाप हो गया है एवं निर्दोष मनुष्य की हत्या करा दी है - ऐसा जानकर वह बड़ा पश्चात्ताप करने लगा और साधु की समता की बात सेवकों से सुनी। मन ही मन उनकी समता की अनुमोदना करते करते - यह संसार अस्थिर है, असार है - यूं सोचकर राजा-रानी दोनों ने संयम स्वीकार कर, करे हुए पापों की आलोचना की। दुष्कर तप करके काया को गला डाला और शिवसुख पाया।

●

जब तक आतमा

जब तक आतमा तत्त्व चेता नहीं
तब तक साधना सर्व झूठी
मानुष देह तेरा यों व्यर्थ गया,
महावट जैसी वृष्टि बरसी...जब०
क्या हुआ स्नान, पूजा व सेवा से,
क्या हुआ घर रहकर दान देने से?
क्या हुआ धर कर जटा भस्म लेपन से,
क्या हुआ केश लोचन करके? जब०
क्या हुआ तप व तीरथ करके?
क्या हुआ माला लेकर नाम लेने से
क्या हुआ तिलक व तुलसी धारण करके,
क्या हुआ गंगाजल पान करके? जब०
क्या हुआ वेद व्याकरण वाणी बोलकर,
क्या हुआ राग व रंग जानकर?
क्या हुआ नित्य दर्शन सेवन से,
क्या हुआ वरण भेद करके? जब०
ये हैं प्रपंच सब पेट भरने के,
आत्माराम परिब्रह्म न देखा,
कहे नरसिंह, तत्त्वदर्शन बिना
चिंतामणि जन्म खोया। जब०

२९ धन्ना अणगार

काकंदी नगरी में कई धनाढ्य थे। उनमें भद्रा माता का पुत्र धन्ना सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। उसकी संपत्ति बेशुमार...। उसे बत्तीस स्वरूपवान् स्त्रीयाँ थी। देवता समान सुख और भोग भोगते हुए उसका समय आनंद में व्यतीत हो रहा था।

एक बार परम तीर्थंकर भगवान श्री महावीर स्वामी अपने विराट् साधु परिवार के साथ कांकदी के एक मनोहर उद्यान में पधारें।

कांकदी के राजा जितशत्रु अपनी सेना तथा नगरजनों के साथ प्रभु दर्शन के लिए पधारे और बड़े भावपूर्वक भक्ति की। देवों ने वहाँ सुवर्ण एवं रजत रत्नजड़ित समवसरण रचा। प्रभु महावीर समवसरण में बिराजित होकर देशना देने लगे। भद्रा का पुत्र धन्ना भी त्रिलोकीनाथ के दर्शन को आया। दर्शन-वंदन करके प्रभु की देशना सुनने लगा। देशना सुनते सुनते भोगी भ्रमर धन्ना का हृदय वैराग्य रस में सराबोर हुआ। क्षण पूर्व का भोगी मस्त धन्ना त्याग के रंगमें डूब गया। संसार सुखों की अनित्यता व पराधीनता को समझा और मन ही मन संसार के सुखों को छोड़कर, देवाधिदेव भगवान श्री महावीर देव की शरण में दीक्षा लेने का निश्चय किया।

अमोघ शक्ति के स्वामी भगवान की एक ही देशना अनेकों के रागद्वेष की आग को सदा के लिए बुझा सकती है। इसी प्रभाव से धन्नाजी की आत्मा को सन्मार्ग की ओर मोड़ने देशना समर्थ बनी। धन्नाजी भोगी थे पर भोग के गुलाम न थे। उन्होंने अपनी बत्तीस पत्नियों की बिनती, प्रार्थना संसार में रहने की सुनी लेकिन धन्नाजी के मनोबल के आगे कुछ काम न आई। पत्नियाँ भी वीर थी। संसार के क्षणिक सुखों को लात मारकर, त्याग के मार्ग पर जाते धन्नाजी को पुनित मार्ग पर जाने के लिए हृदय से सद्भावपूर्ण अनुमति दी।

भद्रा माता ने अपने एक मात्र पुत्र को संसार सुख न छोड़ने के लिए बड़ा समझाया लेकिन धन्नाजी अटल रहें। निश्चित किये मार्ग को छोड़ने के लिए लालायित न हुए। अंत में माताजी ने भी पुत्र को दीक्षा के लिए अनुमति

दी।

भद्रा माता के आँगन में दीक्षा महोत्सव प्रारंभ हुआ। कांकदी के नाथ जितशत्रु राजा धन्नाजी के त्याग की बात सुनकर भद्रा माता के घर पधारे। धन्ना जैसे वीर की जननी होने के नाते उन्हें धन्यवाद दिया और उत्सव मनाने का लाभ स्वयं को मिले - ऐसी मांग की।

राजवीं ने धन्नाजी को आशीर्वाद दिया, धन्नाजी को स्नान कराया। मनोहर वस्त्र और मूल्यवान् आभूषण पहिनाये। विशेष रूप से तैयार की गई पालकी में घुमाया। खूब आडंबर पूर्ण निकला जूलुस दुंदुभि आदि वाद्य बजाता हुआ नगर के मार्गों से गुजरकर उद्यान पर रूका। इस जूलुस के मुख्य घुडसवार बनने का लाभ जितशत्रु राजा ने लिया।

इशान दिशा मे जाकर धन्नाजी ने वस्त्र-आभूषण उतारे एवं सब कुछ माताजी को सौंपा।

भद्रा माता का हर्ष संभाले नहीं संभल रहा था। उन्होंने वीर प्रभु के पास आकर प्रार्थना करते हुए कहा, 'प्रभु मेरे लाड़ले की भिक्षा का आपको प्रतिलाभ दे रही हूँ। आप उसका स्वीकार करें। आज से वह मेरा न रहकर समस्त संसार व चौदह राजलोक के जीवों का सच्चा, रखवाला बन रहा है, उसे आप संभालना।'

प्रभुश्री ने महारथी धन्ना को दीक्षा दी। उस दिन धन्नाजी ने भगवान श्री महावीर देव को बिनती की, 'हे करुणासागर! आज से छठ्ठी के पारणे आंबेल और फिर छठ्ठी यावज्जीव तक मुझे करने हैं।' भगवान ने धन्नाजी को उनकी इच्छानुसार यह घोर प्रतिज्ञा दी।

धन्नाजी ने इस प्रतिज्ञा का पालन अटलरूप से किया। गहन जंगल - एकांत स्थान में काउसग्ग ध्यान में स्थिर रहते। छठ्ठी के पारणे, छठ्ठी तक के तप चालू रहे। आत्मा संयमी जीवन के सुखरस में टहलती रही।

एक प्रातः प्रभु महावीर अपने चौदह हजार मुनिवरों के साथ राजगृही के गुणशील नामक उद्यान में पधारे। देवों द्वारा रचित समवसरण में बिराजित होकर भगवान ने दीक्षा दी। यह देशना सुनने राजगृही के राजा श्रेणिक भी पधारे थे।

देशना पूर्ण होने पर श्रेणिक ने परमात्मा को प्रश्न किया, 'भगवंत! आपश्री का साधू समुदाय त्याग, तप और संयम के गुण से उत्कृष्ट है, फिर भी आपके

ये चौदह हजार मुनिवरों में सबसे उत्कृष्ट परिणाम में कौन से महर्षि हैं? कृपा करके भगवन! उस पुण्य महामुनि का नाम बतायें।

भगवान श्री महावीर देव ने स्वमुख से कहा, 'राजन्! चौदह हजार अणगार में कांकदी का अणगार धन्ना ऋषि। धन्य हैं वे मुनि जो चारित्र में बढ़ा है, तप में जल चुका है। जो सदा छट्ठी के पारणे पर छट्ठी करता है और पारणे में मक्खी भी न बैठे ऐसा रुक्ष आहार लेता है, वह ऋषि जंगलों में एकांत स्थान पर कायोत्सर्ग में रहता है।'

प्रभु के मुख से बात सुनकर मगध का नाथ श्रेणिक चकित हो गया एवं मनोमन बोल उठा, 'अहा धन्य वह महामुनि! जिसके अनुपम तपोबल की स्वयं प्रभु महावीर प्रशंसा करते हैं। वंदन है उन महर्षि के चरणों में।' ऐसा सोचकर श्रेणिक वहाँ से उठकर तपोवन में पधारे, जहाँ पर धन्ना अणगार ध्यानस्थ अवस्था में खड़े थे। धन्नाजी तुरंत तो न दिखाई पड़े लेकिन खूब घूर घूर कर देखने पर एक अस्थिपंजर जैसा उन्हें कुछ दिखा। वे ही महर्षि धन्ना अणगार थे।

छट्ठी के पारणे में रसकस बगैर का आंबेल का आहार; इससे तपस्वी की देह श्याम-कोयले समान हो चुकी थी। आँखे गहरी धँस गई थी। हाथ-पैर सूख गये थे। काया खून-माँस रहित अस्थिपंजर समान हो चुकी थी।

शरीर क्षीण जरूर था लेकिन आत्मा पुष्ट थी। आत्मा के अनंत बल की महक से उन्होंने मोह, मान, माया क्रोध पर विजय पायी थी। श्रेणिक महाराजा वंदना करके लौट चले।

कालक्रमानुसार महर्षि धन्नाजी ने प्रभु से आज्ञा लेकर वैभार गिरिवर पर एक माह का अनशन किया। माह पूर्ण होते ही समाधिपूर्वक मृत्यु पाकर सर्वार्थसिद्ध विमान में अनुत्तरवासी देव बने; वहाँ से महाविदेह में जाकर अंत में मोक्ष पायेंगे।

धन्नाजी को आज भी हम याद करते हैं।

मुनिवर चौदह हजार में श्रेणिक सभा बीच में'
वीर ने प्रशंसा की जिसकी धन्य धन्ना अणगार।

●

३० श्री स्कंदकाचार्य

बीसवें तीर्थंकर श्री मुनि सुव्रतस्वामी से स्कंदक ने पाँचसौं मनुष्यों के साथ दीक्षा ली।

एक बार भगवान मुनिसुव्रत स्वामी के पास जाकर अनुज्ञा माँगी, 'मेरी बहिन के देश में बहिन-बहनोई को प्रतिबोधित करने जाऊँ?' प्रभु ने कहा, 'तुझे और तेरे सर्व शिष्यों को मरणोत्तर उपसर्ग होंगे।' 'अहो हो! मोक्षाभिलाषी तपस्वियों को उपसर्ग आराधना के साधक बनते हैं तो कृपा करके बताइये कि हम उपसर्ग के कारण आराधक होंगे या विराधक?'

प्रभु ने कहा, 'तेरे सिवा सब आराधक होंगे।' स्कंदक आचार्य ने सोचा, 'यदि इतने साधू आराधक होते हों तो मुझे यह सुन्दर लाभ लेना ही चाहिये। यूं समझकर उन्होंने पाँचसौं मुनियों के साथ कुंभकार नगरी की ओर विहार किया। कुंभकार नगरी के बाहर एक उद्यान में ठहरे।

पालक मंत्री को पता चला कि यहाँ मुनिमहाराज पधारे हैं, पुरानी दुश्मनी के कारण उसके उसी उद्यान के भाग में चुपचाप अलग अलग प्रकार के हथियार जमीन मे गड़वाये। राजा को एकांत में लेजाकर कहा, 'परिसह उपसर्ग से ऊब कर स्कंदकाचार्य यहाँ पधारे हैं। ये साधु महापराक्रमी हैं। उन्होंने ५०० सैनिक साधुवेष मे रक्खे हैं और उद्यान में शस्त्र तथा तीक्ष्ण हथियार जमीन में छुपाये है। आप जब वंदना करने जाओगे तब आपको मारकर आपका राज्य ले लेंगे। यदि इस बात का आपको सबूत चाहिये तो उद्यान में जाकर छिपे हुए हथियारों की तलाश करवाईये।' इस प्रकार पालकमंत्री राजा को बहकाकर उद्यान में ले गया एवं स्वयं गड़वाये हुए हथियार दिखाये। राजा ने क्रोधित होकर सर्व मुनियों को बांधकर पालक को सौंपा और कहा, 'तूझे ठीक लगे ऐसी शिक्षा इन साधुओं को कर।' बिल्ली को चूहे का न्याय करने का काम मिले और प्रसन्न हो उठे, उसी प्रकार पालक मंत्री राजा से साधुओं को शिक्षा देने का हुक्म पाकर अति प्रसन्न हुआ।

पालक मंत्रीने नगर से बाहर कोल्हू यंत्र तैयार करवाये। वहाँ सर्व साधुओं को लेजाकर कहा, 'आप सब अपने इष्ट देव का स्मरण कर लो। आप सबको मैं इस कोल्हू मे डालकर पेरुंगा और मार डालूंगा।'

धीर साधुओं ने मृत्यु से डरे बिना शरीर का ममत्व भाव निकाल फेंका। स्कंदक सूरिने उत्साह जगाया और प्रत्येक साधू को सम्यक् प्रकार से आलोचना लेकर मैत्री की भावना प्रत्येक पर डाल दी; मन, वचन एवं काया के योग से हरेक

जीव से क्षमापना की अभिव्यक्ति कर दी।

कुकर्मी, पापी पालक मंत्री एक एक साधू को कोल्हू में डालकर पेरने लगा। स्कंदक मुनि को शिष्यों का ऐसा दृश्य देखकर अधिक पीड़ा होगी-ऐसा सोचकर दुष्ट बुद्धिवाले मंत्री ने स्कंदक मुनि को कोल्हू के नजदीक बांध रखा। कुचलाते हुए साधुओं के अंगछेद होने से खून की धारा सराबोर होते स्कंदक मुनि समयोचित अमृत बिन्दु जैसे उपदेश वाक्यों से महानुभावों को आराधना कराते गये। इस प्रकार निर्मल मनवाले महात्मा - जो शत्रु और मित्र प्रति समान दृष्टिवाले थे - वे यंत्र से कुचलाती हुई काया की असह्य पीड़ा सहन करते हुए केवलज्ञान पाकर सिद्ध बने।

क्रमानुसार ४९९ महर्षि कोल्हू में पीस दिये गये। अब केवल एक बालमुनि बाकी थे। स्कंदाचार्य ने पालक मंत्री को कहा, 'इस बालमुनि के कुचलाने की क्रिया - वेदना मैं नहीं देख पाऊंगा इसलिये प्रथम मुझे पेर डालो।' लेकिन क्रूर बुद्धिवाले पालक स्कंदाचार्य को अधिक दुःखी करने के लिए उनके सामने ही बालमुनि को कोल्हू में फेंक दिया। बालमुनि को भी शांतिपूर्वक ऐसी आराधना कराई कि उन्होंने शुक्लध्यान रूपी अमृत झरने में कर्मों का नाश करके केवलज्ञान पाकर मोक्ष सुख पा लिया। अब ५०० मुनियों को आराधना करानेवाले स्कंदकाचार्य की बारी आई। लेकिन कर्म के उदय से उस समय उन्होंने क्रोधित होकर सोचा, 'ये राजा और मंत्री शिक्षापात्र हैं। यदि मुझे जिंदगी में किये हुए दुष्कर तप और चारित्र का फल मिलनेवाला हो तो उसके प्रभाव से मैं अगले जन्म में इन सबको जला देनेवाला बनूं' - ऐसा संकल्प करके स्कंदकाचार्य कालानुसार देव हुए।

स्कंदकाचार्य की बहिन पुरंदरयशा झरोखे मे बैठी थी, जो उस नगरी के राजा की रानी थी। एक पक्षी खून से भरा रजोहरण चोंच से उठाकर उड चला था, भावितव्यता योग से वह रजोहरण झरोखे में पुरंदरयशा के पास जा गिरा। उठाकर देखतें ही रजोहरण पहचान लिया कि यह तो भाई की दीक्षा के समय स्वयं उसने ही तैयार किया था। भाई की हत्या को देखकर राजाजी को खूब उपालंभ दिया और कहा, 'है साधूशत्रु! पापी! तेरा इसी समय नाश होगा।'

पुरंदरयशा ने सोच विचार करके संसार में न रहकर परलोक का ज्ञान बटोरने श्री मुनि सुव्रतस्वामी के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की। स्कंदकाचार्य ने देवता के भव में अवधिज्ञान से पूर्व भव का वृत्तांत जाना और क्रोध से पूरे नगर को जला डाला। आज भी वह स्थान दण्डकारण्य नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार ५०० साथी साधु समता एवं आराधना के प्रताप से मोक्ष पा गये लेकिन स्कंदकाचार्यने विराधना के कारण मोक्षसुख न पाया। भगवान कथित भविष्यवाणी गलत होती भी कैसे?

●

३१ श्री वज्रबाहु

अयोध्या में इक्ष्वाकु वंशीय राजा विजय और हिमचूला पटरानी से वज्रबाहु नामक पुत्र था। वह सरल स्वभावी और बुद्धिमान था। धर्म के प्रति और महापुरुषों के प्रति उसके हृदय में उत्तम कोटि का अनुराग भरा पड़ा था। उसकी मँगनी नागपुर के इभ्रवाहन राजा के यहाँ हुई थीं। माता चूडामणि की लाड़ली बेटी मनोरमा का स्नेह वज्रबाहु में बंधा हुआ था। वह सुशील, संस्कारी और धार्मिक स्वभाववाली थी।

योग कालानुसार उनका ब्याह बडी धूमधाम से नागपुर में हुआ। वस्त्र, अलंकार, हाथी, घोड़े आदि की मिलनी हुई और वज्रबाहु बिदा हुए।

मनोरमा का बड़ा भाई उदयसुंदर मनोरमा को छोड़ने अपने रथ का सारथि बनकर निकला है। वज्रबाहु के मित्र एवं अन्य राजपरिवार धीरे धीरे मार्ग काट रहे हैं। रथ में वज्रबाहु एवं मनोरमा नवदम्पति बैठे हैं। सारथि के रूप में उदयसुंदर धीरे धीरे रथ चला रहे हैं। कई कोस का मार्ग काटने के पश्चात् वृक्षों की घटाओं से चारोंओर घिरे गहन जंगल में सब आ पहुँचे हैं। कोयल के मीठे स्वर सुनाई दे रहे हैं। पास में बहते झरने कलकल के मधुर नाद से कर्णों को आनंदित कर रहे थे। एकांत में आत्मकल्याण साधक मुनिवरों को यह स्थान बहुत ही अनुकूल था। इस उपवन का आनंद लेने के लिए वज्रबाहु ने अपनी गर्दन बाहर निकाली तो उसकी दृष्टि एक टीले पर पड़ी। वहाँ एक मुनिवर कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े थे। तेजस्वी शरीरकांति व ध्यान में सुस्थिरता देखकर वज्रबाहु की गुणानुरागी आत्मा महर्षि के पुण्य दर्शन के लिए उत्कंठित बनी।

सारथि बने अपने साले उदयसुंदर को वज्रबाहु ने रथ खड़ा रखने की सूचना देते हुए कहा, 'सामने टीले पर ध्यानस्थ अवस्था में खड़े मुनिराज के पुण्य दर्शन कर लें।'

उदयसुंदर यह सुनकर बड़ा चकित हो गया। उसे लगा कि यह कैसा धर्म का बावलापन! अभी कल ही ब्याह हुआ है। रथ में एकांत है। दोनो वरवधू के बीच प्रेम, आनंद व कुतूहल की बात करने का सुंदर अवसर है।

यह सब छोड़कर साधू के दर्शन करने की कैसी बात बहनोई कर रहे हैं? वाकई यह मनुष्य एक अजूबा है।

विचार भंवर में पड़े उदयसुंदर से रहा नहीं गया, उसने हँसते हँसते बहनोई को टोका, 'साधु तो नहीं बनना है न? दीक्षा लेनी है क्या?' उदयसुंदर ने मज़ाक में कहा तो सही लेकिन वज्रबाहु की आत्मा सामान्य तो न थी। उसके जीवन में बाल्यकाल से ही साधुओं के प्रति अनुराग भरा पड़ा था। कुल संस्कार, माँ-बाप आदि बुझुर्गों की धर्मभावना वज्रबाहु में भरी पड़ी थी, इस कारण वज्रबाहु ने उत्तर में कहा, 'हाँ, श्री जिनेश्वर के पवित्र त्यागमार्ग के प्रति किसका मन न होवे? दीक्षा की भावना तो हैं परंतु...।'

'परंतु बरंतु क्या कहते हो बहनोई? भावना है तो हो जाओ तैयार। मैं करूंगा मदद आपको।' उदयसुंदर मज़ाक समझकर बात बढ़ा रहा था। लेकिन साले की हँसी को बहनोई सगुन की गाँठ मानकर उत्तर देते हैं, 'मैं तैयार हूँ, आप सहाय करने बैठे हैं तो मुझे और क्या चाहिये? अपने वचन का पालन करना।' ऐसा कहकर वज्रबाहु शीघ्र ही रथ से ऊतर पड़े। वज्रबाहु की निडर वाणी सुनकर उदयसुंदर चमक पड़ा - उसे लगा यह तो रंग में भंग पड गया। वज्रबाहु यूं उलटी गंगा बहा देंगे - ऐसा उदयसुंदर की कल्पना में भी न था।

वह बात को घूमा फिराने लगा, 'भाई! आप ऐसे चल पड़ो यह कैसे हो सकता है? मैंने तो साले के नाते बहनोई की मसखरी ही की है। ऐसी छोटी बात को इतना बड़ा रूप देना आप जैसे के लिये योग्य नहीं है।'

लेकिन वज्रबाहु की आत्मा संसार से उब चुकी थी। मात्र निमित्त की ही जरूरत थी। जो सरलता से मिल गया था। उसने उदयसुंदर को कहा :

'अब आपको दूसरा कोई विचार करना ही नहीं है। क्षत्रिय पुरुष बोले हुए वचन से हटते नहीं है। प्रवज्या के पुण्यपथ पर हमारें पूर्वज चले हैं और उसी मार्ग पर चलने में ही जीवन की सच्ची सफलता है।'

अपनी छोटी बहिन के हाथ पर विवाह के चिह्न रूप मदनफल बंधा हुआ है, उसके संसार का क्या? उदयसुंदर को यह चिंता खाये जा रही थी। कितकितनी आशाएँ, मनोरथ तथा सपनों के साथ संसार में कदम रखा है, उसका सौभाग्य यूं बेमौके मुरझाता हुआ भाई का स्नेहार्द्र हृदय कैसे सह पाता?

उसने बड़े आग्रह से वज्रबाहु को कहा : 'आप एकदम यह साहस करने

तैयार हुए हो लेकिन मेरी छोटी बहिन के मनोरथ, अरमानों का विचार तो करो! वह आपके बगैर कैसे जी पायेगी?'

बड़ी सहजता से वज्रबाहु ने उत्तर दिया, 'सती स्त्री, कुलवान घर में जन्मी सुशील बालाएँ पति के आत्मकल्याणक मार्ग पर पति के पीछे चल देती हैं। इसलिये उसे भी मेरे पीछे पीछे दीक्षा के पुण्यमार्ग में आना होगा। कुलीन तथा सती स्त्री बनकर पति की छाया बनकर रहना ही उसका धर्म है। और यदि मनोरमा कुलीन नहीं है तो ऐसी अकुलीन स्त्री के साथ संसार में क्यों रहना चाहिये? इसलिये अब त्याग-मार्ग में निषेध आप जैसे को तो करना ही नहीं चाहिये। मेरे पीछे आप सबको इसी मार्ग पर चलना चाहिये।'

वज्रबाहु के मेरु समान दृढ़ मनोबल सबकी आत्मा पर अद्‌भुत ढंग से असरदायी बना।

वज्रबाहु की बातों से मनोमन दीक्षा लेने का सोचविचार करके मनोरमा भी रथ पर से ऊतर गई। उदयसुंदर की आत्मा भी लघुकर्मी थी। वज्रबाहु के साथ अन्य २५ राजकुमार थे, जो संसार से विरक्त बनकर प्रवज्या ग्रहण करने तत्पर हुए। वे सब उस पहाड़ी पर आये। गुणरत्न के सागर समान श्री गुणसागर मुनि से सबने संयम ग्रहण किया।

इस प्रकार तप, ध्यान, ज्ञान तथा संयमी जीवन की आराधना में निरंतर अप्रमत्त ये महापुरुष रत्नत्रयी साधना द्वारा आत्मकल्याण साधकर जीवन को सफळ बना गये।

●

संगत करके संतों की सद् वस्तु विचारना;
रगडा और झगडा तजकर बिगडा जन्म सुधारना।

२२ रेवती सती

प्रभु महावीर पर गोशाले ने तेजोलेश्या छोडी, जिससे प्रभु को असह्य वेदना हो रही थी। प्रभु की वेदना देखकर श्री गौतम स्वामी, चंदनबाला एवं अन्य मुनिगण भी बड़े व्यथित थे। सिंह अणगार तो प्रभु की पीडा की बात सुनकर बड़े व्यथित थे। प्रभु ने सिंह अणगार का दु:ख टालने के लिए अपने पास बुला लिया।

सिंह अणगार ने कहा, 'प्रभु! आपकी पीड़ा मैं सहन नहीं कर सकता। कुछ मार्ग निकालो जिससे आपकी पीड़ा कम हो सके। जो भी औषध आप बतायेंगे वह ला देंगे लेकिन कृपा करके प्रभु औषध का उपयोग कीजिये।'

करुणा के कारण प्रभु ने अपनी शांति के लिये नहीं लेकिन सिंह अणगार के मन की शांति के लिये कहा, 'इस श्रावस्ती नगरी में रेवती नामक सती है, उसने मेरे लिए नहीं परंतु स्वयं के लिए जो औषध बनाया है वह ले आओ।' सिंह अणगार तो खोजते खोजते पहुँच गये रेवती के घर!

रेवती ने सिंह अणगार का स्वागत किया, आने का कारण पूछा। सिंह अणगार ने कहा, 'आपने जो औषध स्वयं के लिये बनाया है उसकी मुझे जरूरत है, वह दो।' रेवतीने आश्चर्य सह कहा, 'ऐसी गूढ़ बात कही किसने?'

सिंह अणगार ने कहा :'प्रभु महावीर ने तेजोलेश्या से होती पीड़ा दूर करने के लिए आपका बनाया हुआ बीजोरापाक भिक्षा में दे दो जिससे प्रभु को हुआ अतिसार व दाह मिट जावें।'

रेवती ने अत्यंत भावपूर्वक बीजोरापाक अर्पण किया और धन्यता का अनुभव किया। मैं कितनी भाग्यशाली! खुद परमात्मा के रोग की शांति के लिये यह दवा काम आई। ऐसी शुभ भावना करते करते और प्रभु पर की भक्ति के कारण उसने तीर्थंकर नाम कर्म-उपार्जित कर लिया।

औषधि से प्रभु-महावीर को आरोग्य प्राप्त हुआ और रेवती के दान के कारण रेवती का जीव अगली चौबीसी में सत्रहवें समाधि नामक तीर्थंकर होगा।

●

३३ मदनरेखा

सुदर्शनपुर नामक नगरी में मणिरथ नामक राजा राज्य करते थे। युगबाहु नामक उसका एक छोटा भाई था, जिसकी मदनरेखा नामक अति रूपमति पत्नी थी।

मणिरथ मदनरेखा का रूप देखकर मोहित हुआ था। मदनरेखा को अपनी बनाने के लिए वह कुछ भी करने को तैयार था। मदनरेखा को लुभाने के लिये उसने अनेक युक्तियाँ की। अच्छे वस्त्र-अलंकार वगैरह एक दासी के साथ मदनरेखा के लिए भेजें। दासी ने मदनरेखा को राजा मणिरथ की इच्छा कहीं और बताया कि 'हे भद्रे! मणिरथ राजा तेरे रूप और गुण से मोहित होकर तुम्हें रिझाना चाहता है।'

कुठराघात जैसे वचन सुनकर मदनरेखा ने क्षोभित होकर दासी को कहा, 'राजा का उत्तम अंत:पुर तो है ही, फिर भी वह मूढ़ नरक दिलानेवाला परस्त्रीगमन पाप की इच्छा क्यों कर रहा है? वह मुझे किसी भी ढंग से न पा सकेगा। यदि वह मुझ पर बलात्कार करेगा तो मैं मेरे प्राण छोड दूंगी लेकिन शीलभंग न होने दूंगी। यदि वह मुझ पर कुदृष्टि रखेगा तो जरूर मरण पायेगा।'

दासी ने आकर राजा मणिरथ को मदनरेखा ने कहा सर्व वृत्तांत कह सुनाया। लेकिन मणिरथ की कामवासना कम न हुई। वह मूढ़ विशेष कामातुर बना। उसने सोचा कि जहाँ तक युगबाहु जीवित है वहाँ तक मैं मदनरेखा को पा नहीं सकूंगा। इसलिये युगबाहु को मार डालने का निश्चय किया। वह मौका ढूंढ़ता रहा - कब युगबाहु अकेला पड़े और उसे मार डाला जाय।

युगबाहु और मदनरेखा को एक पुत्र - चंद्रयशा था। वह उम्रलायक हो गया था। एक रात्रि को मदनरेखा ने स्वप्न में पूर्ण चन्द्र देखा। यह स्वप्न उसने अपने भरथार को बताया। युगबाहु ने स्वप्नफल कहा, 'तूझे चंद्रमा तुल्य सौम्यगुण युक्त पुत्र होगा।' तत्पश्चात् तीसरे माह पर उसे दोहद हुआ कि मैं जिनेन्द्र की पूजा करूं, गुरु को प्रतिलाभित करुं और धर्मकथाएँ श्रवण करूं। ऐसे दोहद पूर्ण करने ले लिए वह धर्मध्यान में विशेष ध्यान देने लगीं।

एक बार बसंत ऋतु के समय युगबाहु प्रिया के साथ उद्यान में क्रीडा करने गये। उद्यान मे जलादि क्रीडा करके रात्रि को वे कदलीगृह में नवकार मंत्र का स्मरण करते हुए सोये।

युगबाहु और मणिरथ अकेले हैं, उद्यान में उसके मनुष्य भी अल्प हैं - ऐसा

सोचकर विकारवश मणिरथ राजा युगबाहु को मारने खड्ग लेकर उद्यान में आया। उद्यान के माली दरवान को कहा, 'मेरा छोटा भाई अकेला उपवन में रहे वह योग्य नहीं है।' यूं बहकाकर कदलीगृह में प्रवेश किया।

एकाएक रात्रि में बड़े भाई पधारे हैं, मानकर युगबाहु मणिरथ को नमस्कार करने नीचे झुका। उसी समय मणिरथ ने जोर से खड्ग का प्रहार किया। मदनरेखा ने यह देखकर कोलाहल मचा दिया। आसपास से सैनिक दौड़े चले आये। मणिरथ को पकड़कर मारने के लिये कई सैनिक तैयार हो गये। उन्हें मना करते हुए युगबाहु ने कहा, 'इसमें बड़े भाई मणिरथ का कोई दोष नहीं है, मेरे कर्मों से ही यह हुआ है।' अपनी धारणा अनुसार हुआ है यूं सोचकर मणिरथ हर्षित होता हुआ अपने महल पर जाने के लिए लौट चला लेकिन कर्म के फलस्वरूप उसी रात्रि को सर्प ने मार्ग में उसे डस लिया और वह मृत्यु पाकर चौथे नरक में पहुँच गया।

युगबाहु का पुत्र चंद्रयशा अपने पिता के घाव की चिकित्सार्थ वहाँ आ पहुँचा। अंतिम श्वास लेते अपने पति को मदनरेखा धर्म सुना रही थी : 'हे स्वामी! आप अब किंचित खेद न करें। जो मित्र है या शत्रु स्वजन है या परिजन वे सब से क्षमा मांग लो और क्षमा भी कर दो।' इस रीत सम्यक् प्रकार से आराधना सुनाई। प्रिया के ऐसे हितवचन सुनकर युगबाहु शुभ ध्यान सहित मृत्यु पाकर ब्रह्म देवलोक के देवता बने।

अपने पिता की मृत्यु हुई देखकर चंद्रयशा अत्यंत विलाप करने लगा। मदनरेखा लम्बे समय तक रुदन करते करते सोचने लगी : 'मुझे धिक्कार है, मेरा सौंदर्य मेरे पति के मौत का कारण बना। अब मणिरथ मुझे अकेली समझकर पकड़ लेगा और अपनी मनमानी पूरी कर लेगा। अब मेरा कोई रक्षक नहीं है। मेरे शील की रक्षा के लिए मुझे यहाँ से गुप्त रूप से भाग जाना चाहिये।' ऐसा निश्चय करके अकेली चल पड़ी।

दूसरे दिन वह एक महाघोर जंगल में पहुँच गई, वहाँ जलाशय में जलपान तथा फल भक्षण करके एक कदलीगृह में रहने लगी। वहाँ सातवें दिन उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उसने बालक के हाथ में युगबाहु नाम अंकित मुद्रिका पहनाई। बालक को कंबल में लपेट कर तरु की छाया में सुलाया और सरोवर में अपने वस्त्र धोने गई। उसने जल में प्रवेश किया ही था कि जलहस्ती ने सूंढ से पकड़कर उसे आकाश में उछाल दिया। उस समय नंदीश्वर द्वीप की यात्रा पर जा रहे एक विद्याधरने उसे नीचे गिरते हुए रोक लिया। विद्याधर भी मदनरेखा के रूप पर मोहित हुआ

और मदनरेखा को वैताढ्य पर्वत पर ले गया। वहाँ मदनरेखा को रुदन का कारण पूछा। मदनरेखा ने सब हकीकत सुनाते हुए कहा : 'जिस अटवी पर से तूं मुझे यहाँ लाया है, वहाँ मैंने पुत्र को जन्म दिया है। उस पुत्र को तरु की छाया में रखकर मैं जलाशय पर गई थी। वहाँ हस्ति ने मुझे उछाल फेंका, तूने मुझे थाम लिया और तेरे विमान में बिठा दिया। पुत्र मेरे बगैर मृत्यु पायेगा। या तो मेरे बालक को यहाँ ला दो अथवा मुझे वहाँ पहुँचा दो।'

विद्याधर ने कहा, 'यदि तूं मुझे तेरे भरतार के रूप में स्वीकार करेगी तो मैं तेरा किंकर बन कर रहूँगा।'

मदनरेखा सोचकर बोली, 'तूं मेरे पुत्र को यहाँ ले आ।' विद्याधर ने कहा, 'मैं वैताढ्य पर्वत पर स्थित, रत्नावह नगर के मणिचूड विद्याधर का पुत्र हूँ। मेरा नाम मणिप्रभ है। मेरे पिता ने मुझे राज सौंपकर संयम ग्रहण किया है। मेरे पिता नंदीश्वर द्वीप के चैत्यों को वंदन करने गये हैं। उनसे मिलने मैं नंदीश्वर जा रहा था, तूं मुझे मिल गई, तो अब तूं सर्व विद्याधरों की स्वामिनी बन। मैंने तेरे पुत्र का स्वरूप प्रज्ञप्ति विद्या से जान लिया है। तेरे छोड़े हुए पुत्र के पास मिथिला नगरी के पद्मरथ राजा अश्व दोड़ाते हुए पहुँच चुके थे, तेरे पुत्र के नगर में लेजाकर अपनी प्रिया पुष्पमाला को सौंप दिया है। अब वह उसे अपने पुत्र की भाँति पाल रही है। अब उसकी फिक्र न करते हुए मेरी बात का स्वीकार करके, मेरी पत्नी बनकर मेरे राज्य की स्वामीनी बन।' रानी मदनरेखा ने सोचा, 'आह! मेरे कर्म ही बाधारूप हैं। दुख पर दुख आ रहे हैं। शील रक्षण का उपाय ढूँढना महत्त्वपूर्ण है। कोई बहाना ढूंढकर थोड़ी सी ढील करके समय बीताना चाहिये।' ऐसा सोचकर उसने विद्याधर को कहा, 'प्रथम तो तूं मुझे नंदीश्वर द्वीप के दर्शन करा दे। वहाँ सर्व देवों को नमस्कार वदंन करूंगी बाद में तूं कहेगा वैसे करूंगी।' ऐसा सुनकर विद्याधर खुश हो गया और अपनी विद्या के बल से उसे शीघ्र ही नंदीश्वर तीर्थ पर ले गया। वहाँ मदनरेखा तथा मणिप्रभ विद्याधर ने शाश्वत चैत्यो को प्रणाम किया और विद्याधर के पिता मणिचूड मुनिश्वर के पास जाकर उन्हें नमस्कार करके यथोचित धर्म सुनने के लिए बैठे। मुनि पुत्र अकार्य करना सोच रहा है - यूं जानकर बोले, 'तुम्हें कुमार्ग छोड़ना चाहिये। क्योंकि परस्त्रीगमन जैसे कुमार्ग पर जाने से नरक में ही जाना पड़ता है वैसे स्त्री को भी परपुरुष का सेवन करने से अवश्य नरक में जाना पड़ता है।'

अपने पितामुनि के ऐसे धर्मवचन सुनकर मणिप्रभ की अक्ल ठिकाने आ गई और अहो...! मैंने कैसे हलके विचार किये। खड़े होकर मदनरेखा की क्षमा माँगी

और कहने लगा, 'अब तूं मेरी बहिन है, अब मैं तेरा क्या उपकार करूं।' मदनरेखा ने कहा, 'तूने मुझे शाश्वतातीर्थ का वंदन कराके महा उपकार किया है, तूं मेरा परम बांधव है।' मदनरेखा ने मुनि को अपने पुत्र का वृत्तांत पूछा तो मुनि ने कहा, 'पद्मरथ राजा ने अटवी में से तेरे पुत्र को ले जाकर अपनी रानी को सौंपा, पूर्वभव के स्नेह से उसका जन्म महोत्सव भी मनाया था और तेरा पुत्र इस समय सब प्रकार से सुखी है।'

उस समय आकाशमार्ग से एक विमान आकर ऊतरा। वह रत्नों के समूह से बना हुआ था। उसका तेज सूर्य और चन्द्र से भी बढ़कर था। उसमें से एक महा तेजस्वी देव ऊतरा। उसने मदनखा की तीन परिक्रमा करके उसके चरणों में झुका। यह देखकर मणिप्रभ बोला : 'अहो ! देव कैसा अकृत्य कर रहे हैं। मुनि को वंदन करने से पहले एक स्त्री को नमन कर रहे हैं? मुनि ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा, गत भव में यह देव इस मदनरेखा के पति युगबाहु थे। मृत्यु समय मदनरेखा ने धर्मज्ञान सुनाया जिससे वह उसके लिये धर्माचार्या बनीं। उसका ऋण वे अदा कर रहे हैं। सर्व प्रकार से मदनरेखा उसके लिए वंदन योग्य है।'

मुनि के वचन सुनकर विद्याधर ने देवता की क्षमा माँगी और देवता ने रानी को संबोधित करके कहा, 'मैं तेरा क्या भला कर दूँ यह तूं बता।' तब वह बोली, 'मुझे जन्म-मरण निवारक अविचल मोक्ष सुख चाहिये, लेकिन देने के लिए आप समर्थ नहीं है। बन सके उतना जल्दी मुझे मिथिला नगरी पहुँचा दो जिससे मैं मेरे पुत्र का मुख देखकर यति धर्म ग्रहण कर लूं।' इसलिये देवता मदनरेखा को मिथिला ले गया, जहाँ पर उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ का जन्म और दीक्षा हुई थी। वहाँ श्री जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार, वंदना करके वे साध्वीजी के पास पहुँचे। साध्वीजी ने धर्मोपदेश दिया। धर्मदेशना सुनने के बाद देवता ने मदनरेखा को राजपुत्र के पास चलने के लिए कहा, लेकिन धर्मदेशना सुनने के बाद मदनरेखा ने कहा, 'दूसरा कुछ भी नहीं करना है, साध्वीजी के चरणों की शरण स्वीकारनी है।' मदनरेखा की बात सुनकर देवता अपने स्थानक पर लौट चले।

मदनरेखा के बालपुत्र को ले जानेवाले पद्मरथ राजा को बालक के प्रभाव के कारण शत्रु भी शीश झुकाने लगे। बालक का नाम नमि रखा गया। योग्य उम्र होते ही नमिकुमार को योग्य कन्याओं के साथ पाणिग्रहण कराया और राज सौंपकर पद्मरथ ने ज्ञानसागर सूरि से दीक्षा ली। तीव्र तपश्चर्या करके केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पाया। नमि राजा ने राज्य करते अनेक राजाओं को झुकाकर शकेन्द्र की कीर्ति

संपादन की।

卐

युगबाहु एवं मणिरथ की मृत्यु के बाद युगबाहु के पुत्र चंद्रयशा को राजगद्दी पर बिठाया गया था।

एक बार नमिराजा का मुख्य हाथी जो स्तंभ से बधा हुआ था, वह स्तंभ को जड़ से उखाड़कर भाग छूटा। वह अटवी में घूम रहा था तब चंद्रयशा राजा के हाथ लगा। नमिराजा के आदमियों ने आकर चन्द्रयशा से हाथी की माँग की। चन्द्रयशा ने उन्हें धुत्कार दिया। इस कारण दोनों राजा एक-दूसरे से लड़ने के लिये तैयार हो गये। नमिराजा अपने सैन्य के साथ सुदर्शनपुर आये और नगरी को चारोंओर से घेर लिया।

मदनरेखा जिन्होंने यतिधर्म ग्रहण किया था, जिनका साध्वीरूप में सुव्रता नाम था, उन्होंने दोनों भाइयों के कलह की बात जानी। दोनों सगे सहोदर भाई होने पर भी लड़ेंगे और हजारों जीवों का घात होगा। पाप के भागी दोनों भाई होकर नरक को जायेंगे - ऐसा सोचकर अपनी गुरुजी की आज्ञा लेकर वह दोनों युद्धकर्ताओं के पास पधारीं। नमिराजा को मिलने पर नमि राजा ने उनकी वंदना की, उनसे धर्मोपदेश सुना। और कहा कि चन्द्रयशा उसका ज्येष्ठ भ्राता है। उसका पूर्व सम्बन्ध उसे सुनाया। सुव्रता साध्वी उसकी माता है यह जानकर भी नमिराजा ने युद्ध करने का रूख चालू ही रखा। इस कारण से सुव्रताश्रीजी दूसरे भाई चंद्रयशा के पास जाकर कहा, 'तुम दोनों लड़ रहे हो, लेकिन दोनों सगे भाई हो, लड़ने में कुछ फायदा नहीं है और दोनो ही नरक गति के पाप बांधोगे,' ऐसी बात समझा दी। चन्द्रयशा अपने भाई से मिलने चल पड़ा। बड़ा भाई मिलने आ रहा है, यह जानकर नमिराजा भी संग्राम छोड़कर ज्येष्ठ भ्राता के चरणों में गिर पड़ा। बड़े भाई ने उसे उठाकर गले लगा लिया और उत्साहपूर्वक अपने भाई को नगर प्रवेश कराया। चन्द्रयशा ने नमिराजा को राज्यग्रहण करने के लिए कहा। माताजी ने दोनों का सम्बन्ध समझाया था, इसलिए चन्द्रयशा ने नमिराजा को कहा, 'अब मुझे राज्य की जरूरत नहीं है, मैं संयम के मार्ग पर जाऊँगा।' नमिराजा भी संयम ग्रहण हेतु तैयार हुए लेकिन बड़े भाई की छोटे भाई को राज्य सौंप करके दीक्षा लेना ही योग्य है ऐसा समझाकर राज्यधूरा नमिराजा को सौंपकर चन्द्रयशा ने दीक्षा ग्रहण कर ली।

साध्वी मदनरेखा याने सुव्रताश्रीजी सर्व कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान पाकर मोक्ष पधारीं।

●

३४ श्री नमिराजा

नमिराजा और चंद्रयशा दोनों सहोदरों को लड़ने से बचाया एवं चंद्रयशा ने राज्य नमिराजा को सौंपकर दीक्षा ली, ये बातें मदनरेखा के चरित्र में देखी।

नमिराजा न्यायमार्ग पर राज्य चला रहे थे। चन्द्रयशा से राज्य प्राप्त होने के पश्चात् लगभग ६ माह बाद उन्हें दाह ज्वर उत्पन्न हुआ। वैद्य उनकी दवा कर रहे थे लेकिन दाह ज्वर में थोड़ा भी फर्क न पड़ रहा था। दाह ज्वर को शांत करने के लिये उनकी रानियाँ चंदन घिस रही थी। उनकी चूडियों की आवाज़ नमिराजा को अत्यंत पीडा दे रही थी, उन्होंने पूछा, 'मुझे यह किसकी दारुण आवाज़ सुनाई दे रही है। सेवकों ने उत्तर दिया कि चंदन घिसा जा रहा है और चंदन घिसती रानियों के हाथ के कंगनो की यह आवाज़ है। तब सब रानियों ने एक एक कंगन रखकर बाकी के कंगन निकाल दिये जिससे आवाज़ बंद हो जाये। अधिकमात्रा के कंगन उतर जाने से आवाज़ बंद हो गई। नमिराजा ने पूछा, 'अब आवाज़ क्यों बंद हो गई?' सेवकों ने उत्तर दिया कि 'एक सौभाग्य कंगन रखकर शेष कंगन उतार देने के कारण।'

राजा सोचने लगा, कई कंगन थे और उनकी आवाज़ दुःखदायी थी। सिर्फ एक कंगन रखने से एकदम शांति हो गई। इस प्रकार अकेलेपन में ही महासुख है, जंजाल बढ़ने से दुःख बढ़ता है, सुख बढ़ता नहीं है। आत्महित के लिये जंजाल का त्याग करना ही ठीक रहेगा। ऐसे सोचते हुए मन से तय किया कि 'यदि मेरा दाह ज्वर बिलकुल शांत हो जायेगा तो मैं चारित्र ग्रहण करूंगा।' ऐसा सोचकर सो गये। सुबह उठे तब दाह ज्वर शांत हो गया था। रात्रि को स्वप्न में उसने ऐरावत हाथी और मेरु पर्वत देखा। ऐसे सुंदर सपने के कारण भी रोग दूर हुआ है - ऐसा नमिराजा ने सोचा। स्वप्न के बारे में सोच-विचार करते करते उन्हें जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। 'मैंने पूर्वभव में साधूपन पाला था। वहाँ से मृत्यु पाकर प्रणत देव लोक का देवता बना था।' इस प्रकार जाति स्मरण ज्ञान होने के कारण अपने पुत्र को राज्य सौंप कर दीक्षा ग्रहण कर ली। नमिराजा ने चारित्र ग्रहण किया। इन्द्रराजा ब्राह्मण का रूप लेकर उनकी परीक्षा करने आये और कहा, 'हे राजन! तूने राज्य का तृणवत् त्याग किया, यह बहु अच्छा किया है लेकिन तूझे जीवदया पालनी

चाहिये, तूं व्रत ग्रहण कर रहा है इसलिये तेरी स्त्रीयाँ रुदन कर रही हैं सो जीवदया की खातिर तूझे व्रत ग्रहण नहीं करना चाहिए।'

नमि मुनि ने उत्तर दिया, 'मेरा व्रत उस दु:ख का कारण नहीं है पर उनके स्वार्थ में हानि पहुँच रही है, वह उन्हें दुखकर्ता है। मैं तो मेरा कार्य ही कर रहा हूँ।'

इन्द्र ने कहा, 'हे राजन्! तेरे महल, अंत:पुर आदि जल रहे हैं, उनकी तूं क्यों उपेक्षा कर रहा है?'

नमिराजर्षि ने कहा :'यह महल मेरा नहीं है, अंत:पुर भी मेरा नहीं है।'

इन्द्र बोले :'राजन्! तूं राज्य छोड़कर जा रहा है तो इस नगरी के किल्ले को मजबूत करके जा।' राजर्षि ने कहा :'मेरा तो संयम ही नगर है, उसमें शम नामक किल्ला है और नय नामक यंत्र है।'

इन्द्र बोले :'हे क्षत्रिय! लोगों को रहने के लिए मनोहर प्रासाद निर्माण करवाकर व्रत लेना।'

मुनि ने उत्तर दिया, 'ऐसा तो दुर्बुद्धिजन करते हैं, मेरी तो जहाँ देह है वही मंदिर है।'

इन्द्र ने कहा :'तूं चोर लोगों का निग्रह करने के पश्चात् व्रत ले।'

मुनि बोले :'मैंने राग, द्वेष आदि चोरों का निग्रह किया है।'

इन्द्र ने कहा :'कई उद्धत राजा अभी भी तेरे कदम नहीं चूमते हैं, उनका पराजय करके प्रवज्या ग्रहण कर।'

राजा ने कहा :'युद्ध में लाख सैनिकों को जीतने में क्या जय? खरी जय तो एक आत्मा को जीतने से होती है और उसको जीत कर मैंने परम जय पाई है।

[इत्यादि बोधदायक नमिराजर्षि एवं इन्द्रराजा का संवाद उत्तराध्यन सूत्र से जान सकते हैं।]

यह संवाद पूरा होते ही नमिराजा चल पड़ते हैं।

इन्द्र अपना असली स्वरूप प्रकट करके बोले :'हे यतिश्वर! आप धन्य है। आपने सर्व भाव के बैरी का पराभव करके आपका उत्कृष्ट स्वभाव दिखाया है।' इस प्रकार स्तुति करके इन्द्र स्वर्ग में गये और नमिराजा कालानुसार मोक्ष पधारें।

●

३५ अंबिका देवी

गिरनार पर्वत के पास एक छोटा सा गाँव। उसमें एक ब्राह्मण कुटुंब...। देवभट्ट नामक बुजुर्ग की मृत्यु हो गई थी। उनकी विधवा पत्नी देवीला अपने पुत्र सोमभट्ट के साथ रहती थी।

सोमभट्ट का विवाह अंबिका नामक एक जैन कन्या के साथ हुआ था। अंबिका को जन्म से जैन धर्म मिला था। जैन संस्कार होने से दान-धर्म उसे बहुत प्रिय थे। शादी के बाद सोमभट्ट के सिवा किसी भी पुरुष को रागदृष्टि से देखा न था, ऐसी सत्त्वशील सती स्त्री थी वह।

श्राद्ध के दिनों पर सोमभट्ट को भारी श्रद्धा थी। अपने पिता का श्राद्ध दिवस था। उस दिन एक महान तपस्वी मुनिराज का आगमन हुआ। वे एक माह के उपवास पश्चात् पारणा हेतु भिक्षा लेने पधारे थे।

अंबिका ने हर्ष एवं आदरपूर्वक भिक्षा दी। मुनिराज 'धर्मलाभ' कहकर चल दिये। दरवाजे के पास खड़ी एक पड़ौसन ने यह देखा और कर्कश आवाज़ से अंबिका को कहा, 'अरे रे! यह तूने क्या किया? श्राद्ध के दिन तूने प्रथम दान मलिन कपड़ेवाले साधू को दिया? श्राद्ध का अन्न और घर दोनों अपवित्र कर दिये।' अंबिका सुनी अनसुनी कर घर मे घुस गई लेकिन पड़ौसन क्या अपनी बात छोड़ देती? बाहर गई हुई अंबिका की सास देवीला के लौटने पर यह बात मिर्च-मसाला लगाकर पड़ौसन ने कही। देवीला का क्रोध भभक उठा। अंबिका को उसने खूब जली कटी सुनाई। सोमभट्ट बाहर से आया तो उसे भी अंबिका की घर अस्पृश्य करने की बात कही। वह क्रोधित हो गया। अंबिका की ओर बढ़कर चिल्ला उठा : 'पापिनी! तूने यह क्या किया? अभी कुलदेवता की पूजा की नहीं है, पितृओं को पिंड नहीं दिया और तूने मैले-गंदे-साधु को दान दिया ही क्यों? निकल जा मेरे घर से, चली जा यहाँ से।'

क्रोध चण्डाल है! जिसको क्रोध चढ़ता है वह चण्डाल जैसा क्रूर बन जाता है। सोमभट्ट ने सती स्त्री पर क्रोध करके घर से बाहर निकाल दिया।

अंबिका के दो पुत्र थे। एक का नाम सिद्ध और दूसरे का नाम बुद्ध। अंबिका दोनों को लेकर घर के पिछवाडे से निकलकर नगर बाहर पहुँची।

अपने दुर्भाग्य पर विचार करते हुए मन में श्री नवकार मंत्र गिनती हुई जंगल के मार्ग पर चल रही थी।

सिद्ध और बुद्ध दोनों को प्यास लगी; सिद्ध ने माँ को कहा, 'माँ, खूब प्यास लगी है, माँ! पानी दे।' बुद्ध ने भी माँ का हाथ खींचते हुए पानी की माँग की। अंबिका चारोंओर देखती है, कहीं भी पानी दिखता नहीं है।

वहाँ एक सूखा सरोवर दिखा। अंबिका ने सोचा, 'यह सरोवर पानी से भरा हुआ होता तो!' वहाँ एक चमत्कार हुआ। सरोवर पानी से भर गया! किनारे पर खड़े आम्रवृक्ष पर पके हुए आम दीखें! अंबिका के सतीत्व का प्रभाव था यह! उसकी धर्मदृढ़ता का यह चमत्कार था। अंबिका ने दोनों बालकों को पानी पिलाया और पेड़ पर से आम तोड़कर खिलायें। सिद्ध और बुद्ध खुश खुश होकर पेड़ के नीचे खेलने लगें।

अंबिका के घर से निकलने के बाद घर पर भी ऐसा ही चमत्कार हुआ। सास देवीला बड़बड़ाते हुए रसोईघर में पहुँची। उसकी आँखें आश्चर्य से फैल गई। जिस बर्तनों में अबिका ने मुनिराज को दान दिया था, वे बर्तन सोने के हो गये थे। पके हुए चावल के दाने मोती के दाने बन गये थे। रसोई के दूसरे बर्तन भी रसोई से भरे पड़े थे।

देवीला हर्ष से पागल हो गई। उसने बेटे सोमभट्ट को बुलाया और यह सब दिखाकर कहा, 'देख, अंबिका तो सती है सती, देख! उसका प्रभाव।' सोमभट्ट ने सोने के बर्तन देखे। चावल का पतीला मोतीयों के दानों से भरा देखा। सोमभट्ट का रोष उतर गया। वह अंबिका को ढूंढने निकल पड़ा। अंबिका को ढूंढते ढूंढते सोमभट्ट जंगल में आ पहुँचा। दूर से दोनों बालकों को खेलते हुए देखा तो उसने आवाज़ दी : 'अंबिका... ओ अंबिका! पतिकी आवाज़ सुनकर अंबिका कांप उठी, उसे ऐसा लगा कि जरूर वह मारने आया है, दोनों बालकों को लेकर दौड़ी और नज़दीक के एक कुए में छलाँग लगा दी, तीनों के प्राण पंखेरु उड गये। सोमभट्ट वहाँ पहुँचा लेकिन देर हो चुकी थी। कुए में अपनी पत्नी और दोनों बालकों को देखा, वह समझ गया कि तीनों के प्राणपंखेरू उड़ चुके हैं। वह भी कुएं में कूद पड़ा। कुछ ही क्षणों में उसकी मौत हो गई।

अंबिका मरकर देवलोक में देवी हुई हैं। मरते समय अंबिका के मन

के भाव शुद्ध थे। इसलिए वह मरकर देवी हुई लेकिन सोमभट्ट के भाव इतने शुद्ध न थे। वह मरण कष्ट के कारण देवपने में भी अंबिका की सवारी सिंह रूप मे देव बना। इस प्रकार वे देव एवं देवी बने।

अंबिका को भगवान नेमनाथ पर अथाह प्रीति थी, इस कारण वह देवी बनकर भगवान नेमनाथ की अधिष्ठायिका देवी बनी। जो कोई भगवान नेमनाथ की सेवा, भक्ति-श्रद्धा से करता है, उसकी मनोकामनाएँ देवी अंबिका पूर्ण करती हैं।

सोमभट्ट देव हुए लेकिन उन्हें सिंह का रूप धरकर अंबिका देवी का वाहन बनना पड़ा है।

जय बोलो देवी अंबिका की...।

●

गधा

कुछ भी अपेक्षा बिना मनुष्य की निष्काम भाव से मजदूरी करने का उसने समर्पण व्रत लिया और पीठ पर उठा सके उतना... अरे! उससे भी अधिक माल भर भर के उसने मनुष्य का बोझ उठाया।

इतनी भारी सेवा करने के बाद भी उसने कभी अहंकार न किया। मनुष्यों ने डण्डे मारे तो भी सहन किये। अपमान भी निगल लिया। खाने के लिए घास भी न माँगा, रहने के लिए छपरा न चाहा। धूरे पर घूमकर ही पेट भरा।

लेकिन हृदय में थोड़ा सा भी रंज न रखा।

इतना ही नहीं, इतने ढेर सारे अपमान, मार और बेगार के बाद भी उसने अपना आनंद धूरे की धूल पर लोटकर ही मना लिया।

वाह रे निष्काम समर्पणव्रती!

गधे जैसा समर्पणव्रत हम भी अपनायें।

३६ राजा मुनिचंद्र

[यह कथानक चंद्रावतंस राजा के नाम से भी प्रसिद्ध है।]

संध्याकाल का समय है। राज्य का काम निबटाकर राजा मुनिचन्द्र सांय को चौविहार कर अंत:पुर में पधारें। अकेले ही थे, सो चिंतन करने लगे।

'महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी को कहा था, एक क्षण भी बेकार मत जाने देना।' इस समय फुर्सत है - रानी अंतपुर में नहीं है, वह आये तब तक ध्यानस्थ हो जाऊँ, काउसग्ग करूं, यों सोचकर मन से निर्णय लेते हैं, 'सामने जो दीप है, वह जलता रहे तब तक काउसग्ग करू।' - इस प्रकार मन से ठान लिया।

मोम के पूतले की तरह वह काउसग्ग ध्यान में खड़े रहे। समय हुआ तो दासी अंत:पुर में सब ठीक-ठाक करने आई। उसने राजाजी को ध्यान में खड़े देखा, लेकिन दीपक में घी घटता जा रहा था। घी खत्म हो जायेगा तो दीपक बुझ जायेगा, राजाजी को अंधेरे में खड़ा रहना पडेगा - ऐसा सोचकर दीपक में घी ड़ाला। दीया बुझने से बच गया इसलिए राजा काउसग्ग ध्यान में ही खड़े रहे। फिर से घी खत्म होने आया तो दासी ने दुबारा घी डाला। राजा प्रतिज्ञावश है - दीया जल रहा है - काउसग्ग पूर्ण नहीं हो रहा है - प्रतिज्ञा कैसे तोडी जाय? समय बीत रहा है, शरीर में वेदना हो रही है - पैर थक गये हैं, लेकिन राजा दृढ़ता से काउसग्ग खड़े ही रहे, सोचते हैं कि, 'यह वेदना तो कुछ भी नहीं है, इस जीव ने नारकी की वेदनाएँ भोगी है, अनंत बार शरीर को छेदा गया है, उस वेदना से अनंतवें भाग की यह वेदना है। इस वेदना को सहन करने से अनंत गुनी निर्जरा ही होनेवाली है।

इस प्रकार काउसग्ग ध्यान में ही प्रभात हो गया। उजाला हो जाने से दासी ने दीपक में घी डालना बंद कर दिया और दीपक बुझ गया। राजा की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई। काउसग्ग पूर्ण करके राजाजी कदम उठाकर पलंग की ओर बढ़ते हैं। अंग अकड़ जाने के कारण नीचे गिर पड़ते हैं। लेकिन पंच परमेष्टि के ध्यान में लीन हो जाते हैं। आयुष्य पूर्ण होते ही कालधर्म पाकर उनके प्राण सीधे ही देवलोक में पहुँच जाते हैं।

●

२७ श्री दृढ़प्रहारी

एक नगर में जीर्णदत्त नामक ब्राह्मण रहता था। उसे यज्ञदत्त नामक एक उद्धत पुत्र था। कालानुसार यज्ञदत्त के माता-पिता की मृत्यु हुई। बचपन से मृगया खेलने जाता था जिससे मृग के शिकार में वह कुशल था लेकिन गरीबी के कारण जीना मुश्किल लगा, और वह नगरी के बाहर चोर लोगों की पल्ली में पहुँच गया। वहाँ पल्लीपति भीम को मिला। पल्लीपति को पुत्र न था इसलिये उसने यज्ञदत्त को अपना पुत्र बनाकर रखा।

किसी भी प्राणी पर ब्रह अचूक प्रहार करके मार सकता था जिससे उसका नाम दृढ़प्रहारी पड़ा। पल्लीपति ने अपना अंतकाल समीप जानकर दृढ़प्रहारी को अपने तख्त पर बिठाया, दृढ़प्रहारी पल्लीपति बन गया। रात्रि को भील सेवकों के साथ मिलकर चोरी, डकैती आदि कुकर्म करने लगा। एक दिन कुशस्थल नामक गाँव लूंटने गये। गाँव में देवशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। उसके घर पर भील सेवकों ने डाका ड़ाला। देवशर्मा बाहर जंगल में गये थे। उसके पुत्र ने दौड़ते हुए, जंगल मे पहुँचकर पिता को यह बात बताई। देवशर्मा क्रोधित होकर लाठी लेकर दौड़ता हुआ चोरों को मारने चला। दृढ़प्रहारी ने लाठी लेकर मारने आते देवशर्मा को देखा और उस पर प्रहार करके उसके मस्तिष्क के टुकड़े कर ड़ाले। उस दौरान एक गाय भी चोरों को सिंग से मारने आ पहुँची, उसे भी दृढ़प्रहारी ने मार डाली। देवशर्मा की मृत्यु की खबर सुनकर उसकी गर्भवती स्त्री भी हाहाकार मचाती हुई घर से बाहर आई। उसे भी दृढ़प्रहारी ने गर्भसहित मार डाला।

इस प्रकार एक साथ ब्राह्मण, गाय, स्त्री तथा गर्भ की हत्या करके दृढ़प्रहारी कांप उठा और सोचने लगा, 'अहो हो, यह मैंने क्या किया! इस ब्राह्मण व उसकी स्त्री की हत्या करने से उसके बालकों का क्या होगा? मैं ही उनके दुःख का कारण बना। ऐसे दुष्कृत्य का भार मैं कैसे सहन करूंगा? भवकूप में गिरते हुए मेरा अवलम्बन कौन बनेगा?' इस प्रकार सोच रहा था कि वहाँ से गुजरते हुए शांत मनवाले, धर्मध्यान में लीन व सर्व जीव की रक्षा करनेवाले साधुओं को देखा। उनको देखते ही वह मनमें सोचने लगा, 'अहा! इस लोक में ये साधु पूजने योग्य हैं, वे क्षमावंत भी है।'

उनको वंदन करके दृढ़प्रहारी कहने लगा, 'मैंने स्त्री, ब्राह्मण, गाय तथा बालगर्भ की हत्या की है। तो हे कृपानिधि! नरकगति से मुझे बचाइये - एक ही प्राणी के वध से गति होती है तों मेरा क्या होगा? कौनसी गति होगी? महात्मा! मुझे बचाइये। मुझे आपकी दीक्षा दीजिये।' गुरु ने उसको संसार से विरक्त जानकर संयम दिया। दृढ़प्रहारी ने दीक्षा लेकर तप करते करते ऐसा अभिग्रह लिया कि' जिस जिस दिन मुझे यह मेरा पाप याद आयेगा, उस उस दिन मैं आहार नहीं लूंगा और यदि कोई दुश्मन मुझे मार डालेगा तो मैं उसे क्षमा करूंगा।'

ऐसे अभिग्रह के साथ कई बार ड़कैती डाली थी उस कुशस्थल नगर में भिक्षार्थ जाता। वहाँ उसको देखकर नगर के लोग, 'गो-ब्राह्मण-स्त्री-बालहत्यारा' कह कर लाठी व पत्थर आदि से मारने लगते। लेकिन ये महात्मा शांत चित्त से सब सहन करते करते चिंतन करने लगे, 'हे जीव! तूने इस प्रकार से अनेक जीवों की निर्दयतापूर्वक हत्या की है। कइयों की लक्ष्मी तथा स्त्रीयों का हरण किया है, बहुत असत्यों का उच्चारण किया है, अनेक कुटुम्ब में स्त्रीयों से बालकों का वियोग कराया है। अब यह सबकुछ सहन करने की बारी तेरी है, तो इन सब के उपसर्ग तुझे सहन करने चाहिये। उनके अपराधों को क्षमा देनी। कोई भी संजोग में क्रोध ही न करना। ये लोग मेरे कर्मों का क्षय करने में वे मित्रों की भाँति मदद कर रहे हैं। मुक्तिरूपी सुख देने न सोची हुई सहायता कर रहे हैं। उनके उपर क्रोध ही मत कर। दोष देना है तो अपने कर्म को दोष देना। मेरे तो ये परम बांधव हैं। अहो! मैं तो मेरे कर्म नष्ट कर रहा हूँ लेकिन इन लोगों का क्या होगा? ये उपसर्ग करने से वे नरक जाने के लायक कर्म बांधेंगे।' इस प्रकार वे लोगों के प्रति करुणा भाव की वृत्ति रखने लगे।

ऐसी उत्तम भावना की मनोवृत्ति रखते रखते उनके अध्यवसाय पल पल शुद्ध होते रहे। क्रमानुसार उन्होंने चौदहवाँ गुणस्थानक प्राप्त करके केवलज्ञान पाया।

●

मनुष्य कैसा होना चाहिये? वाणी में सुमधुर, सयाना, भव्य दिखनेवाले, लेकिन नम्र स्वभाव का और निर्भय लेकिन विनयशील शिष्टाचारवान् और मृदु हृदयवान्। - एडवीन आरनोल्ड

३८ श्री इलाचीकुमार

इलावर्धन नामक नगर में जिनशत्रु नामक राजा राज्य करता था। उस गाँव में इभ्य नामक सेठ व धारिणी नामक उसकी सद्‌गुणी स्त्री रहते थे। वे सर्व प्रकार से सुखी थे लेकिन संतान न होने का एक दुख था। इस दम्पती ने अधिष्ठायिका इलादेवी की आराधना करके कहा, 'यदि पुत्र होगा तो उसका नाम तेरा ही रखेंगे।' कालक्रम से उन्हें पुत्र हुआ और मनौती अनुसार उसका नाम इलाचीकुमार रखा।

आठ वर्ष का होते ही, इलाचीकुमार को पढ़ने के लिये अध्यापक के पास छोड़ा गया। उसने शास्त्रों का सूत्रार्थ सहित अध्ययन किया। युवा अवस्था आई लेकिन युवा स्त्रीयों से वह जरा सा भी मोहित न हुआ। घर में साधू की तरह आचरण करता रहा। पिता ने सोचा, 'यह पुत्र धर्म, अर्थ और काम तीनों में प्रवीणता नहीं पायेगा तो उसका क्या होगा?' उसे व्यसनी लोगों की टोली में रक्खा, जिससे वह जैन कुल के आचार विचार न पालकर, धीरे धीरे दुराचारी बनता गया।

इतने में वसंतऋतु आयी। इलाचीपुत्र अपने कुछ साथियों के साथ फल-फूल से सुशोभित ऐसे उपवन में गये, जहाँ आम्र, जामून वगैरह फल तथा सुगंधित पूलों के वृक्ष थे। वहाँ लंखीकार नामक नट की पुत्री को उसने नृत्य करते हुए देखा। उसे अपनाने की इच्छा हुई। यह इच्छा बार बार होने लगी और वह दिग्‌मूढ होकर पूतले की भाँति खड़ा रह गया। मित्र इलाचीकुमार के मनोविकार को समझ गये और उसे समझाकर घर ले गये। घर जाने के बाद वह रात्रि को सोया लेकिन लेशमात्र निद्रा न आई, क्योंकि नटपुत्री को वह भूला न सका था। ऐसी स्थिति देखकर उसके पिता ने पूछा, 'हे पुत्र! तेरा मन क्यों व्यग्र है? किसी ने तेरा अपराध किया है।' इलायचीकुमार मौन रहा, जवाब दिया, 'पिताजी! मैं सन्मार्ग प्रवर्तनादि सब कुछ समझता हूँ, पर लाचार हूँ। मेरा मन नटपुत्री में ही लगा हुआ है।' पिताजी समझ गये कि 'मैंने ही भूल की थी। उसे कुसंगति में छोड़ा जिसका फल भुगतने की बारी आई। अब मैं निषेध करके उसको रोकूंगा तो वह मृत्यु पायेगा, तो मेरी क्या

गति होगी! भला-बूरा सोचकर वह उस नट से मिले और अपने पुत्र के लिए उसकी पुत्री की माँग की। नट बोला, 'अच्छा! यदि आपके पुत्र की ऐसी ही इच्छा हो तो उसे हमारे पास भेजो।'

कोई और मार्ग न होने से पिता ने इलाचीपुत्र को नटपुत्री के साथ ब्याह करने की स्वीकृति देकर पुत्र के नट को पास भेजा। नट ने इलाची पुत्र को कहा, 'यदि नट पुत्री से ब्याह करना हो तो हमारी नृत्यकला सीख। उसमें प्रवीणता मिलने पर यह कन्या तूझको दूंगा।'

कामार्थी इलाचीकुमार नृत्यकला सीखने लगा। अल्प समय में ही वह नृत्यकला में माहिर हो गया। लंखीकार इलाचीकुमार और अपनी पुत्री को नचाते हुए द्रव्य उपार्जित करने लगा। खूब द्रव्य उपार्जन के बाद महोत्सवपूर्वक पुत्री का ब्याह करने की लंखीकार ने अनुमति दी।

बड़े पैमाने पर द्रव्य उपार्जन करना हो तो कोई बड़े राज्य में जाकर राजा-महाराज को नृत्य से खुश करना चाहिये - ऐसे खयाल से लंखीकार इलाचीकुमार तथा उसकी पूरी मण्डली को लेकर बेनाटन नगर को गये। वहाँ इलाचीकुमार ने राजा महीपाल को कहा, 'हमें आपको एक नाटक बताना हैं।' राजा ने हाँ कह दी। उसने विनय सहित नाट्य और नृत्य के प्रयोग शुरू किये। बांस की दो घोड़ी बनायी। दोनों के बीच एक रस्ती बांधकर वह रस्से पर नृत्य करने लगा।

उस समय राजा की नज़र लंखीकार की पुत्री पर पड़ी और वह उस पर मोहित हुआ। उसे कैसे पाया जाय? उसने सोचा कि यह नट रस्से पर से गिर जाय और मर जाय तो नटनी को पा सकेंगा। इस कारण दुबारा रस्से पर नाच करे को कहा। इलाचीकुमार ने दुबारा रस्से पर जाकर उत्कृष्ट नृत्य किया लेकिन राजा खुश न हुआ। उसने फिर से निराधार रस्से पर नृत्य करने को कहा। इस बार राजा के भाव ऐसे थे कि नटकार रस्से पर से सन्तुलन गँवा दे और गिरकर मर जाये और नटीनी को प्राप्त कर सके। इलाचीकुमार के भाव ऐसे हैं कि राजा कैसे खुश होकर बड़ा इनाम दे और नटीनी के साथ ब्याह करूं। दोनों के भाव भिन्न भिन्न थे। इस प्रकार राजा बार बार नृत्य करने को कहते थे। इलाचीकुमार समझ गया कि राजा की भावना बुरी है। वह मेरी मृत्यु चाह रहा है। इस बार इलाचीकुमार ने दूर एक दृश्य देखा।

एक सुंदर स्त्री साधू महाराज को भिक्षा दे रही थी, साधू रंभा जैसी स्त्री के सामने देखते भी नहीं हैं। 'धन्य है ऐसे साधू को। वह कहाँ और मैं कहाँ? मातापिता की बात न मानी और एक नटीनी पर मोहित होकर मैंने कुल को कलंकित किया।' ऐसा सोचते सोचते चित्त वैराग्यवासित हुआ। रस्से पर नाचता इलाचीकुमार अनित्य भावना का चिंतन करने लगा और उसके कर्मसमूह का भेदन हुआ, जिससे उसने केवलज्ञान पाया और देवताओं ने आकर स्वर्णकमल रचा। उस पर बैठकर इलाचीकुमार ने राजासहित सबको धर्मदेशना दी। राजा के पूछने पर अपने पूर्वभव की बात कही। जाति के घमण्ड के कारण पूर्व भव की उसकी स्त्री मोहिनी लंखीकार की पुत्री बनी और पूर्वभव के स्नेहवश स्वयं इस नटपुत्री पर मोहित हुआ था।

●

जड़े

वृक्ष तो बोया, पर उसकी परवरिश के लिये कौन उसका पोषण पूर्ण करेगा?

यह जिम्मेदारी जड़ों ने स्वीकारी। इससे ही वृक्ष की छटादार घटाटोप, उसके पत्ते, पुष्प और डालियाँ, उसका सौंदर्य व सौष्ठव पादुर्भाव हो सके।

लेकिन जड़ों ने तो छिपे कोने में - जमीन मे गड़े रहने व कभी भी न दिखाई देने का व्रतपालन ही चाहा।

इसके इस समर्पण के कारण ही वृक्ष के सब अंगो ने अपनी अपनी जरूरत अनुसार पोषण पाया।

इसी के कारण गुलाब ने सुगंध पाई। इसी के कारण कमल ने सौंदर्य पाया व इसी के कारण आम ने रसकस पाये।

वाह रे। प्रकृति राज्य के रसद मंत्री। आपका बेजोड़ समर्पण।

जड़ों की तरह हम भी गुप्त रूप से पोषण देते रहें...।

३९ — श्री झांझरिया मुनि —

मदनब्रह्म एक राजकुमार थे। वे भर जवानी में थे। बत्तीस सुन्दर राज्यकन्याओं के साथ उनका ब्याह हुआ था। स्वर्ग के भाँति आनन्द लेते हुए काल व्यतीत कर रहे थे।

एक बार इन्द्रोत्सव मनाने नगरी की प्रजा सुंदर वस्त्र परिधान करके उद्यान में गई। राजकुमार मदनब्रह्म भी बत्तीस नववधूओं के साथ उद्यान में क्रीडा कर रहे थे। इतने में उनकी दृष्टि एक त्यागी मुनिवर पर पड़ी, वंदना करने की इच्छा से वे मुनिराज के पास पहुँचे। विधिपूर्वक वंदन करके वे नववधूओं के साथ उनकी वैराग्यभरी अमोघ देशना सुनने बैठे।

मुनीश्री की अमृतभरी देशना सुनते ही मदनब्रहम राजकुमार की आत्मा जाग उठी। उन्हें समझ आ गई कि आत्म क्या है और उसी पल बत्तीस नववधूओं को छोड़कर उन्होंने संयम ग्रहण कर लिया। ज्ञान की आराधना करके वे विद्वान व गीतार्थ बने।

विहार करते करते मदनब्रह्म मुनि खंभात (उस समय की त्रंबावटी) नगरी में पधारें। मध्याह्न समय पर गोचरी पर निकलते मुनि को एक सेठानी ने झरोखे से देखा। सेठानी को कईं वर्षों का पतिवियोग था। कामज्वर से पीड़ित सेठानी की भावना बिगड़ उठी थी और कोई मौका ढूंढ रही थी। वहाँ यह भरपूर जवान मुनि को देखा। मन में हर्षित हो गई वह और अपनी वासना पूर्ति के लिए अपनी नौकरानी को भेजा कि जा, उन मुनि को ले आ। दासी दौड़ी हुई गई और मुनि को बिनती की, 'पधारिये गुरुदेव!' सरल स्वभाव से मुनि वहाँ पधारे। मकान का दरवाजा सेठानी ने बंद कर दिया और हावभाव और नखरे करने लगी। मुनिश्री को मोहवश करने के खूब प्रयत्न किये लेकिन मुनिश्री व्रत में अटल थे। मीठी वाणी से सेठानी को धर्म-उपदेश देने लगे। मोहांध और तीव्र वासना से पीड़ित सेठानी धर्मदेशना पर ध्यान न देकर मुनिश्री को लिपट पड़ी। मुनिश्री ने सोचा, यहाँ से शीघ्र ही नीकल जाना चाहिये। यहाँ ज्यादा रहने से दुष्ट स्त्री मेरा व्रत भंग करेगी। ऐसा विचार करके मुनिश्री ने हाथ छुडाकर द्वार खोला और भागने लगे। लेकिन कामी स्त्रीने भागते मुनि को अपने पैर के फंदे से मुनि को नीचे गिरा दिया। पैर का फंदा डालते हुए स्त्री का झांझर मुनि के पैर में फंस गया और सेठानी जोरो से चिल्लाने लगी कि पकड़ो... पकड़ो... इस दुष्ट अणगार को... वह मेरा शील भंग करके भाग रहा है।

पकडो.... पकडो।

लोगों ने साधू को पकड़ा। स्त्री की पुकार सुनकर लोग मुनि को मारने लगे। मुनिश्री पुण्योदय के कारण से भाग रहे थे और सेठानी ने पैर से फंदा लगाकर मुनि को नीचे गिराने का खेल किया था वह इस नगर के राजा ने अपने महल के झरोखे से खड़े खड़े देखा था। वे शीघ्र ही नीचे उतरे और लोगों को सत्य हकीकत बताई कि 'यह स्त्री अपनी बदनामी ढ़कने के लिए इस पवित्र साधू को कलंक दे रही है। मुनिश्री तो सच्चे और पवित्र संत है। यह लफड़ेबाजी तो उस दुष्ट सेठानी की है।' लोगोंने मुनिश्री के चरणों मे गिरकर क्षमा माँगी। मुनिश्री की जयजयकार हुई। राजा ने सेठानी को अपने उग्र पाप का फल भुगतने देशनिकाल की सजा दे दी।

मुनिश्री का नाम तो था मदनब्रह्म मुनि। उनके पैर में झांझर फंस जाने कारण वे झांझरिया मुनि के नाम से पहचाने जाने लगे।

ऐसी कठिन कसौटी में से गुजरने बाद मुनिश्री उज्जैन नगरी में पधारें। घर-घर गोचरी लेते थे। एक दिन राजा रानी झरोखे में बैठकर सोकटाबाजी खेल रहे थे। रानी मुनि को देखकर मुस्कुराई और तुरंत रोने लगी। टप टप आंसु गिरने लगे। यह देखकर राजा को शक हुआ, जरूर ये मुनि भूतकाल में मेरी रानी का यार रहा होगा। राजा ने चुपके से सेवकों को बुलाकर मुनि को पकड़ा और गहरा खड्डा खोदकर उसमें खडे करके सेवकों को मुनि की गर्दन उड़ा देने का हुक्म दिया।

सेवक गर्दन काटने के लिये तैयार हुए और मुनिश्री समतारस में डूब गये। शत्रु को मित्र मानकर उनका उपकार मानने की ऊँची भावना में डूबते गये। सेवकों ने राजा की आज्ञानुसार मुनि का शिरच्छेद कर डाला। अंत होने से पूर्व मुनि ने उच्च भावना के प्रताप से केवलज्ञान पाया और वे मोक्ष पधारे।

राजा प्रसन्न होते हुए राजमहल की ओर चले। एक चील माँस का पिंड समझकर खून से सना ओघा चोंच में धर कर उडत। भवितव्यता के योग से ओघा राजमहल के चौक में गिरा। सेवकों द्वारा रानी ने बात जानी। ओघा देखकर रानी ने पहचान लिया कि यह ओघा जरूर मेरे भाई मदनब्रह्म का है, उन्हे जरूर किसीने मार डाला है। रानी फूटफूटकर रोने लगी। रानी का रुदन सुनकर राजा दौड़ता हुआ आया, राजा को तब बात समझ में आई की मुनि तो रानी के सगे भाई थे। राजा ने कबूल किया कि शंका के कारण मुनि को उसने ही मरवा डाला है। अब राजा और रानी रुदन करने लगे। रानी ने अन्न-जल का त्याग करके अनशन ग्रहण किया। राजाजी मुनिश्री के कलेवर के पास जाकर क्षमापना करने लगे और प्रबल पश्चाताप करते करते, अनित्य भावना व्यक्त करते करते राजा को भी केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

●

४० कलावती

कलावती का ब्याह शंखराज के साथ हुआ था। कलावती गर्भवती होते ही उसके मैके से भाई जयसेन प्रसूति के लिए लेजाने आया, लेकिन राजाजी ने 'उसका विरह मैं नहीं सह पाऊँगा।' कहकर भेजने के लिए ना कह दी।

जयसेन अपनी बहिन के लिए उपहार में लाया हुआ संदूक देकर बिदा हुए। कलावती ने एकांत में संदूक खोली। संदूक में झगमगाते हुए दो बेरखे (रुद्राक्ष जड़ित कंगन) देखे और बड़ी प्रसन्न हुई। उस वक्त एक दासी वहाँ आ पहुँची। उसने पूछा, 'रानी साहिबा! कहाँ से लाई।' कलावती ने कहा, 'मेरे प्रिय व्यक्तियों का उपहार है।' खतम... दरवाजे के पीछे खड़े राजाजी ने ये शब्द सुने और मन में शक का जहर चढ़ा। उसके प्रिय मेरे सिवाय अन्य कोई है। 'कलावती शरीर से खूबसूरत है लेकिन मनकी काली, कुलटा है।' वह क्रोधित हो उठा। उसने सेवकों को आज्ञा दी कि 'कलावती को काले रथ में, काले वस्त्र पहनाकर, काला टीका करके जंगल में ले जाओ। वहाँ उसके दोनों हाथ बेरखों सहित काट कर मेरे सामने हाज़िर करो।'

रथ में बिठाकर सेवक कलावती को घोर जंगल में ले गये और नीचे उतरकर कलावती को राजा का हुक्म सुनाया। कलावती ने आँख में आंसु के साथ जवाब दिया कि, 'मेरे स्वामी को कहना, आपकी आज्ञानुसार कलावती ने बेरखों हैं सहित दोनों हाथ कटवा कर दिये हैं। काट लो दोनो हाथ और जल्दी जाकर सौंप दो राजाजी को बेरखों सहित मेरे हाथ!'

सैनिक ने दोनों कलाइयाँ बेरखों सहित काट कर बिदा ली। हाथ कटने से कलावती को असह्य वेदना हो रही थी। उसे मूर्च्छा आ गई। चिकित्सा के लिए वहाँ कोई न था। इस दुःख के साथ पुत्र का प्रसव हुआ। कलावती सती थी। उसका कोई दोष न था। पूर्व जन्म के कर्मों का उदय हुआ था।

ऐसी असहाय स्थिति में कल्पांत कर रही थी। उसी वक्त आकाश में देव का सिंहासन कांप उठा। देव ने इस दुखी घटना को देखा। दूसरें देवदेवियों की सती को सहायता करने को कहा।

रुदन करती हुई कलावती के पास देवदेवियों ने आकर नमन किया और बालक को अपने हाथ में लिया। पास में ही एक छोटा महल बनाया और

छोटी सोने की मचिया बनाकर बालक को बिठाकर झूला डालने लगे। कलावती मंत्र का जाप करे जा रही थी और दोनों शेष बचे हुए हाथ साफ-सफाई के लिए पानी में डूबोये। सतीत्व और नवकार मंत्र के प्रताप से दोनों हाथ बेरखें सहित पूर्वानुसार हो गये। राजाजी के पास दोनों कलाइयाँ बेरखे सहित पहुँच गई। उसी समय देव सुगुनिये का वेश लेकर राजाजी के पास पहुँचे। राजाजी को प्रणाम करके उनके सामने बैठकर उदासीनता का कारण पूछा। राजाजी ने हकीकत बताई। सुगुनिये ने दोनों कलाईयाँ देखकर कहा, ये बेरखें तो कलावती के दो भाई जयसेन और विजय ने भेजे हैं। उनके नाम बेरखों पर हैं। यह जानकर राजा को बड़ा दुःख पहुँचा। कलावती को खोजने के लिये सेवकों को दौड़ाया, और जो सेवक कलावती को जंगल में छोड़ आये थे, उनके साथ कलावती के पास पहुँच गया। सोने के झूले पर बालक के साथ झूलती कलावती को देखकर वह बहुत हर्षित हुआ।

कलावती भी पति को आते देखकर बहुत हर्षित हुई। सामने से दौड़कर आते हुए पति के हाथ में पुत्र को रख दिया।

श्री महावीर स्वामी विचरण कर रहे थे, उनके पास जाकर राजा-रानी ने किन कर्मों के कारण हाथ कटे हैं, उसका कारण पूछा। भगवान ने पूर्वभव बताया कि 'तू कलावती पूर्वभव में राजा की कन्या थी और राजा का जीव एक तोते का था। उसके पंख तूने काट डाले थे जिससे पिंजरे से वह उड न जाय। इस कारण से तोते के जीव राजाजी ने तेरी कलाइयाँ कटवा डाली।' अब कलावती को संसार में रहना योग्य न लगा। 'आपकी वस्तु आप संभालो' कहकर राजाजी को पुत्र सौंप दिया और प्रभु के पास जाकर संयम ग्रहण कर लिया। शील के प्रभाव से उत्तम संयम पालकर मुक्ति पाई।

●

दीन दुःखी तथा अशक्त वगैरह जीवों के प्रति दयापूर्वक दुख दूर करने की वृत्ति, वह है करुणा।

४१

अषाढाभूति

कमल सुविभूति तथा जशोदा के पुत्र अषाढाभूति...। उन्होंने ग्यारहवें में वर्ष में धर्मरुचि गुरु से दीक्षा ली। अषाढाभूति महा विद्वान अणगार थे। विद्या के बल से उन्हें कई लब्धियाँ प्राप्त हुई थी। एक लब्धि के बल से वे अलग अलग रूप धर सकते थे।

एक बार वे एक नट के यहाँ भिक्षा लेने पधारें। नट ने घर पर मोदक बनाये थे वह अर्पण किये। उपाश्रय पर जाकर गोचरी का उपयोग किया। मोदक स्वादिष्ट और सुगंध की महक से भरपूर थे। अषाढाभूति दुबारा दूसरा रूप धर कर नट के यहाँ से मोदक की भिक्षा माँग लाये। मोदक के उपयोग से जीभ में स्वाद बस गया था इसलिए वे दुबारा रूप बदलकर नट के यहाँ मोदक की भिक्षा के लिये गये। नट चतुर था। वह इस बात को समझ गया कि 'एक ही साधू भिन्न भिन्न रूप धर कर मोदक की भिक्षा ले जाता है। साधू है बहुत ही चतुर। उसकी रूप बदलने की कला दाद देने योग्य है। यदि यह साधु अपना बन जाये तो इसके द्वारा बहुत ही धन कमा सकते हैं।' ऐसा सोचकर नट ने अपनी दोनों लड़किया, जिनका नाम भुवनसुंदरी तथा जयसुंदरी था - उन्हें समझाया कि कुछ भी करके इस मुनि को भरमा लो। पिता से ऐसी छूट पाकर नौजवान दोनों लड़कियों ने साधु के दुबारा आने पर नखरें इशारे करके मुनि को मोहांध बनाया और कहा, 'अरे नवजवान! घर घर भिक्षा के लिये क्यों भटक रहे हो? यहाँ ही रह जाओ। यह युवा काया आपको सौंप देंगे।' मुनि चित्त से भ्रष्ट तो हुए ही थे, विषयविलास भोगने के लिए तैयार हुए।

अषाढाभूति ने गुरु के पास जाकर गुरु आज्ञा लेकर जलदी वापस आऊँगा यूं कहा, उपाश्रय पर पहुँचकर गुरु को सब बात बताई और कहा, 'घर घर भिक्षा माँगना मुझसे नहीं होगा। यह चारित्र पालना अब मेरे लिये मुश्किल है, दो नटिनी मैंने देखी है, अब उनके साथ संसार के भोग भोगने हैं। इसलिए अब मुझे छुट्टी दे दो, मैं सिर्फ आप से छुट्टी लेने आया हूँ।'

गुरुने खूब समझाया, 'नारी के मोह में तूं ऐसा अपयश देनेवाला कार्य क्यों कर रहा है? यह नारियाँ तूझे दुर्गति में धकेल देगी। वे नीच और कपट

की खान है।' वगैरह बोध दिया लेकिन मोहांध हुए अषाढाभूति ने गुरुजी की बात न मानी और उन्हें ओघा सौंप दिया। नट के घर आकर दोनों नट पुत्रीओं के साथ ब्याह किया और संसारी बने एवं सुंदर नाटक खेलने लगे।

एक बार राजसभा में 'राष्ट्रपाल और भरतेश्वर वैभव' नाटक खेलने गये लेकिन कुछ कारणवश राजा ने खास अन्य कार्य होने से नाटक बंद रखा और अषाढाभूति घर लौटे।

अषाढाभूति जलदी वापस लौटनेवाले नहीं है यूं जानकर दोनों स्त्रीयाँ माँस-मदिरा का सेवन करके होश खोकर अश्लीलतापूर्वक पलंग में सो रही थी। मुँह पर मक्खियाँ भिनभिना रही थी, क्योंकि अयोग्य भक्षण के कारण दोनों को उल्टियाँ हो गई थी। ऐसी दशा में दोनों स्त्रीयों को देखकर अषाढाभूति की आत्मा जल उठी, वे सोचने लगे, 'अरे रे! ऐसी स्त्रीयों के मोह में मैंने दीक्षा छोडी? धिक्कार है मुझे! मुझे यह संसार छोड़ देना चाहिये। दुबारा गुरुजी के पास जाकर दीक्षा स्वीकार करनी ही चाहिये।' दोनों स्त्रीयों को अपनी दीक्षा की इच्छा कहकर कदम उठाये लेकिन दोनो स्त्रीयों ने दामन पकड़कर उनकी भरणपोषण की जिम्मेदारी पूर्ण करने के बाद जाओ - ऐसा आग्रह किया। इससे उनकी बात स्वीकार करके वे योग्य समय पर राजसभा में नाटक करने गये।

५०० राजकुमारों के साथ उन्होंने भरतेश्वर का नाटक हूबहू खेलना शुरु किया, नाटक में वे एकाकार हो गये और भरत महाराज की भाँति दर्पण भवन में अंगूठी सरक जाते अनित्य भावना में डूब गये और नटरूप में ही अषाढभूति को ५०० राजकुमारों के साथ केवलज्ञान प्राप्त हो गया हो - ऐसा अभिनय करके गुरु के पास आये। श्वसुर को राजा से धन दिलाया और अषाढाभूति वापिस गुरु के पास पधारकर चारित्र लेकर कठिन व्रत पालकर, पाप की आलोचना, अनशन करके कालक्रमानुसार मोक्ष को पधारे।

हो मेरे नमन आपको, दुःख काटनेवालेष,
हो मेरे नमन आपको, भूमि शोभित करनेवाले,
हो मेरे नमन आपको, आप देवाधिदेवा,
हो मेरे नमन आपको, संसृति काल जैसा।

४२ श्री सती सुभद्रा

वसंतपुर नगर में जिनदास नामक एक मंत्री थे। उसे तत्त्व मालिनी नामक धर्मनिष्ठ पत्नी थी, उसकी कोख से सुभद्रा का जन्म हुआ था।

सुभद्रा ने उच्च शिक्षण प्राप्त करके जैन धर्म के तत्त्वज्ञान का संपूर्ण अभ्यास किया, जिससे वह जैन धर्मानुरागी तो थी ही लेकिन दृढ श्रद्धालु भी बनीं।

वयस्क होते ही पिता ने योग्य वर ढूंढने की मेहनत की। जैसी पुत्री धर्म की ज्ञाता है वैसा ही धर्मी वर उसे मिले ऐसी उसकी इच्छा थी।

चंपानगरी से आये एक बुद्धदास ने सुभद्रा के रूप गुण के बखान सुने तय किया कि शादी करूं तो सुभद्रा से ही। परंतु वह जैन धर्मी न था। सुभद्रा जैन धर्मी से ही शादी करना चाह रही थी इसलिए बुद्धदास ने जैन धर्म के आचार विचार और क्रियाकांड ऊपर ऊपर से सीख लिये और कपटी श्रावक बन गया।

जीनदास ने इस बुद्धदास को जैन क्रियाकांड करते हुए देखा और सुभद्रा के लिये योग्य वर है ऐसा समझकर बुद्धदास के साथ सुभद्रा का ब्याह कर दिया। सुभद्रा बुद्धदास के साथ ससुराल आ गई।

कुछ ही समय में सुभद्रा समझ गई कि बुद्धदास और यह कुटुम्ब जैन धर्मी नहीं है, लेकिन वह लाचार थी। ब्याह हो चुका था संसार निभाना ही रहा और वह पारिवारिक कर्तव्य ठीक तरह से निभा कर समय मिलते ही धर्मध्यान करती। परंतु उसकी सास को यह सब पसंद न था इसलिये वह सुभद्रा के दोष ढूंढती फिरती थी।

एक बार एक तपस्वी साधू महाराज सुभद्रा के दरवाजे पर गोचरी के लिए पधारें। ऋषिमुनि का मुख देखकर सुभद्रा को खयाल आया कि मुनि की आँख में तिनका पड़ा हुआ था और आँख से खून बह रहा था। सुभद्रा को करुणा ऊपजी। कैसे भी करके मुनि की आँख से तिनका निकालना चाहिये - ऐसे सद्भाव से अपनी जीभ से मुनि की आँख से तिनका निकालने का प्रयत्न किया। यों करते हुए अपने ललाट का टीका साधु के ललाट पर लग गया। साधु धर्मलाभ देकर वापस लौटे लेकिन लौटते हुए मुनि के भाल पर

टीका देखकर सास क्रुद्ध हो गई। बहु को न कहे जाय ऐसे शब्द कहे और पुत्र बुद्धदास को उकसाया कि 'तेरी बहु तो कुलटा है। उसने साधु के साथ काला कारनामा किया है।'

सुभद्रा के सिर पर कलंक आया। उसका पति भी उसका पक्ष लेकर कुछ बोलता नहीं है। निर्दोष साधू और अपने पर लगे हुए कलंक को दूर करने के लिये सुभद्रा ने अन्नजल का त्याग किया।

सती पर आये हुए अपार दुख देखकर शासन देवता ने सती को सहायता करने का तय किया। और चंपानगरी के चारों दरवाजे बंद कर दिये। इससे चंपानगरी में हाहाकार मचा। दरवाजे खोलने के लिये नगरजनों एवं राजा के सुभटों(सैनिकों)ने कड़ी मेहनत की। दरवाजे खुलते नहीं थे जिससे उसके द्वार तोड़ डालने का हुक्म राजा ने सुभटों को दिया। वे भी दरवाजे न तोड़ सकें। राजा तथा प्रजा दोनों ही चिंता में पड गये।

कुछ समय के बाद आकाशवाणी हुई कि 'जो सती होगी वह कच्चे सूत के तार से आटा छानने की चलनी से कुए से जल निकालकर दरवाजे पर छिडकेगी तो दरवाजा खुलेगा।'

ऐसी आकाशवाणी सुनकर चंपानगरी की सेठानियाँ, राजा की रानियाँ 'मैं सती, मैं सती' - ऐसा मानकर कुँए मे से जल निकालने के लिए चलनी को कच्चा सूत बांधकर बारी बारी से मेहनत करने लगी। परंतु कोई इस प्रकार जल न निकाल सका। वे सब नीचा मुँह करके लौट पड़ी।

राजा ने नगरी में ढिंढोरा पिटवाया कि जो इस प्रकार से दरवाजा खोलेगा उसे बहुत धन दिया जायेगा। सुभद्रा ने यह ढिंढोरा सुना और द्वार खोलने जाने के लिए सासुमाँ की आज्ञा माँगी। सास ने क्रोध से कहा, 'बैठ... बैठ... चुपचाप। तेरे चरित्र कहाँ अनजाने हैं! अब पूरे गाँव में हँसी उडानी है क्या?

लेकिन दृढ मन से सासु का कहना अनसूना करके नवकार गिनते गिनते वह कुँए के पास गई। कच्चे सूत की डोरी से चलनी को बाँधा। कुँए में डाली और गाँव लोगों के आश्चर्य के बीच चलनी भरके जल निकाला। उस समय देवताओं ने आकाश से फूलों की वृष्टि की। सुभद्रा ने बारी बारी से एक एक द्वार पर जल छिड़का और तीन दरवाजे खोलें तथा गाँव में अन्य कोई सती हो तो आये और चौथा द्वार खोले ऐसा आह्वान दिया पर कोई आगे न बढ़ा

(अन्य ग्रन्थों में ऐसी बात है कि. मेरे जैसी कोई अन्य सती होगी वह दरवाजा खोलेगी - ऐसा कहकर वह दरवाजा बंद रखा और कथा लिखनेवाले के समय भी बंद था) सुभद्राने चौथे द्वार पर जाकर 'हे परमात्मा मेरी लाज रखना, मैंने पति के सिवा अन्य किसी के बारे में मन से भी न सोचा हो या अपवित्र न बनी हो तो जल छिडकते ही द्वार खुल जाय' - ऐसे भाव से पानी छिड़का और चौथा दरवाजा भी खुल गया।

सुभद्रा के ससुरालवाले, सास, श्वसुर, उसका भरथार वगैरह सुभद्रा सती की क्षमा माँगकर बोले, 'धन्य सती, धन्य! तेरे जैसी सती वाकई मैं गाँव में अन्य कोई नहीं है।'

साधु की आँख में से करूणा भाव से तिनका किस प्रकार निकाला था वह सुभद्रा ने समझाया और सबको समकित बनाने के एकमात्र आशय से जैनधर्म समझाया। अंत में सती सुभद्रा ने दीक्षा लेली। कर्मों का नाश करके केवलज्ञान पाकर मुक्तिपुरी में पधारीं।

●

कोई किसिका नहीं...

कोई किसीका नहीं है रे, कोई किसीका नहीं है,
नाहक रहे हैं सब मथ मथ रे... कोई...१
मनने माना था ये सब मेरे,
जान ले प्राणी नहीं कोई तेरे,
ज्ञानी गये हैं सब कह कर रे... कोई...२
यह पुत्र है, यह मेरा तात है,
यह मेरी नारी, और यह मेरी माता है,
नाहक रहे हैं सब मथ मथ रे... कोई...३
कोई गया, कोई जायेगा,
कोई नहीं यहाँ रह पायेगा,
क्यों रहे सब यहाँ लचलच रे... कोई...४
इसलिये स्वीकारो शरण सच्ची
दुनिया की छोड़ो शरण कच्ची
भजो वीतराग को मथ मथ रे... कोई...५

४३ वंकचूल

विराट देश में पेढालपुर नामक नगर है, वहाँ श्री चूल नामक राजा राज्य करता था। उसकी सुमंगला नामक पटरानी थी। उसे पुष्पचूल और पुष्पचूला नामक पुत्र एवं पुत्री थे।

पुष्पचूल युवा हुआ तब जुआरी व व्यसनी बना। जुआरी होने के कारण पैसों की जरूरत पड़ने से वह छोटी-मोटी चोरी करने लगा। कर्म संयोग से पैर में दोष होने से थोड़ा सा टेढ़ा (वक्र) चलता था, जिसे लोग उसे वंकचूल कहते थे। उसके ऐसे आचरण से मातापिता उब गये। सुधरने के कोई लक्षण न दिखने पर उन्होंने वंकचूल को देशनिकाला दे दिया।

वंकचूल अपनी स्त्री तथा बहिन को लेकर जंगल की एक पल्ली में गया जहाँ भील-भीलनी रहते थे और गाँव गाँव में चोरी व डकैती धंधा करते थे। कुछ ही दिनों के बाद पल्लीपति की मृत्यु होने से योग्यता के कारण वंकचूल पल्लीपति बन बैठा।

एक बार ज्ञानतुंग नामक आचार्य महाराजा अपने कई साधुओं के साथ वहाँ आ पहुँचे। चौमासे का समय आ पहुँचा और बरसात होने लगी। इससे आचार्य भगवंत ने वहीं चौमासा व्यतीत करने का सोचा और वंकचूल को वहाँ चौमासे में ठहरने के लिए पूछा। वंकचूल ने वे कोई भी प्रकार का उपदेश किसीको न दे तो रहने के लिए हाँ कह दी।

उस पल्ली में आचार्य महाराज ने चौमासा व्यतीत किया। चौमासे के दौरान वे स्वाध्याय, अध्ययन और तीव्र तपश्चर्या करते रहे और तपश्चर्या करते रहे और निश्चित किये अनुसार वहाँ रहते किसीको उपदेश भी न दिया। चौमासा पूर्ण होने पर आचार्य महाराज वंकचूल को कहने लगे, 'हे पल्लीपति वंकचूल! चौमासा गया। अब हम विहार करेंगे।' ऐसा सुनकर वंकचूल कई परिवारों के साथ उन्हें बिदा देने उनके पीछे चला। चलते चलते वंकचूल की सीमा पूर्ण हुई। आचार्यश्री ने पूछा यह किसकी सीमा है? वंकचूल बोला, 'यह मेरी सीमा नहीं है।' आचार्य महाराज ने कहा, 'हे महाभाग! हमने तेरे समाज में चौमासा बिताया। हम निरंतर स्वाध्याय-अध्ययन आदि करते रहे लेकिन तेरे समाज के किसीको भी, कभी भी उपदेश नहीं दिया है। अब जाते वक्त तुझे उपदेश देना है कि तूं कुछ अभिग्रह ग्रहण कर; व्रतपालन से प्राणी सुख प्राप्त करता है।

चौमासे के दौरान साधुओं के आचार-विचार देखकर वह कुछ नर्म पड़ा था, वह बिना कोई आनाकानी से नियम लेने को तैयार हो गया, 'हे भगवान! कुछ नियम

(व्रत VOW) दो।' इसलिए गुरु ने उसे चार नियम दिये।

१. अनजान फल खाना नहीं।
२. कौए का मांस भक्षण करना नहीं।
३. राजा की रानी तुझ पर प्रीतिवाली हो तो उसका संग करना नहीं और
४. किसी पर प्रहार करना हो तो सात कदम पीछे हटने के बाद प्रहार करना।

ये चार नियम ग्रहण करके, गुरु को प्रणाम करके वंकचूल वापस अपने समाज मे लौटा।

एक बार एक दूर के गाँव पर डकैती डालकर लौटते वक्त मार्ग भटक गये। तीन दिन तक जंगल में भटकते रहे। भूख प्यास से सब पीड़ित थे, वहाँ एक पेड़ पर सुंदर फल देखे। भूख लगी होने के कारण सबने फल खाये पर वंकचूल ने फल का नाम जानने का आग्रह रखा। फल का नाम कोई न कह सका। अनजान फल न खाने का उसने नियम लिया था। खानेवाले हरेक की मृत्यु हुई। वंकचूल फल न खाने से बच गया और रात को पल्ली में आकर सोचने लगा कि नियम पालन ने मुझे बच लिया।

एक दिन वंकचूल कोई कार्यवश दूसरे गाँव गया था। उस समय उसके दुश्मन नाटकवाले महल के पास आकर नाटक करने लगे और ललकार कर वंकचूल को बाहर आने के लिए कहने लगे। वंकचूल की बहिन पुष्पचूला महल में थी। उसने सोचा कि यहाँ वंकचूल नहीं है ऐसा जानकर दुश्मन समाज के कई लोगों को मार डालेंगे। इस कारण से वंकचूल का भेष पहिनकर असली वंकचूल जैसा अभिनय करते हुए वंकचूल की पत्नी सहित बाहर आकर नाटक देखा और नाटक पूर्ण होने पर नोटंकियों को दान भी दिया। नाटकवाले बिदा हुए। लम्बी रात्रि गुजर गई होने से निद्रा के कैफ के कारण वंकचूल के पुरुष भेष में ही पुष्पचूला और वंकचूल की पत्नी साथ सो गये। प्रभात की बेला में वंकचूल अपने महल में आया और अपनी स्त्री को परपुरुष के साथ सोती हुई देखकर क्रोधित हुआ। मारने के लिये खड्ग उठाया लेकिन शीघ्र ही उसे नियम याद आया, वह सात कदम पीछे हटा। पीछे हटते ही उठाया हुआ खड्ग दीवार से टकराया। आवाज से बहिन पुष्पचूला जाग उठी। 'भाई वंकचूल चिरकाल तक आयुष्यमान हो' कहती हुई पलंग से उठ खड़ी हुई। वंकचूल आश्चर्यचकित हुआ और पुरुषभेष धरने का कारण पूछा। बहिन ने नाटक की हकीकत कह सुनाई। वंकचूल परिस्थिति समझकर सोचने लगा... 'अरे पल भर में ही स्त्री और सगी बहिन की अपने हाथ से हत्या हो जाती लेकिन नियम के कारण असाधारण रूप से दोनों बच गये। स्वयं दो स्त्री हत्या के गुनाह से बच गया। वाह! मुनिराज वाह! वह गुरु के दिये हुए नियम की प्रशंसा करने लगा और मुनि निःसंशय महाज्ञानी थे - ऐसे विचार से मन ही मन

से गुरु की वंदना करने लगा।

एक रात्रि को वंकचूल एक वणिक के घर गया। वहाँ बाप-बेटा हिसाब-किताब की बात कर रहे थे। वहाँ से वह एक वेश्या के वहाँ गया, वेश्या कोढी के साथ भोग भोग रही थी। वहाँ से वह राजा के महल की दीवार फांदकर राजा के अंत:पुर में पहुँच गया। अंधेरे में रानी के शरीर पर उसका हाथ पड़ा। रानी जाग उठी और वंकचूल को देखकर उसके साथ भोग भोगने की इच्छा व्यक्त की। वंकचूल को कहने लगी, 'प्रिय! मेरे साथ भोग भुगत। मैं तुझे ढेर सारे रत्न तथा संपत्ति दूंगी।' वंकचूल ने रानी को कहा, 'आप तो मेरी माता समान हो।' ऐसा सुनते ही विरह की आग में जलती हुई रानी ने झूठा आरोप वंकचूल पर लगाकर चिल्लाने लगी। शोरशराबा सुनकर राजा ने सैनिकों ने आकर वंकचूल को पकड़ लिया और प्रात: राजाजी के समक्ष उपस्थित कर दिया। राजा के पूछने पर वंकचूल ने रात्रि की घटना कह दी। राजाजी ने रात्रि के समय दीवार के पीछे छुपकर रानी और वंकचूल के बीच का वार्तालाप सुना था। इस कारण से वंकचूल को छोड़ने के लिये हुक्म दिया और वंकचूल के सद्गुण से प्रसन्न होकर अपना सामंत बनाया। राजा अपनी स्त्री के करतूत जानता था सो जाहिर न किया क्योंकि उसकी अपनी ही इज्जत जाने का सवाल था। सुज्ञ मनुष्य अपने घर का स्वरूप किसीको कहता नहीं है।

राजा के उपदेश से, राजा का सामंत बनने के बाद वंकचूल अपना चोरी का धंधा छोड़कर सन्मार्ग पर चलने लगा।

एक बार राजा के आदेशानुसार बड़े बलवान् शत्रु के साथ लड़ने गए हुए वंकचूल गहरे वारों से जख़मी शरीर के साथ महल में आया। वैद्य औषध वगैरह देकर उसकी सुश्रुषा करते थे। लेकिन घावों की पीड़ा असह्य हो गई थी। राजा को इस वंकचूल की खूब गरज थी। उन्होंने गाँव में दाँडी पीटवाई कि 'जो इस वंकचूल को जीवित रखेगा उसे यथेच्छ दान देगा।' यह सुनकर एक वैद्य ने आकर कौए का माँस औषध के रूप में देने को कहा। वंकचूल ने कौए का माँस न खाने का अभिग्रह लिया हुआ था। सो वह किसी भी प्रकार से माँस खाने के लिए संमत न हुआ। राजा ने धर्मी जीव जिनदास नामक श्रावक को बुलाकर वंकचूल को समझाने का प्रयत्न किया। जिनदास आया, वंकचूल की इच्छा जानी। किसी भी प्रकार से वह अपना अभिग्रह छोड़े ऐसा नहीं है यह जानकर जिनदास ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा, 'हे मित्र! तुं अकेला ही है, सर्व पदार्थ अनित्य है। देह, कुटुम्ब, यौवन, संसार सब असार है - वगैरह धार्मिक वचन सुनाए।' अपनी मृत्यु नजदीक में जानकर वंकचूल ने चार शरण ग्रहण करके नवकार मंत्र का ध्यान धरते हुए मृत्यु पाई और बारहवें देवलोक में गया। कालानुसार वह मोक्ष पायेगा।

●

४४ कुबेरदत्ता

मथुरा नगरी...वहाँ एक प्रसिद्ध वेश्या रहती थी। रूपवती और वैभवशाली। नाम उसका था कुबेरसेना। कर्म योग से एक बार उसे गर्भ ठहर गया। वेश्यागृह की मालकिन बाई ने गर्भ गिरा देने के लिए कहा। कुबेरसेना संमत न हुई। 'बालक का जन्म होने पर कुछ सोचेंगे' ऐसा कहकर गर्भ न गिरवाया।

नौ मास पूर्ण होने पर कुबेरसेनाने जुड़वों को जन्म दिया। एक पुत्र और एक पुत्री। मालिकिन बाई तो हाथ धोकर पीछे ही पड़ गई। कूटनखाने में छोटे बालक पुसाने योग्य नहीं है - ऐसा समझाकर दोनों बालकों को कपड़े में लपेटकर, उनके नाम की अंगूठी पहिनाई और संदूक मे रखकर नदी में बहता छोड़ दिया। संदूक तैरता तैरता शोरीपुरी नगरी के किनारे पर पहुँचा। उसे दो व्यक्तिओं ने संदूक देखा, नदी से बाहर निकाला। संदूक खोला और उसमें दो बालक देखें। दोनों प्रसन्न हुए। जरूरत अनुसार एक भाईने बालक एवं दूसरे ने बालिका को रख लिया। बालक की अंगूठी पर उसका नाम कुबेरदत्त अंकित था। बालिका की अंगूठी पर कुबेरदत्ता अंकित था। उसी अनुसार उन्होंने बच्चों के नाम रख दिये।

दोनों वयस्क हुए। एक दूसरे को पहिचानते नहीं है। माँ-बाप ने दोनों का ब्याह कर दिया और कर्म के संयोग से भाई-बहिन पतिपत्नी बन गये।

एक बार दोनों सोकटाबाजी खेल रहे थे, कुबेरदत्त की अंगूठी उछलकर कुबेरदत्ता की गोद में जा गिरी। कुबेरदत्ता अंगूठी देखकर सोच में डूब गई। दोनों अंगूठी एक जैसी ही हैं। एक ही कारीगर ने गढ़ी हैं। दोनों एक साथ बनी है ऐसा दिखता है। नजदीक से देखने पर पता चला कि दोनों के रूप व आकृति सब एक से ही लगते हैं। क्या दोनों भाई-बहिन तो नहीं होगे! दोनों ने अपने माँ-बाप को पूछा तब स्पष्टीकरण हुआ कि 'तुम दोनों एक पेटी में से निकले थे।'

कुबेरदत्ता समझ गई कि यह मेरा सगा भाई है। भाई के साथ ब्याह हुआ यह ठीक न हुआ। बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वैराग्य उत्पन्न हुआ। फलस्वरूप पाप धोने के लिए कुबेरदत्ता दीक्षा लेकर साध्वी बनी। तप, जप करके आत्म साधना करने लगी।

कुबेरदत्तने जाना कि मैंने बहिन के साथ ब्याह किया है, अब इस नगरी में मैं क्या मुँह दिखाऊँ! इसलिये माँ-बाप की आज्ञा लेकर वह परदेश गया। भाग्य योग्य से घूमते घूमते वह मथुरा नगरी मे आ पहुँचा और कुबेरसेना वेश्या के यहाँ ठहरा। कुबेरसेना उसकी सगी माँ थी पर वह जानता नहीं था। अनजाने में ही सगी माँ के साथ भोग भोगे। भोगविलास में कुछ काल व्यतीत हुआ। कुबेरसेना ने एक बालक को जन्म दिया। बालक का पिता कुबेरदत्त ही था।

दूसरी ओर दीक्षा लेनेवाली कुबेरदत्ता को अवधिज्ञान हुआ। उसने ज्ञान द्वारा देखा कि भाई कहाँ है? देखते ही उसे भयंकर दुःख हुआ, 'अरे रे! मेरा भाई अपनी सगी माँ के साथ भोगविलास कर रहा है, कर्म की गति न्यारी है, मेरी आत्मा चीख रही है - समझा आ माता और भाई को।'

कुबेरदत्ता साध्वीजी कठिन विहार करते करते मथुरा पधारीं। भाई और माता को प्रतिबोध करने की संमति लेकर बालक को झुलाते हुए १८ प्रकार की सगाई लोरी गाते हुए सुनाई। कुबेरदत्त-संसारी सगाई का भाई तथा कुबेरसेना - संसारी सगाई की कुबेरदत्ता की माता को होश आया कि माँ-बेटे ने भोगविलास किया है। पापका भयंकर पश्चात्ताप दोनों को हुआ। दोनों ने दीक्षा ली। ज्ञान की उपासना तथा तप-जप करते रहे और तीनों ने अपनी आत्मा का उद्धार किया।

●

मान की सज्झाय

रे जीव मान न कीजिये, मान से विनय न आवे रे;
विनय बिन विद्या नहीं, तो कैसे समकित पावे रे..... रे जीव ०१
समकित बिन चारित्र नहीं, चारित्र बिन नहीं मुक्ति रे..... रे जीव ०२
मुक्ति के सुख है शाश्वत, उसकी कैसे पायें जुक्ति रे..... रे जीव ०३
विनय बड़ा संसार में, गुण में अधिकारी रे;
मान से गुण जाय गल, प्राणी देख देख विचार रे..... रे जीव ०४
मान किया जो रावण ने तो उसे राम ने हणा रे;
दुर्योधन गर्व करके अंत मे सब ही हारा रे..... रे जीव ०५
सूके लकड़े समान, दुःखदायी वह खोटा रे;
उदयरत्न कहे मान को देना देशनिकाला रे..... रे जीव ०६

४५ नंदन मुनि

प्रभु महावीर का पच्चीसवाँ भव श्री नंदन मुनि। कैसा उत्कृष्ट चारित्र! अंत समय पर कैसी सुंदर आराधना करके देवलोक गये! शाश्वत - मोक्ष सुख पाने के लिए कैसा चरित्र पालना चाहिए उसका सुन्दर दृष्टान्त यह कहानी है।

प्रभु महावीर चौबीसवें भव में महाशुक्र देवलोक में थे। वहाँ से वे भरतखण्ड की छत्रा नामक नगरी में जितशत्रु राजा की भद्रा नामक रानी की कोख से नंदन नामक पुत्र हुए। वयस्क होते ही उन्हें राजगद्दी पर बिठाकर जितशत्रु राजा ने संसार से निर्वेद होकर दीक्षा ली। लोगों को आनंद उत्पन्न करानेवाले नंदन राजा समृद्धि से इन्द्र जैसे होकर यथाविधि पृथ्वी पर राज्य करने लगे। क्रमानुसार जन्म से चौबीस लाख वर्ष व्यति-क्रमित विरक्त होकर नंदन राजा ने पोट्टिलाचार्य से दीक्षा ली। निरंतर मास-उपवास करके अपने श्रामण्य को उत्कृष्ट स्थिति पर पहुँचाते हुए नंदन मुनि गुरु के साथ ग्राम, नगर और पुर वगैरह में विहार करने लगे। वे दोनों प्रकार के अपध्यान (आर्त, रौद्र) से और द्विविध बंधन (राग द्वेष) से वर्जित थे। तीन प्रकार के दण्ड (मन, वचन, काया), तीन प्रकार के गाख (ऋषि, रस, शाता) और तीन जाति के शल्य (माया, निदान, मिथ्यादर्शन) से रहित थे। चार कषायों को उन्होंने क्षीण कर डाले थे। चार संज्ञा से वर्जित थे। चार प्रकार की विकथा से रहित थे। चतुर्विध धर्म परायण में लीन थे। चार प्रकार के उपसर्गों में भी उनका धर्म उद्यम अस्खलित था; पंचविध महाव्रत में सदा उद्योगी थे और पंचविध काम (पांच इन्द्रियों के विषय) के सदा द्वेषी थे। प्रतिदिन पांच प्रकार के स्वाध्याय में आसक्त थे, पाँच प्रकार की समिति को धारण करते थे और पाँच इन्द्रियों को जीतनेवाले थे। षड् जीवनीकाय के रक्षक थे। सात भय स्थान से वर्जित थे, आठ मद के स्थान से विमुक्त थे। नवविध ब्रह्मचर्य की गुप्ति को पालते थे व दस प्रकार के यतिधर्म को धारण करते थे, सम्यक् प्रकार से एकादश अंग का अध्ययन करते थे। बारह प्रकार की रुचिवाले थे, दुःषह ऐसी परिषह की परम्परा को सहन करते थे। उन्हें किसी प्रकार की स्पृहा न थी। ऐसे उन नंदन मुनि ने एक लाख वर्ष तक मासक्षमण के पारणे से मासक्षमण का तप किया। उन महान तपस्वी मुनि ने अर्हंत भक्ति वगैरह बीस स्थानकों की आराधना से, मुश्किल से प्राप्त हो सके ऐसा तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया। इस भाँति मूल से ही निष्कलंक ऐसी साधुता का आचरण करके आयुष्य के अंत में उन्होंने इस प्रकार आराधना की।

'काल एवं विनय वगैरह जो आठ प्रकार का ज्ञानाचार कहा है, उसमें मुझे

जो कोई भी अतिचार लगा हो तो मन, वचन, काया से मैं उसकी निंदा करता हूँ। निःशंकित वगैरह जो आठ प्रकार के दर्शनाचार कहे है, उसमें जो कोई भी अतिचार हुआ हो तो उसे मैं मन, वचन काया से क्षमा माँग रहा हूँ, लोभ या मोह से मैंने प्राणियों की सूक्ष्म या बादर जो हिंसा की हो उसकी मन, वचन, काया से क्षमा माँगता हूँ। हास्य, भय, क्रोध एवं लोभ वगैरह से मैंने जो मृषा भाषण किया हो, उन सब की निंदा करता हूँ और उसका प्रायश्चित करता हूँ। रागद्वेष से थोड़ा कुछ अदत्त परद्रव्य लिया हो तो सर्व से क्षमा माँगता हूँ। पूर्व मैंने तिर्यंच सम्बन्धित, मनुष्य सम्बन्धित या देव सम्बन्धित मैथुन मन से, वचन से या काया से सेवन किया हो तो उसकी में त्रिविधता त्रिविधता से क्षमा माँगता हूँ। लोभ के दोष से धन धान्य एवं पशु वगैरह नाना प्रकार के परिग्रह मैंने पूर्वधारण किये हो उसे मन, वचन, काया से बोसराता हूँ। इन्द्रियों से पराभव पाकर मैंने रात्रि को चतुर्विध आहार किया हो उसकी मैं मन, वचन एवं काया से आलोचना करता हूँ। क्रोध, लोभ, राग, द्वेष कलह, चुगली, परनिंदा, अभ्याख्यान (कलंक लगाना) और अन्य कालचारित्राचार के दुष्ट आचरण किये हों उनकी मैं मन, वचन, काया से क्षमापना करता हूँ। बाह्य या अभ्यंतर तपस्या करते समय मुझे मन, वचन, काया से जो अतिचार लगे हो उसकी मैं मन, वचन, काया से निंदा करता हूँ। धर्म के अनुष्ठान में जो कुछ वीर्य स्खलित हुआ हो, उस वीर्याचार के अतिचार की मैं मन, वचन, काया से निंदा करता हूँ। मैंने किसीको पीटा हो, दुष्टवचन कहे हो, किसीका कुछ हर लिया हो अथवा किसीका अपकार किया हो तो मेरे सर्व मित्र या शत्रु, स्वजन या परजन हो वे सब मुझे क्षमा करना। मैं ही सर्व में समान बुद्धिवाला हूँ। तिर्यंचपन तिर्यंच, नारकीपन में नारकी, देवपन में देवता और मनुष्यपने में जो मनुष्यों को मैंने दुःखी किये हो, वे सब मुझे क्षमा करना। मैं आपसे क्षमा माँग रहा हूँ। अब मेरी उन सर्व से मैत्री है। जीवित, यौवन, लक्ष्मी, रूप और प्रिय समागम-ये सब वायु ने नचाये हुए समुद्र के तरंग जैसे चपल (चंचल) हैं। व्याधि-जन्म-जरा और मृत्यु से ग्रस्त बने प्राणियों को श्री जिनोदित धर्म के अलावा संसार में अन्य कोई शरण नहीं है। सर्व जीव स्वजन भी हुए हैं एवं परजन भी हुए हैं तो उनमें कौन किंचित लेकिन ममत्व का प्रतिबंध करे? प्राणी अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मृत्यु पाता है, अकेला ही सुख का अनुभव करता है और अकेले ही दुःख का अनुभव करता है। प्रथम तो आत्मा से यह शरीर अन्य है। धन धान्यादिक से भी अन्य है, बंधुओं से भी अन्य है और देह, धन, धान्य तथा बंधुओसे यह जीव अन्य (भिन्न) है, फिर भी वे मूर्ख जन वृथा मोह रखते है। चरबी, माँस, रुधिर, अस्थि, ग्रंथि, विष्टा और मूत्र से भरपूर यह अशुचि के स्थान रूप शरीर में कौन बुद्धिमान पुरुष मोह रखेगा? यह शरीर

किराये के मकान की तरह अंत में अवश्य छोड़ देना है। अर्थात् चाहे जैसा लालनपालन किया हो फिर भी नाशवंत है। धीर या कायर सभी प्राणियों को अवश्य मरना ही है। बुद्धिमान पुरुष को इस प्रकार मरना चाहिए जिससे दुबारा मरना ही न पड़े। मुझे अरिहंत प्रभु की शरण रहे, सिद्ध भगवंत की शरण रहे, साधुओं की शरण रहे और केवली भगवंत ने कहे धर्म की शरण रहे। मेरी माता श्री जिनधर्म, पिता गुरु, सहोदर साधू और साधर्मी मेरे बंधू हैं। उनके सिवा इस जगत् में सर्व मायाजाल समान है। श्री ऋषभदेव वगैरह इस चौबीसी में हो चुके तीर्थंकर और अन्य भरत, ऐरावत तथा महाविदेह क्षेत्र के अर्हंतो को मैं नमन करता हूँ। तीर्थंकरों को किये हुए नमस्कार प्राणियों को संसार छेदन के लिए व बोधि के लाभ के लिये होते हैं। मैं सिद्ध भगवंतो को नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने ध्यानरूप अग्नि से हजार भव के कर्मरूप कष्टों को जला डाला है। पंजविध आचार को पालनेवाले आचार्यों को मैं नमस्कार करता हूँ जो सदा भवच्छेद में उद्यत होकर प्रवचन (जैनशासन) को धारण करते हैं। जो सर्वश्रुत को धारण करते हैं और शिष्यों को पढ़ाते है तथा महात्मा उपाध्यायों को मैं नमस्कार करता हूँ। जो लाखों भव में बंधे हुए पाप को पलभर में नष्ट करते हैं, ऐस शीलवान व्रतधारी साधुओं को मैं नमस्कार करता हूँ, सावध योग तथा बाह्य और अभ्यंतर बला (बाह्य बला वस्त्र, पात्र आदि उपकरण एवं अभ्यंतर झंझाल विषय, कषाय आदि)को मैं हृदयपूर्वक मन, वचन, काया से छोड़ रहा हूँ। मैं यावज्जीव चतुर्विध आहार का त्याग करता हूँ और चरम उच्छ्वास के समय देह से भी क्षमापना करता हूँ।

दुष्कर्म की गर्हणा, प्राणियों की क्षमणा, शुभ भावना, चतुःशरण, नमस्कार स्मरण और अनशन अनुसार छः प्रकार की आराधना करके वे नंदनमुनि अपने धर्माचार्य, साधुओं और साध्वीओं से क्षमायाचना करने लगें। क्रमानुसार महामुनि ६० दिन तक का अनशन व्रत पालकर पच्चीस लाख वर्ष का आयुष्य पूर्ण करके, मृत्यु पाकर प्राणत नामक दसवें देवलोक में पुष्पोत्तर नामक विस्तारवालें विमान की उपपात शय्या में उत्पन्न हुए।

इस देवलोक में उन्होंने बीस सागरोपम का आयुष्य पूर्ण करके भरतक्षेत्र में देवानंदा की कुक्षी में आये। वहाँ सौधर्म देवलोक के इन्द्र ने सिद्धार्थ राजा की त्रिशला पटरानी जो उस वक्त गर्भिणी भी थी, उसके गर्भ का देवानंदा के गर्भ के साथ अदला-बदला किया। गर्भस्थिति पूर्ण होने पर त्रिशला देवीने सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र के गर्भ में आते ही घर में, नगर में और मांगल्य में धनादिक की वृद्धि हुई थी जिससे उसका नाम वर्धमान रखा गया। 'प्रभु बड़े उपसर्गों से भी कम्पायमान होंगे नहीं' ऐसा सोचकर इन्द्र ने जगत्पति का महावीर नाम रखा।

●

४६ सेवामूर्ति नंदिषेण

मगध देश के नंदी गाँव में सोमील नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी सोमीला नामक स्त्री थी। उन्हें नंदिषेण नामक पुत्र था। दुर्भाव्य से वह कुरूप था। बचपन में माता-पिता की मृत्यु हो गई, वह मामा के वहाँ जाकर रहा। वहाँ वह चारा-पानी वगैरह लाने का काम करता था। मामा की सात पुत्रियाँ थी। 'सात में से एक का ब्याह तेरे साथ करूंगा' - ऐसा मामा ने नंदिषेण को कहा, जिससे वह घर का काम करने लगा। एक के बाद एक सातों बेटियों ने कुरूप नंदिषेण से शादी करने का इनकार कर दिया और कहा, 'जोर-जुल्म से नंदीषेण से शादी करवाओगे तो मैं आत्महत्या करके मर जाउँगी,' - ऐसा हरेक पुत्री ने कहा। इससे यहाँ रहना ठीक नहीं है, ऐसा मानकर खेद व्यक्त करने लगा कि मेरे दुर्भाग्य से मेरे कर्मों का उदय हुआ है, इस प्रकार के जीवन जीने से मर जाना बेहतर है। सोच विचार करके वह मामा का घर छोड़कर रत्नपुर नामक नगर में गया। वहाँ स्त्री-पुरुष को भोग भुगतते हुए देखकर अपनी निंदा करते हुए कहने लगा, 'अहो! मैं कब ऐसा भाग्यवान् बनूंगा?' वह बन में जाकर आत्महत्या करने का विचार करने लगा। वहाँ कायोत्सर्ग करते हुए मुनि ने उसको अटकाया। उनको प्रणाम करके नंदिषेण ने अपने दुःख की सब कहानी मुनि को सुनाई।

मुनि ने ज्ञान से उसका भाव जानकर कहा, 'हे मुग्ध! ऐसा खोटा वैराग्य मत ला। मृत्यु से कोई भी मनुष्य करे हुए कर्मों से छूटता नहीं हैं। शुभ अथवा अशुभ जो कुछ कर्म किये हो वह भुगतने ही पड़ते हैं। श्री वीतराग परमात्मा भी धर्म से ही अपने पूर्व के पापकर्मों से छूटते है। इसलिए तू आजीवन शुद्ध धर्म ग्रहण कर जिससे तू अगले भव में सुखी हो पायेगा।'

ऐसे उपदेश से वैराग्य पाकर, नंदिषेण ने गुरु से दीक्षा व्रत ग्रहण किया और विनयपूर्वक अध्ययन करने लगे और धर्मशास्त्र में गीतार्थ बने। उन्होंने आजीवन छठ्ठ के पारणे से आयंबिल और लघु, वृद्ध या रोगवाले साधुओं की सेवा (वैयावच्च) करने के बाद ही भोजन करने का अभिग्रह लिया, और इस प्रकार वे नित्य वैयावच्च करने लगे।

नंदिषेण की इस उत्तम वैयावच्च को अवधिज्ञान से जानकर इन्द्र ने अपनी सभा में कहा, 'नंदिषेण जैसा वैयावच्च में निश्चल अन्य कोई मनुष्य नहीं है।' एक देव ने यह बात न मानी, नंदिषेण की परीक्षा करने का विचार किया और एक रोगी साधू का रूप लिया एवं अतिसारयुक्त देह बनाई और अन्य साधू का रूप लेकर नंदिषेण जहाँ ठहरे थे उस उपाश्रय पर पहुँचे। वहाँ नंदिषेण भिक्षा लाकर इर्यापथिकी

प्रतिक्रमी, पच्चखाण पालकर गोचरी (आहार) लेने बैठे। उस समय साधू के रूपवाले देव ने कहा : 'आपने साधू की वैयावच्च करने का नियम किया है, फिर भी आप ऐसा करे बिना अन्न क्यों ले रहे हो?' नंदिषेण के पूछने पर उसने बताया कि 'नगर के बाहर एक रोगी साधू है। उसे शुद्ध जल चाहिए।' यह सुनकर शुद्ध जल लेने के लिये नंदिषेण श्रावक के घर गये। जहाँ जहाँ वे जाते वहाँ वहाँ वह देव-साधू जल को अशुद्ध कर देते थे। बहुत ही भटकने बाद अपनी लब्धि के प्रताप से ज्यों त्यों शुद्ध जल प्राप्त करके उस देव-साधू के साथ नंदिषेण नगर से बाहर रोगी साधू के पास गये। उन्हें अतिसार से पीड़ित देखकर, 'उनकी वैयावच्च से मैं कृतार्थ हो जाऊँगा' ऐसा मानकर उन्हें जल से साफ किया लेकिन ज्यों ज्यों साफ करते जा रहे थे त्यों त्यों बहुत ही दुर्गंध निकलने लगी। इससे वे सोचने लगे, 'अहो! ऐसे भाग्यवान साधू फिर भी ऐसे रोगवाले हैं, राजा या रंक, यति या इन्द्र कोई भी कर्म से छूटता नहीं है।' वे साधू को कंधो पर बिठाकर पौषधशाला में ले जाने के लिये चल पड़े। रास्ते में ये देव-साधु नंदिषेण पर मलमूत्र करते है, इसकी बहुत ही दुर्गंध आने पर भी बुरा नहीं मानते हैं। वे धीमे चलते हैं तो कहते हैं, 'तू मुझे कब पहुँचायेगा? रास्ते में ही मेरी मौत हो जायेगी तो मेरी दुर्गति होगी। मैं आराधना भी नहीं कर सकूंगा।' वे तेज चलते है तो कहते हैं, 'इस प्रकार चलेगा तो मेरे प्राण ही निकल जायेंगे, तूंने यह कैसा अभिग्रह लिया है?' ऐसा सुनते सुनते भी नंदिषेण को साधू के प्रति जरा सी भी घृणा, क्रोध और द्वेष न हुआ और उन्हें उपाश्रय पर ले आये।

उपाश्रय पर लेजाकर सोचने लगे कि इन साधू को निरोगी कैसे किये जाये! मैं स्वयं योग्य चिकित्सा नहीं कर सकता हूँ ऐसा समझकर स्वयं अपनी निंदा करते हैं। देवसाधू ने जान लिया कि नंदिषेण वैयावच्च करने में मेरू समान निश्चल हैं। उन्होंने प्रकट होकर सर्व दुर्गंध समेट ली और नंदिषेण पर पुष्पवृष्टि करके कहा, 'हे मुनि! आपको धन्य है! इन्द्र ने वर्णन किया था उससे भी आप बढ़कर हो।' इस प्रकार कहकर क्षमायाचना कर देव स्वर्ग को लौट चले।

तत्पश्चात् नंदिषेण मुनि ने बारह हजार वर्ष तक तप किया और तप के अंत में अनशन प्रारंभ कर दिया। तपस्वी को वंदन करने अपनी स्त्री सहित चक्रवर्ती वहाँ आये। स्त्री की काया तथा अति सुकुमार और कोमल केश देखकर उन्होंने संकल्प किया कि 'मैं इस तप के प्रभाव से ऐसी कई स्त्रियों का वल्लभ बनूँ।' वहाँ से मृत्यु पाकर वे महाशुक्र देवलोक में देवता बने। वहाँ से वे सूर्यपुरी के अंधक वृष्णि की सुभद्रा नामक स्त्री के दसवें वासुदेव नामक पुत्र हुए। वहाँ नंदिषेण के भव के संकल्प के कारण बहत्तर हजार स्त्रियों से उनका ब्याह हुआ। वे ही श्रीकृष्ण के पिता वासुदेव !

●

४७ चंदनबाला

चंपापुरी का राजा दधिवाहन चेटक राजा की पुत्री - पद्मावती जिसका दूसरा नाम धारिणी - से ब्याहा था। उन्हें वसुमती नामक पुत्री थी। इस दधिवहन राजा को शतानिक राजा के साथ दुश्मनी थी। इस कारण शतानिक राजा ने अपने सैन्य के साथ चंपापुरी पर घेरा डाला। घोर युद्ध हुआ। हजारों मनुष्य उसमें मारे गये। दधिवाहन राजा राज्य छोड़कर भाग गया। शतानिक राजा ने चंपापुरी को लूंटा। एक सैनिक ने दधिवाहन राजा की रानी धारिणी और पुत्री वसुमती को पकड़ा।

सैनिक ने धारिणी को अपनी स्त्री बनने को कहा लेकिन धारिणी ने सैनिक को धूत्कार कर कहा : 'अरे! अधम और पापीष्ट ! तू यह क्या बोल रहा है? मैं परस्त्री हूँ, और परस्त्री लंम्पट तो मरकर नरक को जाता है।' सैनिक ने धर्मवचनों को अनसूने कर धारिणी का शील खण्डन करने के लिए उस पर बलात्कार करने लगा तो धारिणी ने प्राणत्याग कर दिया। माता के वियोग से वसुमती विलाप करने लगी। करुण आक्रंद करती हुई कहने लगी, 'हे माता! तू मेरे उपर का स्नेह छोड़कर चल दी! मुझे अब पराये हस्तों में जाना पड़ेगा, उससे तो अच्छा हो गया होता कि मेरी मृत्यु हो जाये।' इस प्रकार रोते-मचलते हुए मृत माता के चरण पकड़ लिये और 'तूझे मैं अब नहीं जाने दूंगी, मुझे छोड़कर नहीं जाने दूंगी' - ऐसा करुण विलाप करने लगी।

वसुमती के ऐसे रुदन-वचन सुनकर सैनिक ने कहा : 'हे मृगाक्षी! मैंने तूझे कोई भी कुवचन नहीं कहे हैं। तू ऐसा सोचना भी मत कि मैं तुझसे शादी करूंगा।' इस वसुमति को समझाकर धारिणी के शरीर पर से हार वगैरह मुख्य मुख्य अलंकार उतार लिये और वसुमति को अपने घर ले गया। घर पर उसकी स्त्री ने उसे कटु शब्दों में सुना दिया कि इस परस्त्री को आप घर लायें हो लेकिन मैं सहन नहीं करूंगी। इसे घर से बाहर निकाल दो। घर से ऐसे वचन सुनकर वसुमति को लेकर सैनिक बाजार में बेचने चला। बाजार में वसुमति का रूप देखकर कई खरीदनेवाले तैयार हो गये। गाँव की वेश्याएँ उसे खरीदना चाह रही थी। एक वेश्या ने वसुमति का हाथ पकड़ा तो राजकुमारीने उसको पूछा, 'तुम्हारा कुल कौनसा है और तुम करती क्या हो?' वेश्या ने उत्तर दिया, 'तूझे कुल से क्या काम? उत्तम वस्त्र और उत्तम भोजन हमारे यहां तूझे मिल जायेगा।' वसुमति समझ चुकी थी कि ये तो वेश्याएँ हैं। इससे उनके साथ जाने की मनाही कर दी। उसे ले जाने के लिये

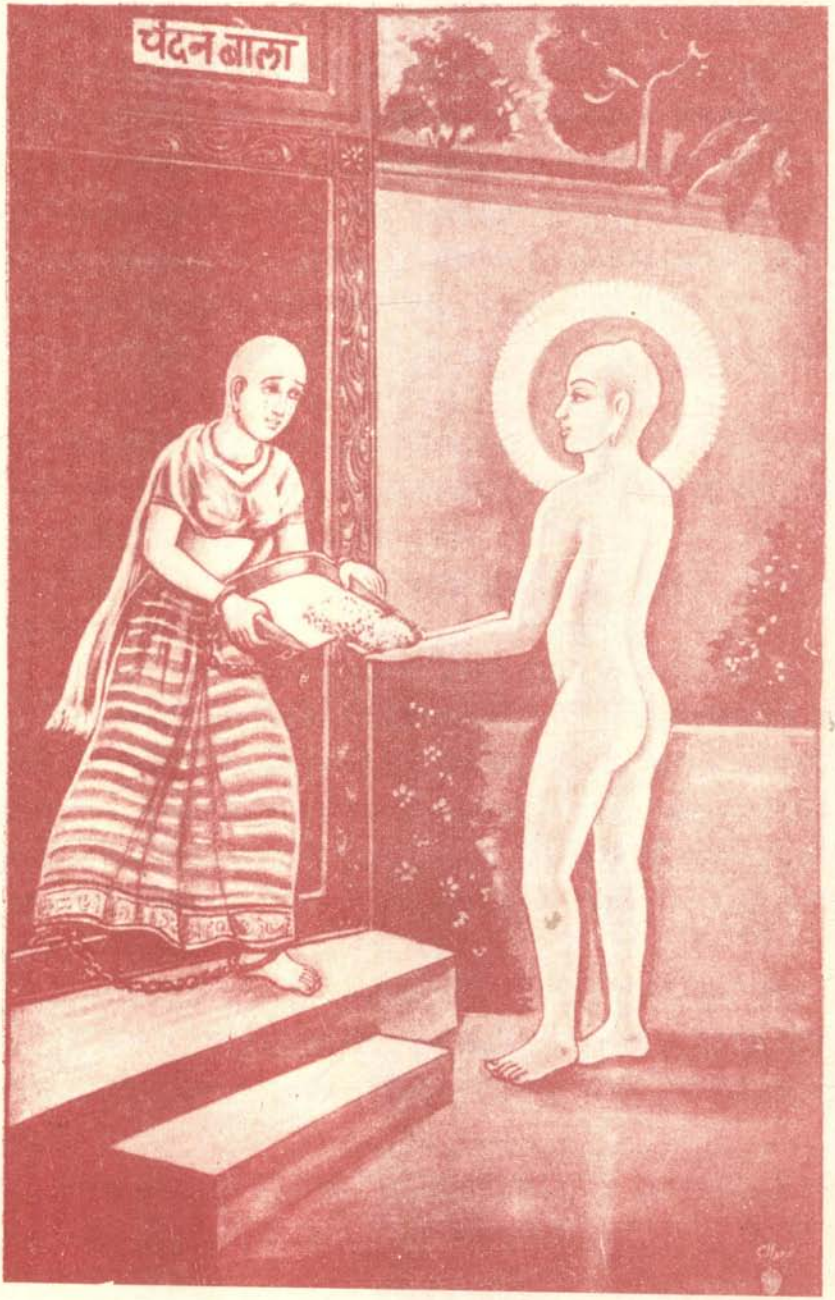
चंदन बोला

चंदनबाला

१. चंदनबाला (वसुमति) एक राजकुमारी थी। कर्मानुसार राज्य में लूंट चली। राजसी पिता की मृत्यु हुई, माता धारिणी और चंदना को कोई दुष्ट सैनिक उठा ले गये। कर्म की गति विषम है। पल में रंक, पल में राजा बनाने की ताकात कर्म में ही है। चंदना को भरेबाजार में बेच दी। खरीदनेवाले धर्मिष्ठ सेठ मिले। इतने कष्ट में भी सेठ को मिलकर चंदना को प्रसन्नता प्राप्त हुई। परंतु चंदना को देखकर मूला सेठानी बड़ी जलती रहती थी।

२. एक दिन की बात है। सेठ घर आये तो सेठानी घर पर न थी। चंदना पैर धुलाने लगी। उसके पानी में गिरते बालों को सेठ ने ऊँचे उठाये। यह दृश्य देखकर मूला सेठानी शंकित हुई। शंका का कोई कारण न था। सेठ उसे पुत्री समान मानते थे।

३. तो भी माता समान मूला उसे कष्ट में डालने का प्रयत्न करने लगी। निर्दोष बाला का सर मुण्डवा कर उसके हाथ-पैर में बेड़ी डालकर तहखाने में डलवा दिया। तीन दिन तक सेठ को जानकारी न मिली।

४. तीसरे दिन सेठ को जानकारी मिली तो वे बड़े दुःखी हुए। उसे बाहर निकालने के लिये गये। पहले उसे खाने के लिए सूप के कौने जितने ऊड़द के दलहन दिये।

५. तब चंदना बेचारी सोच रही थी कि कोई भिक्षुक मिले तो उसे भोजन कराऊँ। चंदना के अहोभाग्य से आज पांच माह और पच्चीस दिन के उपवासी परमात्मा महावीरदेव भोजन के समय चंदना के पास आये परंतु उसकी आँख में आंसु न देखकर लौट पड़े। पश्चात् चंदना की आँख में आंसु देखकर प्रभु पधारे और दलहन प्रभु को भिक्षा में दिये तब साडे बारह करोड़ सुवर्णमुद्रिकाओं की बारिश हुई।

धन्य सती चंदनबाला

वेश्याओं ने बल का आसरा लिया। उस समय वसुमति चित्त से बड़ा खेद व्यक्त करने लगी। उसके शील की रक्षा के लिये एक देव ने आकाश में से उतरकर वेश्या का नाक काट डाला। और उसकी काया काली तुंबी जैसी कर डाली। इससे वेश्याएँ घबराकर अपने घर चली गई। सुभट वसुमति को बेचने दूसरे बाजार में गया। वहाँ धनावह श्रेष्ठी उसे खरीदने आया। उसे राजकुमारी ने उन्हें पूछा, 'आपके घर में मुझे क्या करना होगा?' सेठ ने कहा, 'हमारे कुल में जिनदेवों की पूजा, साधुओं की सेवा, धर्मश्रवण, जीवदया पालन आदि होता हैं।' धनावह सेठ की ऐसी बात सुनकर हर्षित होकर वसुमति कहने लगी, 'हे सुभट! यदि तू मुझे बेचना चाहता हैं तो इस सेठ को बेचना।' सैनिक ने उसे सेठ को बेच दिया। सेठ वसुमति को घर ले गया। इस प्रकार राजपुत्री शुभ कर्म से भले घर पहुँची।

सेठ की स्त्री मूला उसे देखकर सोचने लगी। मेरा पति इसे स्त्री बनाकर रखने ले लिए लाया लगता है। इस समय तो उसको वह पुत्री कह रहा है, लेकिन पुरुष का मन कौन समझ सकता है?

धनावह सेठ ने वसुमति का नाम चंदनबाला रखा, जिससे वसुमति अब चंदनबाला नाम से पहचानी जाने लगी।

एक बार मूला सेठानी पड़ौसन के घर गई होगी। उतने में धनावह सेठ घर पर आये। उस समय चंदनबाला सेठ पिता को आसनपर बिठाकर विनयपूर्वक उनके चरण धोने लगी। उस वक्त मूला सेठानी घर पर आ गई। चंदनबाला के केशों की चोटी भूमि को छू रही थी तो सेठ ने उसे ऊंचे उठा रखा था। चंदनबाला को सेठ के चरण धोते देखकर सेठानी सोचने लगी कि सेठ किसी भी समय इसे अपनी स्त्री बना लेगा और मुझे निकाल देगा या विष देकर मार डालेगा। इसलिए विषबेल को पनपने से पहले ही काट देना चाहिये।

धनावह सेठ एक बार बाहरगाँव गये थे। उस समय मूला सेठानी ने चन्दनबाला का सर मुण्डवा डाला और पैर मे बेड़ी डालकर उसे तहखाने में छोड़कर ताला लगा दिया। वह अपने मन से संतोष मानने लगी, और सोचती रही कि सौतन को मारने में दोष कैसा?

तहखाने में पड़ी हुई चन्दनबाला सोचती है कि मेरे कर्म ही ऐसे है। नगर में से सैनिक ने मुझे पकड़ा। मार्ग में माता की मृत्यु हुई। जानवर की तरह बाजार में बिकना पड़ा लेकिन कुछ अच्छे भाग्य से वेश्या के यहाँ बिकने से बची। अब अंधेरे में भूखे-प्यासे रहना है। 'हे वीतराग! तेरी शरण है, यहाँ एकांत है, धर्मध्यान करूंगी' - ऐसा सोचते हुए वह नवकार मंत्र का जप करती रहती है। इस प्रकार

तीन दिन बीत चुके। उसके कई कर्मों का नाश हो चुका था।

धनावह श्रेष्ठी बाहरगाँव से लौटे। उन्होंने चन्दनबाला को देखा नहीं। जिससे उन्होंने पत्नी को पूछा, 'चन्दनबाला कहाँ गई है?' तब सेठानी ने कहा, 'वह तो लड़को के साथ घूमती-फिरती है।' इस प्रकार सच बात छुपायी। एक वृद्ध दासी ने सेठ को चुपके से आकर मूला तथा चन्दनबाला की सब हकीकत बतायी और दिखाया कि चन्दनबाला को कहाँ रखा गया है। धनावह सेठ ने स्वयं जाकर द्वार खोला। धनावह ने बेड़ी से बंधी हुई, सर मुण्डित और अश्रुभरी आँखोंवाली चन्दनबाला को देखा और ढाढ़स बंधाकर उसे स्वस्थ होने को कहा। उसे भूख से तृप्त करने के लिए रसोईघर में पडे हुए दलहन जाकर दिये और उसकी बेडी खोल सके ऐसे लुहार को लेने चल दिये।

चन्दनबाला सोचती है, 'कैसे कैसे नाटक मेरे जीवन में आये! मैं राजकुमारी - किन संयोगो से बजार में बिकी - कर्मयोग से कुलवान सेठ ने खरीदा। कैदी की भाँति बेड़ीयों के साथ तहखाने में कैद हुई - तीन दिन के उपवास हुए। अब पारणा हो सकता है पर कोई तपस्वी आये और अठ्ठम के पारणे पर उसे भोजन - भिक्षा देकर व्रत खोलूं तो आत्मा को आनंद होगा। कोई अतिथि आये, उसे देने के पश्चात् ही मैं भोजन करूंगी, अन्यथा खाऊँगी ही नहीं।'

यों विचार कर रही है, उतने में भिक्षा के लिए घूमते घूमते श्री वीर भगवान वहाँ आ पहुँचे। उनका अभिग्रह था कि 'यदि कोई स्त्री चौखट पर बैठी हो; उसका एक पैर घर के अन्दर और एक पैर घर के बाहर हो, जन्म से वह राजपुत्री हो पर दासत्व पाया हो, पाँव में बेड़ी पड़ी हो, सर मुण्डन किया गया हो व रुदन करती हो - ऐसी स्त्री अठ्ठम के पारणे पर सूप के कौने से यदि मुझे भिक्षा काल व्यतीत हो जाने के बाद दलहन मुझे भिक्षा में दे तो उससे मुझे पारणा करना है।'

ऐसे अभिग्रहवाले वीर प्रभु को पधारे देखकर प्रसन्न होकर वह कहने लगी; 'हे तीनों जगत के वंदनीय प्रभु! मेरे उपर प्रसन्न होकर, यह शुद्ध अन्न स्वीकार करके मुझे कृतार्थ करिए।' अपने अभिग्रह के १३ वचन में से १ वचन कम याने अभिग्रह के वचन सब तरह से पूर्ण हो रहे थे लेकिन एक रुदन की अपूर्णता देखकर प्रभु वापिस लौटने लगे। यह देखकर चन्दनबाला स्वयं को हीनभाग्य समझकर जोर से रुदन करने लगी। वीर भगवान ने रुदनध्वनि सुनकर अपना अभिग्रह पूर्ण हुआ माना और दलहन की भिक्षा का स्वीकार किया ही था कि तुरंत ही देवताओं ने आकर बारह करोड़ सुवर्णमुद्राओं की वृष्टि की। उसी समय चन्दनबाला की लोहे की बेड़ीयाँ टूट गई और उसके सुन्दर आभूषण बन गये। आकाश में देवदुंदुभि बजने

लगे।

देवदुंदुभी सुनकर नगरजन एकत्रित हुए। वहाँ का राजा शतानिक भी वहाँ आ पहुँचा। वहाँ देवकृत्य सुवर्णवृष्टि देखकर वह आश्चर्यचकित हो गया और बोला कि 'यह सर्व सुवर्ण इस चन्दनबाला का हो जाये।' इस प्रकार भगवंत ने पाँच माह और पच्चीस दिन बीतने पर पारणा किया।

चन्दनबाला बड़े हर्ष से बोली, 'आज मेरे महाभाग्य से मैंने प्रभु को पारणा करवाया; इसमें मूला सेठानी को भी धन्य हैं। वे मेरी माता समान हैं। मेरी माता धारिणी जो कार्य नहीं कर सकी वे सब मेरी ये मूलादेवी माता से सिद्ध हुआ है।' उसने धनावह सेठ को भी समझाया कि, 'मूलादेवी को कुछ कहना मत।' इससे मूला श्राविका बनी और चन्दनबाला का योग्य समान करने लगी।

महावीर प्रभु यहाँ से विहार कर गये। क्रमानुसार उनके सर्व कर्मों का क्षय हुआ और उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। प्रभु के पास आकर चन्दनबाला ने प्रभु को प्रणाम करके चारित्र की याचना की।

देवताओं ने दिया हुआ धन सात क्षेत्रों में खर्च करके उसने दीक्षा ली।

जिन्होंने चन्दनबाला से दीक्षा ली थी वह मृगावती एक बार भगवान की वाणी सुनने गई थी। भगवान की वाणी श्रवण करने के लिये सूर्य, चन्द्र भी पधारे थे। उनके उजाले के कारण मृगावती उपाश्रय पर बड़ी देर से पहुँची; रात्रि हो जाने के कारण चन्दनबाला ने उन्हें डाँटा।

मृगावती अपने पर लगे अतिचार के लिए आत्मा की निंदा करती हुई, 'अब ऐसा नहीं करूंगी' कहकर मिथ्या दुष्कृत्य देने लगी। आत्मनिंदा के उत्कृष्ट परिणाम स्वरूप उन्हें केवलज्ञान हुआ। उसी रात्री को मृगावती जो चन्दनबाला के पास ही खड़ी थी, उसने चन्दनबाला के समीप से जाता हुआ एक साँप देखा। उसने चन्दनबाला का हाथ उठाकर दूसरी और रखा। तब चन्दनबाला बोली, 'तुमने मेरा हाथ क्यों उठाया?' मृगावती ने उत्तर दिया, 'यहाँ से सर्प जा रहा था, जिससे मैंने आपका हाथ उठाकर दूसरी ओर रखा।' चन्दनबाला ने पूछा, 'रात्रि के घोर अंधकार में तुमने सर्प कैसे देखा?'

मृगावतीने कहा, 'ज्ञान से।' 'अहो हो! प्रतिपाति या अप्रतिपाति ज्ञान?' चन्दनबालाने पूछा। जवाब में मृगावतीने 'अप्रतिपाति ज्ञान' कहा। चन्दनबाला समझ गई कि मृगावती को केवलज्ञान हुआ है। उसने मृगावती से क्षमायाचना करके मिथ्या दुष्कृत्य टाला। इस कारण से चन्दनबाला ने भी केवलज्ञान पाया और दोनों ने मुक्ति पाई।

●

४८ श्री चिलाती पुत्र

एक यज्ञदेव नामक ब्राह्मण... क्षिति प्रतिष्ठित नगर में रहता था। वह हंमेशा जिनमत की निंदा करता था और स्वयं को पण्डित समझता। उसने जाहिर किया कि जो मुझे शास्त्रार्थ में जीतेगा उसका मैं शिष्य बनूंगा। समय बीतने पर एक बालसाधू ने उसको शास्त्रार्थ करने के लिए अपने गुरु के पास पधारने का निमंत्रण दिया। खुश होकर यज्ञदेव उस बालसाधू के साथ उनके गुरु के यहाँ गया। कुछ ही देर में वह हार गया और तय किये मुताबिक उन गुरु से दीक्षा ली। एक दिन शासनदेवी ने उससे कहा, 'जिस प्रकार चक्षुवाला मनुष्य भी प्रकाश के बगैर नहीं देख सकता, उसी प्रकार जीव ज्ञानी होने पर भी शुद्ध चारित्र के बिना मुक्ति नहीं पा सकता है।'

ऐसी वाणी सुनकर यज्ञदेव मुनि अन्य सर्व यतियों की भाँति शुद्ध चारित्र पालने लगे।

यज्ञदेव के साधू बनने के कारण उनकी स्त्री विरहवेदना न सह पाई, इसलिये यज्ञदेव को वश करने के लिए तप के पारणे के दिन यज्ञदेव पर जादू-टोना किया। यज्ञदेव का शरीर दूबला पड़ता गया और मृत्यु पाकर स्वर्ग को गया।

उसकी स्त्री भी यह दुःख सहन न कर पाई और ज्ञान होते ही वह भी दीक्षा ग्रहण करके स्वर्ग पधारी। लेकिन अपने-संसारीपने के पति ने भी साधुता ग्रहण की थी पर उसके उपर वशीकरण फेंका था - इसकी गुरु के पास जाकर आलोचना न की।

यज्ञदेव का जीव स्वर्ग से राजगृह नगर में धनसार्थवाह की चिलाती नामक दासी के उदर से पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम चिलाती पुत्र रखा गया।

यज्ञदेव की स्त्री का जीव भी स्वर्ग से चिलाती दासी की सेठानी याने धनसार्थवाह की स्त्री सुभद्रा की कोख से पांच पुत्रों के बाद छठ्ठी सुसुमा नामक पुत्री के रूप में उत्पन्न हुआ।

धनसार्थवाह ने अपनी पुत्री की रक्षा के लिए चिलाती पुत्र को रखा। सुसुमा और चिलातीपुत्र साथ साथ खेलते लेकिन कोई कारण से सुसुमा रोने लगती तो चिलातीपुत्र उसके गुप्तांग पर अपना हाथ रखता तो सुख पाकर

बाला सुसुमा रोना बंद कर देती।

कुछ समय पश्चात् श्रेष्ठी को इस बात की जानकारी मिली, उसने इस दासीपुत्र - चिलाती पुत्र को अपने घर से निकाल दिया।

यहाँ से निकाले जाने पर वह जंगल में गया। सिंहगुफा नामक भील लोगों के दल में पहुँचा। दलपति की मृत्यु होने पर उसका श्रेष्ठ शरीर वैभव देखकर भील लोगों ने उसे अपना स्वामी बनाया।

चिलाती पुत्र को सुसुमा की याद सताया करती थीं। विषय रूपी शस्त्र की पीड़ा बढ़ती चली, इस कारण अपने सर्व सेवकों को धन सार्थवाह के यहाँ चोरी करने ले गया एवं सेवकों को कहा, 'जो मालसामान हाथ लगे वह सर्व सेवकों का और सुसुमा को उठा लाये तो वह चिलातीपुत्र की।'

रात्रि के समय सब चोर धन वह सेठ के यहाँ पहुँचे। कई चोरों को देखकर धनसेठ अपने पाँच पुत्रों को लेकर प्राण बचाने के लिए एकांत में छुप गये।

सामना करनेवाला कोई न होने से चोरों ने खूब धन बटोर कर और चिलातीपुत्र सुसुमा को उठाकर बिदा हो गये। चोरों के घर से बाहर निकलते ही सेठ ने कुहराम मचा दिया; नगररक्षक वहाँ आ गये। उन्हें लेकर सेठने अपने पुत्रों के साथ चोंरो का पीछा किया। नगररक्षकों और सेठ को अपने पीछे पीछे आते देखकर चोरी का माल रास्ते के बीच फेंककर चोर अपने रास्ते पर दौड चले। अपने पीछे सेठ और पाँच पुत्रों को आता हुआ देखकर चिलातीपुत्र ने सुसुमा का वध कर डाला। चिलातीपुत्र ने तेज हथियार से उसका सर काटकर सिर हाथ में लिया व धड वहीं पर छोड़कर भाग गया। सेठ और पुत्रोंने सुसुमा का धड देखा। सेठ ने अपनी पुत्री और पांचों भाइयों ने अपनी बहिन की ऐसी क्रूरतार पूर्ण मृत्यु देखकर बड़ा विलाप किया और घर लौटते समय वीर प्रभु का उपदेश सुना। देशना सुनकर पाँच पुत्रों ने श्रावक धर्म स्वीकार और सेठ ने तो संयम ही ग्रहण कर लिया। उत्तमतापूर्वक संयम पालकरा तथा उग्र तपश्चर्या करके सेठ स्वर्ग पधारे।

चिलातीपुत्र सुसमा का सिर हाथ में लेकर तेज गति से मार्ग काट रहा था। उसका शरीर खून से भीगा हुआ था, सुसुमा की हत्या के कारण वह मानसिकरूप से टूट चुका था। वह अपने आप पर क्रोधित हो उठा था। मार्ग में उसने एक मुनिराज को कार्योत्सर्ग दशा में खड़े देखा। मुनि को देखकर

वह बोला, 'हे मुनिश्वर! जल्दी से मुझे धर्म कहिये, नहि तो मैं इस स्त्री के मस्तिष्क की भाँति आपका मस्तिष्क भी उडा दूंगा।' मुनि को कुछ पात्रता ठीक लगी इसलिये उन्होंने 'उपशम् - विवेक - संवर' इन तीन पदों का उच्चारण किया और आकाशमार्ग से चल दिये। चिलातीपुत्र ने सोचा, 'मुनि ने आकाशगामिनी विद्या का उच्चारण किया या कुछ मंत्राक्षर कहे? या कोई धर्ममंत्र कहा?' ऐसे चिंतन करके वह मुनि की जगह खड़ा रहा और वह उपशम विवेक और संवर इन तीन पदों का ध्यान धरने लगा। वह ध्यान के साथ सोचता गया कि इन तीन शब्दों का अर्थ क्या? सोचते सोचते उसने अपने आप उपशम् शब्द का अर्थ बिठाया कि 'उपशम याने क्रोध की उपशांति, क्रोध का त्याग।' ऐसा सोचकर उसने उपशम का आचरण किया। विवेक शब्द का अर्थ सोचते हुए उसने समझा कि 'करने योग्य हो, उसको ही ग्रहण करो और न करने योग्य हो उसका त्याग करना याने विवेक।' ऐसा समझकर उसने विवेक का ग्रहण किया। अन्त में संवर शब्द का अर्थ भी वह समझा कि 'पांच इन्द्रियों के जो तूफान हैं उसका निरोध अर्थात पांच को उनके विषय में जाती हुई रोकना उसका नाम है संवर।' यह अर्थ समझकर उसने संवर का भी प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार वह चिलातीपुत्र उस त्रिपदी का ध्यान धरते हुए वहीं कायोत्सर्ग में रहा। उसका पूरा शरीर खून से सराबोर था। उसकी गंध से सूई समान मुखवाली (शुचिमुखी) चींटीया आकर काटने लगी। काटते काटते असंख्य चींटियों ने उसका शरीर छलनी जैसा कर डाला। उसने सर्व वेदना धीरजपूर्वक सहन की और ढाई दिन में उसकी मृत्यु होते ही वह स्वर्ग में गया।

इस प्रकार सिर्फ ढाई दिन के उपशम्, विवेक और चींटियों के दंश की असह्य पीड़ा शांत चित्त से सहन करके चिलातीपुत्र स्वर्ग पधारे। ऐसे चिलाती को हमारे लाख लाख वंदन...

●

सूने होंगे, पूजे होंगे, निरखे होंगे किसी पल में,
हे जगतबंधु चित्त में धरे नहीं भक्ति से,
जन्मा प्रभु इस कारण से दुःखदायी संसार में,
हाँ भक्ति वह फलती नहीं है जो भाव शून्याचार में।

४९ श्री भद्रसेन

उज्जैन नगरी में एकबार साधू समुदाय के साथ पू. आचार्य श्री चंडरुद्रसुरिजी पधारे हैं। कर्मयोग से आचार्य श्री शिष्यों की स्खलना सहन न कर पाते थे। इससे उनको बड़ा दुःख पहुँचता और वे क्रोधित हो उठते। वे बराबर समझते थे कि यह क्रोध उनका महान दोष है लेकिन दूसरों का हित करते हुए उनका अपना चुक जाता है - यह भी समझते। ऐसे दोष के प्रसंग बार बार न हो इसलिए समुदाय से थोडी दूरी पर अपना निवास रखते थे। उस प्रकार वे अपने समुदाय से थोड़ी दूरी पर एकांत भाग मे जप-तप तथा ध्यान आदि धार्मिक प्रवृत्ति में बैठे थे।

उस दिन गाँव के पाँच-सात ऊच्छृंखल युवक मजाक मस्ती करते हुए वहाँ आ पहुँचे।

एक दूसरी की मज़ाक करते करते एक युवक ने दूसरे एक युवक भद्रसेन को दीक्षा लेने की बात कही। दूसरें नवयुवकों ने 'हाँ...हाँ.... मजे की बात तो यह है कि भद्रसेन तो है भी भद्रिक। व्रत-तप करता है। साधू-संतों की भक्ति करता है, वह साधू बन जाये तो अच्छा।' यों दिल्लगी-हँसी करते हुए वे साधू समुदाय के पास गये और कहा, 'साहब, यह भद्रसेन दीक्षा का भाविक है, इसका सिर मुण्ड डालिये।' यह सुनकर दूसरे युवक हँसीठठ्ठा करने लगे। साधू समझ गये कि ये युवक मात्र हाहाठीठी करने आये हैं। साधू समुदाय ने अंगूलिनिर्देश करते हुए कहा, 'भाइयों! हमारे गुरुदेव आचार्य श्री वहाँ बैठे हैं, वहाँ जाओ और उनको अपनी बात बताओ।'

इस प्रकार वह टोली आचार्य चंडरुद्रसूरिजी के पास पहुँची और कहा, 'महाराज! यह हमारा दोस्त भद्रसेन! इसने हाल ही में ब्याह किया है पर संसार का मोह नहीं है और भद्रिक है। उसे दीक्षा दीजिये।' अन्य मित्रों ने यह सुनकर हाहाहीही करके ताली बजाकर उसमें साथ दिया। आचार्यश्री समझ चुके थे कि ये युवकों की जवानी का यह विनोद-मज़ाक है।

उन्होंने भद्रसेन को पूछा, 'बोल भाई! तेरी क्या इच्छा है?' भद्रसेन ने मजाक में कहा, 'हा महाराज! बात सच है। संसार में कुछ सार नहीं है। मुझे दीक्षा दे दो तो मेरा कल्याण हो जायेगा और सुखपर्वक रह पाऊँगा।'

आचार्यश्री इन युवकों का विनोद समझ चुके थे लेकिन इन युवकों को पाठ तो पढ़ाना ही चाहियें – ऐसा मानकर भद्रसेन को कहा, 'अरे भाई! तूझे दीक्षा लेनी ही है न?' भद्रसेन दुबारा मज़ाक में ही कहता है, 'नहीं महाराज! पलटे व दूसरे! दीक्षा लेनी ही है, चलिये दे दीजिये, मैं तैयार हूँ।'

श्री चंडरुद्रसूरिजी एक दूसरे युवक को थोड़ी दूर पडी राख भरी मिट्टी की कुण्डी पडी है, वह लाने को कहते हैं। वह युवक ला देता है और भद्रसेन के सिर पर मलकर आचार्य उसके केश का लोच कर डालते हैं। आचार्यश्री का रोष उनकी मुखमुद्रा देखकर युवक स्तब्ध हो जाते हैं और यह तो लेने के देने पड़ गये यूं मानकर भागने की तैयारी की और भद्रसेन को कहा, 'चल, अब बहुत हो गया। साधुओं को अधिक सताने में सार नहीं है, चल हमारे साथ, दौड़... भाग चलें।'

भद्रसेन अब घर जाने के लिए ना कहता है, उसके हृदयमें निर्मल विचारणा जाग उठी है। वह मन ही मन कहता है कि 'मैं अब घर कैसे जाऊँ? मैंने स्वयं मांगकर व्रत स्वीकारा है। अब भागूंगा तो मेरी खानदानी लज्जित हो जायेगी, मेरा कुल कलंकित बनेगा। अब तो मैं विधिपूर्वक गुरुमहाराज से व्रत लेकर मेरी आत्मा का कल्याण साध लूँ। बिना कोई प्रयत्न से अचानक ऐसा उत्तम मार्ग मुझे मिल गया। मेरा तो श्रेय हो ही गया।' ऐसी निर्मल विचारणा करके वह आचार्यश्री को प्रार्थना करता है, 'भगवन! आपने कृपा करके मुझे संसारसागर से तारा है, आप विधिपूर्वक व्रत देकर मुझे कृतार्थ करिये। आपके मुझ पर अनंत उपकार हैं।

तत्पश्चात् चंडरुद्राचार्य उसे विधिपूर्वक व्रत ग्रहण कराते हैं और भद्रसेन अब भद्रसेन मुनि बनते हैं। नवदीक्षित अब सोचते हैं कि 'मेरे माँ-बाप, सास, ससुर, पत्नी वगैरह उज्जैन में ही हैं, वे यहाँ आकर मुझे दीक्षा छुड़वाकर घर ले जायेंगे, परंतु किसी भी प्रकार से मुझे यह धर्म छोड़ना नहीं है। इसलिए गुरुमहाराज को हाथ जोड़कर बिनती करते है, 'भगवान मेरा कुटुम्ब बड़ा है। उनको ये युवक खबर दे देंगे, वे मुझे यहाँ लेने आयेंगे और जबरदस्तीपूर्वक यहाँ से ले जाने का प्रयत्न करेंगे। आपका गच्छ तो बहु बड़ा है। सबके साथ शीघ्र विहार तो हो नहीं पायेगा। लेकिन हम दोनों को यहाँ से चुपके से चल देना चाहिये। सब विहार करेंगे तो लोग जान जायेंगे और हमें अटकायेंगे, तो कृपा करके जल्दी कीजिये।'

आचार्य महाराज नूतनदीक्षित मुनि को कहते है, 'तेरी बात सही है। तू एक बार रास्ता देखकर आ। इस समय शाम होने आई है। अंधेरा हो जायेगा तो रास्ते में तकलीफ खड़ी हो जायेगी।' भद्रसेन मुनि थोडा दूर जाकर रास्ता देख आते है और आचार्यश्री को लेकर उस स्थानक से निकल जाते है। गुरुमहाराज वृद्ध हैं और आँखे कमजोर हैं इसलिए भद्रसेन मुनि उन्हें कंधों पर बिठाकर जल्दी जल्दी विहार करते हैं। रास्ता उबडखाबड होने से कंधे पर बैठे महाराज को हिचकोले आते हैं और वे नूतन दीक्षित को बराबर चलने के लिए चेतावनी देते हैं। अंधेरा बढ़ते ही रास्ते के खड्डे में पाँव धंसने से भद्रसेन मुनि कइ बार सन्तुलन गँवा देते है। इस कारण आचार्य अति क्रोध से नूतन मुनि के सिर पर अपने डण्डे का वार करते हैं और कहते है, 'तूझे दिखता नहीं है। मेरी इस वृद्धावस्था में भी तू मुझे इस प्रकार दुःख दे रहा है।' डण्डे की चोट से और केश लोचन भी उसी दिन किया होने के कारण नूतन मुनि के गंजे सिर में से खून आने लगता है। इस अवस्था में भी नवदीक्षित भद्रसेन मुनि समता धर कर सोचते हैं, 'धिक्कार है मेरी आत्मा को, मैंने पूज्यश्री को प्रथम दिन पर ही, गुरुदेव को कष्ट पहुँचाया। मुझे धीरे धीरे संभल संभल कर चलना चाहिए था। ऐसे गुणरत्नसागर जैसे गुरुदेव को मैंने रोष का निमित्त दे दिया। इसमें उनका कोई दोष नहीं है। दोषित तो वाकई मैं हूँ।' इस प्रकार हृदय की सरलता से भद्रिक ऐसे नूतन मुनि अपने दोषों को देखकर शुभ ध्यान में डूब गये और क्षपक श्रेणी में पहुँचते ही उन्होंने केवलज्ञान पाया। केवलज्ञानी ऐसे भद्रसेन मुनि ज्ञान के योग से सब कुछ जान सकते हैं। अब वे कंधो पर बैठे गुरुमहाराज को थोडा सा भी धक्का न लगे उस प्रकार से सीधे रास्ते पर ले जाते हैं। आचार्य महाराज कहते है, 'अब तू वाकई में ठिकाने आ गया। संसार में ऐसा नियम है कि चमत्कार के बिना नमस्कार नहीं। डंडा पड़ा तो कैसा सीधा हो गया! क्यों बराबर है ना? अब सीधा चलने लगा न।'

नवदीक्षित कहते है, 'भगवान! यह सब आपकी कृपा का फल है। रास्ता बराबर जान सकता हूँ, यह आपश्री की मधु दृष्टि एव योग के ज्ञान से पता चल जाता है' यह सुनकर आचार्य चकित हो जाते हैं और सोचते है कि नूतन दीक्षित कहता है कि ज्ञान से जाना जा सकता हैं तो उसे कौन सा ज्ञान होगा? अब थोड़ा थोड़ा उजाला होने से गुरुमहाराज को शिष्य के सिर पर खून निकला हुआ दिखता है, वे पूछते है, 'मेरे डण्डे की चोट से तूझे यह

खून तो नहीं निकला है न?' लेकिन भद्रसेन मौन रहते हैं। आचार्य पूछते हैं, 'तूझे सीधा रास्ता दीखा तो कौनसे ज्ञानयोग से? रास्ते में तूझे कुछ स्खलना तो नहीं आई है ना? वत्स! क्या हकीकत है? वह तू मुझे यथार्थ बता दे।' भद्रसेन कहते हैं, 'प्रभु! आपकी कृपा से ही ज्ञान प्राप्त हुआ है। उसके योग से मैं मार्ग जान सका हूँ।' आचार्यश्री अधिक स्पष्टीकरण करने के लिए शिष्य को पूछते है, 'वत्स! वह ज्ञान प्रतिपाति या अप्रतिपाति?'

भद्रसेन कहते हैं, 'भगवन्! अप्रतिपाति।' यह सुनकर आचार्यश्री कंधे पर से उतरकर केवलज्ञानी शिष्य से क्षमा-याचना करते हैं। अपने ही क्रोध के कारण जो अपराध हुआ है उसका उन्हें तीव्र पश्चात्ताप होता है और मन ही मन सोचते हैं, 'हाँ... मैं केसा पापी? इतने वर्षों से संयम, तप, स्वाध्याय आदि की आराधना करने पर भी बात बात में क्रोध के आधीन होकर मुझे उग्र होने में देर नहीं लगती है। आचार्य के पद पर आरुढ़ होने के बावजूद मैं इतनी क्षमा नहीं रख सकता हूँ। मेरा संयम, मेरी आराधना वाकई निष्फल हो गई। इस नवदीक्षित को धन्य है। अभी कल ही जिसने संयम स्वीकार किया है, उसमें कैसी अद्‌भुत क्षमा! कैसी अप्रतिम सरलता! और कैसा उनका अनुपम समर्पण! मैं हीनभाग्य हूँ। यह पुण्यात्मा तैर गया, मैंने पाया है फिर भी डूब रहा हूँ।'

इस प्रकार सोचते और केवलज्ञानी नूतन मुनि से क्षमा माँगते हुए, अपनी आपकी लघुता और सरलतापूर्वक निंदा करते हुए, शुभ ध्यान में लीन होकर आचार्य महाराज ने भी क्षपक श्रेणी पर आरुढ़ होकर केवलज्ञान पाया। इस प्रकार गुरु व शिष्य दोनों ही तैर गये। धन्य सरलता! धन्य क्षमापना!

●

है प्रभु पास चिंतामणि

हे प्रभु पास चिंतामणि मेरो, मिल गयो हीरो,
मिट गयो फेरो, नाम जपु नित्य तेरो...प्रभु०
प्रीत लगी मेरी प्रभुजी से प्यारी, जैसे चंद चकोरो...प्रभु०
आनंदघन प्रभु चरन शरन है, बहोत दियो मुक्ति को डेरो...प्रभु०

'मेरे स्वामी परम सामर्थ्यवान है, मैं उनका सेवक हूँ।' ऐसा ख्याल न आये तब तक मनुष्य के दुःखो का बोज थोड़ा सा भी कम नहीं होता है।

५० श्री अषाढाचार्य

अषाढाचार्य नामक एक शिष्ट को धर्म सुनाते हैं। शिष्य मृत्युशय्या पर है। आचार्य श्री शिष्य को प्रतिज्ञा कराते हैं कि, वह देवलोक जायेगा तो वहाँ से आकर आचार्यश्री से बाते करेगा और ऊर्ध्वगति जाने का मार्ग दिखायेगा। नवकारमंत्र सुनते सुनते शिष्य ने सम्मति दे दी और कहा, 'जरूर आऊंगा और मिलूंगा।'

कालानुसार शिष्य देव बना लेकिन वहाँ के भोगविलास में ऐसा आसक्त हो गया कि वह गुरु के वचन भूल गया। यहाँ गुरुदेव राह देखते रहे।

इस प्रकार से आचार्य महाराज श्री अषाढाचार्य ने चार शिष्यों से देवलोक में से आकर उनसे बात करनी - ऐसे वचन लिये।

कई वर्ष राह देखने पर भी उनमें से आचार्य महाराज से बात करने के लिये या धर्म प्राप्त कराने के लिए कोई आया नहीं। आचार्य महाराज को धर्म पर अश्रद्धा जाग उठी। यह सब तूत है, पाप-पुण्य जैसा कुछ है ही नहीं। तप-चप सब बेकार के प्रयत्न हैं। यूं सोचते सोचते उन्होंने साधुता छोड़ी लेकिन साधू के भेष में ही रहते है और मन ही मन में संसारी बनने का तय करते हैं।

चोथा शिष्य - जो देवलोक में है, उसने अवधिज्ञान से यह बात जानकर गुरुजी को संसारी होने से बचाने का निश्चय किया और इसी कारण से पृथ्वी पर आकर गुरुजी के विचरण मार्ग पर आकर दैवी नाटक शुरू किया। गुरूजी नाटक देखने में लीन हुए। नाटक देखते देखतें छः माह खराब हो गये।

देव ने मायावी छः लड़के बनाये। वे आगे विहार करके जाते आचार्य महाराज को जंगल में मिले। एकांत जंगल में सुंदर आभूषण पहिने हुए लड़के मिलते ही अषाढा मुनि होश गँवा बैठे। लड़को के सब सोने और जवाहरात मढ़ें गहने उतार लिये और लड़कों को मार कर वहाँ से आगे बढ़े।

मार्ग मे एक साध्वीजी से मिले। साध्वीजी के साथ धर्मों की ठीकठीक बातें चलीं। सूरीजी बड़े शरमाये और महसूस करने लगे कि कुछ गलत हो गया है। आगे विहार करने पर एक बड़ा सैन्य मिला, जिसमें राजा-रानी वगैरह का बड़ा परिवार भी शामिल था।

जैन साधू की भेंट होने से सैन्य के आदमी गुरुजी के चारोंओर खड़े हो गये। गुरुजी को भिक्षा के लिए बिनती की। गुरुजी ने आनाकानी करके मना कर दिया। वे मनमें थोडा घबराये भी। अरेरे... मैंने कैसे पाप किये? मेरी सब पोल खुल जायेगी। राजा ने जरा जोर से झोली पकड़कर खींची, गहने उछलकर बाहर गिर पड़े। गुरुजी थर थर काम्पने लगे और अपना मुँह छिपाकर रोने लगे।

यह सैन्य राजा-रानी वगैरह चौथे शिष्य जो कि देव था, उसका नाटक था। गुरुजी का पश्चात्ताप देखकर वह प्रकट हुआ और गुरुजी को दैवी रिद्धि बताई तथा कहा, 'यह सब धर्म का प्रभाव है। आपकी कृपा का फल है। स्वर्ग, मोक्ष, पुण्य पाप सब सचमुच है ही।'

नया देव देवलोक में पैदा होता है तो वहाँ के नाटक-चेटक देखने में ही हजारों वर्ष निकल जाते हैं। इसलिये वह तुरंत वहाँ से पृथ्वी पर नहीं आ सकता है। इससे लोग समझते हैं कि देवलोक जैसा कुछ है ही नहीं। परंतु यह बात झूठी है। शास्त्र सच्चे हैं। पुण्य-पाप के फल बराबर मिलते हैं।

गुरुदेव श्री अषाढ़ाचार्य सब समझ गये। पश्चाताप करके पुनः दीक्षा ली। श्रद्धा में दृढ बने और उच्च भावना व्यक्त करते हुए उसी भव में मोक्ष पधारें।

●

मंगल दीप

दीप रे दीप मंगलिक दीप;
आरती उतारके बड़ा चिरंजीव...दीप०१
सुहावने घर पर्व दिवाली;
अंबर खेल रहा है अमरा जलाकर...दीप०२
दीपाल कहे उसे कुल प्रकाशक;
भाव से भगत कहे विघन निवारक...दीप०३
दीपाल कहे उसे इस कलिकाल में;
आरती उतारी राजा कुमारपाल ने...दीप०४
हमारे घर मंगलिक, तुम्हारे घर मंगलिक;
मंगलिक चतुर्विध संघ को हो...दीप०५

५१ प्रियंकर नृपति

अक्षपुर नामक नगर में अरिदमन नामक राजा राज्य करते था। उनका प्रियंकर नामक पुत्र था। दिग्यात्रा से वापस लौटते समय अपने गाँव के समीप आ पहुँचा। राजमहल और अपनी प्रिया को छोड़े लम्बा समय व्यतीत होने से प्रिया के दर्शन के अति उत्सुक राजा अपनी सेना को पीछे छोड़कर अकेले ही अपनी नगरी में आया। अपना नगर, ध्वज, तोरण वगैरह से सुशोभित होते देखकर अचंभित होकर राजमहल पर आया। वहाँ अपनी कांता को सर्व अलंकार से शोभित और सत्कार के लिए तैयार खड़ी देखकर राजा ने उसे पूछा कि, 'हे प्रिया! मेरे आने के समाचार तुम्हें किसने दिये?' उसने कहा, 'कीर्तिधर नामक मुनिराज ने आपके अकेले आने के समाचार दिये थे, जिससे आपके सम्मुख आने के लिये तैयार खड़ी हूँ।'

यह सुनकर अरिदमन राजा ने मुनिराज को बुलाकर पूछा कि, 'यदि आप ज्ञानी हैं तो मेरे मन की चिंता कहिये।' तब मुनि ने कहा, 'हे राजन्! आपने आपके मरण के बारे में सोचा है।' राजा ने पूछा, 'हे ज्ञानी! मेरी मृत्यु कब होगी?' मुनि बोले, 'आज से सातवें दिन बिजली गिरने से आपकी मृत्यु होगी और मरकर अशुचि मे बेइन्द्रिय कीड़े के रूप में उत्पन्न होंगे।' यह कहकर मुनिराज अपने उपाश्रय पर लौट चले।

राजा यह वृत्तांत सुनकर आकुल-व्याकुल हो गया। उसने अपने पुत्र प्रियंकर को बुलाकर कहा, 'हे वत्स, यदि मैं अशुचि में कीड़ा बनूं तो तू मुझे मार डालना।' प्रियंकर ने बात का स्वीकार किया। राजा सातवें दिन पुत्र, स्त्री एवं राज्यादिक की तीव्र मूर्छा से मरकर अशुचि मे कीड़े के रूप में उत्पन्न हुआ। उस वक्त प्रियंकर उसे मारने लगा, लेकिन वह जीव मरने के लिए राजी न हुआ। इस कारण प्रियंकर ने मुनि को पूछा : 'मुनिराज! क्या यह मेरे पिता का प्राण है जो दुःखी होते हुए भी मरण नहीं चाह रहा है?' तब मुनिराज बोले, 'विष्टा में बसे कीड़े तथा स्वर्ग में बसे इन्द्र की जीने की आंकाक्षा समान ही होती है; और उन दोनों को मृत्यु का भय भी समान ही होता है।'

यह सुनकर प्रियंकर राजा ने गुरु को पूछा कि 'किसीने न देखा, न सुना और न चाहा ऐसा परभवगमन सर्व जीव प्राप्त करते हैं। इस प्रकार मेरे पिता ने कीड़े का भव पाया, तो ऐसी गति में आत्मा किस उद्देश्य से जाती है?' गुरु ने कहा, 'जीवों को जिस प्रकार की लेश्या के परिणाम होते हैं वैसी गति उन्हें प्राप्त होती है।' राजा ने पूछा, 'हे स्वामी! लेश्या कितने प्रकार की होती है?' तब गुरु ने लेश्या का स्वरूप

कहा, 'हे राजा! आत्मा के परिणाम विशेष से लेश्याएँ छः प्रकार की हैं।'

'जो मनुष्य रौद्र ध्यानी हो, सदा क्रोधी हो, सर्व पर द्वेषी हो, धर्म से वर्जित हो, निर्दय हो और निरंतर बैर रखनेवाला हो उसे विशेष रूप से कृष्ण लेश्यावाला जानना।'

'नील लेश्यावाला जीव आलसी, मंदबुद्धि, स्त्री मे लुब्ध, दूसरों को ठगनेवाला, डरपोक और निरंतर अभिमानी होता है।'

'निरंतर शोक में मग्न, सदा रोषवाला, पर की निंदा करनेवाला, आत्मप्रशंसा करनेवाला, रणसंग्राम में भयंकर और दुःखी अवस्थावाले मनुष्य की कापोत लेश्या कही गई है।'

'विद्वान, करुणावान्, कार्याकार्य का विचार करनेवाला और लाभ या अलाभ में सदा आनंदी - ऐसे मनुष्य को पीत लेश्या की अधिकता होती है।'

'क्षमावान, निरंतर त्याग वृत्तिवाला, देवपूजा में तत्पर, व्रत को धारण करनेवाला पवित्र और सदा आनन्द में मग्न-ऐसा मनुष्य पद्म लेश्यावाला होता है।'

'रागं द्वेष से मुक्त, शोक और निंदा से रहित तथा परमात्म भाव को पाया मनुष्य शुक्ल लेश्यावाला कहलाता है।'

इन छः लेश्या में प्रथम तीन लेश्याएँ अशुभ हैं और अन्य तीन लेश्याएँ शुभ हैं, उन छः का विस्तार से स्वरूप परखने के लिए जामून खानेवाले तथा गाँव में डकैती डालने वाले छः छः पुरुष के दृष्टांत हैं जो इस प्रकार है :

किसी जंगल में क्षुधा से कृष हुए छः पुरुषों ने कल्पवृक्ष समान जामून का एक पेड़ देखा जिसकी शाखाएँ पके हुए और रसवाले जामून के बोझ से झुक गई थी। वे सब हर्षित होकर बोले, 'अरे! सही अवसर पर यह वृक्ष हमारे देखने में आया है, इसलिए अब स्वेच्छा से उसके फल खाकर हमारी क्षुधा को शांत करें।' उनमें से एक क्लिष्ट परिणामवाला था, वह बोला कि 'यह दुरारोह वृक्ष के उपर चढ़ने में जान का खतरा है, इसलिये क्यों न इसे तेज कुल्हाडी की धार से पेड को जड़ काट डाले और गिराकर आराम से सब फल खालें।' ऐसे परिणामी पुरुष को कृष्ण लेश्यवाला समझना चाहिये। तत्पश्चात् कुछ कोमल हृदयवाला बोला कि इस वृक्ष को काटने से हमें क्या अधिक लाभ? सिर्फ एक बड़ी शाखा तोड़कर उपर रहे फल खाए जाय।' ऐसे पुरुष नील लेश्या के परिणामवाले जानने चाहिये। इसके बाद तीसरा बोला, 'इतनी बड़ी शाखाको काटने की क्या जरूरत? उसकी एक प्रशाखा को ही काटी जाये।' ऐसे पुरुष को कापोत लेश्यावाला जानना चाहिये।

चौथा बोला, 'इन बेचारी छोटी शाखाओं को काटने से क्या लाभ है? सिर्फ उसके गुच्छ तोड़ने से अपना कार्य सिद्ध हो जायेगा।' ऐसा मनुष्य तेजोलेश्यावाला

जानना। पाँचवां बोला, 'गुच्छे को भी क्यों तोड़ा जाय? उसके उपर रहे भक्षण करने लायक फल ही तोड़कर क्षुधा को शांत कर ले।' ऐसे पुरुष को पद्मलेश्यावाला जानना चाहिये। अब छट्ठा बोला, 'हमें वृक्ष के उपर से फल तोड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है। हमारी क्षुधा पूर्ण करने जितने जामून तो पेड़ के नीचे ही गिरे हैं, उनसे ही प्राण का निर्वाह करना ही श्रेष्ठ है। इसलिये इस पेड़ के नीचे की डालियाँ तोड़ने का विचार किसलिए करना चाहिये?' इस छट्ठे मनुष्य की विचारशैलीवालों को शुक्ल लेश्या के परिणामवाले मानने।

इसी प्रकार डकैती डालनेवाले छः पुरुष का दृष्टांतः धनधान्यादिक से लुब्ध हुए चोरों के छः अधिपतियों ने एकत्र होकर एक गाँव में डाला डाला। उस समय उनमें से एक बोला, 'इस गाँव में मनुष्य, पशु, पुरुष, स्त्री, बालक, वृद्ध वगैरह जो कोई भी नज़र आये उन्हें मार देना चाहिये।' इस प्रकार कृष्णलेश्या के स्वभाववाले का वाक्य सुनकर दूसरा नील लेश्यावाला बोला कि, 'सिर्फ मनुष्यों को ही मारने चाहिये, पशुओं को मारने में हमें क्या लाभ?' उस समय तीसरा कापोतलेश्या का स्वभावधारी बोला, 'स्त्रियों को क्यों मारनी चाहिये? सिर्फ पुरुषों को ही मारा जाय।' तत्पश्चात् चौथा तेजोलेश्यावाला बोला, 'पुरुष में भी शस्त्ररहित को मारने से क्या लाभ? सिर्फ शस्त्रधारी को ही मारें।' यह सुनकर पाँचवा पद्मलेश्यावाला बोला कि, 'शस्त्रधारी में भी जो हमारे सामने युद्ध करने आये उसे ही मारें, अन्य निरपराधी को क्यों मारने चाहिये?' अंत में छट्ठा शुक्ललेश्यावाला बोला, 'अहो हो! तुम्हारे विचार कैसे खोटे हैं? एक तो द्रव्य का हरण करने आये हो और बेचारे प्राणियों को मारना चाहते हो? इसलिये यदि तुम द्रव्य ही लेने आये हो तो भले ही द्रव्य लो, लेकिन उनके प्राणों की रक्षा तो करो।' इस प्रकार छः लेश्यावाले जीव मरकर भिन्न भिन्न गति पाते हैं। कहा है कि 'कृष्ण लेश्यावाला नरकगति पाता है, नील लेश्यावाला थावरपना पाता है, कापोत लेश्यावाला तिर्यंच बनता है, पीत लेश्यावाला मनुष्यगति प्राप्त करता है, पद्म लेश्यावाला देवलोक में जाता है और शुक्ल लेश्यावाला जीव शाश्वत स्थान पाता है।' इस प्रकार भव्य जीवों को लेश्याओं के विचार जानने चाहिये।

गुरु के मुख से लेश्या के स्वरूप जानकर प्रियंकर राजा ने प्रतिबोध पाया और निरंतर शुभ लेश्या में रहकर श्रावक धर्म स्वीकारा और अंत में सद्गति पाई। अपने पिता अरिदमन राजा की कापोत लेश्या के परिणामवाली कथा सुनकर तथा उनकी कीड़े के रूप में उत्पत्ति की बात महाराज के मुख से जानकर प्रियंकर राजा भले धर्म को देनेवाली शुभ लेश्यावाला बना।

●

५२ — श्री कंडरीक - पुंडरीक —

जंबूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में पुंडरीकिणी नामक नगरी में महापद्म नामक राजा राज्य करता था। उसको दो पुत्र हुए। राजा को वैराग्य उत्पन्न होने से बड़े पुत्र पुंडरीक को राजगद्दी देकर अपने छोटे पुत्र कंडरीक को युवराज पदवी दी। स्वयं दीक्षा लेकर कर्मक्षय करके मुक्ति पाई।

एक बार कई साधू उस नगरी में पधारे। उनको वंदन करने दोनों भाई गये। उन्होंने मुनि को धर्म का तत्त्व समझाते हुए कहा, 'जो प्राणी इस संसार समुद्र में भटककर महा कष्ट से प्राप्त जहाज जैसे मनुष्य भव को बेकार गँवा देता है, उससे अधिक मूर्ख किसे कहा जाय?'

ऐसी देशना सुनकर दोनो भाई घर लौटे। पुंडरीक ने छोटे भाई को कहा, 'हे वत्स! इस राज्य को ग्रहण कर, मैं दीक्षा ग्रहण करूंगा।' कंडरीक बोला : 'हे भाई! संसार के दुःखो में मुझे क्यों धकेल रहे हो? मैं दीक्षा लूंगा।'

बड़े भाई ने कहा, 'हे भाई! युवावस्था में इन्द्रियों के समूह को नहीं जीता जा सकता है और परिषह भी सहन नहीं हो सकते हैं।' कंडरीक बोला, 'हे भाई! नरक के दुःख के सामने परिषह आदि का दुःख अधिक नहीं है, इसलिये मैं तो चारित्र ही ग्रहण करूंगा।' कंडरीक का ऐसा आग्रह देखकर पुंडरीक ने उसे अनुमति दे दी। उसने बड़े उत्साहपूर्वक दीक्षा ग्रहण की और पुंडरिक मंत्रियों के आग्रह से भावचारित्र धरकर घर में ही रहा। कंडरीक ऋषिने ग्यारह अंगो का अध्ययन किया, किन्तु रूखे-सूखे भोजन एवं कड़ा तप करने से उसके शरीर में कई रोग उत्पन्न हुए।

गुरु के साथ विहार करते करते कंडरीक मुनि अपने नगर पुंडरीकिणी में आये। पुंडरीक राजा उन्हें वंदन करने गये। सब साधुओं को वंदन किया लेकिन शरीर कृश हो जाने के कारण अपने भाई को न पहचाना। भाई सम्बन्धी समाचार गुरु को पूछे। गुरु ने कंडरीक मुनि को बताकर कहा, 'ये जो मेरे पास खडे है वे ही आपके भाई हैं।' राजा ने उन्हें प्रणाम किया, तत्पश्चात् उनका शरीर रोगग्रस्त जानकर गुरु से आज्ञा लेकर राजा शहर में ले गया। उन्हें अपनी वाहनशाला में रखकर अच्छे अच्छे राजऔषधों से उन्हें रोगरहित

कर दिया। वहाँ स्वादिष्ट भोजन करने से मुनि रसलोलुप बन गये इसलिए वहाँ से विहार करने की इच्छा न हुई। राजा उन्हें कहने लगा, 'हे पूज्य मुनि! आप तो अहर्निश विहार करनेवाले हो; द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारों प्रकार के प्रतिबंध से रहित हो। निरोगी होने से अब विहार करने के लिए आप उत्सुक बने होंगे। आपके निर्ग्रंथ को धन्य है। मैं अधन्य हूँ क्योंकि भोगरूपी कीचड़ में धँसा होने पर भी कदर्थना पाता हूँ।' इत्यादि वचन राजाने बार बार कहे। इसलिये कंडरीक मुनि लज्जित होकर विहार करके गुरु के पास गये।

बसंत ऋतु में अपनी अपनी स्त्रीयों के साथ क्रीडा करते हुए नगरजनों को देखकर एक दिन चारित्रावरणीय कर्मों का उदय होने से कुंडरिक का मन चारित्र से चलायमान हुआ। इस कारण गुरु की आज्ञा लिये बगैर वे पुंडरीकिणी नगरी के पास के एक उपवन में आये और पात्रा वगैरह उपकरण पेड़ की डाली पर लटकाकर कोमल हरे घास पर लोटने लगे। संयम से भ्रष्ट चित्तवाले हुए कंडरीक को उनकी धावमाता ने देखा। उसने नगर में जाकर पुंडरिक राजा को बात बताई। यह सुनकर राजा परिवार सहित वहाँ आया। उस वक्त कंडरीक को चिंतातुर, प्रमादी और भूमि कुरेदते हुए देखकर राजा ने कहा, 'हे सुखदुःख में समान भाववाले! हे निःस्पृह! हे निर्ग्रंथ! हे मुनि! आप पुण्यशाली हो और संयम पालन में धन्य हो।' इत्यादि अनेक प्रकार से उनकी प्रशंसा की लेकिन वे नीचा ही देखते रहे तथा कोई उत्तर भी न दिया। इसलिये राजा ने उसे संयम से भ्रष्ट बना और संयम की अनिष्टतावाला मानकर पूछा, 'हे मुनि! इस भाई के सामने क्यों नहीं देखते हो? प्रशस्त ध्यान में मग्न हो या अप्रशस्त ध्यान में? यदि अप्रशस्त ध्यान में आरूढ हुए हो तो आपने पूर्व में जबरदस्ती से बड़े भावराज्य को ग्रहण किया है। उसके चिह्नभूत पात्र आदि मुझे दीजिये और महा विरस फल देनेवाले राज्य के चिह्नभूत ये पट्टहस्ती वगैरह आप ग्रहण कीजिए।' राजा के इस प्रकार के वचन सुनकर कंडरीक बहुत हर्षित हुआ और शीघ्र ही पट्टहस्ती पर सवार होकर नगर में गया। साधूश्रेष्ठ ऐसे पुंडरीक ने विलाप करती रानियाँ आदि को सर्प की केंचुली की भाँति छोड़कर यति का भेष धर कर तुरंत ही वहाँ से विहार किया।

उसी दिन लम्बे अरसे से भूखा होने के कारण अपनी इच्छानुसार भक्षाभक्ष के विवेक बिना कंडरीक ने अनेक प्रकार का भोजन किया। कृश शरीर को

आहार न पचने व रात्रि के भोगविलास के जागरण के कारण शीघ्र ही रात्रि को विसूचिका व्याधि उत्पन्न हुई। पेट चढ़ गया। वायु बंद हो गई और तृषाकांत होने से अत्यंत पीड़ा होने लगी। 'अवसर पर व्रत का भंग करनेवाला है और अति पापी है' - ऐसा मानकर सेवक पुरुषों ने उसकी कोई चिकित्सा न की। उसने सोचा, 'यदि रात्रि बीत जाये तो प्रातःकाल में ही सब सेवकों को मार डालूँ।' इस प्रकार रौद्र ध्यान में ही उसी रात्रि को कंडरीक ने मृत्यु पायी और सातवें नरक में अप्रतिष्ठान नामक नरकावास में उत्पन्न हुआ।

पुंडरीक राजर्षि ने अपनी नगरी से चलते ही अभिग्रह लिया कि 'गुरु के पास जाकर व्रत ग्रहण करने के पश्चात् ही आहार लूंगा।' ऐसा अभिग्रह करके चलते हुए मार्ग में क्षुधा, तृषा वगैरह परिसह सहन करने पड़े। कोमल देह फिर भी खेद न पाया। दो दिन छट्ठी का तप होने पर गुरु के पास पहुँचकर चारित्र लिया। गुरु की आज्ञा लेकर पारणा करने के लिये गोचरी लेने गये। उसमें तुच्छ और रुखा आहार पाकर उन्होंने प्राणतृप्ति की। परंतु ऐसा तुच्छ आहार पहले कभी किया न था जिससे उन्हें अति तीव्र वेदना हुई। फिर भी आराधना करके पुंडरीक राजर्षि की मृत्यु हुई। और वे सर्वार्थ सिद्धि नामक विमान में उत्पन्न हुए। इसलिए ज्ञानियों ने कहा है कि 'हजार वर्ष तक विपुल संयम पालने पर भी यदि अंत में क्लिष्ट अध्यवसाय हो तो वे कंडरीक की भाँति सिद्धि पद नहीं पा सकते और कुछ समय के लिए भी चारित्र ग्रहण करके यथार्थ पालते हैं, वे पुंडरीक ऋषि की भाँति अपना कार्य सिद्ध कर लेते हैं।'

'इस प्रकार सम्यक् प्रकार से चारित्र पालकर कई जीव थोडे समय में मोक्षगति पातें हैं और अन्य अतिचार सहित लम्बे समय तक चारित्र पालते हैं फिर भी वे सिद्धि पद नहीं पा सकते।'

●

जो दृष्टि प्रभु दर्शन करे उस दृष्टि को भी धन्य है,
जो जीभ जिनवर को भजे उस जीभ को भी धन्य है,
पीवे मृद वाणी, सुधा, वे कर्ण को इस युग में धन्य हैं
तेरा नाम मंत्र विशद धरे, उस हृदय को नित्य धन्य है।

५३ श्री मम्मण शेठ

राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा राज्य करते थे। चेल्लणा नामक उनकी पटरानी थी। एक बार चौमासे की ऋतु में राजा-रानी झरोखे में बैठकर बरसते हुए बरसात में रात्रि के समय बातें कर रहे थे कि, मेरे राज्य में कोई दु:खी नहीं है। इतने में बिजली की चमक में रानी ने एक मनुष्य को नदी में बहती हुई लकड़ियों को खींच लाते हुए देखा और कहा, 'आप कहते हो कि मेरे राज्य में कोई दु:खी नहीं है, तो यह मनुष्य दु:खी नहीं होने पर भी ऐसा क्यों करता है?' राजा ने सिपाही भेजकर उस मनुष्य को बुलाकर पूछा, 'तूझे क्या दु:ख है कि ऐसी अंधेरी रात्रि में नदी में से लकड़ियाँ खींच रहा है?' उसने कहा, 'मेरे पास दो बैल हैं। उनमें से एक बैल का सींग अधूरा है। उसे पूर्ण करने के लिये उद्यम कर रहा हूँ।' श्रेणिक ने कहा, 'तूझे अच्छा बैल दिला दूं तो?' उसने कहा, 'एक बार मेरे बैल को देखो, बाद में दिलाने की बात करना।'

राजा ने उसका पता लिखकर कहा, 'मैं सुबह तेरे बैल देखने आऊँगा।' ऐसा कहकर उसे बिदा किया।

प्रात: होते ही राजा उसके घर गया। उसे तहखाने में लेजाकर बैल दिखाये। नगद सोने-हीरे,माणिक से मढ़े हुऐ बैल देखकर राजा आश्चर्यचकित होकर कहने लगा, 'तेरे घर में इतनी सारी संपत्ति होने पर भी तू ऐसे दरिद्रता के वेश में क्यों घूमता है? और ऐसा हलका कार्य क्यों करता है?' उसने कहा : 'यह संपत्ति कुछ ज्यादा नहीं है। ज्यादा द्रव्य कमाने मेरा पुत्र परदेश गया है।'

मुझे दूसरा कोई काम न सूझने पर यह कार्य करता हूँ। बैल के सींगों के उपर रत्न जड़ने के लिये संपत्ति इकठ्ठी करनी जरूरी है। इसलिये मैं ऐसे उद्यम करता हूँ। इसमें शर्म कैसी? मनुष्य को कोई न कोई उद्यम तो करना ही चाहिये न?' राजा ने पूछा, 'आपके उद्यम के हिसाब से आपका आहार भी अच्छा ही होगा?' उसने कहा, 'मैं तेल और चौरा खाता हूँ अन्य अनाज मुझे पचता ही नहीं है। दूसरों को अच्छा खाते देखकर मुझे चुभन होती है कि खाने-पीने में लोग बेकार में इतना सारा खर्च क्यों करते है?'

यह सुनकर राजा ने नाम पूछा। उसने कहा, 'मेरा नाम मम्मण सेठ है।' तत्पश्चात् राजा ने महल में जाकर मम्मण सेठ की सब हकीकत चेल्लणा को कही।

दूसरे दिन वीर प्रभु को वंदन करने श्रेणिक और चेल्लणा गये। मम्मण सेठ

की हकीकत कही और प्रभु को पूछा, 'मम्मण के पास ढ़ेर सारा द्रव्य होने पर भी ऐसा जीवन व्यापन क्यों करता है?' प्रभु ने कहा, 'पूर्वभव में उसके घर कोई मुनिराज भिक्षा के लिए आये। प्रभावना में पाया हुआ उत्तम महँकदार मोदक भिक्षा मे दिया। तत्पश्चात् किसीके कहने से उसे ज्ञात हुआ कि मोदक बहुत ही स्वादिष्ट था। यह सुनकर वह भिक्षा में दिया हुआ मोदक वापिस लेने गया। रास्ते में पश्चात्ताप करते हुए सोचता गया कि ऐसा अच्छा लड्डू बेकार में ही महाराज को अर्पण कर दिया। मुनि के पास पहुँचकर भिक्षा में दिया हुआ लड्डु उसने वापिस माँगा। मुनि ने कहा, 'धर्मलाभ देकर लिया हुआ हम कुछ भी लौटा नहीं सकते है।' परंतु उसने जिद करके लड्डू प्राप्त करने के लिए पात्रों की खींचातानी की। खींचातानी मे मोदक नीचे पड़ी हुई रेत में गिर पड़ा और धूल धूल हो गया। मुनि ने वहीं खड्डा खोदकर उसे जमीन में उतार दिया। इस कारण दिये हुए दान की निंदा व पश्चात्ताप करने से धने भोगांतराय व उपभोगांतराय कर्म बांधकर मम्मण सेठ के रूप में उत्पन्न हुआ है। व न ही कुछ खा अच्छा सकता है और न ही प्राप्त की हुई संपत्ति को भोग सकता है। फिर दान देने की तो बात ही क्या? वाकई में कृपण का धन कंकर समान है।

●

माया की सज्झाय

समकित का जानीये मूल, सत्य वचन साक्षात;
सचमें बसे समकित, माया में मिथ्यात्व रे,
प्राणी मत कर माया तनिक विश्वास...१
मुख मीठा जूठा मन, कूड कपट का रे कोट
जीभ तो जी जी करे, चित्त मांहे ताके चोट रे... प्राणी०२
आप गरज से दूर पडे, लेकिन न धरे विश्वास
मन से रखे अंतर, वह माया का है वास रे... प्राणी०३
जिससे बांधे प्रीत, उससे रहे प्रतिकूल;
मैल न छूटे मनका, यह माया मूल रे... प्राणी०४
तप किया माया करके, मित्र से रखा भेद;
मल्लि जिनेश्वर जानना तो पाओगे श्रीवेद रे... प्राणी०५
उदयरतन कहे सुनना जी, छोड़ो माया की बुद्ध;
मुक्तिपुरी जाने जैसा, यह मार्ग है शुद्ध रे... प्राणी०६

५४ पुणीआ श्रावक

एकबार व्याख्यान पूरा होने पर भगवान महावीर को राजा श्रेणिकने पूछा, 'भगवान! मुझे नरक का बंधन है तो नरक टले ऐसा कोई उपाय बताइये।'

प्रभु ने मार्ग बताया; उसमें एक रास्ता यह बताया कि, 'पुणीआ श्रावक के पास जाकर उसकी सामायिक का फल मोल ले आ। यह फल यदि मिल गया तो नरक नहीं जाना पड़ेगा।'

श्रेणिक महाराज को यह बात सरल लगी। उसने पुणीआ श्रावक को बुलाकर कहा, 'तेरी एक सामायिक का फल मुझे मोल दे दे। तुम कहो वह कीमत देने के लिये मैं तैयार हूँ। बोलो तुम्हें कितनी कीमत चाहिये?'

पुणीआ श्रावक ने कहा, 'नहीं, धार्मिक क्रिया का फल इस प्रकार बेच नहीं सकते, और उसकी क्या कीमत लगाई जाय उसका भी मुझे ख्याल नहीं है; लेकिन जिसने आपको सामायिक का फल मोल लेने को कहा है, उसे ही उसकी कीमत पूछो।'

महाराजा श्रेणिक ने भगवान के पास जाकर श्रावक का जवाब सुनाया और बिनती की कि, इस श्रावक की सामायिक की कीमत कितनी लगाई जाय वह प्रभु, मुझे वह बताइये। तब भगवान ने बताया; 'तेरा समग्र राज्य और ऋद्धि दे दे तो भी की उसकी कीमत भरपाई नहीं हो सकती, सिर्फ उसकी दलाली ही चुकाई जा सकती है, कीमत तो बाकी ही रहेगी।' दूसरी रीत से समझाते हुए कहा, कोई अश्व खरीदी के लिये जाये, उसकी लगाम की किंमत जितनी तेरी समग्र राजऋद्धि गिनी जाय और अश्व की कीमत तो बाकी ही रहेगी, उसी प्रकार पुणीआ श्रावक की सामायिक अमूल्य है। उसकी कीमत नहीं आँकी जा सकती।' यह सुनकर राजा श्रेणिक निराश हुए लेकिन पुणीआ श्रावक की सामायिक की प्रशंसा करने लगे।

अब इस पुणीआ श्रावक का जीवन कैसा था वह देखे :

पुणीआ श्रावक प्रभु महावीर का यथार्थ भक्त था। वीर की वाणी सुनकर उसने सर्व परिग्रहों का त्याग किया था। आजिवीका चलाने के लिए रूई की पूनियाँ बनाकर बेचता व उसमें से मिलते दो आने से संतोष पाता। लाभांतराय के उदय से उसे ज्यादा कुछ मिलता था। वह और उसकी स्त्री दोनों ही स्वामी

वाच्छल करने हेतु एकांतर उपवास करते थे। दो की रसोई बनती और बाहर के एक को भोजन कराते। एक को उपवास करना पड़ता था। दोनों साथ बैठकर सामायिक करते थे। अपनी स्थिति में संतोष मानकर सुखपूर्वक रहते थे। एक दिन सामायिक में चित्त स्थिर न रहने से श्रावक ने अपनी स्त्री को पूछा, 'क्यों! आज सामायिक में चित्त स्थिर रहता नहीं है। उसका कारण क्या? तुम कुछ अदत्त या अनीति का द्रव्य लाई हो?'

श्राविका ने सोचकर कहा, 'मार्ग में गोहरे पड़े थे वह लायी थी। दूसरा कुछ लाई नहीं हूँ।' पुणीआ श्रावक बोला, 'मार्ग में गिरी हुई चीज हम कैसे ले सकते है? वह तो राजद्रव्य गिना जाता है। सो गोहरे वापिस मार्ग पर फेंक देना और अब दुबारा ऐसी कोई चीज रास्ते पर से उठा मत लाना। हमें बेहक्क का कुछ भी नहीं चाहियें।'

धन्य पुणीआ श्रावक... जिसके बखान भगवान महावीर ने स्वमुख से किये।

●

कन्या

प्यार के समुद्र जैसा मीठा झायका छोड़कर कोमल कली पराये घर पहुँच गई। लेकिन किरतार ने उसके कलेजे में अबीज समर्पण-कला भरी थी।

उबलती दाल में अपना स्वत्व गँवाकर दाल का स्वामीत्व पानेवाले नमक की भाँति सबके साथ मीठास से घुलमिल गई। परायों को अपना बनाया। अनजाने को आत्मीय बनाया। समर्पण के द्वारा पिता का कुल दीपाया और सेवा द्वारा पति के कुल को हँसाया।

और इस प्रकार सेवा की नदी सर्वत्र बहायी। सास-ससुर, देवर, ननंद, हृदय में से उसने माता, पिता और भाई-बहिन के स्नेह का झरना बहाकर, सबकी लाड़ली बन गई।

अपने सुख को टालकर सबका सुख चाहा। ताने-मर्मवचन सुनकर भी सबको प्रसन्न रखा.... तो उसे सास-ससुर के स्नेह का सिरछत्र मिला। स्वामिनी - हृदयस्वामिनी बन गई व संसार ने उसे 'कुललक्ष्मी' कहकर बिरदाया।

औ...र इसी कारण प्रभु को भी उसकी कोख में बालक बनकर अवतार धरने का मन हुआ।

कन्या को भाँति स्नेह का झरना बहायें।

५५ सुदर्शन सेठ

सुदर्शन सेठ पक्के शील संपन्न होने के कारण बड़े प्रसिद्ध थे। शील का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए मुख्यत: इस पुण्यात्मा का नाम लिया जाता है। श्री सुदर्शन जिस प्रसंग के योग से ख्याति प्राप्त कर सके वह प्रसंग सामान्य श्रेणि का नहीं है। प्रारंभ से लेकर अंत तक सुदर्शन सेठ ने जो दृढ़ता बताई है, सदाचार के सेवन में थोड़ी सी भी ढील नहीं छोड़ी है, उसे यदि बराबर से विचारा जाये तो समझ में आयेगा कि भौतिक अनुकूलता का अर्थपना टले बिना ऐसा बनना असंभव है।

अंगदेश की चंपापुरी नगरी के राजा दधिवाहन को अभया नामक पत्नी थी। सुदर्शन सेठ इस चंपापुरी में बसते थे। उन्हें मनोरमा नामक पत्नी थी। सुदर्शन सेठ को चंपापुरी के पुरोहित से गाढ़ मैत्री थी। मित्राचारी इतनी गाढ़ थी कि पुरोहित सुदर्शन के साथ अधिकतर रहता था। इस मैत्री के कारण पुरोहित अपने नित्यकर्म को भी कई बार भूल जाता। पुरोहित की ऐसी हालत देखकर उसकी पत्नी कपिला ने एक बार उसे पूछा, 'नित्यकर्म को भूलकर आप इतना सारा वक्त कहाँ बिताते हो?' पुरोहित ने बताया, 'मैं कहीं और नहीं जाता हूँ। मेरे परम मित्र सुदर्शन के पास ही रहता हूँ।'

कपिला के 'सुदर्शन कौन है' पूछने पर जवाब में पुरोहित ने कहा, 'वह ऋषभदास श्रेष्ठि का पुत्र है।' बुद्धिशाली व रूप में कामदेव समान है। सूर्यसमान तेजस्वी है। महासागर जैसा गंभीर है। उसमें अनेक गुण हैं। उसका सदाचार रूपी शीलगुण अद्‌भुत है। उसका सदाचरण थोड़ा सा भी ढीला नहीं पड़ता है।'

पुरोहित गुणानुरागी था। वह सुदर्शनों के गुणों से मुग्ध बन गया, उसकी की हुई प्रशंसा का परिणाम कपिला के लिए उलटा सिद्ध हुआ। 'गुण और रूप में जिसकी जोड़ी नहीं है - ऐसा सुदर्शन है' - सुनकर कपिला कामविह्वल बन गई। कामातुर बनी कपिला ने सुदर्शन को अपने पास लाने की इच्छा व्यक्त की। वह सुदर्शन के साथ भोग के लिए बेकरार थी लेकिन उसकी इच्छा पूर्ति होना कोई सरल कार्य न था।

अचानक राजा के हुक्म से पुरोहित को बाहरगाँव जाना पड़ा।

कपिला इस अवसर का लाभ उठाने के लिये सीधी सुदर्शन के घर पहुँची और सुदर्शन को कहा, 'तुम्हारा मित्र अत्यंत बीमार हो गया है और आपको बुला रहा है। इसलिए मेरे साथ मेरे घर पर तुम्हारे मित्र को मिलने चलो। भोले भाव से

सुदर्शन ने यह बात सच मान ली। इसमें कुछ कपट होगा? ऐसा खयाल तक उसे न आया और वह कपिला के साथ घर आया। मकान में दाखिल होते ही उसने पूछा, 'पुरोहित कहाँ है?' उसे घर के अन्दर आगे लेजाकर आखिरी कमरे में पहुँचते ही कपिला ने दरवाजा अन्दर से बंद कर दिया और निर्लज्ज, बीभत्स नखरें करने लगी व क्रीड़ा की माँग की। सुदर्शनपूरी स्थिति को पहचान गये और कपट-जाल से पूर्णरूप से बचने का उपाय सोचने लगे। सही ढंग से समझाने से कपिला माननेवाली थी नहीं। उसे समझाने से न समझे व खोटा आरोप भी लगा दे तो? चिल्ला-चिल्लाकर लोगों को इकठ्ठा कर ले व बेइज्जती हो ऐसा समझकर हँसकर सुदर्शनने कहा : 'अरे मूरख! तूने बड़ी भूल की है। जो कार्य के लिए तू मुझे यहाँ लाई है, उसके लिए तो मैं बेकार हूँ। मैं नपुंसक हूँ और मेरे पुरुष भेस से तू धोखा खा गई है।'

सुदर्शन का जवाब सुनकर कपिला ठंडी पड़ गई। उसका कामावेश बैठ गया। कितनी मेहनत और कैसा परिणाम! अपनी मूर्खता के परिणाम से बैचेन हो उठी और सुदर्शन को धक्का मारकर 'चलता बन' कहकर घर से बाहर निकाल दिया। सुदर्शनने सोचा, 'मैं झूठ नहीं बोला हूँ। परस्त्री के लिए मैं नपुंसक ही हूँ। वे शीघ्रता से अपने घर आ गये। दुबारा कभी भी ऐसा न हो इसलिये किसीके घर भविष्य में अकेले न जाने की प्रतिज्ञा की।

एक बार चंपानगरी के राजा दधिवाहन ने इन्द्रमहोत्सव का आयोजन किया। वहाँ महारानी अभया के साथ पुरोहितपत्नी कपिला' भी थी। एक ओर सुदर्शन सेठ की पत्नी मनोरमा भी अपने छः पुत्रों के साथ महोत्सव में भाग ले रही थी। उसे देखकर कपिला ने महारानी अभया को पूछा : 'यह रूपलावण्य के भण्डार समान बाई कौन है?' अभया ने कहा, 'अरे! तू इसे पहचानती नहीं है? यह सेठ सुदर्शन की पत्नी है और उसके साथ उसके छः बेटे हैं। यह सुनकर कपिला को आश्चर्य हुआ। 'यदि सुदर्शन की गृहिणी है, तो बड़ी कुशल स्त्री है - ऐसा मानना पड़ेगा।' रानी अभया ने पूछा, 'कौनसी कुशलता?' कपिला ने कहा, 'वही कि इतने पुत्रों की माता है?' रानी कुछ जानती न थी सो समझ न सकी इसलिए कहा, 'जो स्त्री का स्वाधीन पति है - वह ऐसे रूपवान और इतने पुत्रों की माता बने उसमें उसकी क्या कुशलता?'

कपिला ने कहा, 'देवी! आपकी बात तो है सच्ची लेकिन वह तब हो सके जब पति पुरुष हो, सुदर्शन तो पुरुष के भेस में नपुंसक है।' अभया ने पूछा, 'तूने किस प्रकार जाना?' रानी के पूछने पर कपिलाने अथ से इति तक की स्वयं अनुभव

की सुदर्शन के साथ सम्बन्ध बनाने की बात कह सुनाई।

रानी ने कहा, 'तेरे साथ ऐसा हुआ? यदि तू कहती है ऐसा सचमुच बना है तो तू धोखा खा गई है। सुदर्शन व्यंढल है लेकिन परस्त्री के लिए, स्वस्त्री के लिए तो भरपूर पुरुषत्ववाला है।' ऐसा सुनकर कपिला को अत्यंत खेद हुआ। उसके दिल में ईर्ष्या जाग उठी। उसने अभया को कहा, 'मैं तो मूढ़ हूँ इसलिए धोखा खा गई पर आप तो बुद्धिशाली हैं। आप में कुशलता हो तो आजमाइये और सुदर्शन के साथ भोग कीजिये।'

अभया ने गर्व से कहा, 'मुग्धे! राग से मैने जो हाथ पकड़ा तो पत्थर भी पिघल जाता है तो संज्ञावान् पुरुष के लिए तो कहना ही क्या? चालाक रमणीओं ने तो कठोर वनवासियों व तपस्वियों को भी फँसाया है तो यह तो मृदु मनवाला गृहस्थ है।'

ईर्ष्या से जलती कपिला ने कहा, 'देवी! ऐसा गर्व न करो! यदि ऐसा ही अभिमान है तो सुदर्शन के साथ खेलो।' कपिला के ऐसे कथन से अभया का गर्व बढ़ गया। उसने कहा, 'ऐसी बात है! तो तू समझ ले कि मैं सुदर्शन के साथ खेल चुकी।' इतना कहकर अहंकार के आवेश में होश खोकर अभया ने प्रतिज्ञा ली, 'सुदर्शन के साथ यदि मैं रतिक्रीडा न कर पाऊँ और यदि उसे फँसा न लूं तो मैं अग्नि में प्रवेश करूंगी।'

रानी अभया ने अपने महल में जाकर यह कूट प्रतिज्ञा की बात साथ में रहती पण्डिता नामक धावमाता को बताई।

धावमाता ने उसको कहा, 'तूने यह ठीक नहीं किया। तूझे महान आत्माओं की धैर्यशक्ति की खबर नहीं है। साधारण श्रावक भी परनारी का त्यागी होता है, यह तो महासत्त्व शिरोमणि सुदर्शन के लिए तेरी धारणा अनुसार बनना लगभग असंभव है। गर्विष्ठ अभया ऐसा समझ सकनेवाली न थी। वह बोली, 'कुछ भी करके-येनकेन प्रकारेण सुदर्शन को एक बार मेरे आवास में ले आओ। बाद में मैं सबकुछ संभाल लूंगी।' पण्डिता आखिर थी तो एक नौकरानी ही और इससे उसकी ताबेदार ही थी।

पण्डिता ने कहा, 'मुझे एक ही मार्ग ठीक लगता है। उसे समझा-बहकाकर तो यहाँ नही लाया जा सकता। वह जब पर्व के दिन शून्य घर आदि में कायोत्सर्ग करता है, सिर्फ उसी वक्त उसे उठा लाना चाहिये। दूसरा अन्य कोई उपाय दिखता नहीं है।' रानी ने भी कहा : 'वही ठीक है, तू ऐसा ही करना!'

शहर में कौमुदी महोत्सव का समय आया। इस महोत्सव को देखने हरेक को आना होगा - ऐसा राजा का फरमान निकला। उस दिन धार्मिक पर्व होने से

राजा से मिलकर धर्म आराधना करने के लिए सेठ नगर में रूकने की आज्ञा ले आये। वे नगर के एकांत स्थल में पौषध व्रत लेकर कायोत्सर्ग में स्थिर रहे।

अभया रानी एवं धावमाता पंडिता ऐसे ही मौके की ताक में थी। उन्हें मालूम हो गया कि सुदर्शन सेठ कौमुदी महोत्सव देखने जानेवाले नहीं है। नगर में रुककर कायोत्सर्ग में रहेंगे। अभया के पास जाकर पंडिता ने कहा, 'तेरे मनोरथ शायद आज पूर्ण होंगे। तू उद्यान में कौमुदी महोत्सव देखने मत जाना।' इस हिसाब से रानी भी सरदर्द हो रहा है - ऐसा बहाना निकालकर महोत्सव मे न गई। भोले भाव से राजा ने भी बहाना मान लिया। वे रानी को आवास में ही छोड़कर महोत्सव मे भाग लेने गये।

अब धावमाता ने अपना दाव आजमाया। राजमहल में कुछ मूर्तियाँ ढककर लानी है - ऐसा कहकर पहले कुछ मूर्तियाँ ढककर सेवकों से उठवायीं और कायोत्सर्ग में खड़े सुदर्शन सेठ को भी कपड़ो से ढककर सेवकों द्वारा उठवाकर रानी के आवास मे रख दिये। सुदर्शन सेठ तो कायोत्सर्ग में थे जिसके कारण सेवकों को सहूलियत मिल गई थी।

सुदर्शन को लाने के बाद पण्डिता वहाँ से चल दी और अभया ने अपनी निर्लज्जता दिखाना शुरू कर दिया। प्रथम बिनती करके समझाने का प्रयत्न किया और तत्पश्चात अंगस्पर्श, आलिंगन वगैरह करके देखा, परंतु सुदर्शन के एक रोम पर भी उसका असर न हुआ। मेरु की भाँति वे अटल रहे। जिस प्रकार जड पूतले को कुछ असर नहीं होता है उसी प्रकार सुदर्शन के उपर अभया की कामचेष्टा का कुछ असर न पडा। वे निर्विकार ही रहे।

रानी अभया ने जब अंगस्पर्श आदि की भयंकर कुटिलता प्रारंभ की तो सुदर्शन ने मन से प्रतिज्ञा कर ली कि 'जब तक यह उपसर्ग न टले तब तक मुझे कायोत्सर्ग ही रहे और जब तक कायोत्सर्ग न टले तब तक मेरा अनशन हो।' इस प्रतिज्ञा को समतापूर्वक पालने के लिए सुदर्शन धर्म-ध्यान में सुस्थिर बने। एक तरफ पूरी रात अभया की कुचेष्टाएँ चलती रही। जब ऐसे उपसर्गो से भी सुदर्शन जरा से भी चलित न हुए तो अभया ने धमकियाँ देना शुरू किया और साफ शब्दों में कह दिया, 'या तो मेरे वश हो जा, नहीं तो यम के वश होना पड़ेगा, मेरी अवगणना मत कर, मुझे वश न हुआ और मेरी इच्छा की पूर्ति न की तो समझ ले अब तेरी मौत हो जायेगी।'

सुदर्शन जिंदगी को प्रिय समझकर सदाचार छोड़ने के लिये तैयार न थे। असाधारण दृढ़ मन से पूरी रात अभया द्वारा होते उपसर्गो को सहन किया। प्रभात

होने आया लेकिन अभया की युक्ति काम न आई। इससे वह घबरा गई। बहुत सोचकर अब अंत में वह सुदर्शन पर तोहमत लगाने का विचार करने लगी। सुदर्शन को कलंकित ठहराने के लिये उसने स्वयं अपने आप शरीर पर खरोंचे भरी और 'बचाओ, बचाओ... मुझ पर कोई बलात्कार करने आया है' ऐसा चिल्लाने लगी।

आवाज़ - चीखपुकार सुनकर कई नौकरों ने वहां आकर सेठ की कायोत्सर्ग मुद्रा देखी, यह संभव नहीं ऐसा मानकर वे राजा को बुला लाये। राजाने आकर पूछा : 'क्या है?'

अभया ने कहा, 'मैं यहाँ बैठी थी, इतने में पिशाच जैसे इसको अचानक आया हुआ मैंने देखा। भैंसे समान उन्मत बने इस पापी कामव्यसनीने कामक्रीड़ा के लिए अनेक प्रकार से नम्रतापूर्वक मुझको प्रार्थना की लेकिन मैंने इसको धुत्कार दिया, 'तुं असती की तरह सती की इच्छा मत कर, परंतु मेरा कहा इसने माना नहीं और बलात्कार से इसने मुझे ऐसा किया।'

इस प्रकार कहकर उसने खरोंचे बताई और अंत में कहा, 'इस कारण मैं चिल्लाने लगी, अबला और करे भी क्या?' रानी ने ऐसा कहा लेकिन राजा को विचार आया कि 'सुदर्शन के लिये यह संभव नहीं है।'

सुदर्शन को अंत:पुर में खड़े देखा और खुद अपनी पटरानी ने आरोप लगाया, जुल्म गुजारा हो ऐसे चिह्न भी राजा ने देखे। ऐसे दार्शनिक ठोस सबूत होने पर भी राजा ने सोचा, 'सुदर्शन के लिए यह संभवित नहीं है!' सुदर्शन की ख्याति, धर्मशीलता एवं उसकी प्रतिष्ठा ने चंपानगरी के मालिक राजा दधीवाहन को सोच में डाल दिया। रानी की हाजिरी में राजा ने सुदर्शन को कहा, 'जो भी हो वह सच कहो! इसमें सत्य क्या है?' सुदर्शन तो कायोत्सर्ग में ही स्थिर थे। राजा ने बार बार पूछा लेकिन सुदर्शन मौन रहे। वे समझते थे कि 'मैं बेगुनाह हूँ लेकिन सच्ची बात कहूँगा तो रानी का क्या होगा? जो आपत्ति मुझे इष्ट नहीं है वह रानी पर आयेगी। रानी बदनाम हो जायेगी और शायद सूली पर लटकना पड़ेगा।' सुदर्शन अब मौन रहते हैं तो आपत्ति उन्हें झेलनी पड़ती है और यदि बोलते हैं तो आपत्ति रानी को उठानी पड़े ऐसा है।

सुदर्शन ने सोचा कि मेरा धर्म क्या है? अहिंसा पालन - यह सदाचार है। और हिंसा अनाचार है। अहिंसा पालनरूपी सदाचार की रक्षा करने का कर्तव्य एक सदाचारी के सम्मुख मौका बनकर खड़ा था।

कुछ भी हो, दृढ़ता से मौन रहने का निश्चय कर लिया, अपनी बदनामी ही नहीं, अपितु सूली भी संभव है। शीलरक्षा के लिए अभया का कष्ट सहा अब दयापालन के लिए जो भी आफत आये वह सहने के लिए सुदर्शन तैयार हुए। बार

बार पूछने पर भी सुदर्शन मौन ही रहे और राजा ने सोचा, 'संभव है कि सुदर्शन दोषित हो। क्योंकि, 'मौन' व्यभिचारियों का और चोरों का एक लक्षण है।' इस कारण राजा क्रोधाधीन हुआ और अपने सेवकों को सुदर्शन का वध करने की आज्ञा दे दी। सुदर्शन को ऐसे सजा दी जाये तो नगर में, लोगो में उत्तेजना फैल जायेगी। सदाचारी माने जाते सुदर्शन को ऐसी सजा साधारणतया नगरजन सहन नहीं करेंगे, इसलिए पहले सुदर्शन को गाँव में घूमाकर, उसके दोषों की विज्ञप्ति करने के बाद ही उसका वध करने की आज्ञा राजा ने फरमायी।

राजा की आज्ञानुसार राजसेवकों ने सुदर्शन को पकड़कर मुँह पर मसी पोती और शरीर पर लाल गेरु का लेप लगाया। गले में विचित्र प्रकार की मालाएँ पहनाई और गधे पर बिठाकर सूप का छत्र धरा। और फटा हुआ ढोल उसके आगे पीटते पीटते सुदर्शन को गाँव में राजसेवक घूमाने लगे। वे उद्घोषणा करते हुए कहते थे कि 'सुदर्शन ने रानीवास में गुनाह किया है, इसलिए उसका वध किया जा रहा है, राज-आज्ञा है, लेकिन इसमें राजा का कोई दोष नहीं है।'

इतना बीतने पर भी सुदर्शन तो अपने ध्यान में पूर्ववत स्थिर ही रहे हैं। स्वयं सर्वदा निर्दोष होने पर भी केवल सदाचार की रक्षा के खातिर आफत झेलनी पड़ी हैं। खुद के उपर दुराचारी का कलंक आये, पूर्वकालीन अशुभोदय आया हो तो ही ऐसा हो सकता है। निर्दोष होने पर भी दोषित बनकर शिक्षा भोगने का वक्त आ गया है।

सुदर्शन को पूरे गाँव में घूमाते घूमाते उसके घर के सामने लाया गया। उसकी स्त्री महासती मनोरमा ने यह सब देखा, सुना और सोचा, 'मेरे पति सदाचारी हैं। मेरे पति ऐसा कार्य कर ही नहीं सकते। वाकई यह पूर्व के अशुभ कर्म का ही फल उपस्थित हुआ है।' उसने मनोमन निश्चय किया कि 'जहाँ तक मेरे पति पर आयी हुई विपत्ति टलेगी नहीं वहाँ तक मुझे कायोत्सर्ग में रहना है और अनशन करना है।'

महासती मनोरमा की दृढ प्रतिज्ञा एवं सुदर्शन सेठ का पवित्र शील अंत में विजयी बने। असत्य के गाढ़ आवरण टूट गये। राजा के नोकरों ने सुदर्शन सेठ को सूली पर चढाया तो सूली टूट गई और आश्चर्य के साथ सोने के एक सिंहासन पर सेठ दिखाई दिये। सुदर्शन श्रेष्ठी की जयजयकार हुई। शासन देवताओं ने इस अवसर पर रानी की पोल खोल कर रहस्योद्घाटन किया। रानी परदेश भाग गई।

राजा ने सेठ को आदरपूर्वक नमस्कार किया और अपराध के लिए क्षमा मांगी। दोनों ने एक-दूसरे को सांत्वना दी। क्रमानुसार संयम ग्रहण करके सुदर्शन सेठ केवलज्ञान पाकर मुक्तिपुरी में पहुँचे।

●

५६ श्री हरिभद्रसूरि

चित्रकूट महाराजा के पुरोहित का गौरवपूर्ण पद, दर्शन शास्त्री की गहरी विद्वता होने पर भी बालक जैसी सरलता से हरिभद्र में समाया हुआ व्यक्तित्व अच्छे अच्छे पंडितों को व्याकुल कर देता था।

छोटे-नये विद्यार्थी जैसा जिज्ञासा का भाव उनमें भरा पड़ा था। नया जानने, सुनने एवं समझने के लिए हरिभद्र हंमेशा उत्सुक रहते थे।

कुल एवं वंशपरंपरागत मिथ्या शास्त्रों की बिरासत हरिभद्र पुरोहित को स्वाभाविकता से मिली थी। इस कारण जैन शास्त्रों, जैन दर्शन या उसके पवित्र धर्मस्थानों के प्रति उनको सहज अरुचिभाव था। हो सके तो इन सबसे दूर रहने के वे अभ्यस्त हो चुके थे।

एक दोपहर को खास कारण से राजदरबार में जाने का अवसर आया। रास्ते से गुजरते हुए पंडित के पीछे, 'भागो, दौड़ो, पागल हाथी दौड़ा चला आ रहा है' की चीख पुकार होती सुनकर पंडित ने पीछे मुड़कर देखा। मानो साक्षात मृत्यु आ रही हो ऐसा राजहस्ती मदोन्मत्त बनकर जो भी चपेट में आ जाये उसे पछाडता और घनघोर गर्जनाए करता हुआ दौड़ा चला आ रहा था।

पंडितजी व्याकुल हो गये, करुं क्या ? क्षणभर के लिए उलझन में पड़ गये। रास्ता संकरा था। दौड़कर आगे बढ़ने में भयंकर खतरा था, जिससे वे नज़दीक के मकान में घुस गये।

पंडितजी ने अंदर जाकर देखा तो मकान सादा न था, वह सुन्दर जिन मंदिर था। श्री वीतराग अरिहंत देव की भव्य मूर्ति बिराजमान थी।

लेकिन कुल परंपरागत अरुचि हृदय में भरपूर थी। इसलिये जिनेश्वर देव की स्तुति करते हुए उनके हृदय में सद्भाव न जगा और स्तुति करते हुए वे बोले :

'वपुरेव तवाचष्टे स्पष्टं मिष्टान्न भोजनम्।'

वाह! तेरा शरीर ही स्पष्ट बता रहा है कि 'तूं मिष्टान्न खाता है।'

श्री तीर्थंकर देव जैनों के देवों की मजाक उडाने में हरिभद्र को बहुत मजा आया।

कुछ ही समय में हाथी वहाँ से गुज़र गया था। भय दूर हो गया सो पंडित अपने घर आ गया। इस जगत में बहुत कुछ जाननेलायक है ऐसा वे महसूस करते थे। अपने ज्ञान का गर्व होने पर भी कुछ नया बतानेवाला मिले तो समझ में न आने पर उसके चरणों में गिरकर लौटने की सहृदयता इस राजपुरोहित में अपूर्व थी। एक सायंकाल को राजकार्य निबटाकर देर से घर की ओर शीघ्रता से पंडित हरिभद्र जा रहे थे। अचानक उनके कानों में कुछ मधुर शब्द टकराने लगे। स्वर स्त्री का था। शब्द बड़े अपरिचित थे। मार्ग पर के मकान की खिड़की से आते उन शब्दों को हरिभद्र पुरोहित ने ध्यानपूर्वक सुनें।

चक्की दुगं हरिपळगं
पळग चक्किण केसवो चक्की
केसवो चक्कि केसव दु
चक्कि केसीअ चक्कि

हरिभद्र को यह गाथा नई लगी। उसमें रहे चक, चक शब्द पंडित को समझ में न आये। घर जाने की जल्दी थी फिर भी जिज्ञासाभाव उत्कट बना। वे मकान में गये। वह आवास जैन साध्वियों का था। साध्वीजी स्वाध्याय आदि धार्मिक प्रवृत्तियों में मग्न थी। गाथा बोलनेवाली साध्वीजी के पास जाकर वे विनयपूर्वक बोले : 'माताजी ! यह चाक-चीक क्या है ? यह गाथा समझ नहीं आ रही। कृपया इसका अर्थ समझाइये।'

उम्र में कुछ प्रौढ़ ऐसी यकिनी महत्तरा साध्वीजीने जवाब दिया, 'भाई ! इस रात्रि के अवसर पर हम कोई पुरुष के साथ बात नहीं कर सकती। हमारी यह मर्यादा है। उसका पालन हमारे लिए उचित व हितकारी है। उपदेश देने का कार्य हमारे आचार्य महाराज का है। वे आपको इस गाथा का अर्थ समझायेंगे।' साध्वीजी के मुख से धीर-गंभीर शैली से कही गई यह बात हरिभद्र के गले में उतर गई।

आचार्य महाराज का स्थान ज्ञात करके पुरोहित वहाँ गये। वंदन करके

बहुमानपूर्वक जैनाचार्य श्री जिनभद्रसूरि महाराजश्री के पास वे बैठे। अब तक जैन श्रमणों से दूर रहनेवाले हरिभद्र पंडित को जैन श्रमणों के वातावरण में रही पवित्रता, विद्वता तथा उदारता के पहली बार वहाँ दर्शन हुए। उनका निर्मल हृदय वहाँ झुक गया।

सहज जिज्ञासा से पूछा, 'भगवन्! माताजी के मुख से जो गाथा सुनी है, उसका अर्थ कृपया समझाइये।'

जवाब में आचार्य महाराज ने जैनशास्त्र अनुसार काल का अवसर्पिणी - उत्सर्पिणी इत्यादि स्वरुप विस्तारपूर्वक हरिभद्र को समझाया, 'एक अवसर्पिणी में क्रमानुसार दो चक्रवर्ती, पाँच वासुदेव, पाँच चक्रवर्ती, एक वासुदेव, एक चक्रवर्ती, एक वासुदेव एक चक्रवर्ती, एक वासुदेव, दो चक्रवर्ती, एक वासुदेव, एक चक्रवर्ती - इस प्रकार उत्सर्पिणी काल में भी बारह चक्रवर्ती तथा नौ वासुदेव होते हैं।'

जैन सिद्धांतों में रहे काल आदि के ऐसे सुसंवादी स्वरूप सुनने-समझने के पश्चात् हरिभद्र को अपने ज्ञान का गर्व उतर गया। उनकी सरलता जीत गई। उनको जैन दर्शनशास्त्रों का अध्ययन करने की चटपटी लगी। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का पालन शुरू किया।

आचार्य महाराज के पास जाकर उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। श्री जिनमंदिर में बिराजमान श्री वीतराग परमात्मा की भव्य मूर्ति देखकर उन्हें नई दृष्टि प्राप्त हुई, मिथ्यात्व का आंचल दूर हुआ। सहसा हृदय के बहुमान भाव से वे बोल उठे — 'वपुरेव तवाचष्टे वीतरागताम्।'

'हे भगवन्! आपकी आकृति ही कह रही है कि आप राग आदि दोषों से दूर हैं - ऐसी वीतराग दशा के साक्षात् स्वरूप आप हैं।'

दीक्षाकाल में उन्होंने जैन आगमों का अभ्यास किया। ज्यों ज्यों अभ्यास बढ़ता गया त्यों त्यों साधू श्री हरिभद्र के अंतर में दिव्य दृष्टि का तेज प्रकट होने लगा। संसार मात्र तारक के रूप में जैन आगमों की उपकारकता उन्हें समझ में आ गई।

श्री जिनेश्वर देव की स्तवना करते हुए उनकी आत्मा अंदर से पुकार उठी, 'हे त्रिलोकनाथ! दुःषम काल के मिथ्यात्व आदि दोषों से दुषित हम जैसी अनाथ आत्माओं को यदि आप के आगम प्राप्त हुए न होते

तो हमारा क्या होता ?'

वे धर्मग्रंथो की रचना करने लगे। वे आचार्य बने लेकिन सर्वप्रथम मार्गदर्शक बनकर जिसने नई गाथा का श्रवण कराया था, उस याकिनी साध्वीजी को अपनी धर्ममाता के रूप में कभी न भूले। और इसलिये वे जैनशासन में 'याकिनी धर्मपुत्र' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

जीवन के दौरान उन्होंने महान ग्रंथ रचे हैं, जिसमें श्री नन्दीसूत्र, अनुयोग द्वार सूत्र, आवश्यक सूत्र आदि आगमों पर विषद् टीकाएँ भी रची हैं। षड्दर्शन सम्मुचय, शास्त्रवार्ता सम्मुचय, ललित विस्तरा नामक चैत्यवंदन सूत्रवृत्ति, पंचाशक, योगबिंदु, योगविंशिका, धर्मबिन्दु आदि उनके प्रसिद्ध ग्रंथ है। उनका साहित्य विविध मौलिक और गहरा चिंतनवाला है। उन्होंने १४४४ ग्रंथो की रचना की थी। १४४० ग्रंथ रचे जा चुके थे लेकिन चार ग्रंथ बाकी थे। उस समय उन्होंने चार ग्रंथ के स्थान पर 'संसार दावानल' शब्द से प्रारंभ होनी चार स्तुति बनायी, उसमें चौथी श्रुतिदेवी की स्तुति का प्रथम चरण रचा और उनकी बोलने की शक्ति बंद हो गई। बाकी की तीन चरणरूपी स्तुति उनके हृदय के भावानुसार श्री संघ ने रची, तब से तीन चरण श्री संघ द्वारा 'झंकारा राव सारा' पक्खी और संवत्सरी प्रतिक्रमण में उच्च स्वर से बोली जाती है।

●

गुरुचरनन की

मोरी लागी लटक गुरुचरनन की
चरन बिना मोहे कछु नहीं भावे
झूठी माया सब सपनन की॰ मोरी

भवसागर अब सूक गया है
फिकर नहीं मुझे तरनन की॰ मोरी

मीरां कहे प्रभु गिरधरनागर
उलट भई मोरे नयनन की॰ मोरी

५७ श्री नागिल

भोजपुर नगर में लक्षण नामक एक धार्मिक वणिक रहता था। उसे नौ तत्त्व की ज्ञाता नंदा नामक पुत्री थी। लक्षण पुत्री के लिए वर खोज रहा था। एक बार अपने पिता को नंदा ने कहा, 'हे पिताजी ! जो पुरुष काजल बगैर का, बती रहित तेल के व्यय बगैर का - और चंचलता से रहित दीपक को धारण करे वही मेरा पति बने।' पुत्री का यह वचन सुनकर, उसकी दुष्कर प्रतिज्ञा जानकर चिंतातुर बने लक्षण सेठ ने इस बात की नगर में उद्घोषणा की। यह बात नागिल नामक एक जुआरी ने सुनी, सो उसने किसी यक्ष की सहाय से एक ऐसा दीपक बनवाया जिसको देखकर लक्षण श्रेष्ठि हर्षित हुए और अपनी पुत्री नंदा की शादी नागिल से कर दी। नंदा अपने पति को व्यसन-आसक्त जानकर बड़ी दुःखी रहने लगी। पर नागिल ने कोई व्यसन छोड़ा नहीं, इससे हंमेशा द्रव्य का व्यय होता गया। लक्षण सेठ पुत्री के स्नेह के कारण द्रव्य देते जाते थे और नंदा पति के साथ मन नहीं होने पर भी स्नेह रखती थी।

एक बार नागिल को ऐसा विचार आया कि, 'अहो हो ! यह स्त्री कैसे गंभीर मनवाली है कि मैं बड़ा अपराधी होने पर भी मुझ पर रोष करती नहीं है।' इस विचार से नागिल ने एक बार कोई मुनि को भक्तिपूर्वक पूछा, 'हे महामुनि ! यह मेरी प्रिया शुद्ध आशयवाली है फिर भी मुझ में मन क्यों नहीं लगाती ? उसका कारण क्या ?' मुनि ने नागिल को योग्य जानकर उसके अंतरंग दीपक का स्वरूप इस प्रकार बताया, 'तेरी स्त्री की ऐसी इच्छा थी कि, जो पुरुष के अंतःकरण में मायारूप काजल न हो, जिसे नौ तत्त्व के बारे में अश्रद्धारूपी बत्ती न हो, जिसमें स्नेह को नष्ट करने रूप तैल का व्यय न हो और जिसमें समकित के खण्डन रूप कंप (चंचलता) न हो ऐसे विवेकरूपी दीपक को धारण किया हो वह मेरा पति बने।' इस प्रकार दीपक का अर्थ नंदा ने सोचा था जिसे कोई जान नहीं पाया। तूने धूर्तपने से यक्ष की आराधना करके कृत्रिम बाह्य दीपक बनाया इसलिये श्रेष्ठी ने अपनी पुत्री तूझे दी। अब तू महाव्यसनी तो है ही। तूझ पर शील आदि गुणयुक्त ऐसी तेरी स्त्री का मन लगता नहीं है; इसलिये यदि तू व्रत को स्वीकार करेगा तो तेरा इच्छित पूर्ण होगा।'

नागिल ने पूछा, 'हे भगवन् ! सर्व धर्म में कौनसा धर्म श्रेष्ठ है ?' मुनि बोले, 'हे भद्र ! श्री जिनेन्द प्रभु ने अपनी महक से तीनों भुवन को सुगंधित करनेवाला, समकितपूर्वक शीलधर्म को सर्वधर्म में श्रेष्ठ कहा है।' उसके बारे शासन में कहा है, 'जिस पुरुष ने अपने शीलरूपी कपूर की सुगंध से समस्त भुवन को खुशबुदार किया हो उस पुरुष को हम बार बार नमस्कार करते हैं।' आगे कहा है कि, 'क्षण भर भावना व्यक्त करनी, अमुक समय दान देना, फलाँ तपस्या करनी, वह स्वल्पकालीन होने से सुकर है लेकिन आजीवन शील पालना दुष्कर है।' नारद सब जगह पर क्लेश करानेवाला, सर्व जनों का विध्वंस करनेवाला और सावद्य योग में तत्पर होने पर भी सिद्धि को पाता है सौ निश्चय ही शील का ही माहात्म्य है।' इस प्रकार के गुरु वचन सुनकर नागिल ने प्रतिबोध पाया और तत्काल समकितशील और विवेकरूपी दीपक का स्वीकार करके वह उस दिन से श्रावक धर्म का आचरण करने लगा।

एक बार नंदा ने कहा, 'हे स्वामी ! आपने बहुत अच्छा किया आत्मा को विवेकी बनाया। शास्त्र में कहा है कि जिनेश्वर की पूजा, मुनि को दान, साधर्मी का वात्सल्य, शील पालन और परोपकार आदि विवेकरूपी वृक्ष के पल्लव हैं।' नागिल बोला, 'प्रिया ! सर्व को आत्मा के हित के लिये विवेक से धर्म करना है। विवेकरूपी अंकुश के बिना मनुष्य सर्वदा दुःखी ही होता है। इस प्रकार के वचन सुनकर नंदा बहुत ही हर्षित हुई और भाव से पति की सेवा करने लगी।'

एक बार नंदा पिता के घर गई थी। नागिल अकेला चन्द्रमा के ऊजाले में सो रहा था। इतने में किसी पतिवियोगी विद्याधर की पुत्री ने उसको देखा और तत्काल कामातुर होकर वहाँ आयी और कहा, 'हे महापुरुष ! यदि मुझे स्त्री के रूप में स्वीकारोगे तो मैं तुम्हें अपूर्व विद्या सीखाऊँगी। यह मेरा लावण्य देखो, मेरे वचन को मिथ्या मत करना।' इस प्रकार कहकर थरथराती हुई वह बाला नागिल के चरणों में गिर पड़ी। इस कारण नागिल मानो अग्नि से जल रहे हो वैसे पाँव संकोर लिये। बाला लोहे का अग्नि से गर्म किया हुआ गोला बताकर कहने लगी, 'अरे अधम ! मुझे भज, नहीं तो मैं तूझे भस्मीभूत कर डालूंगी।' यह सुनकर नागिल निर्भयता से सोचने लगा कि, 'दस मस्तिष्कवाले रावण जैसा, कामदेव समान राक्षस, जो देव-दानवों से दुर्जय है, वह भी शील-समान अस्त्र से साध्य होता है।' यूं वे सोच रहे थे कि सुत्कार शब्द कहती हुई उस बाला ने अग्निमय रक्तवर्णी लोहे

का गोला उसके उपर फेंका। उस वक्त नागिल जिस नमस्कार मन्त्र का स्मरण करे जा रहा था उसके प्रभाव से गोले के छोटे छोटे टुकडे हो गये। इससे बाला लज्जित होकर अदृश्य हो गई और कुछ ही देर में नंदा का रूप लेकर एस दासी द्वारा खोले गये दरवाजे से वहाँ आयी और मधुर वाणी से बोली, 'हे स्वामी ! आपके बिना मुझको पिता का घर नहीं भाया। इस कारण रात्री होने पर भी मैं यहाँ चली आई।' उसे देखकर नागिल सोच में पड़ गया कि, 'नंदा विषय भोग में स्वपति के सम्बन्ध भी संतोषी है, इसलिये उसकी ऐसी चेष्टा संभवित नहीं है। इसका रूप-रंग सब कुछ नंदा जैसा है लेकिन परिणाम उसके जैसे दिखते नहीं है। इसलिये उसकी परीक्षा किए बिना विश्वास करना योग्य नहीं है। ऐसा सोचकर नागिल ने कहा : 'हे प्रिये ! यदि तू वाकई में नंदा हो तो मेरे समीप अस्खलितपूर्वक चली आ।' यह सुनकर वह खेचरी जैसेही उसके सामने चली वैसे ही वह मार्ग में स्थिर हो गई। बड़े कष्ट के बाद भी पाँव न उठा। धर्म की महिमा से नागिल ने उसका सर्व कपट जान लिया। तत्पश्चात् उसने सोचा, कभी अन्य किसीके कपट से इस प्रकार शील का भंग भी हो सकता है सो सर्व प्रकार से विरतिता ही ग्रहण करने योग्य है। ऐसा सोचकर उसने तत्काल केश लोचन किया और उस यक्षदीप को कहा, 'अब तु तेरे स्थान पर लौट जा।' यक्ष ने कहा, 'मैं आजीवन आपकी सेवा करूंगा। मेरे तेज से आपको उजेही (दीपक की जो उजेही गिरती है, वह स्थान मुनि को वर्ज्य है) नहीं पड़ेगी।' तत्पश्चात् सूर्य का उदय होते ही नागिल ने नंदा के साथ गुरु के पास जाकर व्रत ग्रहण किया और यक्षदीप के साथ आश्चर्य सहित पृथ्वी पर विहार करके संयम पालते हुए दंपती मृत्यु पाकर हरिवर्ष क्षेत्र में युगलिये जन्में। वहाँ से देवता बनकर पुनः नरभव पाया और मोक्ष प्राप्त किया। इस नागिल ने द्रव्यदीप से शुभ ऐसे भावदीप का चिंतन किया और स्वदारा संतोष के व्रत में दृढ प्रतिज्ञा पाली तो वह विद्याधरी से भी कंपित नहीं हुआ। इसलिये सर्व प्राणियों को स्वदारा संतोष व्रत दृढता से धारण करना चाहिये।

●

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धार्थ-सिद्धिस्थिताः
आचार्या जिन शासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः
श्री सिद्धान्त-सुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः
पंचैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मंगलम्।

५८ जिनदास और सौभाग्यदेवी

बसंतपुर नामक नगर में शिवशंकर श्रावक रहता था। एक दिन उस नगर में धर्मदास नामक एक सूरि पधारे। उन्हें वंदन करने शिवशंकर गया। वंदन करके गुरु से कई आलोचना ली और हर्षपूर्वक बोला, 'हे भगवन् ! मेरे मन में लाख साधर्मिक भाइयों को भोजन कराने का मनोरथ हैं, परंतु उतना धन मेरे पास नहीं है। मैं क्या करुं जिससे मेरी यह मनोकांक्षा पूर्ण हो जाये ?' गुरु ने कहा : 'तू मुनि सुव्रतस्वामी को वंदन करने भरुच जा, वहाँ जिनदास नामक श्रावक रहता है, उसकी सौभाग्यदेवी नामक भार्या है। तू उन दोनों को तेरी सर्वशक्ति और भाव से भोजन, अलंकार वगैरह देकर प्रसन्न कर। उनके वात्सल्य से तुमको एक लाख साधर्मिक को भोजन कराने जितना पुण्य होगा।' इस प्रकार के गुरुवचन सुनकर शिवशंकर ने बताये अनुसार करा। भोजनादिक भक्ति से जिनदास और सौभाग्यदेवी की सेवा की।

शिवशंकर आश्चर्य के साथ सोचते रहे कि इस दंपती में ऐसे क्या गुण होंगे कि सूरिजी ने उनकी भक्ति करन से लाख साधर्मिक भाइयों को भोजन कराने जितना पुण्य उपार्जन होगा - ऐसा कहा। इसका कारण जानना - समझना चाहिये। ऐसे विचार से उन्होंने गाँव के लोगों को पूछा कि यह जिनदास सचमुच उत्तम मनुष्य है कि दांभिक ? तब लोगों ने कहा, 'हे भाई सून। यह जिनदास सात वर्ष का था तब एक दिन उपाश्रय पर गया था। वहाँ गुरु मुख से शीलोपदेश माला का व्याख्यान सुनकर उसने एकांतरा ब्रह्मचर्य पालन का नियम ग्रहण किया। इस प्रकार सौभाग्यदेवी ने सभी बाल्यावस्था में साध्वी से एकांतरा शील पालन का व्रत ग्रहण किया। दैव योग से दोनों का परस्पर पाणिग्रहण किया लेकिन शील पालन के क्रम में जिस दिन जिनदास को छूट थी उसी दिन सौभाग्यदेवी को व्रत रहता था और सौभाग्यदेवी को छूट थी उसी दिन जिनदास व्रत से बंधा हुआ था। शादी के बाद यह बात एक दूसरे को ज्ञात हुई तो सौभाग्यदेवी ने जिनदास को कहा, 'हे स्वामी! मैं तो निरंतर शील पालूंगी, आप खुशी से अन्य स्त्री के साथ शादी कीजिए।' लेकिन जिनदास ने जवाब दिया, 'मुझे तो दूसरा ब्याह करना ही नहीं है, लेकिन मैं योग्य समय पर

दीक्षा लूंगी।' तत्पश्चात दंपती ने गुरु के पास जाकर जीवनपर्यंत सदा के लिये ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया और भेंट-उपहार वगैरह अर्पण करके श्रीसंघ का सत्कार किया। इस दंपती जैसे बाल ब्रह्मचारी हमने तो कभी सूने नहीं है।'

उपरोक्त वृत्तांत सुनकर शिवशंकर जिनदास व सौभाग्यदेवी की विशेष प्रकार से सेवाभक्ति करके अपने गाँव लौटा। ऐसे शीलवान दंपती की भोजन आदि की भक्ति का लाभ प्राप्त किया और इसके लिए मार्ग दिखानेवाले धर्मदास मुनि को परम उपकारी माना।

●

हे भगवान ! मैं बहुत भूल गया

हे भगवान! मैं बहुत भूल गया, मैंने आपके अमूल्य वचनों को लक्ष्य में लिये नहीं। मैंने आपके कहे अनुपम तत्व का विचार किया नहीं। तुम्हारे प्रणीत किये हुए उत्तम शील का सेवन नहीं किया। तुम्हारे कहे दया, शांति, क्षमा और पवित्रता को मैंने पहचाना नहीं। हे भगवान ! मैं भूला, भटका, बेकार घूमा फिरा और अनंत संसार की विटम्बना में गिरा हूँ। मैं पापी हूँ। मैं खूब मदोन्मत व कर्म धूलि से मलिन बना हूँ। हे परमात्मा ! तुम्हारे कहे तत्त्व के बिना मेरा मोक्ष नहीं है। मैं निरंतर प्रपंच में पडा हूँ। अज्ञानता से अंध हुआ हूँ। मुझमें विवेकशक्ति नहीं है और मैं मूढ़ हूँ, निराश्रित हूँ, अनाथ हूँ। निरागी परमात्मा ! अब मैं आपकी, आपके धर्म की और आपके मुनिकी शरण ग्रहण करता हूँ। मेरे अपराध क्षय होकर उन सब पाप से मुक्त हो जाऊं ऐसी मेरी अभिलाषा है। पूर्व मैंने किये हुए पापों का अब मैं पश्चात्ताप करता हूँ। ज्यों ज्यों मैं सूक्ष्म विचार में गहरा डूब जाता हूँ त्यों त्यों तुम्हारे तत्त्व के चमत्कार मेरे स्वरूप को प्रकाशित करते हैं। आप निरागी, निर्विकारी सत्‌चिदानंद स्वरूप, सहजानंदी, अनंतज्ञानी, अनंतदर्शी और त्रैलोक्य प्रकाशक हो। मैं मात्र मेरे हित के कारण आपकी साक्षी में क्षमा चाहता हूँ। एक पल भी आपके कहे तत्त्व की शंका न हो, मैं आप के कहे मार्ग में अहोरात्र ही रहूँ। यही मेरी आकांक्षा और वृत्ति हो। हे सर्वज्ञ भगवन ! आपको मैं विशेष क्या कहूँ ? आपसे कुछ अनजाना नहीं है। मात्र पश्चाताप से मैं कर्मजन्य पाप की क्षमा चाहता हूँ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

५९ श्री वज्रस्वामी

सुनंदा दोजीवा हुई है - ऐसा ज्ञात होने ही पूर्वानुसार हुई शर्त के अनुसार उसका प्रति प्रभु वीर के पथ पर दीक्षा लेने चल पड़ा। सुनंदा की कोख से व्रजस्वामीने जन्म लिया। जन्म के साथ ही वृद्धाओं के मुख से वज्रस्वामी ने सुना, 'इस बालक के पिता ने दीक्षा न ली होती तो इस बालक का जन्ममहोत्सव धामधूम से सम्पन्न होता।'

इन शब्दों को सुनकर ही तुरंत जन्मे बालक को जातिस्मरण ज्ञान हुआ और दीक्षा लेकर कल्याण करने की भावना जाग्रत हुई।

उन्हें लगा कि माता मुझ जैसे बालक को दीक्षा नहीं लेने देगी। माता को उकताने के लिए उन्होने रोना शुरू कर दिया। एक-दो दिन नहीं, एक दो महिने नहीं लेकिन लगातार छः माह तक रोते रहे। कित कितने ही उच्च संस्कार इस बालक की आत्मा में भरे होंगे इसलिए ही वे दीक्षा लेने की भावना से रोये होंगे।

सतत रुदन से माँ उकता गई। उसने साधू बने अपने पति जिस उपाश्रय में जाकर ठहरे थे उस उपाश्रय जाकर, 'लो यह तुम्हार बेटा ! मैं तो थक गई। चुप ही नहीं रहता है, संभालो तुम।' ऐसा कहकर छः माह के छोटे बालक वज्रकुमार को अर्पण कर दिया।

श्राविका बहिने उसकी देखभाल करती हैं। साध्वीजियों के पास वे पलने में झूल रहे हैं। साध्वीजी जो विद्याभ्यास पढ़ती थी वह सुनते सुनते वे ग्यारह अंग सीख गये।

सुनंदा अब सोचती है, 'ऐसे चतुर बालक को मैंने अर्पण कर दिया, यह ठीक न किया।' ऐसा सोचकर माता बालक को वापिस लेने जाती है। गुरु महाराज और संघ ने उसे लौटाने की ना कही सो माता ने राजा के पास जाकर फरियाद की। राजा ने न्याय तोला : 'जिसके पास जाय उसीका यह बालक।'

माता ने खिलौने, मीठाइयाँ वगैरह अनेक वस्तुएँ बालक को लुभाने के लिए रखीं लेकिन साधू महाराज ने ओघा व मुहपत्ति रखें। राजा बीच में खड़े

है। संघ देख रहा है, माता मानती है कि अभी बालक मेरे पास आयेगा और मुझे मिल जायेगा।

बालक तो था। वैरागी था इसलिए खिलौने या मिठाइयों से बहकनेवाला न था। वह तो शीघ्र ही ओघा और मुहपत्ति लेकर नाचने लगा और जैनशासन की जयजयकार हुई।

यह वज्रस्वामी नामक बालक... 8 वर्ष की उम्र में दीक्षा ली। देवों द्वारा ली गई परीक्षा में दो बार उतीर्ण हुए। देवी ने प्रसन्न होकर वैक्रिय लब्धि और आकाश में उडने की विद्या दी। उन्होंने बौद्ध राजा को उपदेश देकर जैनधर्मी बनाया। एक बार सुवर्णमुद्राएँ लेकर कोई स्त्री वज्रस्वामी के साथ ब्याह करने की मनोकामना से आई। उसे बोध देकर बिदा दी। अकाल के समय उन्होंने अपने संघ का रक्षण किया।

स्वयं भद्रगुप्त आचार्य से दशपूर्व का अभ्यास किया था। उन्होंने आर्यरक्षित सूरि महाराज को साढ़े नौ पूर्व का अभ्यास कराया। अंत में वज्रसेन नामक बड़े शिष्य पाट पर स्थापित करके अनेक साधुओं के साथ स्थावर्तगिरि पर जाकर तप प्रारंभ किया। तप के प्रभाव से इन्द्र महाराजा वंदनार्थ पधारें। उन्होंने जैन शासन की विजय पताकाएँ फहरायी और शासन की उन्नति के अनेक कार्य कर स्वर्ग पधारें।

●

* दया के समान कोई धर्म नहीं।

* हर कली में फूल का अरमान छिपा बेठा है
  हर मानव में भगवान छिपा बैठा है

* पांच पापों से सजाया है जिसने जीवन,
  वह मानव से शैतान बन बैठा है।

* जो भूल न करे वह भगवान।
  जो भूल करके माफी मांगे वह इंसान।
  जो भूल को भूल न माने वह बेईमान।
  जो भूल करके ऊपर से अहंकार करे वह शैतान।

६० भवदेव - नागिला

मगध देश में सुग्राम नामक एक गाँव था। उसमें राष्ट्रकूट नामक किसान व उसकी स्त्री रेवती रहते थे। क्रमानुसार उसके भवदत्त और भवदेव नामक दो पुत्र हुए।

एक बार सुस्थित आचार्य से वैराग्यधारी भवदत्त ने दीक्षा ग्रहण की। वे शास्त्र सीखकर गीतार्थ हुए। एक बार उनके गुरु ने कहा : 'हे प्रभु, संसारी सगे-सम्बन्धी को वंदन-नमस्कार के लिए जाने की मुझे इच्छा है तो मुझे आज्ञा दीजिए।' गुरु ने आज्ञा दी, सो वे सुग्राम गाँव गये। वहाँ उनके छोटे भाई भवदेव का नागिला के साथ ब्याह हो रहा था सो कोई जान नहीं पाया कि साधू आये हैं। वे गुरु के पास वापिस लौटे, अन्य साधूओं ने उनकी हँसी, उडायी फलस्वरूप भाई को प्रतिबोध प्राप्त कराने (भाई को दीक्षा दिलाने के लिए) की प्रतिज्ञा की। वे पुन: सुग्राम गाँव पधारे। उस वक्त नागिला को आभूषण पहनाने का उत्सव चल रहा था। आधा शृंगार सजा चुके थे उसी समय भवदत्त आये। उनके आने की खबर सुनकर भवदेव ने आकर उन्हें शीश झुकाया। उनको श्रद्धापूर्वक शुद्ध अन्न-जल की भिक्षा देकर वे प्रतिलाभित हुए। जाते समय भवदत्त ने भवदेव को थोडी दूरी तक साथ चलने को कहा और बोले, 'हे भवदेव ! तूझे धन्य है कि साधू पर तेरी ऐसी बढ़िया भक्ति है।'

बचपन की बाते करते करते भवदत्त भवदेव को गुरु महाराज जहाँ ठहरे थे वहाँ तक ले आये और गुरु महाराज को प्रणाम करके भवदत्त ने कहा, 'हे भगवान ! मेरे इस भाई को मैं आपके पास लाया हूँ, उसे दीक्षा लेने की इच्छा है।' ऐसा कहने पर गुरुजी ने भवदेव को दीक्षा दी। भवदेव भाई को ना न कह सका।

तत्पश्चात् भवदत्त ने एक मुनि और अपने भाई भवदेव को साथ लेकर नमस्कार के अन्यत्र विहार कर दिया। भवदेव भाई के वचन के कारण संयम पालने लगा लेकिन जैसे हस्ती को हस्तीनी की याद सताये वैसे ही उसको नागिला याद आने लगी। कालानुसार भवदत्त तो तीव्र तपश्चर्या करके कालधर्म पाकर स्वर्ग को गये इसलिये अकेले पड़ने पर भवदेव अन्य साधुओं को वहीं सोता हुआ छोड़कर नागिला का स्मरण करते हुए रात्रि के समय निकल पड़े।

भवदेव चलते चलते सुग्राम गाँव की सिवान में स्थित एक मंदिर में ठहरे। नागिला को भवदेव के आने के समाचार मिले और उसके लिए ही भवदेव चारित्र छोड़ देने के लिए तैयार हुए हैं ऐसा पता चलने पर एक वृद्ध श्राविका को सब बात समझायी। एक बालक को थोड़ा समझा-सीखाकर तैयार किया था।

रात्री पूरी होने पर वृद्ध स्त्री नागिला के साथ भवदेव जहाँ था उस मंदिर में आई। भवदेव ने पूछा, 'यहाँ नागिला कहाँ रहती है ? वह क्या करती है ?' उस समय पहले से सीखाया हुआ बालक वहाँ आया और कहने लगा, 'हे माता ! मुझे आज गाँव में भोजन का आमंत्रण मिला है, वहाँ दक्षिणा भी मिलनेवाली है, सो तू घर चल; विलम्ब मत कर। मुझे प्रथम तो दूध पीकर वमन करके निकाल देना है और वहाँ भोजन-दक्षिणा ले आने के बाद वमन किया हुआ वापिस पी जाऊँगा।' ऐसा सुनकर भवदेव हँसकर कहने लगे, 'अहो... यह बालक ! ऐसा वमन किया हुआ निंदा के योग्य दूध फिर से पीयेगा ?'

यह सुनकर नागिला बोली, 'मैं आपकी स्त्री नागिला हूँ। पूर्व आपके द्वारा त्याग की हुई मुझे पुनः आप क्यों ग्रहण करना चाह रहे हो। ऐसा कौन अज्ञानी है जो वमन किये हुए आहार को पुनः ग्रहण करने के भांति छोडी हुई स्त्री को प्राप्त करना चाहे। स्त्री को अनंत दुःख की खान समान कही है, इसलिये हे मूढ़ाशय ! नवविवाहित वधू भाँति मुझे याद करते हुए आप यहाँ पधारें। लेकिन अब अवस्था से जर्जरित मुझे देखो। संसार में क्या सार है ? और हे साधक ! संसार समुद्र में गिरते प्राणियों के तारक जहाज समान इस दीक्षा का त्याग करके दुर्गति देनेवाली स्त्री को क्यों ग्रहण करना चाहिये।'

आखिर में मुझे कहते हुए आनंद आ रहा है कि मैंने गुरु से आजीवन शीलव्रत ग्रहण किया है क्योंकि स्त्रीयों को शील ही एक उत्तम आभूषण है। इसलिये हे नाथ ! आप गुरु के पास जाओ और शुद्ध चारित्र प्राप्त कर लो।'

स्त्री से प्रतिबोधित और खुश हुए भवदेव नागिला से क्षमा याचना करके अपने गुरु के पास गये। वहाँ उन्होंने अपना दुश्चरित्र सम्यक् प्रकार से छोड़कर पुनः चिरकालपर्यंत शुद्ध चरित्र पाला। कालानुसार वे सौधर्म देवलोक में देवता बने। इस भवदेव का जीव शिवकुमार के रूप में वितशोका नगरी में पद्मरथ राजा की पटरानी वनमाला की कोख से उत्पन्न हुआ। अपनी इच्छा होने पर भी माँ-बाप की अनुमति न मिलने से शुद्ध श्रावक धर्म पालकर अंत में अनशन ग्रहण किया और भाव चारित्रवान शिवकुमार ब्रह्मदेव लोक में विद्युतमाली देवता बने।

यही भवदेव याने विद्युतमाली का जीव वहाँ से ऋषभदत्त सेठ का पुत्र जंबूकुमार के रूपमें अवतरित हुआ। वह केवलज्ञान प्राप्त करके, मोक्ष जायेंगे और केवली होंगे। उनके पश्चात् अन्य कोई जीव केवलज्ञान इस अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्रमें नहीं पायेगा। इसलिये मोक्ष भी कोई जीव जंबूस्वामी के बाद नहीं जायेगा।

●

६१ सती सुलसा

राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसके यहाँ नाग नामक सारथि था। श्रेष्ठ शील से, गुण से शोभित सुलसा नामक उनकी स्त्री थी। आँगन में मस्ती से खेलते हुए अन्य श्रेष्ठी पुत्रों को खेलते हुए देखकर वह सोचने लगा, 'अहो ! जहाँ छोटे छोटे बालक न हों उन घरों को घर न कहा जाये। हं... मेरा अच्छा वैभव लेकिन संतति न हो वह अच्छा नहीं' — ऐसे विचार से वह चिंता करने लगा।

अपने पति को शोकपीड़ित देखकर सुलसा बोली, 'स्वामी आप क्यों खेद करते हो ? धर्म का विशेष रूप से सेवन कीजिये। धर्म के प्रभाव से आपकी सर्व मनोकामनाएँ पूर्ण होगी और आज से मैं भी विशेषरूप से धर्म आराधना करूंगी।'

दोनों ही धर्मआराधना भली प्रकार से कर रहे थे। पुत्र न होने की चिंता नाग रथिक को सदैव सताये जा रही थी। पति की इस स्थिति को देखकर सुलसा ने एकबार पूछा :'अहो... प्राणेश ! क्यों, किसकी चिंता करते हो ? ऐसे खोये खोये क्यों रहते हो ? आपके चित्त में जो भी चिंता हो वह कहो।' प्रिया के ऐसे वचन सुनकर नाग रथिक हँसकर बोला, 'हे प्रिये ! मुझे तुझसे छिपाने जैसा कुछ भी नहीं है जो तुझे न कहा जाय, तुझे आज तक पुत्र नहीं हुआ उसका मुझे भारी दुख है।'

पति के ऐसे वचन सुनकर सुलसा बोली, 'हे स्वामीनाथ ! ऐसा लगता है कि मेरे उदर से बालक की उत्पत्ति नहीं होगी। आप दूसरी स्त्री ले आओ, उसे पुत्र होगा सो आप पुत्रवान बनेंगे।' तब पति ने कहा, 'हे प्राणेश्वरी ! यदि मुझे कोई राज्यसहित,अपनी पुत्री दे तो भी मैं अन्य स्त्री की कामना नहीं रखता। खीर को छोड़कर दलिया कौन खाना चाहे ? यदि इस भव में तूझ से पुत्र प्राप्ति होगी तो ठीक, नहीं तो पुत्र बिना रहेंगे।'

स्वामी ने ऐसा कहा इसलिये सुलसा सोच में डूब गई।

'मनुष्य के लिये धर्म ही कल्पवृक्ष है, वही चिंतामणि है और वही उसकी कामधेनु है, सो धर्म ही इच्छित फल प्राप्त करने का एकमात्र साधन है।' ऐसा विचार करके सुलसा धर्मकार्य के लिए विशेष तत्पर हुई; जिनपूजा करने लगी और चतुर्विध आहार सुपात्रों को देने लगी। और ब्रह्मचर्य, भूमि पर शयन और आयंबिल का तप

करने लगी। इन्द्र ने उसका सत्त्व अवधिज्ञान से ज्ञात करके, अपनी सभा में उसकी प्रशंसा की, 'इस समय मृत्युलोक में सुलसा नामक श्राविका है। वह ऐसी है कि उसे धर्मकार्य में से कोई भी चलित नहीं कर सकता।' यह प्रशंसा सुनकर हरिणेगमेषी देव सुलसा की परीक्षा करने के लिये स्वर्ग से दो साधुओं का रूप लेकर नागरथिक के घर पधारे। दो साधुओं को आते देखकर सुलसा प्रसन्न होकर खड़ी हो गई और साधू मानकर उन्हें वंदन किया। तब वे बोले, 'श्रद्धालु श्राविका ! एक साधू बीमार हो गये हैं, उन्हें शरीर पर लगाने के लिये सहस्रपाक नामक तैल की हमें जरूरत है, इसकी व्यवस्था है ? उसने हाँ कही और तैल की बोतलें जहाँ रखी थी वहाँ श्रद्धापूर्वक बोतल लेने गई। वहाँ से बोतल लेकर देने जा रही थी की देवता की माया से जमीन पर गिरकर बोतल टूट गई। तब सुलशा दूसरी बोतल लेने गई, वह भी आते आते टूट गई। इस प्रकार सात बोतलें टूटने पर उसका भाव पूर्वानुसार का ही देखकर देवता प्रकट हुए और अभिनंदन देकर बोला, हे कल्याणी, तू डरना नहीं। इन्द्र महाराज ने तेरे सत्त्व की प्रशंसा की जिससे तेरी परीक्षा करने मैं साधू रूप धारण करके आया हूँ। वाकई में तू सत्त्वधारी है। तेरा सत्त्व देखकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ। इसलिये तू मुझसे कुछ वर मांग।' उसने कहा, 'यदि ऐसा ही है तो मुझे पुत्र हो ऐसा वरदान दो।' देवता ने खुश होकर बत्तीस गोलियां देकर कहा, 'इसमें से एक एक गोली खाने से एक एक पुत्र होगा' कहकर तैल की बोतलें पुनः जोड़कर देवता अपने स्थानक पर गया।

प्रभुपूजा में तत्पर ऐसी सुलसा भोगविलास करते करते एक बार ऋतुकाल प्राप्त होने पर भी धर्मशील सुलसा सोचने लगी, मुझे अधिक पुत्रों का क्या करना है? यदि एक ही पुण्यवान् और सर्वज्ञ की पूजा करनेवाला पुत्र होगा तो एक से भी सुख प्राप्त होगा। बत्तीस पुत्र होने पर उनके मल-मूत्रादि से धर्मकार्य में बड़ा विघ्न होगा। इसलिये बत्तीस लक्षणवाला एक ही पुत्र हो तो अच्छा। ऐसा सोचकर सुलसा वह बत्तीस गुटिका एक साथ खा गई। इससे बत्तीस गर्भ एक साथ उसके पेट में ठहर गये। उस बोझ के कारण उसे असह्य वेदना होने लगी। उसने 'हरिणीगमेषी' देव के नामका काउस्सग किया तो देव उनके पास आया। उसने सुलसा की वेदना हर ली और कहा, 'तूने बडा अयोग्य काम कर डाला, क्योंकि तू बत्तीस गोलियाँ एक साथ खा गई है तो तू बत्तीस पुत्रों को एक साथ जनेगी, इतना ही नहीं उन सबका आयुष्य एकसा होगा। वे सब एक साथ मृत्यु पायेंगे।

तब सुलसा बोली, 'जीव जो शुभाशुभ कर्म बांधता है, वह भोगे बिना उसका छूटकारा नहीं होता।' हरिणेगमेषी देव ने भी कहा, 'बराबर है, भवितव्यता का कोई उल्लंघन कर नहीं सकता।'

सुलसा बोली :'हे हरिणेगमेषी ! मुझे अब क्या करना ? मैंने यह कार्य गलत तो किया ही है; यदि कर्म मेरे अनुकूल हो और तुम्हारी शक्ति हो तो मेरी उदर की व्यथा दूर कर, नहीं तो मैं मेरा कर्म भोगूंगी। यदि तू मेरी व्यथा दूर करेगा तो जिनशासन की उन्नति होगी। इससे देव ने प्रसन्न होकर उसके उदर की पीड़ा दूर कर दी और अपने स्थान पर लौट गया। तत्पश्चात् सुलसा धर्म में चित्त जोड़कर, शुभ आहार से गर्भ का पोषण करने लगी और उसने संपूर्ण समय पर सुस्वप्न में सूचित ऐसे बत्तीस पुत्रों को जन्म दिया। नागरथिक ने महादान देकर उनका जन्मोत्सव मनाया।

कालक्रमानुसार बत्तीस पुत्र युवा हुए और वे बत्तीस भाई श्रेणिक राजा के विश्वासु सेवक बनें।

उस समय विशाला नगरी में चेटक नामक राज्य करता था। उसको सात पुत्रियाँ थी। उसमें सुज्येष्ठा सबसे बड़ी थी। एक बार कोई तपस्विनी दरबार में माँगने के लिए आयी थी। उसने अपने मिथ्यात्व धर्म के बखान किये, सुज्येष्ठा ने उसका तिरस्कार करके हाँक निकाला। इस कारण जोगन ने सुज्येष्ठा पर कोपायमान होकर उसके रूप का एक चित्र बनाकर श्रेणिक राजा को दिखाया। सुज्येष्ठा का सौंदर्य अत्यंत प्रशंसालायक होने के कारण श्रेणिक राजा उस पर मोहित हुआ और उसके साथ शादी करने का सोचा परंतु चेटक राजा के साथ लम्बे अरसे से दुश्मनी होने के कारण वह शायद अपनी पुत्री से शादी नहीं करायेगा - ऐसा सोचकर मन में उदास रहने लगा। अभयकुमार उसका पुत्र और मुख्य दीवान होने से उदासी का कारण श्रेणिक से जान लिया।

अभयकुमार ने विशाखा नगर में जाकर वणिक बनकर दरबार के दरवाजे के नजदीक एक दुकान लगाई। दरबार की दासियाँ इस दुकान से माल खरीदने लगी पर सुज्येष्ठा की दासी माल खरीदने आती तो अभयकुमार राजा के चित्र की पूजा करने के लिए बैठता। हररोज ऐसा होने से दासी ने पूछा, 'यह किसकी पूजा करते हो ?' उसने जवाब दिया, 'सत्यवादी और पूर्ण न्यायी राजा श्रेणिक की पूजा करता हूँ। ऐसा कहकर श्रेणिक की तस्वीर बतायी। तस्वीर देखकर वह मोहित हो

गई और उसे लेजाकर सुज्येष्ठा को बताई। सुज्येष्ठा भी देखनेमात्र से मोहित हो गई। उसने अभयकुमार को कहलवाया कि मेरे बाप से छिपाकर मुझे श्रेणिक के साथ शादी करनी है, उसमें तू सहायक हो।' उसकी मरजी देखकर अभयकुमार ने राजगृही से उसके महल तक की सुरंग भूमि में बनवाई और दासी के साथ कहलवाया कि अमुक दिन राजा स्वयं सुरंग मार्ग से तूझे लेने आयेंगे। श्रेणिक को भी कहलवाया। निश्चित किये हुए दिन श्रेणिक अपने चुनंदे बत्तीस आप्त पुरुष (सुलसा के पुत्रों) को लेकर सुरंग मार्ग से आया। सुज्येष्ठा वहाँ से रवाना होने लगी तो उसकी छोटी बहिन चेलणा ने भी श्रेणिक के साथ शादी करने की जिद्द पकडी, वह भी सुज्येष्ठा के साथ सुरंग में आ गई। कुछ मार्ग काटने के बाद सुज्येष्ठा को तब याद आया और बोली, 'मेरे आभूषण का डिब्बा मैं भूल आई हूँ, मैं वापिस जाकर ले आऊँ तब तक आप यहाँ से आगे बढ़ना मत।' ऐसा कहकर वह वापिस लौटी। परंतु चेलणा ने तो तुरंत श्रेणिक को कहा, 'महाराज, शत्रु की सीमा में अधिक समय तक रहना खतरे से भरा हुआ है।' ऐसा समझाकर उसके साथ चल निकली। सुज्येष्ठा आभूषणों को लेकर आई तो श्रेणिक और चेलणा को न देखें, इसलिये उन पर कोपायमान होकर अपने महल वापिस लौटी और चिल्लाने लगी, 'अरे ! यह कोई दुष्ट मेरी बहिन चेलणा को उठाकर भाग रहा है, हरण करके ले जा रहा है।' यह सुनकर राजा और सैनिक आ पहुँचे। राजा के हुक्म से सैनिक सुरंग मार्ग से श्रेणिक के साथ युद्ध करने दौड़े। उस समय श्रेणिक की ओर से सुलसा के बत्तीस पुत्र सामना करके सैनिकों के साथ युद्ध करने लगे। उस समय श्रेणिक चेलणा को लेकर बहुत आगे निकल चुका था और अपने नगर में पहुंचकर तुरंत उसके साथ शादी कर ली। संग्राम में सुलसा के बत्तीस पुत्र एक साथ मारे गये। यह खबर सुनकर सुलसा दुःख व्यक्त करने लगी तब अभयकुमार ने उसे समझाया कि, समकितधारी होकर तू अविवेकी के भाँति क्यों शोक करती है ? यह शरीर तो क्षणिक है इसलिये शोक करने से क्या होगा ? इस प्रकार धार्मिक रूप से सांत्वना देकर सुलसा को शांत किया।

एक बार चंपानगरी से अंबड परिव्राजक (संन्यासी वेधधारी एक श्रावक) राजगृही नगरी जाने के लिये तैयार हुआ। उसने श्री महावीर स्वामी को वंदना करके बिनती की, 'स्वामी ! आज मैं राजगृही जा रहा हूँ।' भगवंत बोले, 'वहाँ सुलसा श्राविका को हमारा धर्मलाभ कहना।' वह वहाँ से निकलकर राजगृही नगर आ

पहुँचा। उसने मन में सोचा, जिसके लिये प्रभु स्वयं अपने मुख से धर्मलाभ कहलवा रहे हैं तो वह वाकई दृढ़धर्मी ही होगी। उसकी धर्म के विषय में स्थिरता कैसी है इस बारे में मुझे उसकी परीक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार के विचार से वह पहले दिन राजगृही के पूर्व दिशा के दरवाजे पर अपने तपोबल से उत्पन्न शक्ति से साक्षात् ब्रह्म का रूप लेकर बैठा। ऐसा चमत्कार देखकर नगर के सर्व लोक दर्शन के लिये आये पर सुलसा श्राविका न आई। दूसरे दिन दूसरे दरवाजे पर महादेव का रूप धरकर बैठा। वहाँ भी नगर के सब लोग भक्त बनकर उसके दर्शन के लिये आये लेकिन सुलसा न आई। तीसरे दिन तीसरी दिशा के दरवाजे पर विष्णु का रूप धरकर बैठा। वहाँ भी नगर के सब लोग आये पर सुलसा न आई। चौथे दिन चौथे दरवाजे पर समवसरण की रचना की, पच्चीसवें तीर्थंकर का रूप लेकर बैठा। वहाँ भी दूसरे लोग आये लेकिन सुलसा न आई, इसलिये उसने कोई मनुष्य के साथ सुलसा को कहलवाया कि तूझे पच्चीसवें तीर्थंकर ने वंदन के लिये बुलवाया है तब सुलसा ने उत्तर दिया, 'भद्र ! पच्चीसवें तीर्थंकर कभी हो ही नहीं सकते, वह तो कोई कपटी है और लोगों को ठगने के लिये आया है। मैं तो सच्चे तीर्थंकर महावीर स्वामी के सिवाय दूसरे किसीको वंदन करूंगी नहीं।

अंबड श्रावक को लगा कि यह सुलसा थोड़ी भी चलायमान होती नहीं है इसलिये वह वाकई वह स्थिर स्वभाववाली है, ऐसा जानकर अंबड अब श्रावक का भेष लेकर सुलसा के घर गया। सुलसा की बड़ी प्रशंसा करके बोला, 'है भद्रे ! तू वाकई पुण्यशाली है क्योंकि भगवंत श्री महावीर स्वामी ने मेरे साथ 'धर्मलाभ' कहलवाया है।' इतना सुनते ही वह तुरंत उठ खड़ी हुई और भगवंत को नमस्कार करके स्तवन करने लगी, 'मोहराजा रूपी पहलवान के बल का मर्दन कर डालने में धीर, पापरूपी कीचड़ को स्वच्छ करने के लिए निर्मल जल जैसे, कर्मरूपी धूल को हरने में एक पवन जैसे, हे महावीर प्रभु ! आप सदैव जयवंत रहें।' अंबड श्रावक सुलसा को ऐसी दृढ़ धार्मिणी देखकर कई कई अनुमोदना करके स्वस्थानक लौटे। सुलसाने ऐसे उत्तम गुणों से शोभित अच्छे धर्मकृत्य करके स्वर्ग की संपदा प्राप्त की। वहाँ से इस भरतखण्ड में अगली चौबीसी में निर्मम नामक पन्द्रहवें तीर्थंकर बनकर मोक्षपद प्राप्त होगा।

●

६२ शीलवती

जो मनुष्य अपनी विवाहित स्त्री से संतुष्ट होकर परस्त्री से विमुख रहते हैं वे गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचारीपने से यति समान कहलाते हैं।' इस बारे में निम्नानुसार प्रबंध है।

श्रीपुर नगर में कुमार एवं देवचन्द्र नामक दो राजकुमार बंधु थे। एक बार वे धर्मगुरु की देशना सुनने उद्यान में गये। वहाँ गुरु ने देशना में कहा कि 'कोई मनुष्य कोटी सुवर्णमुद्राओं का दान दे अथवा श्री वीतराग का कंचनमय प्रासाद बनायें तो इससे उसे उतना पुण्य नहीं होता जितना ब्रह्मचर्य धारक को होता है। कितने ही प्राणी शीलवती की भाँति दुख में भी अपना शीलव्रत छोडते नहीं है, यह कथा इस प्रकार है।

लक्ष्मीपुर नगर में समुद्रदत्त नामक श्रेष्ठी था। वह अपनी शीलवती नामक प्रिया को घर पर छोड़कर सोमभूति नामक एक ब्राह्मण के साथ परदेश गया। विप्र तो कुछ दिन रहकर श्रेष्ठि का संदेशपत्र लेकर अपने घर लौट आया। खबर मिलते ही शीलवती अपने पति का भेजा हुआ संदेशपत्र लेने के लिए सोमभूति के घर गई। विप्र उस सुंदर स्त्री को देखकर कामातुर हुआ। वह बोला, 'हे कृशोदरी ! प्रथम मेरे साथ क्रीडा कर, तत्पश्चात् मैं तेरे पति का संदेशपत्र दूंगा। वह चतुर स्त्री सोचकर बोली, 'हे भद्र ! रात्रि के प्रथम प्रहर में आप मेरे घर आएँ।' इस प्रकार कहकर वह सेनापति के पास गई और कहा, 'हे देव ! सोमभूति मेरे पति का संदेशपत्र लाया है लेकिन मुझे देता नहीं है। यह सुनकर और उसके सौंदर्य पर मोहित होकर वह बोला, 'हे सुंदरी ! प्रथम तो मैं कहूँ वह स्वीकार ले तो तूझे पत्र दिला दूँ।' व्रतभंग के भय से उसे दूसरे प्रहर में अपने घर पधारने का निमंत्रण देकर मंत्री के पास गई। उसको फरियाद की, उसने भी मोहित होकर वैसी ही पापी माँग की। और तीसरे प्रहर रात्रि को अपने घर पधारनें का कहकर वह राजा के पास शिकायत करने गई। राजा ने भी उसे वैसी ही बात की। इस कारण वह चौथे प्रहर अपने घर पधारने का निमंत्रण देकर अपने घर लौट आई। अपनी सास के साथ संकेत निश्चिंत किया कि, आप मुझे रात्रि के चौथे प्रहर में बुलायेगी, इस प्रकार संकेत बताकर वह अपने एकांतवास में तैयार खड़ी रही।

प्रथम प्रहर में वह ब्राह्मण आया। स्नान-पान वगैरह में उसने प्रथम प्रहर व्यतीत कर दिया। तय किये हुए संकेत अनुसार सेनापति का आगमन हुआ। यह जानकर ब्राह्मण भय से कांपने लगा। इस कारण उसे बडे संदूक के एक खाने में डाला। इसी प्रकार सेनापति, मंत्री और राजा को भी संदूक के खानों में बंद कर दिया। इस प्रकार चारों को बंद करके प्रात:काल में रुदन करने लगी। आसपास रहते पडौसियों वगैरह ने आकर पूछा :'भद्रे ! रुदन क्यों कर रही हो ?' वह बोली, 'मेरे स्वामी की दु:खकथा सुनकर रो रही हूँ।' ऐसा सुनकर इस सेठ के अपुत्र निधन हो जाने के कारण समाचार देने के लिये उसके रिश्तेदार राजा, मंत्री एवं सेनापति के पास गये, लेकिन वे तो अपने स्थान पर थे ही नहीं, इस कारण उन्होंने राजपुत्र के समक्ष जाकर सूचना दी, 'हे कुमार ! समुद्रदत्त श्रेष्ठी का परदेश में ही अपुत्र निधन हुआ है। उसकी समृद्धि आप ग्रहण कीजये।' कुमार उसके घर गया, घर में तो उसे कुछ न दिखा, एक बड़ा संदूक नजर आया। राजभवन में लेजाकर उसने संदूक खुलवाया तो उसमें से विप्र, सेनापति, मंत्री एवं राजाजी - चारों लज्जित होते हुए बाहर निकले। राजा ने ब्राह्मण, सेनापति और मंत्री-तीनों को देशनिकाला दिया और शीलवती का भली भाँति सत्कार किया व उसकी बड़ी प्रशंसा की।

इस प्रकार गुरु से धर्म सुनकर कुमार ने स्वदारा संतोषव्रत ग्रहण किया और देवचन्द्र मुनि विहार करते करते श्रीपुर के नजदीक एक देवालय में आकार रूके। यह ज्ञात होते ही कुमारचन्द्र राजा उनके दर्शनार्थ गये और वापिस लौटे। यह खबर जानकर रानी ने ऐसा अभिग्रह किया कि 'कल सबेरे देवचन्द्र यति के दर्शन - वंदना के बाद ही भोजन करूंगी।' प्रभात के समय मुनि को वंदन करने निकली, उस समय नदी में बाढ़ आई थी और बारिश बरस रही थी सो रानी चिंता करती हुई किनारे पर ही खड़ी रही। राजा ने उसे बुलाकर कहा, 'हे प्रिये ! तुम नदी को ऐसा कहो कि 'हे नदी देवी ! जिस दिन से मेरे देवर ने दीक्षा ली है उस दिन से मेरे पति वाकई मे ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर रहे हो तो मुझे मार्ग दीजिए।' ऐसा सुनकर रानी ने सोचा कि, मेरा पति यूं कहता तो है लेकिन उसके ब्रह्मचर्य की बात मैं क्या नहीं जानती ? तो भी यह ठीक रहेगा; जो भी होगा वह मालूम हो जायेगा। इसलिये अभी तो मैं पति की बात स्वीकार लूं, क्योंकि पति के वाक्य में शंका लाऊंगी तो मेरा पतिव्रत खण्डित हो जायेगा। शास्त्र में कहा है कि जो सती स्त्री पति के वाक्य

में, सेवक राजा के वाक्य में और पुत्र पिता के वाक्य में शंका लाये तो वह अपने व्रत को खण्डित करते हैं।' ऐसा खयाल करके नदी के पास गई और विनय से अपने पति के वाक्य कहे, 'हे नदी देवी ! जिस दिन से मेरे देवर ने व्रत लिया है उस दिन से लेकर यदि मेरे पति वाकई ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर रहे हो तो मुझे मार्ग दीजिए।' इस कारण नदी ने तत्काल मार्ग दिया। वह नदी उतरकर दूसरी ओर के देवालय मे पहुँचकर अपने देवर मुनि से धर्म सूना। मुनि ने पूछा, तुमको नदी ने किस प्रकार मार्ग दिया? इसलिये उसने जो यथार्थ था वह कह सुनाया। मुनि ने कहा, 'हे भद्रे, सुन ! मेरे सहोदर बंधु भी मेरे साथ व्रत लेना चाह रहे थे लेकिन लोगों के अनुग्रह से उन्होंने राज्य का स्वीकार किया है। वे व्यवहार से राज्य व इन्द्रियों के भोग का अनुभव करते हैं यद्यपि वे निश्चय से ब्रह्मचारी हैं। कीचड़ में कमल की तरह गृहवास रहते हुए राजा का मन निर्लेप होने से वे ब्रह्मचारी ही है। तत्पश्चात् रानी का अभिग्रह पूरा होने से एक कौने में जाकर साथ लाये शुद्ध आहार से अपने देवर महाराज को प्रतिलाभित किया और स्वयं भी भोजन किया। जब रानी को वापिस लौटने की इच्छा हुई तब चलते वक्त रानी ने मुनि को पूछा कि नदी पार कैसे करनी ? मुनि बोले : 'आप नदी को इस प्रकार प्रार्थना करना, 'हे नदी देवी ! जब से इन मुनि ने व्रत ग्रहण किया है तब से वे सदैव उपवासी रहकर विचरते हो तो मुझे मार्ग दो।' इससे चकित होकर रानी नदी किनारे गई और मुनि के कहे अनुसार वाक्य सुनाते ही नदी ने मार्ग दे दिया। वह मार्ग उतरकर अपने घर आई। विस्मय पाकर रानी ने राजा को वृत्तांत सुनाकर कहा, 'हे स्वामिन्! आज ही मैंने आपके बंधु मुनि को पारणा कराया था फिर भी उन्हें उपवासी कैसे कहा जाय ! राजा बोला : 'हे देवी सूनो: इसके बारे में शास्त्र में कहा है कि 'साधू निरवध आहार करते होने से नित्य उपवासी हैं, सिर्फ उत्तर गुण की वृद्धि करने के लिए ही बे शुद्ध आहार लेते हैं, फिर भी वे उपवासी ही हैं। पति तथा देवर ने मन, वचन, काया से शीलादि धर्म स्वीकारा था उपरोक्त अनुसार शील व्रत के महात्म्य से जिस नदी ने राजा की प्रिया को मार्ग दिया, उसी प्रकार जो प्राणी उस व्रत को मन से धारण करते हैं, उसके कर्मरूप समुद्र भी अक्षर ऐसे शिव को मार्ग देते हैं।'

●

६३ सिंह श्रेष्ठी

बसंतपुर नामक नगर में कीर्तिपाल नामक राजा थे। उन्हें भीम नामक एक पुत्र था। और उसको सिंह नामक एक पक्का जैन मित्र था। वह अपने कुमार से भी राजा को विशेष प्रिय था। एक बार किसी पुरुष ने आकार राजा को कहा, 'हे देव ! नागपुर के राजा नागचन्द्र को रत्नमंजरी नामक एक रूपवती कन्या है, उसके एक रोम के दर्शन करने से दो ब्रह्म का अनुभव होता है और उसका दर्शन करने से दो कामदेव की पूर्णता होती है। उस कन्या के समान अन्य कोई कन्या नहीं है। वह कन्या आपके कुमार के योग्य है, ऐसा सोचकर मुझे अपना विश्वासु जानकर, आपके पास प्रार्थना करने भेजा है; इसलिये उसके साथ ब्याह करने आपके कुमार को मेरे साथ भेजो।'

दूत के ऐसे वचन सुनकर राजा ने अपने प्रिय मित्र सिंह को कहा, 'मित्र ! हमारे दो में कुछ भी अंतर नहीं है। आप कुमार को लेकर नागपुर जाओ और विवाह करके आओ। सिंह श्रेष्ठि ने अनर्थ दण्ड के भय से राजा को कुछ भी उत्तर न दिया; इस कारण राजा क्रोधित होकर बोला, 'क्या आपको यह सम्बन्ध जचता नहीं है ?' श्रेष्ठी बोला, 'राजेन्द्र ! मुझे जचता तो है लेकिन मैंने १०० योजन के उपरांत कहीं भी नहीं आने-जाने का नियम लिया है। और यहां नागपुर सवासो योजन दूर पड़ता है; इस कारण व्रत भंग होने के भय से मैं वहाँ जाऊँगा नहीं। यह सुनते ही अग्नि में घी होमने से अग्नि के समान राजा की कोपाग्नि की ज्वालाएँ विशेष प्रज्वलित हो उठी, और वह बोला, अरे ! क्या तू मेरी आज्ञा नहीं मानेगा ? तूझे ऊँट पर बिठाकर सहस्र योजन तक भेज दूंगा।' सिंह बोला, 'स्वामी ! मैं आपकी आज्ञानुसार करूंगा।' यह सुनकर राजा प्रसन्न हुआ। अपने पुत्र को सैन्य के साथ तैयार करके सिंह श्रेष्ठि को हरेक क्रिया का मुखिया बनाकर कुमार के साथ भेज दिया। मार्ग में सिंह ने प्रतिबोध देकर भीमकुमार की संसारवासना तोड़ डाली। सौ योजन चलने के बाद सिंह श्रेष्ठि आगे न बढ़ा। सैनिकों ने कुमार को एकांत में कहा : 'कुमार ! राजा ने हमें गुप्त आज्ञा दी है कि यदि सिंह श्रेष्ठि सौ योजन से आगे न बढ़े तो आपको उसे बंदी बनाकर नागपुर ले जाना।' कुमार ने अपने धर्मगुरु सिंह श्रेष्ठि को इस बात का निवेदन किया। सिंह ने राजकुमार को कहा, 'कुमार !

इस संसार में प्राणी का शरीर भी अपना नहीं है तो अन्य कोई कैसे होगा ? इसलिये मैं तो यहीं पादपोपगम अनशन करूंगा। पश्चात् वे मुझे यहाँ से बांधकर ले जायेंगे तो भी क्या करेंगे ?' इस प्रकार सिंह श्रेष्ठि शेर की तरह अनशन लेने चला। कुमार भी उसके साथ गया। रात्रि हुई। सैनिकों ने कुमार और सिंह को देखा नहीं तो वे चारोंओर उन्हें ढूंढने लगे। ऐसा करते हुए थोड़े दूर पर्वत पर वे दोनों उनके देखने में आये। परंतु दीक्षा और अनशन का प्रारंभ कर बैठे उन दोनों को देखकर सैनिकों ने प्रणाम करके कहा : 'हे महाशयो ! हमारा अपराध क्षमा करें। परंतु हे स्वामी ! यह खबर सुनकर महाराजा हमें कोल्हू में डालकर पीस डालेगा।'

इस प्रकार कहकर वे बहुत गिड़गिड़ाए। फिर भी उन्होंने जरा सा भी क्षोभ न पाया। कहा गया है कि 'संतोषरूपी अमृत तृप्त हुए योगी भोग की इच्छा नहीं करते है; क्योंकि वे तो मिट्टी तथा स्वर्ण में और शत्रु तथा मित्र में कुछ फर्क समझते नहीं है।

अनुक्रम से यह बात कीर्तिपाल राजा को ज्ञात हुई, इससे उसने निश्चय किया कि 'कुमार को बांध कर शादी करा देनी व सिंह को शत्रु की तरह मार डालना।' इस विचार से राजा उनके पास आया तो वहाँ बाघ आदि प्राणियों को दोनों के चरणों की सेवा करते देखकर राजा आश्चर्य में पड़ गया और सोचा, 'इन दोनों को भक्ति वचन से ही बुलाऊँ। इस प्रकार वह विनयी वाक्यों से उन्हें बुलाने लगा। परंतु दृढ प्रतिज्ञावाले वे थोड़ा सा भी चलित नहीं हुए। क्रमानुसार मासोपवास के अंत में केवलज्ञान प्राप्त करके सुर-असुरों ने जिन्हे शीश झुकाया वे दोनों मुक्ति को प्राप्त हुए। उनका मुक्ति प्रयाण जानकर कीर्तिपाल राजा ने उच्च स्वर में कहा, 'हे मित्र ! तेरा तो ऐसा निश्चय था कि सौ योजन से अधिक जाना नहीं, परंतु इस बार तू मुझे छोड़कर असंख्य योजन दूर रहे शिवनगर को क्यों चला गया ?' इस प्रकार विलाप करते हुए राजा अपने नगर में आया।' प्राण त्याग करना पड़े भले ही लेकिन स्वीकार किये हुए व्रत का त्याग करना ठीक नहीं - ऐसा दृढ़ विचार रखकर सब भव्य प्राणियों को सिंह श्रेष्ठि जैसा दिग्विरति व्रत ग्रहण करना चाहिए।

●

ॐकार बिन्दु-संयुक्त, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः,
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः।

६४ पुष्पचूला

गंगा नदी के तट पर पुष्पभद्रा नामक नगर था। वहाँ पुष्पकेतु नामक राजा राज्य करता था। उसकी पुष्पावती नामक रानी थी। उस रानी ने एक बार एक साथ दो बालक जने। उसमें एक पुत्र और एक पुत्री थी। उन दोनों के नाम अनुक्रम से पुष्पचूल और पुष्पचूला रखे।

साथ साथ खेलते खेलते बड़े होते वे दोनों बालकों को देखकर राजा को एक विचार हुआ कि यदि इन दोनों बालको को ब्याह के कारण अलग होना पड़ेगा तो उनका स्नेह खण्डित होते ही वे तरसते हुए तड़प तड़प कर मर जायेंगे। मैं भी उनका वियोग सहन न कर सकूंगा, सो उनका ब्याह कर दिया जाये तो ठीक रहेगा। ऐसे विचार से उसने राज्यसभा में मंत्री के सम्मुख प्रकटरूप से पूछा, 'अंत:पुर में जो रत्न उत्पन्न होते हैं उनका स्वामी कौन ?' मंत्री ने उत्तर दिया, 'आप ही उनके स्वामी कहे जाओगे।' इससे अपने पुत्र-पुत्री का परस्पर विवाह कर दिया। यह दुष्कृत्य रानी माँ सहन न कर पाई। उन्होंने बड़ा खेद पाया और वैराग्य पाकर व्रत धारण कर लिया। तीव्र तपश्चर्या करके रानी मृत्यु पाकर स्वर्ग में देवता के रूप में उत्पन्न हुई। पुष्पकेतु राजा की भी मृत्यु हो गई सो पुष्पचूल ने राज्यपद धारण किया और अपनी सगी बहिन के साथ संसार-व्यवहार के भोग भोगते रहा। पुष्पावती का जो जीव देवरूप में उत्पन्न हुआ था, उसने वधिज्ञान से ऐसा अकृत्य होता देखकर सोचा, 'अरे रे ! इस जगत के जीव इतने अधिक कामांध हैं कि राग में आसक्त होकर कार्य-अकार्य के बारे में कुछ सोचते ही नहीं है। इन दोनों को कुछ न कुछ बोध देना जरूरी है ऐसा सोचकर पुष्पचूला पर बड़ा प्रेम होने के कारण उसको नरक के दु:ख स्वप्न में दीखायें। ऐसे स्वप्न देखकर भयभीत होकर पुष्पचूला अपने पति को कहने लगी, 'पाप करने से नरक के कैसे दुख झेलने पडते है ? आज नरक के दु:ख देखकर बड़ा डर उत्पन्न हो गया है।' राजा ने दूसरे दिन जोगी, बाबा आदि को राजसभा में बुलाकर पूछा, 'नरक कैसा होता है ?' किसीने कहा कि इस जगत में गर्भावास में रहना ही नरक है। दूसरे किसीने कहा कि बंदीगृह में पड़ना ही नरक है, किसीने कहा कि दरिद्रता ही नरक है, कोई बोला कि परायी ताबेदारी ही नरक है।

रानी को सब उत्तर जचे नहीं सो अंत में उसने जैन मुनि के पास जाकर राजा को नरक का स्वरूप पूछा। उन्होंने कहा, नरक सात हैं। उसमें पहले नर्क में एक सागरोपम का, दूसरे में तीन सागरोपम का यूं सातवें नरक में तैंतीस सागरोपम् का आयुष्य है। कई नरकों में क्षेत्र वेदना है व कई में परधामीनी वेदनाएँ है। रानी ने रात्रि को स्वप्न में जो देखा था ऐसा ही नरक का स्वरूप जैनाचार्य के मुख से सुनकर वह बोली कि, 'आपको भी ऐसा स्वप्न आया था क्या ?' जैनाचार्य ने कहा, 'हे भद्रे ! हमें स्वप्न आया नहीं है पर हम जैन आगमों से सब कुछ जान सकते है।' रानी ने पूछा, 'महाराज! क्या क्या कार्य करने से प्राणी को नरक पड़ता है ?' गुरु ने उत्तर दिया, 'एक तो महाआरंभ करने से, दूसरा महापरिग्रह पर मूर्छा रखने से, तीसरा मांस या मांस जैसा भोजन करने से और चौथा पंचेन्द्रि जीव का वध करने से प्राणी नरक में उत्पन्न होता है।'

दूसरे दिन रात्री में देवता ने रानी को देवलोक के स्वप्न दीखायें। यह सुनकर सर्व दर्शनों के मुनियों को राजा के पूछने पर उत्तर ठीक न मिलने से जैनाचार्य को पूछा तो रानी नें जैसा स्वप्न देखा था वैसा ही वर्णन सुनकर, 'बडी खुश होकर पूछने लगी कि 'स्वर्ग का सुख कैसे पाया जाय ?' गुरु बोले, 'श्रावक अथवा साधू का धर्म पालने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।' रानी यह सुनकर उन पर बड़ी प्रसन्न हुई। अपने पति को कहने लगी, 'स्वामिन् ! आप आज्ञा दे तो मैं दीक्षा लूं।' रानी पर उसको इतना सारा प्रेम था कि वह उसका वियोग पल भर भी नहीं सह सकता था। लेकिन रानी के बहुत आग्रह पर राजा ने कहा, 'यदि तू सदैव मेरे घर पर भोजन लेने आवे तो मैं तूझे दीक्षा लेने की अनुमति दूं।' यह बात मान्य करने पर राजा ने अरणिका पुत्राचार्य से बड़े महोत्सवपूर्वक उसको दीक्षा ग्रहण करवाई। दीक्षा लेने के बाद वह हर रोज एक बार राजा को दर्शन देने जाती थी। इस प्रकार कुछ समय बीतने के बाद वहाँ ज्ञान के उपयोग से अकाल पड़ने का ज्ञात होते ही आचार्य द्वारा अपने शिष्यों को अन्य देश में विहार करने का कहने पर उन्होंने वहां से विहार किया। आचार्य महाराज अकेले ही वहाँ रहे। पुष्पचूला आचार्य महाराज को आहार, पानी वगैरह ला देती थी। सुश्रुषा व वैयावच्च (सेवा) करने में बेग्लानपूर्वक तत्पर रहती थी। इस प्रकार वैयावच्च करते रहने में कुछ काल बीतनें पर क्षपक श्रेणी में पहुँचते ही उसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ फिर भी गुरु की वैयावच्च करने में वह हंमेशां तत्पर रहती थी और उनको जो चीज पर रुचि हो वही ले आती थी। एक बार गुरु ने उसको पूछा, 'भद्रे ! बड़े लम्बे समय से तू मेरे मनचाहे आहार-पानी

ले आती हो, तो इसका पता तूझे कैसे चलता है ? तूझे कुछ ज्ञान हुआ है ? उसने कहा, 'हे पूज्य ! जो जिसके पास रहते हैं तो सहवास से उनके विचार क्या नहीं जान सकते? (मुझे केवलज्ञान प्राप्त हुआ है - ऐसा बताया नहीं क्योंकि ऐसा ज्ञात होने पर आचार्य उससे आहार-पानी न मंगवाते) एक बार वह बरसते बरसात में आहार-पानी ले आयी। आचार्य ने कहा, 'हे कल्याणी ! तू श्रुतसिद्धांत के ज्ञान से आहार-पानी लाने के आचार की ज्ञाता फिर भी बरसते बरसात में आहार-पानी क्यों लाई ?' उसने कहा, 'जहाँ जहाँ अपकाय अचित वर्ष है उस उस प्रदेश में रहकर आहार लायी हूँ इसलिये यह आहार अशुद्ध नहीं है।' गुरु ने पूछा, 'तूने अचित प्रदेश कैसे जाना ?' उसने उत्तर दिया, 'ज्ञान से।' आचार्य ने पूछा, 'कौनसे ज्ञानसे ? प्रतिपाती (आने के बाद चले जाय) या अप्रतिपाती ?' (आने के बाद चला न जाये) वह बोली, 'आपकी कृपा से अप्रतिपाती (केवल) ज्ञान से ज्ञात हुआ।' आचार्य महाराज बोल उठे, 'अहो ! मैंने केवली आशातना की है।' ऐसा कहकर उससे क्षमा-याचना करके पुष्पचूला को पूछा, 'मुझे केवलज्ञान होगा या नहीं ? केवली ने कहा, 'हाँ, आपको गंगा नदी के पार उतरते ही केवलज्ञान उत्पन्न होगा। कुछ समय बाद आचार्य कई लोगों के साथ गंगा-नदी पार कर रहे थे। जिस ओर आचार्य बैठे थे, नाव का उस ओर का छोर झुकने लगा। बीच में बैठे तो पूरी नाव डूबती देखकर सब लोगों ने उन्हें नदी में धकेल दिया। पूर्वभव में आचार्य द्वारा अपमानित पूर्वभव की स्त्री व्यंतरी बनी थी जो नाव डूबा रही थी। पानी में एक सूली खड़ी की गई होने से नदी में धकेले गये आचार्य पानी में गिरते ही लहूलूहान हो गये। फिर भी 'हा हा ! मेरे इस खून से अपकाय जीव की विराधना होती है' - ऐसा सोचते सोचते उनको वहीं केवलज्ञान उत्पन्न होने से अंतगड केवली होकर मोक्ष गये (केवलज्ञान पाकर कुछ समय में ही मोक्ष पर जाये तो तो अंतगड केवली कहा जाता है)। उनके पास आकर देवताओं ने उनका केवल महोत्सव किया जिसने वहाँ 'प्रयाग' नामक तीर्थ प्रवृत्त हुआ। कैलास पाने व अभीष्ट पाने के लिए महेश्वरी लोग अपने अंग पर वहाँ आरा रखवाते हैं। पुष्पचूला केवली पृथ्वी पर विचरकर कई लोगों को बोध व लाभ देकर अंत में सर्व कर्मों का क्षय करके मोक्ष गई।

इस पुष्पचूला का गुणों से पवित्र चरित्र सूनकर जो भव्य अपने गुरु के चरणकमल सेवन में तत्पर रहता है, वह शाश्वत स्थान पाता है।

●

६५ जमाली

कुंडपुर नामक नगर में जगद्गुरु श्री महावीर स्वामी की बहिन का पुत्र (भानजा) जमाली नामक एक राजपुत्र रहता था। वह महावीर स्वामी की पुत्री प्रियदर्शना से ब्याहा था। केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् एक बार श्री वीर भगवान विचरते विचरते उस नगर के उद्यान में आये। यह ज्ञात होते ही जमाली उनकी वेदना करने गया। प्रदक्षिणा देकर उनके पास बैठा। प्रभु ने देशना सुनाई :

'घर, मित्र, पुत्र, स्त्री वर्ग, धान्य, धन यह सब मेरे हैं, इसे मैंने कमाया है - ऐसा विचार करते हैं पर मूर्ख ऐसा नहीं सोचते हैं कि 'सब यहीं छोड़कर जाना है।'

प्रभु की ऐसी वाणी सुनकर घर आकर बड़े आग्रह से मातापिता की आज्ञा लेकर जमाली ने पाँचसौं क्षत्रियों के साथ और प्रियदर्शना ने एक हजार स्त्रियों सहित प्रभु के पास आकर दीक्षा ग्रहण की। ग्यारह अंगो अध्ययन के बाद जमाली ने भगवंत के पास आकर पाँचसौं के साथ अलग विहार करने की अनुमति माँगी। भगवंत के कुछ बी उत्तर न देने पर उसे अनुमति समझकर उसने अपने पांचसौं शिष्यों के साथ अलग विहार किया।

एक बार वे श्रावस्ती नगर के तिंदूक नामक उद्यान में ठहरे। वहाँ अंतप्रांत तुच्छ आहार मिलने से जमाली के शरीर में ऐसा रोग उत्पन्न हुआ कि उसकी शक्ति चली जाने से वह बैठ नहीं पाता था, इसलिये शिष्यों को आज्ञा दी, 'मुझसे बैठा नहीं जा रहा है तो मेरे लिए जल्दी से 'संथारा बिछा दो,' जिस पर मैं सो जाऊँगा।' शिष्य संथारा बिछाने लगे पर दाहज्वर वगैरह की वेदना अत्यंत बढ़ जाने से अधीर होकर जमाली ने पूछा, 'अरे संथारा बिछाया या नहीं ?' शिष्यों ने संथारा आधा बिछाया था और आधा बिछाना बाकी था फिर भी उन्हें साता देने के लिए उत्तर दिया, 'हाँ... बिछा दिया है।' वेदना से उकता उठा जमाली वहाँ आकर देखता है तो संथारा पूरा बिछा हुआ न था, वह क्रोधायमान होकर 'करमाणेकडे' (करने लगा वह हुआ) ऐसा सिद्धांत का वाक्य याद करके मिथ्यात्व का उदय होने से सोचने लगा कि 'ककमाणेकडे चलमाणे चलीए' आदि भगवंत वाक्य झूठे हैं। मुझे प्रत्यक्ष दिखता है कि यह संथारा करने लगे हैं लेकिन हुआ नहीं है, सो समस्त

वस्तु करना प्रारंभ किया तो 'हो गयी' ऐसा न कहा जायेगा। हो जाने के बाद 'हो गयी' कहा जायेगा। जो घट आदि कार्य है वे क्रया काल के अंत में ही हुए दीखते हैं। मिट्टी के पिंड वगैरह काल में घटादि कार्य हुआ यूं न कहा जायेगा. यह बात बालक से लेकर सर्वजन प्रसिद्ध है ही। जो कार्य है वही क्रिया बाद में ही होती है।' ऐसा विचार करके अपने शिष्यों को स्वकल्पित आशय कहा। तब अपने गच्छ में रहे श्रुतंस्थविरों ने कहा, 'हे आचार्य ! भगवंत का वचन आपकी समझ में बराबर आया नहीं है जिससे आपको असत्य लगता है, पर यह वाक्य प्रत्यक्ष विरुद्ध नहीं है। एक घटादि कार्य में अवांतर (बीच के भाग में) कारण और कार्य इतने अधिक होते हैं कि उनकी संख्या भी नापी नहीं जा सकती। मिट्टी लानी, मर्दन करना, पिंड बांधना, चाक पर चढ़ाना, दण्ड से चक्र का भ्रमण कराना वगैरह जो कारण हैं, वह कार्य बनने के बीच में देखे जाते है, वह घट निवर्तन क्रिया काल है ऐसा आपका अभिप्राय है लेकिन वह अयुक्त है। उपर के जो जो कारण हैं वे सर्व घटरूप कार्य के ही कारण है, वे जहाँ से शुरू हुए वहाँ से उन्हें कार्य बनने पर अंत में घटरूप कार्य हो सकते हैं। बीच के कारण बने बगैर अंत का घट रूप कार्य नहीं बन पाता। बीच के जो भिन्न भिन्न कार्य होते हैं वे हुए बगैर घटरूप कार्य की सिद्धि हो ही नहीं पाती। घट तो अंतिम काल पर होगा लेकिन बीच के जो कार्य हुए वे भी घटकार्य गिने जायेंगे।

यहाँ अर्ध स्थान में संथारा तो हुआ ही, बाकी अब उसके उपर वस्त्र आच्छादन करना वगैरह कार्य बाकी हैं, वह कार्य संथारे की पूर्णता का है। वह करने से पूर्व भी संथारा बिछाया नहीं है - ऐसा कोई कह नहीं सकता, सो भगवंत का यह वाक्य विशिष्ट प्रक्रिया की अपेक्षावाला है - यूं समझना। केवलज्ञान के आलोक से त्रैलोक्य की वस्तुओं के ज्ञाता - ऐसे सर्वज्ञ श्री वीरप्रभु का कथन ही हमारे लिए प्रमाण है। उनके सामने तुम्हारी सब युक्तियाँ मिथ्या हैं। हे जमाली ! तुमने कहा कि, 'महान पुरुषों को भी स्खलना होती है' वह तुम्हारा वचन मत्त, प्रमत्त और उन्मत्तता जैसा है। 'जो करा जा रहा हो उसे करा हुआ' कहना ऐसा सर्वज्ञ का भाषित सही ही है। नहीं तो उनके वचन से तुमने राज्य छोड़कर दीक्षा किसलिए ली ? इन महात्मा के निर्दोष वचनों को दूषित करते हुए तुम्हें लाज नहीं आती ? और ऐसे स्वकृत कर्मों से तुम क्यों भवसागर में निमग्न होते हो ? सो आप वीरप्रभु के पास जाकर

इस बात का प्रायश्चित ग्रहण करिए, आपका तप और जन्म निरर्थक गँवाओ मत।' जो प्राणी अरिहंत के एक अक्षर पर श्रद्धा नहीं रखते, वे प्राणी मिथ्यात्व को पाकर भवपरम्परा में भटकते हैं। इस प्रकार स्थविर मुनियों ने जमालि को बड़ा समझाया फिर भी अपना कुमत छोड़ा नहीं, मात्र मौन धर लिया। इस कारण कुमतिधारी जमालि को छोड़कर कई स्थविर मुनि तो शीघ्र ही प्रभु के पास चले गये और कई उसके पास रहे।

प्रियदर्शना ने परिवार सहित स्त्रीजाति को सुलभ ऐसे मोह (अज्ञान) से और पूर्व के स्नेह से जमालि के पक्ष का स्वीकार किया। जमालि उन्मत होकर अन्य मनुष्यों को भी अपना मत ग्रहण कराने लगा और वे भी कुमत को फैलाने लगे। जिनेन्द्र के वचन की हँसी उडाता और 'मैं सर्वज्ञ हूँ।' ऐसे कहते हुए जमालि परिवार सहित विहार करने लगा।

प्रियदर्शना एक बार ढंक नामक कुंभकार श्रावक के घर ठहरी, उसे अपने मत में खींचने के लिए बहकाने लगी। परंतु उसने जान लिया कि, इसको वाकई मिथ्यात्व की वासना हो गई है, उसने उसको समझाने की बुद्धि से कहा कि ऐसी बारीक बातों में मैं कुछ नहीं समझता।'

एक बार अपने आँवे (भट्ठी) में से घड़े को निकालते - रखते समय कुम्हार से प्रियदर्शना के वस्त्र के एक छोर पर अंगारा गिरा जिससे उसकी सिंघाडी पर एक छेद हो गया। इस कारण वह बोल पड़ी, 'हे श्रावक ! तूने मेरी सिंघाडी जला डाली।' कुम्हार बोला, 'भद्रे ! आप यह क्या बोल रही हो ? यह तो भगवंत का वचन है। आप इसे कहाँ मानती हो ? यह आपकी सिंघाडी पूरी जल गई होती तो आप कह सकती थी कि सिंघाडी जल गई, परंतु सिंघाडी का एक कौना जलने से यह जल गई ऐसा कहा नहीं जायेगा, क्योंकि आप तो कार्य पूर्ण होने पर ही कार्य हुआ ऐसा मानती हो, इसलिये इस सिंघाडी का एक कौना जलने से वह जल गई ऐसा नहीं कहा जायेगा। पूरी जल गई होती तो ही तुम्हारे से जली ऐसा कहा जायेगा। ऐसे वचन से प्रियदर्शना तत्काल समझ गई और बोली, 'यह सही युक्ति से मुझे समझाकर तूने ठीक ही किया।' तत्पश्चात् भगवंत का वचन खरा है यूं मानकर पूर्व की कुश्रद्धा को मिच्छामि दुक्कडं किया। जमाली के पास जाकर वह युक्ति से बोध देने लगी लेकिन उसके थोड़ा सा भी न मानने पर गच्छ छोड़कर भगवंत के पास चली गई।

जब भगवंत चंपानगर में आये तब जमाली उनके पास आकर कहने लगा, 'एक मेरे सिवा आपके सर्व शिष्य छद्मस्थ है और मैं स्वयं ही केवली हूँ, सर्वज्ञ हूँ।' तब गौतम स्वामी ने कहा, 'ऐसा असंभव बोल मत क्योंकि भगवंत का वचन कभी भी स्खलायमान होता ही नहीं। यदि तू केवली है तो मेरे प्रश्न का उत्तर दे : 'यह लोक शाश्वत है या अशाश्वत ? ये जीव शाश्वत है या अशाश्वत है ?' (नित्य हैं या अनित्य)' इनका उत्तर नहीं मिलने से वह बंदी पतित सर्प की भाँति मौन हो गया। भगवंत ने कहा, 'हे जमाली ! ये हमारे कई छद्मस्थ शिष्य हैं वे भी इसका उत्तर दे सकते हैं कि था, होगा और है - ऐसे तीन काल की अपेक्षा से यह लोक शाश्वत है व उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल की अपेक्षा से यह लोक अशाश्वत है। द्रव्यरूप से यह जीव शाश्वत है और नर, नारक, तिर्यंच आदि पर्याय की अपेक्षा से ये जीव अशाश्वत हैं।'

ऐसे वचन प्रभु ने कहे फिर भी उसे नहीं मानकर कई उत्सूत्रों की प्ररूपणा करके मिथ्याभिनिवेषी मिथ्यात्व से लोगों को बहकाते हुए, अंत में अनशन करके आलोचना लिये बगैर व उस पाप की क्षमायाचना करे बगैर उसने छठ्ठे लांतक देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ।

जमाली को मृत्यु पाया जानकर गौतम ने श्री वीर प्रभु की वंदना करके पूछा, 'हे स्वामी ! वह महातपस्वी जमाली किस गति को पाया है ?' प्रभु ने कहा, 'वह तपोधन जमालि लांतक देवलोक में तेरह सागरोपम आयुष्यवाला किल्विषिक देवता बना है।' गौतम ने दुबारा पूछा कि उसने महा उग्र तप किया था तो भी वह किल्विषिक देव क्यों हुआ ? वह वहाँ से कहाँ जायेगा ?' प्रभु ने कहा, 'जो प्राणी उत्तम आचारवाले धर्मगुरु (आचार्य), उपाध्याय, कुल, गण तथा संघ के विरोधी हो, वे चाहे जितनी तपस्या करे तो भी किल्विषिकादि निम्न जाति के देवता होते हैं। जमाली भी इस दोष से ही किल्विषिक देव हुआ है। वहाँ से वह पाँच पाँच भव तिर्यंच, मनुष्य व नारकी में भटक भटक कर बोधिबीज प्राप्त करके अंत में निर्वाण पायेगा। इसलिए किसी भी प्राणी को धर्माचार्य वगैरह का विरोधी नहीं बनना चाहिये।'

●

असार इस संसार में, खेलते सब स्वार्थ में,
इस दिव्य जीवन को पाकर, तू लगाना परमार्थ में

शालिभद्रजी

१. शालिभद्र के पिता देव बनें। वे दिव्य खानपान, वस्त्र, जवाहिरात की ९९ पेटियाँ नित्य भेजते थे। परंतु माता द्वारा 'श्रेणिक हमारे मालिक राजा है' ऐसा ज्ञात होते ही विरक्त हो गये।

२. धन्नाजी स्नान करते, थे उस समय पत्नी सुभद्रा बोली : 'मेरा भाई शालिभद्र दीक्षार्थ रोज अपनी १-१ पत्नियों का त्याग करता है' यह सुनकर धन्नाजी ने कहा, 'इसमें क्या ?' सुभद्रा ने कहा, बोलना सरल है, करना कठिन।' तब धन्नाजी दीक्षा लेने चल पड़े।

३. धन्नाजी शालिभद्र को कहते हैं, 'वैराग्य है तो एक पत्नी को क्यों छोड़नी ? सबका एक साथ त्याग करना चाहीये चल ! इसी समय हम दोनों दीक्षा ले ले।'

४. शालिभद्र, धन्नाजी - दोनों प्रभु महावीर देव से दीक्षा लेकर मुनि बनें और उग्र तपस्या की।

५. शालिभद्र भूतपूर्व माता के यहाँ भिक्षा लेने गये लेकिन तप से कृश बने मुनि को न पहचानने के कारण भिक्षा न मिली। तब लौटते समय पूर्वभव की माता ने मार्ग में दहीं बहोराया।

६. वेभारगिरि पर अंतिम अनशन करके अनुत्तरवासी देव बने। शोकातुर माता को श्रेणिक आश्वासन तथा धन्यवाद देते हैं।

धन्य शालिभद्र की आत्मा

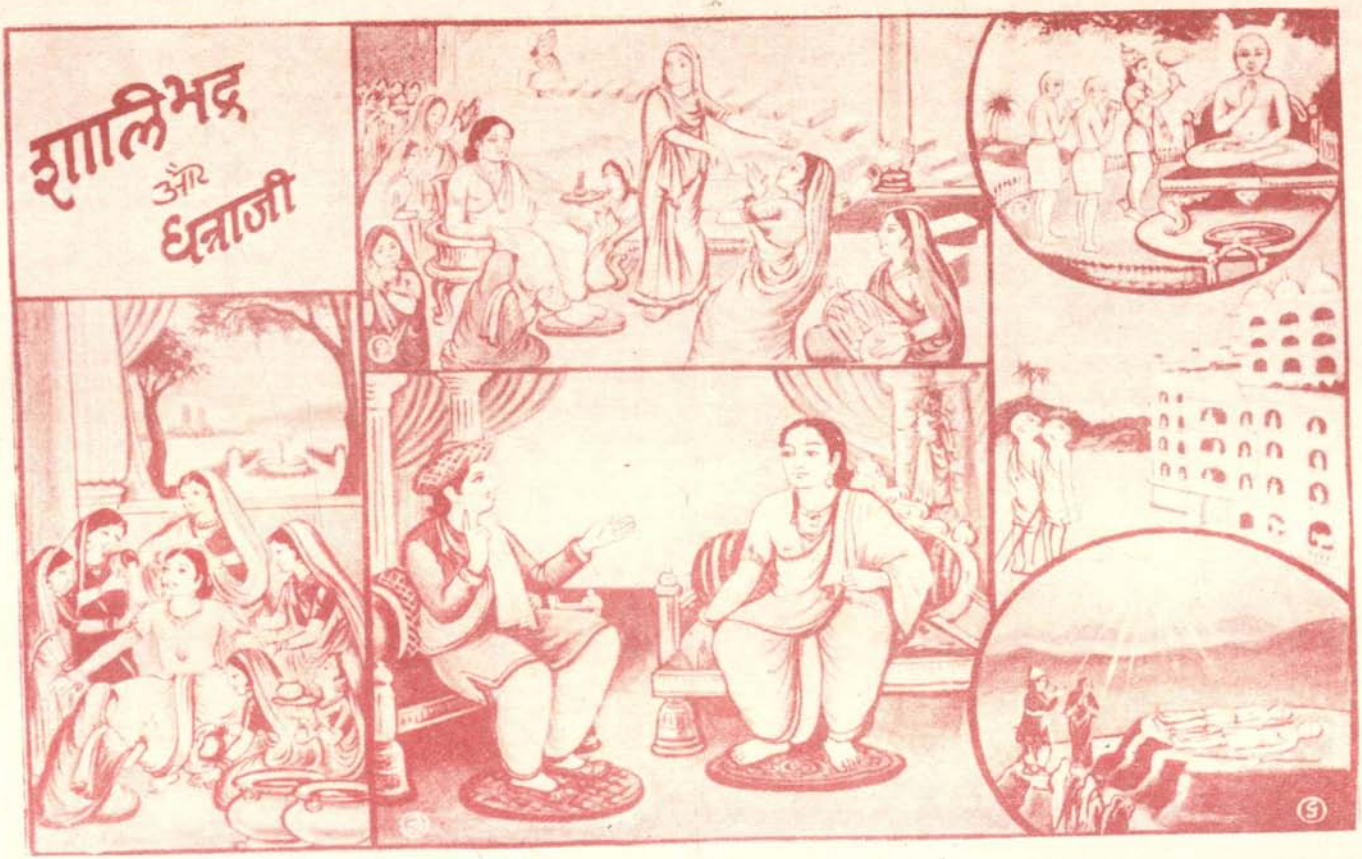
शालिभद्र
और
धन्नाजी

६६ धन्ना / शालिभद्र

धन्या नामक स्त्री राजगृही नगर के नजदीक शालि नामक गाँव में आ बसी थी। उसके पूरे वंश का उच्छेद हो गया था। मात्र संगमक नामक एक पुत्र बाकी रहा था। वह उसे साथ ले आई थी क्योंकि 'कैसे भी दु:ख में अपने उदर से पैदा हुए संतान को छोड़ देना असंभव है।' संगमक नगरजनों के बछडे चराता था। गरीब होने से ऐसी मृदु आजीविका भी जरूरी थी। एक बार किसी पर्वोत्सव का दिन था। उस समय घर घर खीर के भोजन होते संगमक को देखने में आये। इससे मुग्ध बालक ने घर जाकर माता से खीर की मांग की। माता बोली, 'पुत्र ! मैं दरिद्र हूँ। मेरे पास खीर का साधन कहाँ से होगा?' जब अज्ञानवश बालक बारबार ऐसी माँग करने लगा तब धन्या अपने पूर्व वैभव को याद करके रुदन करने लगी। उसका रुदन सुनकर उसकी पडौसनों ने वहाँ आकर उसके दु:ख का कारण पूछा। सो धन्या ने गद्‌गद् कण्ठ से अपने दु:ख का कारण कहा। तत्पश्चात् सबने मिलकर उसको दूध, शक्कर वगैरह ला दिये उसने खीर पकाई और एक थाल में निकालकर अपने पुत्र को देकर अपने किसी गृहकार्य के लिए बाहर गई। उस समय मासक्षमण के तपस्वी मुनि अपने पारणे के लिए और संगमक को भवसागर पार कराने के लिए वहाँ आ पहुँचे। उनको देखकर संगमक सोचने लगा कि 'यह सचेतन चिंतामणि रत्न, चल कल्पवृक्ष और कामधेनुरूपी मुनि महाराज मेरे भाग्य से यहाँ आ पहुँचे यह बड़ा अच्छा हुआ। नहीं तो मेरे जैसे गरीब को ऐसे उत्तम पात्र का योग कहाँ से हो ? मेरे कोई भाग्य के योग से आज चित्त, वित्त और पात्र-तीनों का त्रिवेणी संगम हुआ है।' ऐसा सोचकर थाल की सब खीर मुनि को गोचरी में अर्पण कर दी। दयालु मुनि ने अपने अनुग्रह के लिए ग्रहण भी कर ली। मुनि घर से बाहर नीकले।

धन्या बाहर से वहाँ आयी और थाल में खीर न देखने से 'अपनी दी हुई खीर पुत्र खा गया होगा' - ऐसा सोचकर उसने दुबारा खीर दी। वह खीर संगमक ने अतृप्त रूप से कण्ठ तक खायी जिससे अजीर्ण हो जाने से उसी रात्रि को उन मुनि यो याद करते हुए संगमक ने मृत्यु पाई। मुनि-दान के प्रभाव से संगमक का जीव राजगृही नगरी में गोभद्र सेठ की भद्रा नामक स्त्री के उदर में पहुँचा। भद्रा ने स्वप्न में पका हुआ शाकिक्षेत्र देखा। उसने यह बात अपने पति को कही। पति ने उसे 'पुत्र होगा' ऐसा कहा। तत्पश्चात् 'मैं दान-धर्म' वगैरह सुकृत्य करूं' ऐसा भद्रा

को दोहद उत्पन्न हुआ। गौभद्र सेठ ने उसकी मनोकामना पूर्ण की। पूर्ण समय होने पर भद्रा ने पुत्र रत्न को जन्म दिया। देखे हुए स्वप्न के अनुसार मातापिता ने शुभदिन पर उसका नाम शालिभद्र रखा।

वह आठ साल का हुआ तब उसके पिता ने स्कूल में दाखिल कराके सब कलाओं का अध्ययन कराया। युवा अवस्था प्राप्त होते ही समान आयु के मित्रों के साथ वह खेलने लगा। उस नगर के श्रेष्ठीओं ने अपनी अपनी बत्तीस कन्याएँ शालिभद्र को देने के लिए गौभद्र सेठ को विज्ञप्ति दी। गोभद्र सेठ ने हर्षित होकर उसका स्वीकार किया और सर्वलक्षण संपूर्ण बत्तीस कन्याओं का ब्याह शालिभद्र से किया। तत्पश्चात् विमान जैसे रमणीय अपने मंदिर में स्त्रियों के साथ शालिभद्र विलास करने लगा। मातापिता उसकी भोगसामग्री की पूरी करते थे। गौभद्र सेठ श्री वीरप्रभु से दीक्षा लेकर, व विधिपूर्वक अनशन करके देवलोक गये। वहाँ से अवधिज्ञान द्वारा अपने पुत्र शालिभद्र को देखकर पुण्य से वश होकर पुत्रवात्सल्य में तत्पर बने और कल्पवृक्ष की भाँति उसे और उसकी बत्तीस स्त्रियों को प्रतिदिन दिव्य वस्त्र व नेपथ्य वगैरह की पूर्ति करने लगे। यहाँ पुरुष के लायक जो जो कार्य थे वे सब भद्रामाता करती थी और शालिभद्र तो पूर्वदान के प्रभाव से केवल भोग ही भुगतते थे।

एक बार कोई परदेशी व्यापारी रत्न कंबल लेकर श्रेणिक राजा को बेचने आया लेकिन उसकी किंमत अधिक विशेष होने के कारण श्रेणिक ने उसे खरीदा नहीं। वह निराश होकर घूमते घूमते भद्रा के बुलाने पर शालीभद्र के यहाँ पहुँचा। भद्रामाता ने मुँह मांगा मूल्य चुकाकर सर्व कंबल खरीद ली। श्रेणिक की रानी चेलणा ने उसी दिन श्रेणिक को कहा, 'मेरे योग्य एक रत्न कंबल ला दो।' इस कारण श्रेणिक राजा ने एक रत्न कंबल खरीदने के लिए व्यापारी को दुबारा बुलवाया। व्यापारी ने कहा, 'रत्न कंबल तो सब भद्रा माता ने खरीद ली है।' श्रेणिक राजा ने एक चतुर पुरुष को मूल्य देकर रत्नकंबल लेने के लिए भद्रा के पास भेजा। उसने जाकर रत्नकंबल मांगा तो भद्रा बोली, 'शालिभद्र की स्त्रियों के पैर पोंछने के लिए रत्नकंबल के टुकडे करके मैंने दे दीये हैं, इसलिय ये यदि जीर्ण रत्नकंबलों से कार्य चल जाये तो राजा श्रेणिक को पूछकर आओ और ले जाओ।'

चतुर पुरुष ने यह वृत्तांत राजा को कहा। यह सुनकर चेलणा रानी बोली, 'देखो ! तुम्हारे और वणिक में पितल व सुवर्ण जितना अंतर है। तत्पश्चात् राजा ने कुतूहलता से उसी पुरुष को भेजकर शालिभद्र को अपने पास बुलाया। तब भद्रा ने राजा के पास जाकर कहा, 'मेरा पुत्र कभी घर से बाहर निकलता नहीं है, इसलिये

आप ही मेरे घर पर पधारने की कृपा करें। श्रेणिक ने कुतूहलतावश यह मंजूर कर लिया। थोड़ी देर बाद आने का आमंत्रण देकर भद्रा घर लौट आयी तथा उतने कम समय में भी सुंदर वस्त्र व रत्नों से राजमार्ग की शोभा राजमहल से अपने घर तक की सुंदर ढंग से सजवा दी। समय होते ही श्रेणिक राजा मार्ग की शोभा देखते देखते शालिभद्र के घर पधारे। घर पर सुवर्ण के स्तंभों पर इन्द्र नीलमणि के तोरण झूल रहे थे।' द्वार पर मोतियों के स्वस्तिक की पंक्तियाँ की हुई थी। स्थान स्थान पर दिव्य वस्त्रों के चँदोवे बंधे हुए थे और पूरा घर सुगंधित द्रव्य से महक रहा था। चकित होकर आँखे फैलाये हुए राजा चौथी मंजिल तक चढ़कर सुशोभित सिंहासन पर बैठे। पश्चात् भद्रा माता ने सातवीं मंजिल पर रहते शालिभद्र के पास जाकर कहा, 'पुत्र ! श्रेणिक आया है तो तू उसे देखने चल।' शालिभद्र बोला :'माता !इस बारे में आपको सर्व ज्ञात है तो मूल्य देना योग्य हो वह आप देदो। मुझे वहाँ आकर क्या करना है ?' भद्रा बोली :'पुत्र ! श्रेणिक कोई किराना (खरीदने का पदार्थ) तो नहीं है। वह तो सब लोगों का और तेरा भी स्वामी है।' यह सुनकर शालिभद्र ने खेद पाया, और सोचने लगा, 'मेरे इस सांसारिक ऐश्वर्य को धिक्कार है कि जिसमें मेरा भी अन्य कोई स्वामी है; इसलिए मुझे सर्प के फन जैसे भोगों का क्या काम ? अब तो मैं श्री वीर प्रभु के चरणों में जाकर शीघ्र ही व्रत ग्रहण करूंगा।' इस प्रकार उसे उत्कट संवेग प्राप्त हुआ, यद्यपि माता के आग्रह से स्त्रियों सहित वह श्रेणिक राजा के पास आया और विनय से राजा को प्रणाम किये। राजा श्रेणिक ने उसे गले से लगाकर स्वपुत्रवत् अपनी गोद में बिठाया और स्नेह से मस्तिष्क तक कुछ क्षणों के लिए हर्षाश्रु बहे। तत्पश्चात् भद्रा बोली, 'हे देव ! अब उसे छोड़ दीजिये, वह मनुष्य है लेकिन मनुष्य की गंध से पीड़ित होता है। उसके पिता देवता हुए हैं। वे स्त्रीयाँ सहित अपने पुत्र को दिव्य भेष वस्त्र तथा अंगराग वगैरह प्रतिदिन देते हैं।' यह सुनकर राजा ने शालिभद्र को अनुमति दी और वह सातवीं मंजिल पर चला गया।

भद्रामाता की विज्ञप्ति से राजा श्रेणिक भोजन लेने के लिये रूका। भद्रा माता ने रसोई तैयार करायी और राजा को योग्य तैल और चूर्ण से स्नान कराया। स्नान करते समय श्रेणिक की अंगूठी भवन की बावड़ी गिर गई। राजा इधर-उधर ढूंढ़ने लगा, भद्रा के कहने से दासी ने बावडी का जल दूसरी और निकाल डाला। ऐसा करने से बावडी के बीच में पड़े आभूषणों के बीच फीकी दिखती मुद्रिका देखकर राजा विस्मित हो गया। कारण जानने के लिए राजा ने दासी से पूछा, 'ये सब क्या है ?' दासी बोली, 'शालीभद्र एवं उसकी स्त्रियों के निर्माल्य आभारण शेखाना

निकाल कर फेंक दिये जाते हैं - ये वही हैं।' यह सुनकर राजा ने सोचा कि, 'सर्वथा शालिभद्र धन्य है एवं मैं भी धन्य हूं कि मेरे राज्य में ऐसे धनाढ्य पुरुष भी बसते हैं।' तत्पश्चात् राजा ने परिवारसहित भोजन किया और राजा अपने राजमहल लौटा।

अब शालिभद्र संसार से मुक्त होने का सोच रहा था। इतने में उसके धर्ममित्र ने कहा, 'एक धर्मघोष नामक मुनि उद्यान में पधारे हैं।' यह सुनकर शालिभद्र हर्ष से रथ में बैठकर वहाँ पधारा। आचार्य एवं अन्य साधुओं को वंदना करके आगे बैठा। सूरी के देशना देने के बाद उसने पूछा, 'हे भगवान् ! कौनसे कर्म से राजा स्वामी न होवे?' मुनि बोले, 'जो दीक्षा ग्रहण करते हैं वे पूरे जगत् के स्वामी बनते हैं।' शालिभद्र ने कहा, 'यदि ऐसा ही है तो मैं घर जाकर मेरी माताजी की अनुमति लेकर दीक्षा लूंगा।' सूरी बोले, 'धर्मकार्य में प्रमाद न करना।' तत्पश्चात् शालिभद्र घर गया और माता को नमस्कार करके कहा, 'हे माता ! आज मैंने श्री धर्मघोष सूरि के मुख से धर्म सुना है कि जो धर्म इस संसार के सर्व दुःख से छूटने का उपायरूप है।' भद्रा बोली, 'वत्स ! तूने बड़ा अच्छा किया, क्योंकि तू भी वैसे ही धर्मी पिता का पुत्र है।' शालिभद्र ने कहा, 'माता ! यदि ऐसा ही है तो मेरे पर प्रसन्न होकर मुझे स्वीकृति दे दो, मैं व्रत ग्रहण करूंगा, क्योंकि मैं भी वैसे ही पिता का पुत्र हूँ।' भद्रा बोली, 'वत्स ! तेरा व्रत लेने का मनोरथ युक्त है, परंतु उसमें निरंतर लोहे के चने चबाने पड़ेंगे। तू प्रकृति से कोमल है और दिव्य भोग भोगता रहा है, इसलिए बड़े रथ के छोटे बछड़े की तरह तू व्रत का भार कैसे ढो सकेगा ?' शालिभद्र बोला : 'हे माता ! भोगलालित बने लोग व्रत के कष्टों को सहन करे नहीं तो उन्हें कायर समझना, सब कोई ऐसे नहीं होते हैं।' भद्रा ने कहा : 'हे वत्स ! यदि तेरा ऐसा ही विचार हो तो धीमे धीमे थोड़ा थोड़ा भोग त्याग कर, पश्चात् व्रत ग्रहण करना।' शालिभद्र ने शीघ्र वचन मान्य कर लिया और उस दिन से रोजाना एक एक स्त्री और एक एक शय्या का त्याग करने लगा।

उस नगर में धन्य नामक एक धनवान सेठ रहता था। जिसको पूर्व जन्म में शालिभद्र की भाँति गरीब माँ ने दूध, चावल, शक्कर वगैरह पडौसनों से मांगकर खीर बनाकर खाने को दी थी और वह खीर तपस्वी मुनि के पधारने पर गोचरी में देदी थी उसी पुण्यकर्म के इस भव उसने रिद्धिसिद्धि पायी थी। वह शालिभद्र की बहिन से ब्याहा था। अपने बंधू के व्रत लेने के समाचार सुनकर अपने पति धन्य को स्नान कराते समय उसकी आँखों से अश्रु फूट पड़े। यह देखकर धन्य ने पूछा, 'तू यों रो रही है ?' तब वह गद्गद होकर बोली, 'हे स्वामी! मेरा भाई शालिभद्र व्रत लेने के लिए प्रतिदिन एक एक स्त्री एवं एक एक शय्या छोड़ रहा

है, इसलिये मुझे रूदन आ जाता है।' यह सुनकर धन्य ने मज़ाक में कहा, 'जो ऐसा करता है वह तो लोमड़ी की की भाँति डरपोक माना जाता है। यदि व्रत लेना है तो एक एक क्यों ? मर्द की भाँति एकसाथ छोड़कर व्रत लेना चाहिये। इसलिए तेरा भाई तो सत्त्वहीन लगता है।' यह सुनकर दूसरी स्त्रीयाँ हँसकर बोली, 'हे नाथ ! यह व्रत लेना सरल है तो आप क्यों नहीं लेते ?'

धन्य बोला :' अरे ! मुझे व्रत तो लेना ही है पर तुम सब विघ्नरूप थी, आज पुण्यबल से अनुकूल हो गई, मैं भी अब शीघ्र व्रत लूंगा।' वे बोली, 'प्राणेश ! प्रसन्न हो, हम तो मज़ाक कर रही थी।' स्त्रियों के ऐसे वचन के उत्तर में 'स्त्री और द्रव्य सर्व अनित्य है, इसलिये निरंतर त्याग करने योग्य हैं, इसलिए मैं तो दीक्षा अवश्य लूंगा।' इस प्रकार बोलते हुए धन्य तुरंत खड़ा हो गया।' हम भी आपके पीछे दीक्षा लेंगी' सर्व स्त्रियों ने कहा। अपनी आत्मा को धन्य माननेवाले महा मनस्वी धन्य ने उनको सम्मति दी।

प्रभु महावीर उस समय वैभारगिरि पर पधारे। दीनजनों को बहुत दान देकर स्त्रियों के साथ धन्य महावीर प्रभु से दीक्षा लेने चल पड़ा। मार्ग में शालिभद्र का मकान आया तो उसे आवाज़ देकर बुलाया और कहा :' अरे मित्र ! व्रत लेना उसमें धीरे धीरे क्या ? छोड़ना हो तो एकसाथ ! चल, मैं सब स्त्रियों को छोड़कर दीक्षा ग्रहण करने जा रहा हूँ। दीक्षा लेनी ही हो तो चल मेरे साथ। शालिभद्र तो तैयार ही था। वहाँ से सीधे सब भगवान महावीर के पास पधारे और दीक्षा ग्रहण की।

दोनों उग्र तपस्या करने लगे। माह, दो माह, तीन माह और चार माह के उपवास करते करते माँस व रुधिर शरीरवाले प्रभु महावीर के साथ विहार करते करते वे अपनी जन्मभूमि राजगृही पधारे। अपने मासक्षमण के पारणे के दिन दोनों महात्मा भिक्षा लेने जाने की आज्ञा लेने प्रभु के पास आये। प्रभु ने शालिभद्र को कहा, 'आज तुम्हारी माता से मिले आहार से तुम्हारी पारणा होगा ऐसी मेरी इच्छा है।' यह सुनकर शालिभद्र और धन्यमुनि दोनों नगर में गये। दोनों मुनि भद्रा के गृहद्वार के समीप आकर खड़े रहे। परंतु तपस्या से अत्यंत कृशता के कारण किसीके पहचानने में न आये। प्रभु के साथ शालिभद्र और धन्य भी पधारे हैं ऐसा जानकर भद्रा माता उन्हें वंदना करने जाने की तैयारी कर रही थी इसलिये उसका भी ध्यान उन पर गया नहीं। दोनों मुनि थोड़ा समय खडे रहे और वापस लौट चले। वे नगर के दरवाजे से बाहर निकल रहे थे उतने में शालीभद्र की पूर्वजन्म की माता नगर में दहीं-घी बेचने के लिए सामने आती हुई दिखी। शालिभद्रको देखकर उसके स्तन में से पय बहने लगा। दोनों मुनियों के चरणों में वन्दन करके उसने भक्तिपूर्वक दहीं की भिक्षा दी। वे दोनों प्रभु के पास आये और गोचरी भेंट की। अंजलि छिडकी

ओर तत्पश्चात् हाथ जोडकर प्रभु को पूछा : 'हे प्रभु ! आपके कहे अनुसार मेरी माता से आहार क्यों न मिला ?' सर्वज्ञ प्रभु बोले, 'हे शालिभद्र ! दहीं की भिक्षा देनेवाली तुम्हारी पूर्वजन्म की माता धन्या थी।' दहीं से पारणे करने के बाद, प्रभु से आज्ञा लेकर शालिभद्र मुनि धन्य के साथ अनशन करने के लिए वैभारगिरि पर गये। वहाँ धन्य और शालिभद्र ने शिलातल पर प्रतिलेहणा करके पादपोपगम नामक आजीवन अनशन स्वीकार किया।

वहाँ शालिभद्र की माता भद्रा व श्रेणिक राजा उसी समय भक्तियुक्त चित्त से श्री वीरप्रभु के पास आये। प्रभु को नमस्कार करके भद्रा ने पूछा, 'हे जगत्पति ! धन्य और शालिभद्र मुनि कहाँ हैं ? वे हमारे घर भिक्षा के लिए क्यों नहीं पधारे ?' सर्वज्ञ ने कहा : 'वे मुनि आपके घर गोचरी के लिये आये थे लेकिन आप यहाँ आने की व्यग्रता में थी। वे आपके देखने में न आये। तत्पश्चात आपके पुत्र की पूर्वजन्म की माता धन्या नगर तरफ आ रही थी उसने दहीं की भिक्षा अर्पण की, उससे पारणा करके दोनों मुनियों ने संसार से छूटने के लिए हाल ही में वैभारगिरि पर जाकर अनशन ग्रहण किया है।' यह सुनकर भद्रा श्रेणिक राजा के साथ तत्काल वैभारगिरि पर पहुँची। वहाँ वे दोनों मुनि मानो कि पाषाण से घडे गये हो ऐसे स्थिर देखे गये। उनके कष्ट देखकर पूर्व के सुखों को याद करती हुई भद्रा बेहद रोने लगी और बोली : 'हे वत्स ! तुम घर आये लेकिन मैं अभागन प्रमाद के कारण तुम्हें देख न पायी, इसलिए मुझ पर अप्रसन्न मत हो। घर त्यागकर व्रत लिया तो मेरा मनोरथ था कि कोई समय पर मेरी दृष्टि को आनंद दोगे लेकिन हे पुत्र ! इस शरीर त्याग हेतुरूपी आरंभ से तुमने मेरा वह मनोरथ भी तोड़ डाला है। हे मुनियों ! आपने जो उग्रतप का प्रारंभ किया है उसमें मैं विघ्नकारी नहीं बनूंगी; परंतु मेरा मन इस शिलातल की भाँति अतिशय कठोर हो गया है, क्योंकि ऐसे भयंकर कष्ट में भी वह फूट नहीं जाता।' श्रेणिक राजा ने कहा : 'हे भद्रे ! हर्ष के स्थान पर आप रुदन क्यों करती हो ? अपना पुत्र ऐसा महासत्त्ववान होने से आप एकही सर्व स्त्रियों में सच्ची पुत्रवती हो। हे मुग्धे ! ये महाशय जगत स्वामी के शिष्य को शोभा देवे ऐसा तप कर रहे हैं। इसमें आप स्त्री स्वभाव से वृथा परिताप क्यों कर रही हो ?' इस प्रकार राजा के प्रतिबोध करने पर भद्रा उन मुनियों की वंदना करके खेदयुक्त चित्त से अपने घर गई। श्रेणिक राजा भी अपने स्थान पर गये। वे दोनों मुनि धन्य और शालिभद्र कालानुसार सर्वार्थसिद्ध नामक विमान में हर्षरूप सागर में मग्न हुए फिर भी तैंतीस सागरोपम के आयुष्य के देव रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ महाविदेह में जन्म पाकर सिद्ध पद पायेंगे।

●

६७ जीवानंद वैद्य

जंबूद्वीप के विदेह क्षेत्र में क्षितिप्रतिष्ठित नगर में सुविधि बैद्य के घर जीवानंद नामक पुत्र था। उस नगर में उसी अरसे में चार बालक उत्पन्न हुए। उनमें प्रथम इशानचंद्र राजा की कनकावती नामक स्त्री से महीधर नामक पुत्र हुआ। दूसरा सुनाशीर नामक मंत्री की लक्ष्मी नामक स्त्री से लक्ष्मीपुत्र के समान सुबुद्धि नामक पुत्र हुआ। तीसरा सागरदत्त नामक सार्थवाहकी अभयमती नामक स्त्री से पूर्णभद्र नामक पुत्र हुआ और चौथा धनश्रेष्ठि की शीलमती नामक स्त्री से शीलपूंज समान गुणाकर नामक पुत्र हुआ। उसके सिवा उसी नगर में ईश्वरदत्त सेठ के यहाँ केशव नामक पुत्र हुआ। ये छः मित्र के रूप में खेलते खेलते बड़े हुए। उनमें से सुविधि बैद्य का पुत्र जीवानंद औषधि और रसवीर्य के विपाक से अपने पिता से पायी हुई विद्या के प्रताप से अष्टांग आयुर्वेद जानकार बना। हस्ती में ऐरावत और नवग्रह में सूर्य की तरह प्राज्ञ और निर्दोष विद्यावाला सर्व बैद्यो में अग्रणी बना। वे छः मित्र मानो सहोदर हो वैसे निरंतर साथ खेलते थे और परस्पर एक दूसरे के घर इकट्ठे होते थे। एक बार बैद्यपुत्र जीवानंद के घर वे बैठे थे, उतने में एक गुणाकर नामक साधू गोचरी के लिए आये। महातपस्या करते होने से उनका शरीर कृश हो गया था। बैमौके व अपथ्य भोजन करने से उन्हें कृमिकुष्ठ व्याधि हुआ था। सर्वांग में कृमिकुष्ठ व्याप्त हो गया था; फिर भी वे महात्मा कोई बार भी औषध की याचना न करते थे। मुक्ति के साधकों को काया पर ममत्व नहीं होता।

उन साधू को छठ्ठ के पारणे पर घर घर घूमकर आते हुए देखा। उस समय जगत के अद्वितीय बैद्य जीवानंद को महीधर कुमार ने कुछ व्यंगपूर्वक कहा, 'आपको व्याधि का ज्ञान है, औषध का विज्ञान है और चिकित्सा में भी कुशल हो; परंतु आपमें एक दया नहीं है। वेश्या जिस प्रकार द्रव्य के बगैर सामने देखती नहीं है, उस प्रकार आप पीडितजनों के सामने देखते भी नहीं है, लेकिन विवेकी को एकांत अर्थलुब्ध नहीं होना चाहिये। किसी समय पर धर्म ग्रहण करके भी चिकित्सा करनी चाहिये। निदान एवं चिकित्सा में आपकी कुशलता है। आपको धिक्कार है कि ऐसे रोगी मुनि की भी आप उपेक्षा करते हो ?' ऐसा सुनकर विज्ञान रत्नाकर जीवानंद स्वामी ने कहा : 'आपने मुझे स्मरण कराया यह बहुत अच्छा हुआ। ये महामुनि अवश्य चिकित्सा करने लायक है, परंतु इस समय मेरे पास औषध सामग्री नहीं है, यह विडम्बना है, उस व्याधि के लायक औषध लक्षपाक तैल मेरे पास है, परंतु गोशीर्ष चंदन और रत्नकंबल नहीं है, वह आप ला दो।' 'यह दोनों चीज हम ला देंगे।' ऐसा कहकर वे पांचों बाजार

में गये और मुनि स्वस्थान पधारे। उन पांचों मित्रों ने बाजार में किसी वृद्ध व्यापारी के पास जाकर कहा, 'हमें गोशीर्षचंदन और रत्नकंबल की जरूर है। जो भी मूल्य हो वह लेकर हमें दो।' उस व्यापारी ने कहा, 'ये हरेक चीज का मूल्य एक लाख सुवर्णमुद्राएँ हैं, देकर ले जाओ, परंतु इससे पूर्व उसका तुम्हें क्या प्रयोजन है वह कहो।' उन्होंने कहा : 'जो मूल्य हो वह लेलो और दोनों चीजें हमें दो। उससे हमें एक महात्मा के रोग की चिकित्सा करनी है।' ऐसा सुनकर सेठ की आँखे आश्चर्य से फैल गई, रोमांच से उनके हृदय ने आनंद जताया और चित्त में वे इस प्रकार से सोचने लगे, 'अहो ! उन्माद, प्रमाद और कामदेव से अधिक मदवाला इन सबका यौवन कहाँ ? और वयोवृद्ध को उचित ऐसी विवेकशील उनकी मति कहाँ ? मेरे जैसे जरावस्था से जर्जर कायावाले मनुष्य को करनेलायक शुभकार्य ये सर्व करते हैं और दमन करने योग्य बोझा वे ढो रहें हैं।' ऐसा सोचकर वृद्ध व्यापारी ने कहा : 'हे भद्रे ! यह गोशीर्षचंदन व रत्नकम्बल ले जाओ। आपका कल्याण हो ! मूल्य की कोई जरूरत नहीं है। आपने सहोदर के भाँति धर्मकार्य में भागीदार किया है इसलिये धर्मरूपी अक्षय मूल्य मुझे मिला है।' इस प्रकार से औषध सामग्री ग्रहण करके मित्र जीवानंद के साथ मुनि के पास गये। वे मुनि महाराजा एक वटवृक्ष के नीचे वृक्ष के पाद हो उस प्रकार निश्चल होकर कायोत्सर्ग रहे थे। उनको नमस्कार करके वे बोले, 'हे भगवन ! आज चिकित्सा कार्य से हम आपके धर्मकार्य में विघ्न करेंगे; आप आज्ञा करें और पुण्य से हमें अनुग्रहति करें।' मुनि ने चिकित्सा करने की मूक सम्मति दी। वे शीघ्र ही मरी हुई गाय का शव लाये: (गोमृतक) क्योंकि सुवैद्य कभी विपरीत (पापयुक्त) चिकित्सा नहीं करते। उन्होंने मुनि के हरेक अंग में लक्षपाक तैल से मर्दन किया; नहर का जल जिस प्रकार उद्यान में व्याप्त हो जाता है - वैसे मुनि की हरेक नस में तैल व्याप्त हो गया। बड़े उष्ण वीर्यवान् उस तैल से मुनि संज्ञारहित हो गये। उग्र व्याधि मिटाने के लिये उग्र औषध ही चाहिये। जिस प्रकार जल बिल में डालने से चींटियाँ बाहर निकल आती हैं उस प्रकार तैल से व्याकुल कृमि मुनि के कलेवर में से बाहर निकलने लगे। जिस प्रकार चन्द्र अपनी चांदनी से आकाश को आच्छादित करते हैं उस प्रकार जीवानंद ने रत्नकंबल से मुनि को आच्छादित किया। ग्रीष्मऋतु के मध्याह्न के समय तपी हुई मछलियाँ काई में लीन हो जाती है वैसे उस रत्नकंबल में शीतलता होने से सर्व कृमि उसमें लीन हो गये। तत्पश्चात् रत्नकंबल को हिलाये बिना धीरे से उठाकर सर्व कृमिओं को गाय के मृतक पर रखे। सत्पुरुष सर्व स्थानों पर दयायुक्त होते हैं। इसके बाद जीवानंद ने अमृत रस समान प्राणी को जीवनदान देनेवाले गोशीर्ष चन्दन के विलेपन से मुनि की आश्वासना की। इस प्रकार प्रथम त्वचागत कृमि नीकले, इसलिये फिर से उन्होंने तैलाभ्यंगन किया और उदान वायु से जिस प्रकार रस निकले

उस प्रकार मांस में रहे कई कृमि बाहर नीकले। पूर्व की तरह फिरसे रत्नकंबल का आच्छादन किया सो कृमि रत्नकम्बल पर तैरने लगे और उनका पूर्व की तरह ही गोमृतक में संक्रान्त किया। अहो ! कैसा उस बैद्य का बुद्धिकौशल्य ! जिस प्रकार मेघ ग्रीष्मऋतु से पीड़ित हुए हाथी को शांत करे उस प्रकार जीवानंद ने गोशीर्ष चन्दन के रस की धारा से मुनि को शांत किया। थोड़ी देर के बाद तीसरी बाद अभ्यंग किया, इससे अस्थिगत कृमि रहे थे वे भी निकले; उन कृमियों को भी पूर्व की तरह रत्नकंबल में लेकर गोमृतक में डाले। अधम को अधम स्थान ही चाहिये। तत्पश्चात् उस बैद्य शिरोमणि ने परमभक्तिपूर्वक जिस प्रकार देव को विलेपन करा जाय उस प्रकार गोशीर्ष चन्दन के रस से मुनि को विलेपन किया। इस प्रकार औषध करने से मुनि नीरोगी और नवीन कांतिवाले बने और मांजी हुई सुवर्ण की प्रतिमा जिस प्रकार शोभायमान हो उस प्रकार शोभायमान लगे। भक्ति में दक्ष उन मित्रों ने मुनि से क्षमापना माँगी। मुनि भी वहाँ से विहार करके दूसरे स्थान पर चले गये क्योंकि साधु-महात्मा एक जगह पर स्थायी नहीं रहते।

बाकी बचे गोशीर्ष और रत्नकंबल को बेचकर उन बुद्धिमंतों ने सुवर्ण खरीदा। उस सुवर्ण में अपना सुवर्ण भी जोडा और उन्होंने मेरु शिखर जैसा अर्हत चैत्य बनवाया। जिन प्रतिमा की पूजा एवं गुरु की उपासना में तत्पर उन सब ने कुछ काल व्यतीत किया और समय बीतने पर छः मित्रों को संवेग (वैराग्य) प्राप्त हुआ, इससे कोई मुनि महाराज के पास जाकर उन्होंने दीक्षा ग्रहण की और नगर, गाँव और वन में नियतकाल न रहते, वे विहार करने लगे।

उपवास, छठ्ठ एवं अट्ठम वगैरह तपरूपी शरण से अपने चारित्र रत्न को अत्यंत निर्मल किया। तत्पश्चात् उन्होंने द्रव्य से और भाव से संलेखना करके कर्मरूपी पर्वत का नाश करने में वज्र जैसा अनशन व्रत ग्रहण किया। समाधि को भजनेवाले उन्होंने पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुए अपनी देह छोडी और अच्युत नामक बारहवें देवलोक में इन्द्र के सामानिक देव हुए। वहाँ से बाईस सागरोपम का आयुष्य पूर्ण करके लवण समुद्र के नज़दीक पुंरीराकिणि नगरी में वज्रसेन राजा की धारणी नामक रानी की कोख से वे पाँच पुत्र के रूप में क्रमानुसार उत्पन्न हुए। उनमें जीवानंद बैद्य का जीव वज्रनाभ नामक प्रथम पुत्र हुआ। समय पकने पर सब भाईयों ने दीक्षा लेकर कई लब्धियाँ प्राप्त की। अंत में वज्रनाभ स्वामी ने बीस स्थानक की आराधना से तीर्थंकर नाम-गोत्रकर्म दृढता से उपार्जन किया और खड्ग की धारा जैसी प्रवज्या का चौदह लाख पूर्व तक पालन करके पादपोपगमन अनशन स्वीकार कर सर्वार्थ सिद्धि नामक पाँचवे अनुत्तर विमान में तीस सागरोपम के आयुष्यवाले देवता बने। उसी वज्रनाभ का जीव प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के नाम से मरूदेवी माता की कोख से अवतरित हुए।

६८ हंसराजा

राजपुरी में हंस नामक एक राजा था। एक बार वह उपवन की शोभा देखने नगर के बाहर गया। वहाँ एक मुनि उसको देखने आये। राजा उनके पास बैठा, इससे मुनि ने देशना दी।

'सत्य यश का मूल है, सत्य विश्वास का कारण है, सत्य स्वर्ग का द्वार है और सत्य सिद्धि का सोपान (सीढ़ी) है। और जो असत्य बोलते हैं वे भवांतर से दुर्गंधी मुखवाले, अनिष्ट वचन बोलनेवाले, कठोरभाषी, बहरे और गूंगे होते हैं। वे सर्व असत्य वचन के परिणाम है।' इस धर्मदेशना सुनकर हंसराजा ने सत्यव्रत ग्रहण किया।

एक बार हंसराजा अल्प परिवार लेकर रत्नशिखरगिरि पर चैत्री महोत्सव के प्रसंग पर श्री आदिश्वर प्रभु को वंदन करने निकला। आधा मार्ग गुजरने के बाद किसी सेवक ने तत्काल वहाँ पहुँचक कहा, 'हे देव! आप यात्रा करने निकले कि तुरंत सीमा पर के राजा ने आकार आपके नगर पर जबरदस्ती से कब्जा जमा लिया है। आपको जैसा जचे वैसा कीजिये।' साथ रहे सुभटों ने भी राजा को वापिस लौटने के लिए कहा। राजा ने कहा, 'प्राणी को पूर्व कर्म वश संपत्ति और विपत्ति की प्राप्ति होती ही रहती है। इस कारण जो संपत्ति में हर्ष और विपत्ति में खेद पाते हैं वे सचमुच मूढ हैं। ऐसे अवसर पर सद्भाग्य से प्राप्त जिन यात्रा महोत्सव को छोड़कर भाग्य से लभ्य ऐसे राज्य के लिए दौड़ना योग्य नहीं है। इसके अलावा कहा गया है कि 'जिसके पास समकित रूप अमूल्य धन है, धनहीन होने पर भी उसे धनवान् समझना। क्योंकि धन तो एक भव में ही सुख देता है परंतु समकित तो भवोभव में अनंत सुखदायक है।' इस प्रकार कहकर राजा वापिस न लौटकर आगे चला। परंतु शत्रु आने के समाचार सुनकर एक छत्रधारक के सिवा दूसरे सर्व परिवार अपने घर की खबर लेने के लिए वापिस लौट गये। राजा अपने अलंकार छिपाकर, छत्रधारक के वस्त्र पहिनकर आगे चला। वहाँ किसी राजा के देखते ही कोई एक मृग पास की लताकुंज में घूस गया। उसके पीछे तुरंत ही धनुष पर बाण चढ़ाकर कोई भील आया और राजा को पूछा : 'अरे ! मृग किस ओर गया ? वह बता।' यह सुनकर राजा ने मन में सोचा कि 'जो प्राणियों का अहित होता हो तो वह सत्य हो तो भी कहना नहीं चाहिये और ऐसा प्रसंग आये तब पूछनेवाले को प्रपंचभरा जवाब सद्बुद्धिवान् पुरुष को देना चाहिये।' ऐसा चिंतन करके राजा बोला, 'अरे भाई ! मैं मार्गभ्रष्ट हुआ हूँ।' भील ने दुबारा पूछा तब राजा ने कहा, 'मैं हंस हूँ।' इस प्रकार के राजा के वचन सुनकर वह भील क्रोध से बोला, 'अरे विकल ! ऐसे उलटे उतर क्यों दे रहा है ?' तब राजा ने कहा, 'अब

तुम मुझे जो मार्ग बताओगे उस मार्ग पर मैं जाऊँगा।' इस प्रकार के विरुद्ध वचन सुनकर भील उसे पागल व आधा बहरा मानकर निराश होकर वापिस चला गया।

वहाँ से राजा आगे चला। उतने में एक साधू उसके देखने में आया, उसे नमस्कार करके वह आगे बढ़ा। वहाँ हाथ में शस्त्र धारण किये हुए दो भील राजा को सामने मिले। उन्होंने राजा को पूछा : 'अरे पार्थ ! हमारे स्वामी चोरी करने जा रहे थे, वहाँ बीच में एक साधू सामने से आता हुआ मिला। अपशकुन हुए जानकर हमारे स्वामी वापिस लौटे और साधू को मारने के लिए हमें भेजा है तो वह साधू तेरे देखने में आया हो तो बता।' राजा उस समय भी असत्य भी सत्य जैसा है - ऐसा मानकर बोला, 'वह साधू बाँयी ओर से जा रहा है लेकिन वह आपको मिलेगा नहीं क्योंकि उसकी गति एकदम तेज है।' ऐसा उतर सुनकर वे दोनों वापिस लौट गये। तत्पश्चात् राजा सूखे पत्तों वगैरह का आहार करके रात्रि को सोने की तैयारी कर रहा था। उतने में उसने कुछ कोलाहल सूना। उसने ऐसे शब्द सुने कि 'हम तीसरे दिन संघ को लूटेंगे।' वह सुनकर राजा चिंतातुर बना। क्षण भर की देरी के बाद कई सुभटों ने आकर पूछा, 'अरे ! तूने कहीं चोर को देखा ? हम गोधीपुर के राजा के सेवक हैं, और राजा ने संघ की रक्षा करने के लिए हमें भेजा है।' यह सुनकर राजा ने कहा, 'यदि मैं चोरों को बताऊंगा तो ये राजसेवक अवश्य उन्हें मार डालेंगे और नहीं बताऊंगा तो चोर लोग संघ को लूंट लेंगे। अब मुझे यहाँ क्या बोलना उचित है ?' राजा कुछ सोचकर बोला, 'मैंने चोरों को देखा नहीं हैं परंतु कोई ठिकाने पर उन्हें ढूंढ निकालना अथवा ढूंढने की क्या जरूरत है ? तुम सब संघ के साथ रहकर उसकी रक्षा करो।' उतर सुनकर वे चले गये। उनके जाने के बाद सुभटों के साथ हुई बातों को सुनने वाले चोर राजा के पास आये कहने लगे, 'अरे भद्र ! तूने हमारे प्राण बचाये। इसलिए अब हम चोरी या हिंसा नहीं करेंगे। इसका लाभ आपको प्राप्त होवे।' इस प्रकार कहकर चोर अपने स्थान पर चले गये।

वहाँ से राजा आगे चले। उतने में कई घुड़सवारों ने आकर पूछा, 'अरे पार्थ ! हमारे शत्रु हंसराज को तूने कहीं देखा है ? वह हमारा कट्टर शत्रु है सो उसका हमें विनाश करना है।' असत्य नहीं बोलना है - ऐसे निश्चय से राजा बोला, 'मैं स्वयं हंस हूँ।' ऐसा सुनकर उन्होंने क्रोध से राजा के मस्तिष्क पर खड्ग से प्रहार किया, परंतु उसी समय खड्ग के सैंकडों टुकड़े हो गये और राजा पर पुष्पवृष्टि हुई। तत्काल एक यक्ष प्रकट होकर बोला, 'हे सत्यवादी राजा ! आपकी चिरकाल जय हो। हे नृप! आपको आज ही जिनयात्रा करा सकूं इसलिए आप इस विमान को अलंकृत करें।' यक्ष के ऐसे वचन सुनकर यात्रा पूर्ण की। यक्ष के सांनिध्य शत्रु को जीत कर, राज्य भोगकर कालानुसार राजा दीक्षा लेकर स्वर्ग में गये।

६९ — श्री कालिकाचार्य और सागराचार्य —

उज्जैन नगरी में श्री कालिकाचार्य नामक आचार्य उग्रविहारी और महाज्ञानी थे। परंतु उनके शिष्य साधू के आचार पालने में शिथिल थे। उन्हें आचार्य हंमेशा सीख देते थे मगर वे कुत्ते की दुम की भाँति वक्रता छोड़ते न थे। इससे खेद पाकर आचार्य ने सोचा, 'इन शिष्यों को सुधारने में मेरा स्वाध्याय बिगड़ता है - बराबर नहीं हो सकता। वे मेरी सीख को योग्य दाद देते नहीं है इसलिये इनका दूसरा कोई उपाय करना चाहिये।'

एक बार सीमंधर स्वामी को इन्द्र ने पूछा कि, 'हे स्वामी ! इस समय भरतक्षेत्र में ऐसा कोई विद्वान है कि जिन्हें पूछने पर आपने वर्णन किया वैसा निमोद के स्वरूप का यथार्थ वर्णन करें?' तब प्रभु ने कहा, 'हे इन्द्र ! इस समय भरतक्षेत्र में आर्य कालिकाचार्य हैं जो श्रुत पाठ के बल से, मैंने कहा उसी प्रकार से निर्मोद का स्वरूप कह सकते हैं।' यह सुनकर इन्द्र ने उसकी परीक्षा करने के लिये वृद्धावस्था से झीर्ण हुआ शरीर बनाकर धीरे धीरे लकड़ी के सहारे चलते हुए कालिकाचार्य के पास आयें और लुहार की धौंकनी के भांति श्वासोच्छश्वास लेते हुए गुरु को वंदन करके पूछा, 'हे स्वामी ! मैं वृद्ध हूँ और वृद्धावस्था से पीडित हूँ। मेरा कितना आयुष्य और बाकी है वह आप मेरी हस्तरेखाएँ देखकर शास्त्र के आधार से कहो। मुझ पर कृपा करो। मेरे पुत्रों तथा स्त्री ने मुझे निकाल दिया है। मैं अकेला महाकष्ट में दिन बीता रहा हूँ। आप दयावान हो, इससे मुझ पर कृपा करो।' श्री कालिकाचार्य ज्ञानबल से जान गये कि ये सौधर्म देवलोक के इन्द्र हैं, इसलिए वे मौन रहे तब दुबारा वह वृद्ध बोला, 'मैं बुढ़ापे से पीडित हूँ, इसलिये ज्यादा समय यहाँ रहने के लिये अशक्त हूँ सौ मुझे जल्दी उत्तर दीजिये कि अब मेरा आयुष्य कितना शेष है ? क्या पांच वर्ष शेष हैं या उससे अधिक हैं ?' आचार्यश्री ने कहा, 'उससे भी अधिक है।' वृद्ध बोला : 'क्या दस वर्ष का है ?' गुरु ने कहा, 'उससे भी अधिक है।' वृद्ध ने फिर पूछा, 'क्या बीस या तीस वर्ष का आयुष्य बाकी है ? हे गुरु ! सत्य कहें।' गुरुने कहा, 'बार बार क्या पूछते हो ? आपका आयुष्य अंको की गिनती में आये वैसा नहीं है, क्योंकि वह अपरिमित

(असंख्यात) हैं। मुनि सुप्रत स्वामी के समय में आप इन्द्र हुए हो, वर्तमान चौबीसी के आखरी चार तीर्थंकरों के पांच कल्याणकों का उत्सव आपने किया है। और अगली चौबीसी के कई तीर्थंकरों की वंदना तथा पूजा आप करोगे। आपका आयुष्य दो सागरोपम में कुछ कम बचा है।' कालिकाचार्य के वचन सुनकर इन्द्र बड़ा हर्षित हुआ। तत्पश्चात् निगोद का स्वरूप पूछकर उसे समझकर निःशंक बने। और श्री सीमंधर स्वामी ने की हुई प्रशंसा सुनाकर उन्होंने कहा, 'हे स्वामी ! मेरे लायक काम बताइये।' तब गुरु बोले, 'धर्म में आसक्त हुए संघ का विघ्न निवारण करें।' तत्पश्चात् इन्द्र ने अपनी इच्छा से अपने आने की निशानी के रूप दिव्य व मनोहर उपाश्रय का एक द्वार दूसरी दिशा में करके शीघ्र ही स्वर्ग लौट गये।

सूरीजी के शिष्य जो गोचरी के लिये नगर में गये थे वे आये, उन्होंने गुरु को कहा, 'हे स्वामी ! इस उपाश्रय का द्वारा दूसरी दिशा में कैसे हो गया ? आप भी विद्या के चमत्कार देखने की स्पृहा रखते हैं ? तो हमारे जैसों को वैसा करने में क्या दोष ?' ऐसा सुनकर गुरु ने इन्द्र का आगमन वगैरह सर्व वृत्तांत यथार्थ कहा। तब शिष्य बोले, 'हमें भी इन्द्र का दर्शन कराईये।' गुरु ने कहा, 'देवेन्द्र मेरे वचनों के आधीन नहीं है। वे तो अपनी इच्छा से आये थे और गये। उनके लिए दुराग्रह करना उचित नहीं है।' गुरु के ऐसा कहने पर भी विनयरहित शिष्यों ने दुराग्रह छोड़ा नहीं और विनय रहितता से आहार वगैरह करने - कराने लगे। इससे उद्वेगित होकर गुरु एक रात्रि के अंतिम प्रहर में सब शिष्यों को सोता छोड़कर, एक श्रावकको जगाकर, परमार्थ समझाकर नगरी के बाहर निकल चले। अनुक्रम से विहार करते करते वे दक्षिण देश की स्वर्णभूमि पर आ पहुँचे। वहाँ बुद्धिमान सागर नामक अपने शिष्य के शिष्य रहते थे। उनके पास आकर इर्यापथिकी प्रतिक्रमण करके पृथ्वी प्रमार्जन करके रहे। सागर मुनि ने उन्हें कभी देखा न था इसलिए उन्हें पहचाना नहीं। और इसी कारण वे खड़े नहीं हुए तथा वंदना भी न की। उन्होंने सूरी को पूछा, 'हे वृद्ध मुनि! आप किस स्थान से पधार रहे हैं?' गांभीर्य के समुद्र समान गुरु शांत चित्त से बोले, 'अवन्ति नगरी से। तत्पश्चात् उनको ज्ञानपूर्वक समग्र क्रिया करते देखकर सागर मुनि ने सोचा, 'वाकई यह वृद्ध बुद्धिमान

है।' तत्पश्चात् उसने अपने शिष्यों को वाचना देते हुए बुद्धि के मद से सूरी को कहा, 'हे वृद्ध! मैं श्रुत स्कंध पढ़ा रहा हूँ। वह आप सूने।' यह सुनकर गुरु तो मौन ही रहे। तत्पश्चात् सागरमुनि अपनी बुद्धि की कुशलता बताने के लिए कई सूक्ष्म बुद्धिवालों से ग्रहण हो सके ऐसी परिभाषा का विस्तार करने लगे। परिभाषा रस में तल्लीन होने से बेमौके पर अनध्याय का समय जाना नहीं।

उज्जैन नगरी में प्रातःकाल शिष्य उठे। वहाँ गुरु को देख नहीं, जिससे वे अत्यंत आकुल-व्याकुल हो गये और संभ्रात चित्त बस्ती के स्वामी शय्यातर श्रावक के पास जाकर पूछा, 'हमें छोड़कर हमारे गुरु गये कहाँ ? तब उस श्रावक ने कोप करके कहा, 'श्रीमान आचार्य ने आपको खूब उपदेश दिया, आपको बहुत समझाया, प्रेरणा की फिर भी आप सदाचार में प्रवर्त न हुए। तुम्हारे जैसे प्रमादी शिष्यों से गुरु के कार्य की क्या सिद्धि होनेवाली थी? इसलियें वे तुम्हें छोड़कर चले गये।' यह सुनकर वे लज्जित हो गये और कहा, 'आप हम पर प्रसन्न होवे और हमारे गुरु ने पवित्र की हुई दिशा हमें दिखाये। इस प्रकार शिष्यों ने बड़े आग्रहपूर्वक पूछा इसलिये उस श्रावक ने गुरु के विहार की दिशा बतायी। वे सब वहाँ से चल पड़े। अनुक्रम से गुरु को ढूंढते ढूंढते वे सागर मुनि के पास आये और उनको पूछा, 'पूज्य ऐसे कालिकाचार्य कहाँ है?' सागर मुनि ने उत्तर दिया, 'वे तो मेरे पितामह गुरु लगते हैं। वे तो यहाँ नहीं आये हैं, परंतु जिन्हें मैं पहचानता नहीं हूँ - ऐसे कोई वृद्ध मुनि उज्जैन नगरी से यहाँ पधारे हैं। आप उन्हें देखो, वे इसी स्थान में है।' तत्पश्चात् शिष्यों ने सागर मुनि द्वारा बताये स्थल पर देखा। वहाँ गुरु को देखकर हीन मुख से अपने अपने अपराध की बार बार क्षमा मांगी। यह देखकर सागरमुनि ने लज्जा से नम्र मुख से सोचा, 'अहो ! इन गुरु के पास पांडित्य दिखाया! यह मैंने योग्य नहीं किया। मैंने सूर्य की कांति के पास खद्योत जैसा व आम के वृक्ष पर तोरण बांधने जैसा किया।' ऐसा सोचकर उन्होंने उठकर विनयपूर्वक क्षमापना करके गुरु के चरणकमल में शिश रखकर कहा, 'हे गुरुदेव! विश्व को पूज्य ऐसे आपकी मैंने अज्ञानता से आशातना की है, उसका मुझे मिथ्या दुष्कृत हो।'

तत्पश्चात् आचार्य ने सागरमुनि को प्रतिबोध देने के लिए एक प्याला भर कर नदी की रेत और एक छलनी मंगवाई। छलनी में उस रेत को छाना गया तो बारीक रेत निकल गई और छलनी में बड़े कंकर बाकी रहे। उन्हे दूर फेंककर रेत को दूसरे स्थान पर ड़ाली। बाद में दुबारा रेत को वहाँ से उठाकर अन्य स्थान पर ड़ाली। वहाँ से भी रेत उठाकर अन्य स्थान पर ड़ाली। इस प्रकार भिन्न भिन्न स्थान पर ड़ाली और उठायी। इस प्रकार करते हुए बहुत कम रेत शेष बची। इस प्रकार रेत का दृष्टान्त बताकर गुरु ने सागरमुनि को कहा, 'हे वत्स! जिस प्रकार नदी में स्वाभाविक तौर पर बहुत रेत होती हैं उसी प्रकार तीर्थंकरो में संपूर्ण ज्ञान रहा है। जिस प्रकार प्याले से नदी में से थोड़ी रेत ली उस प्रकार गणधरों ने जिनेन्द्रों से थोड़ा श्रुत ग्रहण किया, और जिस प्रकार रेत को भिन्न भिन्न स्थानों पर डालकर वापिस लेने से नई नई भूमि के योग से कम होते होते थोड़ी शेष बची। इस प्रकार श्रुत भी गणधर द्वारा चलती परम्परा के क्रमानुसार कालादिक के दोष के कारण अल्पतम बुद्धिवाले शिष्यों की विस्मृति वगैरह के कारण से क्षीण होकर अब बहुत कम बचा है। इसमें छलनी का उपनय इस प्रकार समझना है कि सूक्ष्मज्ञान का सर्वनाश हो गया है, अब स्थूल ज्ञान ही रहा है। इसलिये हे वत्स ! तूने श्रुत का अभ्यास अच्छी तरह से किया है परंतु श्रुत ज्ञान के प्रथम आचार को तू बराबर समझ नहीं पाया है; क्योंकि तू बेसमय स्वाध्याय करता है। इसके बारे में निशीध चूर्णी में कहा है कि '1. सूर्योदय से पूर्व, 2. मध्याह्न समय, 3. सूर्यास्त समय और 4. अर्धरात्रि को चार संध्या समय पर स्वाध्याय न करना।' यह उपदेश गुरु के मुख से सुनकर सागर आचार्य ने मिथ्या दुष्कृत देकर वंदन किया गुरु चरणों में शीश झुकाया और विशेष रूप से गुरु की सेवा करने लगे। 'जो कोई सागर आचार्य की भाँति अहंकार से योग्य काल को अतिक्रमित करके श्रुतादिक पठन करते हैं वे विद्वान साधू की सभा में कई प्रकार से लज्जित होकर निंदा को प्राप्त करते हैं।'

●

७० मानतुंगसूरि

भोज राजा की धारा नगरी में बाण एवं मयूर - नामक साला बहनोई - दो पण्डित रहते थे। दोनों अपनी पण्डिताई के लिए परस्पर ईर्ष्या रखते थे। दोनों ने अपनी अपनी पण्डिताई से राज्यसभा में प्रतिष्ठा पायी थी। दोनों राज्यमान्य पण्डित थे। एक बार बाण कवि अपनी बहिन से मिलने उसके (मयूर के) घर गये। वहाँ उसका अच्छा सत्कार करके रात्रि को दालान में बिछाना लगाकर उसे सुलाया।

घर में मयूर और उसकी स्त्री (बाण की बहिन) सो गये परंतु रात्रि के समय दम्पति में किसी बात पर तकरार हो गई। वह सब टंटा बाहर सोते बाण ने सुन लिया। मयूर अपनी स्त्री को खूब समझाता है पर वह स्त्री मानती नहीं है। प्रातः होने लगी थी तो मयूर उसे मनाने के लिए एक कविता बोलने लगा। उसके तीन पद स्त्री को सुनाये तब बाहर सोते हुए बाण से रहा न गया, सो चौथा पद उसने पूर्ण किया। सुनकर बहिन को क्रोध चढ़ा। अपने मीठे कलह में अनचाही रीत से भाई की दखलगिरी होने से उसे श्राप दिया कि 'जा तू 'कुष्टि' कोढी हो जायेगा।' वह सती स्त्री थी, इसलिये बाणकवि शीघ्र कोढी बन गया। प्रातःकाल राजसभा में मयूर कवि पहले से बैठा हुआ था तब बाणकवि आया। तब मयूर बोला, आईये... पधारिये, कोढी बाण ! आईये।' मयूर के ऐसे वचन सुनकर राजा भोज बोला, 'उसे कोढ किस प्रकार हुआ?' मयूर ने हकीकत कह सुनाई। इतना ही नहीं, बाण के अंगो पर प्रत्यक्ष कोढ के सफेद ददोरे बताये। इस कारण भोज राजा ने जब तक उसे कोढ़ मिटे नहीं तब तक राजसभा में आने की तथा नगर में रहने की सख्त मना फरमा दी। बाण कवि इससे बड़ा लज्जित हुआ और अभिमान वश वहाँ से उठकर तत्काल नगर के बाहर चल दिया।

नगर के बाहर आमने-सामने बाँस के दो स्तंभ खड़े करके, बीच में ऊँची रस्सी बांध दी और उसमें एक छः बंधनवाला सींका बांधकर उसमें वह स्वयं (बाण कवि) बैठा और नीचे अगिनकुण्ड जलाकर सूर्यदेवता की स्तवना संबंधी एक एक काव्य रचकर बोलकर एक एक सींके से रस्सी अपने हाथ

से छेदते हुए, पांच काव्य बोले और पाँच रस्सियाँ छेद डाली। छट्ठा काव्य बोलने के बाद जब वह अंतिम रस्सी काटने का आरंभ करता है तब उसको देखने इकट्ठे हुए कई मनुष्यों की भीड़ के बीच में सूर्यदेवता ने प्रत्यक्ष दर्शन दिये, इतना ही नहीं उसका कोढ दूर करके सुवर्णकांति जैसा उसका शरीर कर दिया। ऐसी घटना घटने से दूसरे दिन राजा ने बड़े ठाठ से बाजेगाजे के साथ दरबार में बुलवाया। जब वह आया तो अपने बहनोई (मयूर) को कहा, 'काले मुँह वाले कौए जैस शूद्र पक्षी ! मुझ गरुड समान के आगे तेरी क्या शक्ति है? यदि शक्ति है तो दिखा दे? बेठा क्यों है?'

उस समय मयूर ने कहा, 'है, है, है : हममें भी ऐसी शक्ति है, यद्यपि नीरोगी को औषध की कुछ जरूरत नहीं फिर भी तेरे वचन को अन्यथा करने के लिए इस सभा के समक्ष मेरी शक्ति बता देता हूँ तो तू तेरी आँखे खोलकर देख ले।' ऐसा कहकर उसने एक छुरी मंगवाई और अपने हाथ-पैर की ऊँगलियाँ अपने हाथ से काट डाली और चण्डीदेवी की स्तवना करते हुए काव्य रच कर बोलने से कविता के छट्ठे अक्षर का उच्चार करते ही देवी प्रसन्न होकर आयी और खड़ी रही। वह बोली, 'महासात्त्विक ! माँग, मैं तूझ पर प्रसन्न हूँ, तू जो माँगेगा वह दूंगी।' उसने शीघ्र ही देवी से वर माँगकर अपनी कटी हुई ऊँगलिया ठीक करवा दी। इतना ही नहीं, प्रसन्न हुई देवी ने उसका शरीर भी व्रजमय दृढ कर दिया। यह चमत्कार देखकर पूरी सभा आश्चर्य से स्तब्ध हो गई। इससे राजा ने भी उसका बड़ा सम्मान किया और उसके वर्षासन में भी बड़ी बढोत्तरी कर दी।

इस अवसर पर जैन धर्म पर द्वेष रखनेवाले किसी विप्र में सभा के बीच बात चलाई कि 'जैन धर्म में ऐसी चमत्कारिक कविता रचनेवाले पण्डित नहीं देखे गये हैं। यदि कोई ऐसी चमत्कारिक कविता रचने में अपनी चालाकी दिखाये तो ठीक है परंतु यदि ऐसा कोई भी प्रभावक उनमें न हो तब बेकार में ही इस आर्य देशमें उन्हें क्यों आने-जाने दें ? सभा में बैठे हुए बड़े भाग के जैनद्वेषी होने से सबका ध्यान इस बात में आकर्षित हुआ। इस कारण राजा ने तुरंत अपने सेवकों को भेजकर दूर देश में विचरते श्री मानतुंगाचार्य नामक जैनाचार्य को रूबरू बुलवाया और पूछा कि 'आपके यहाँ कोई भी चमत्कारिक कविताएँ रचने में प्रवीण हो तो हमें मिलवाइये। यदि कोई भी ऐसा विद्वान

आपमें न हो तो आपके लिए हमें भी कुछ सोचना पड़ेगा।' मानतुंगाचार्य ने कहा, 'अहो ! इसमें क्या? ऐसे चमत्कार तो मैं भी कई जानता हूँ।' राजा ने कहा, 'तो इसी समय बताओ।' श्री मानतुंगाचार्य ने हाँ कह दी और कहा, 'मुझे एक कमरे में बंद कर दो और मेरे शरीर को चारोंओर लोहे की जंजीर से बांधो। हाथ-पैर बेड़ियों से बांधो। दरवाजा बंद करके उसे चौवालीस ताले लगाओ। मैं स्तोत्र रचता जाऊँगा और जंजीर और ताले टूटते जायेंगे और मैं कमरे से बाहर आ जाऊंगा।' राजा ने तत्काल इस प्रकार प्रबंध कराकर श्री मानुतुंगाचार्य को एक कमरे में बिठाकर जंजीरे वगैरह बांधकर दरवाजा बंद कर दिया और चौवालीस ताले लगा दिये।

श्री मानतुंगाचार्य ने प्रभु आदेश्वर को प्रार्थना की, हृदय में श्री आदेश्वर तीर्थंकर की स्थापना की और एक के बाद एक भक्तामर स्तोत्र की गाथा अपनी अनोखी कवित्व शक्ति से बनाते गये और सबको सुनाते गये। ज्यों ज्यों गाथा बोलते गये त्यों त्यों जंजीर - बेडियाँ और ताले टूटते गये, अंतिम गाथा बोलकर महाराज श्री बंधनमुक्त होकर कमरे से बाहर आ गये। राजा और राज्यसभा के कई लोगों ने यह चमत्कार देखा। ऐसा चमत्कार देखकर जैन शासन की बड़ी उन्नति हुई, सिर्फ इतना ही नहीं, राजा और उसकी सभा का बड़ा भाग जो जैनों का द्वेषी था वह भद्रिक बना और अंत में जैन धर्म का बोध पाया। जो चौवालीस गाथाओं की उन्होंने रचना की वह आज 'भक्तामर स्तोत्र' नाम से सुप्रसिद्ध है। दिगम्बर उनमें चार गाथाये छोड़कर अडतालीस गाथाओं का पाठ भी करते हैं।

नोंध : जैनो में भी कुछ गोल ताला चौवालीस के बदले उडतालीस था ऐसा मानते है।

७१ श्री धर्मरुचि

वसंतपुर नगरमें जिनशत्रु नामक राजा था, उसे धारिणी नामक रानी थी, उससे धर्मरुचि नामक एक पुत्र था। एक बार कोई तापस से दीक्षा लेने की इच्छा से राजा अपने पुत्र को राजगद्दी पर बिठाने के लिए उद्युक्त हुआ। वह खबर सुनकर धर्मरुचि ने अपनी माता को पूछा, 'माता! मेरे पिताजी राज्य का त्याग क्यों कर रहे हैं?' माता ने कहा, 'हे पुत्र ! यह राज्यलक्ष्मी किस काम की है? यह राज्यलक्ष्मी चंचल, नरकादि सर्व दुःख मार्ग में विघ्न रूप, परमार्थ में पाप रूप और इस लोक में मात्र अभिमान करानेवाली हैं।' यह सुनकर धर्मरुचि ने कहा कि 'हे जननी! जब ऐसी राज्यलक्ष्मी तो है क्या मैं मेरे पिता को मैं ऐसा अनिष्ट हूँ, कि वे सर्व दोषकारक राज्यलक्ष्मी मेरे सिर पर मढ़ रहे हैं?' इस प्रकार कहकर उसने भी पिता के साथ दीक्षा ली और संपूर्ण तापस क्रिया यथार्थरूप से पालने लगे।

एक बार अमावास्या के अगले दिन (चौदस) एक तापस ने ऊँचे स्वर से विज्ञप्ति की कि 'हे तापसो! कल अमानस्या होने से अनाकुष्ठि है। इसलिये आज दर्भ, पुष्प, समिध, कंद, मूल तथा फल वगैरह लाकर रखने जरूरी हैं।' यह सुनकर धर्मरूचि ने गुरु बने पिता को पूछा, 'पिताजी! यह अनाकुष्ठि यानि क्या?' उन्होंने कहा, 'पुत्र! लता वगैरह का छेदन न करना उसे अनाकुष्टि कहते हैं। यह अमावास्या का दिन जो पर्व माना जाता है, इस दिन यह मत करना। क्योंकि छेदनादि क्रिया सावध मानी जाती है। यह सुनकर धर्मरुचि सोचने लगा, 'मनुष्यादिक शरीर ज्यों जन्मादि धर्म से युक्तपने के कारण वनस्पति में भी सजीवपना स्फुट रूप से प्रतीत होता है। तब यदि सर्वदा अनाकुष्टि होवे तो बहुत अच्छा।' इस प्रकार सोचनेवाले धर्मरुचि को अमावास्या के दिन तपोवन के नजदीक के मार्ग से जाते हुए कई साधू देखने में आये। उन्होंने साधुओं को पूछा, 'क्या आपको आज अनाकुष्टि नहीं है, जिससे कि आप वन में प्रयाण करते हो?' उन्होंने कहा कि 'हमें तो यावज्जीवित अनाकुष्टि है।' ऐसा कहकर साधु चले गये। यह सुनकर चर्चा करते हुए धर्मरुचि को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ; उसको याद आया कि 'मैं पूर्वभव में दीक्षा

लेकर मृत्यु पाकर, देवलोक के सुख का अनुभव करके यहाँ आया हूँ। पूर्व मैंने वनस्पति जीव को अभयदान दिया था तो अब इस भव में उसकी हिंसा करनी मेरे योग्य नहीं है।' ऐसा सोचकर वह प्रतिज्ञाबद्ध हुआ। पश्चात् उसने कंदादिक का भक्षण करनेवाले तापसों को भी उसका पच्चक्खाण कराया।

'बकरे, ऊँट, हाथी और दूसरे अन्य पशु वगैरह के भय में लत्ताए, प्रमुख वनस्पतियों का तूने भली प्रकार से भक्षण किया है, तो अब श्रावकपन को प्राप्त करके हे जीव ! उन वनस्पतियों वगैरह का भली प्रकार से रक्षण कर, जिससे धर्मरुचि मुनींद्र की तरह उत्तम फल प्राप्त हो सके।'

●

उपदेशात्मक दोहे

- सच्चाई छुप नही सकती, कभी बनावट के उसुलों से।
  खुशबु आ नही सकती, कभी कागज के फूलों से॥
- पाप छिपायो ना छिपे, जो छिपे तो बडे भाग।
  दाबी डूबी ना रहे, रुई लपेटी आग॥
- बहुत बीती थोडी रही, अब तो सुरत संभार।
  पर भव निश्चित चालणो, वृथा जन्म मत हार॥
- धन दे तन को राखीये, तन दे राखीये लाज।
  धन तन लाज दे, एक धर्म के काज॥
- सिंह गमन पुरुष वचन, केल फले एक बार।
  तिरिया तेल मोती नीर, चढे न दूजी बार॥

७२ सती अंजना

जंबूद्वीप में प्रहलादन नामक नगरमें प्रहलादन नामक राजा और प्रहलादनवती नामक रानी थी। उनका पवनंजय नामक कुमार था। उस समय वैताढ्य गिरि पर अंजनकेतु राजा और अंजनवती रानी को अंजना नामक पुत्री थी। युवावस्था में आते ही उसका पाणिग्रहण करवाने के लिए अंजनकेतु राजा अनेक कुमारों के चित्र पट पर आलेखित करवाकर उसे बताता था, यद्यपि उसे कोई भी कुमार पर प्रीति नहीं होती थी। एक बार राजा ने भविष्यदत्त और पवनंजय कुमार के रूप चित्रपट पर आलेखित करवार कर मंगवाये और उसे बताये। दोनों कुमार के रूप, कुल, शील, बल वगैरह देखकर दोनों चित्रों को अपने पास रखे।

एक बार राजा अंजनकेतु मंत्रियों के साथ उन कुमारों के गुण वगैरह का विचार करने लगे। उन्होंने मुख्यमंत्री को पूछा कि 'इन कुमारों में विशेष रूप से बढ़कर कौन है?' मंत्री ने कहा, 'महाराज! भविष्यदत्त कुमार में कई गुण हैं यद्यपि श्री भगवंत ने कहा है कि, भविष्यदत्त अठारह वर्ष की आयु में मोक्ष पायेगा, इसलिए वह हमारी कन्या के अनुरूप वर नहीं है; सर्व रूप से यह पवनंजय कुमार ही योग्य है।' इस प्रकार मंत्री के कहने से राजा ने अंजना का विवाह तय किया। यह समाचार पवनंजय कुमार को मिलते ही वह ऋषभदत्त नामक अपने मित्र को साथ लेकर अंजना का लावण्य तथा उसका प्रेम देखने वहाँ आया। दोनों नीले वस्त्र धारण करके रात्रि को गुप्तरूप से श्वसुरगृह के अंत:पुर में दाखिल हुए। वहाँ मधुर आलाप होता सुनाई दिया। कोई सखी अंजना को कहने लगी, 'स्वामिनी! आपने अंतिम जो दो कुमारों के चित्र देखे थे, उनमें जो भविष्यदत्त है वह गुणों से अधिक और धर्मज्ञ है परंतु वह अल्प आयुष्यवाला है - ऐसा जानकर उसे छोड़ दिया है और दूसरा पवनंजय दीर्घायु होने से उसके साथ आपका सम्बन्ध किया है।' यह सुनकर अंजना बोली, 'सखी! अमृत के छींटे थोडे पर मीठे और दुर्लभ होते हैं, और विष बहुत अधिक हो तो भी वह किसी काम का नहीं होता।' यह सुनकर पवनंजय कुमार क्रोधायमान होकर खड्ग खींचकर उसे मारने के लिये तैयार हुआ। उसके मित्र ने उसे रोका और कहा, 'मित्र! इस समय रात्रि है। हम पराये घर आये हैं। और यह कुँवारी कन्या है। जब तक उससे आपका ब्याह नहीं हुआ तब तक वर परकीया

है, इसलिये उसे हणना योग्य नहीं है।' इसके बाद दोनों अपने स्थान पर चले गये।

तत्पश्चात् उसके साथ पाणिग्रहण करने की इच्छा न थी यद्यपि उसके पिता वगैरह ने ज्यों त्यों करके समझाकर उसका ब्याह कराया। परंतु चौरी मण्डप में पवनंजय कुमार ने राग से उसके मुख के सामने भी देखा नहीं और शादी के बाद भी उसे बुलाया नहीं। इससे अंजना निरंतर दु:ख की स्थिति का अनुभव करने लगी। बड़े उपायों के बाद भी उसे भरतार का सुख प्राप्त नहीं हुआ। इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये।

इस अवसर पर प्रतिवासुदेव रावण विद्याधर वरुण को साधने गया था। वहाँ उसका एक दूत प्रहलादन राजा को बुलाने के लिये आया। प्रहलादन राजा को वहाँ जाने के लिए तैयार होते देखकर पवनंजय ने उनको रोककर, उनकी आशिष लेकर, दृष्टिमार्ग में खड़ी अंजना के सामने देखे बगैर वहाँ से चल पडा। प्रयाण मार्ग में बीच में मानसरोवर आया। वहा उसने पडाव किया, वहाँ कमलवन विकसित हुआ देखकर उसने आनंद पाया। रात्रि को चक्रवाक पक्षी की स्त्री को करुण स्वर में विलाप करती हुई उसने सूनी। वह सूचित कर रही थी कि 'पति के वियोग से आतुर ऐसी यह चक्रवाकी रात्रि में आती है, जाती है, दुबारा आती है। कमल के अंकुर को खींचती है, पंख फडफड़ाती है, उन्माद करती है, घूमती है और मंदमंद बोलती है।' इस प्रकार के वचन सुनकर अपने मित्र ऋषभदत्त को उसका कारण पूछा, इससे वह बोला, 'मित्र! दैवयोग से इन पक्षियों का वियोग रात्रि को ही होता है। यह पक्षिणी इस प्रकार पुकार मचाती हुई मृतप्राय: हो जायेगी परंतु प्रभात होते ही उसका पति उसे मिलेगा तब वह फिर से प्रफुल्ल व ताजगीभरी बन जायेगी।'

उस समय अंजना का पूर्व बांधा हुआ भोगांतराय कर्म क्षय पा चुका था, इसलिये पवनंजय के मन में तत्काल ऐसा विचार आया, 'अरे! मेरी पत्नी अंजना को छोड़े हुए मुझे बारह वर्ष बीत चुके हैं, तो उस बेचारी के ये वर्ष किस प्रकार व्यतीत हुए होंगे? इसलिये यहाँ से चलूं और घर वापिस जाकर एक बार मिल आऊँ। ऐसा सोचकर कुमार रात्रि को गुप्तरूप से घर आया और उसी दिन ऋतुस्नाता हुई अंजना का उपभोग प्रेमपूर्वक किया। बाद में अपने नाम से अंकित मुद्रिका निशानी के लिए अंजना को दी और अपने कटक में पुन: लौट गया। उसके जाने पर क्रमानुसार अंजना को गर्भ ठहर गया। उदरवृद्धि होते देखकर उसकी सास ने कलंकिनी मानकर कठोर वचन कहें। अंजना ने अपने पति के नाम से अंकित मुद्रिका बताई फिर भी वह कलंक मिटा नहीं, और एक दासी के साथ उसे गृह

से बाहर निकाल दिया। वहाँ से निकलकर वह अपने पिता के घर आयी, लेकिन वहाँ भी कलंकित जानकर उसे वहाँ रहने न दिया। इस कारण मात्र एक दासी के साथ वन में भटकने लगी। पूर्ण मास बीतने पर उसने एक पुत्र को जन्म दिया, और मृगबाल की भाँति उसका पालन करने लगी।

एक बार दासी जल लेने गई थी, वहाँ उसने मार्ग में एक मुनि को कायोत्सर्ग में खडे देखा। उसने अंजना को वह बात बताई, इसलिए अंजना उनके पास पास जाकर नमस्कार करके बैठी। कायोत्सर्ग पूर्ण करके मुनि ने धर्मदेशना दी। वह सुनकर अंजना ने अपने पर पडे दु:ख का कारण पूछा। मुनि ने अवधिज्ञान से उसका पूर्वभव बताया, 'हे अंजना! किसी गाँव में एक धनवान श्रेष्ठि की तू मिथ्यात्वी स्त्री थी। तेरी दूसरी एक सपत्नी थी वह परमश्राविका थी। वह प्रतिदिन जिन प्रतिमा की पूजा करने के बाद भोजन करती थी। उस पर द्वेष धारण करती होने से एक दिन तूने उसकी जिन प्रतिमा को कूड़े में छिपा दिया। इस कारण जिनपूजा न हो सकने से उसने मुख में जल भी नहीं डाला और बड़ी आकुलव्याकुल हो गई। वह हर किसीको प्रतिमा के बारे में पूछने लगी, इतने में कूड़े में पडी प्रतिमा कोई बताने लगा, पर तूने न दिखाने के हेतु से उस पर धूल डाली। इस प्रकार बारह मुहूर्त तक जब वह बहुत दु:खी हुई तब दया बताकर तूने उसे प्रतिमा लाकर दी। इस पाप के कारण तेरे पति का तुझसे बारह वर्ष का वियोग हुआ था। अब तेरे कर्मक्षीण हो जाने से तेरा मामा यहाँ आकर तूझे अपने घर ले जायेगा। वहाँ तेरा स्वामी भी तूझे मिलेगा।' इस प्रकार मुनि कह रहे थे कि एक विद्याधर उपर से गुजर रहा था। उसका विमान वहाँ स्खलित हुआ। विद्याधर ने उसका कारण जानने के लिए नीचे देखा तो अपनी भानजी अंजना को पहचान लिया; इसलिये तत्काल नीचे उतरकर दासी एवं पुत्र सहित अंजना को अपने विमान में बिठाकर आकाशमार्ग से चल पड़ा।

अंजना का बालक बड़ा चपल और उग्र पराक्रमी था। उसने चलते विमान के घूंघरु की आवाज सुनी। बालक को घूंघरु लेने की जिज्ञासा हुई। वह अपना हाथ बढा रहा था कि आकस्मिक रूप से विमान में से नीचे गिर पड़ा। वह देखकर अंजना को बड़ा दुख हुआ और आक्रंद स्वर में रुदन करते हुए कहा : 'अरे प्रभु! यह क्या गजब! अरे! हृदय क्या वज्र से घड़ा हुआ है कि वह पतिवियोग से टूटा नहीं और अब पुत्रवियोग से भी खण्डित नहीं होता है? इतनी ऊंचाई से गिरा पुत्र क्या बचनेवाला है? यह सुनकर उसका मामा पृथ्वी पर उतरा। एक शिला की रेत पर पड़े बालक को ज्यों त्यों उठाकर उसकी माता को दिया। बाद में वह विद्याधर

अंजना को बालक सहित अपने घर छोड़कर अपने किसी कार्यवश अन्य स्थानक पर चल दिया। पवनंजय वरुण विद्याधर की साधना करके घर लौटा। मातापिता को प्रणाम करके अपनी पत्नी के आवास में गया, वहाँ अपनी स्त्री को देखा नहीं। तत्काल मातापिता को पूछा तब उन्होंने कलंक लगने से निकालने सम्बन्धित कथा बतायी। यह सुनकर स्पष्टीकरण करते हुए उसने बताया कि रात्रि को वह स्वयं आया था और सर्व हकीकत बतायी। अंजना सती को दु:खी करके अत्यंत तेजी से गैरजिम्मेदारीपूर्वक कदम उठाया है। पवनंजय विरह व्याकुल होकर मरने के लिये चंदन की चिता रचकर मरने के लिये तैयार हुआ। उस समय उसके मित्र ऋषभदत्त ने कहा, 'सखे! यदि मैं अंजना को ढूंढ कर तीन दिन के भीतर न ला दूं तो योग्य लगे वैसा करना' इस प्रकार कहकर उसका निवारण करके ऋषभदत्त विमान में बैठकर आकाश मार्ग से परिभ्रमण करता हुआ तीसरे दिन सूर्यपुर आ पहुँचा। वहाँ उपवन में बालकों व स्त्रियों के बीच होती गोष्ठी उसने सुनी। उस वक्त किसी बालक ने कहा कि, 'मित्रों! यहाँ अंजना नामक कोई सुंदरी पुत्र सहित आई है। वह हमारे राजा सूर्यकेतु की सभा में रोजाना आती हैं।' ऐसे शब्द आकस्मिक रूप से सुनकर ऋषभदत्त ने बड़ा हर्ष पाया और तत्काल जाकर उनसे मिला। अंजना उसको देखकर लज्जा से नम्र मुख करके अपने मामा के पीछे खड़ी रही। ऋषभदेव से पति के दिग्विजय और उसकी विरहव्याकुल की बात सुनकर वहाँ जाने के लिए उत्सुक बनी। तत्पश्चात उसने मामा की आज्ञा ली। मामा ने भी अंजना को पुत्र सहित ऋषभदत्त को सौंप दी। ऋषभदत्त उन्हें लेकर बड़े वेग से पवनंजय के नगर में आया। उनके आने की खबर सुनकर पवनंजय ने बड़ा हर्ष पाया और बड़ा उत्सव करके अपने स्त्री, पुत्र को नगर प्रवेश कराया। सर्व नगरजनों ने भी आनन्द पाया।

पवनंजय और अंजना दोनों में प्रतिदिन प्रीति में वृद्धि होने लगी। पुत्र का नाम उन्होंने हनुमान रखा। वह अतुलित बलवान था। एक बार बीसवें तीर्थंकर श्री मुनि सुव्रत स्वामी के तीर्थ के कोई मुनि वहाँ पधारे। उनकी देशना सुनकर पवनंजय और अंजना ने वैराग्य पाकर दीक्षा ली।

बालक हनुमान बड़ा होकर वीर हनुमान बना, और श्री रामचन्द्र की सेना का अध्यक्ष बना।

पवनंजय मुनि तथा सती अंजना साध्वी निरतिसार व्रत पालन करके स्वर्ग गये।

●

७३ — जितशत्रु और सुकुमालिका —

चम्पापुरी में जितशत्रु नामक राजा राज्य करते थे, उन्हें सुयोग्य नामवाली सुकुमालिका नामक रानी थी। राजा जितशत्रु उस पर इतना आसक्त था कि वह राज्यादिक की भी चिंता करता नहीं था। राजा के इस प्रकार के आचरण से मंत्री वर्ग ने राजा को स्त्री सहित मदिरापान कराकर अरण्य में छोड़ दिया और उसके पुत्र को राजगद्दी पर बिठाया। मदिरा का नशा उतरने के बाद राजा-रानी दोनों सोचने लगे, 'अरे! हम यहाँ कहाँ से? हमारी कोमल शय्या कहाँ गयी? हमारे राज्यवैभव का क्या हुआ। ऐसा सोचकर दोनों वहाँ से आगे बढ़े थोड़ी दूर चले तो कुसुमालिका को प्यास लगी। उसका कण्ठ और तालू सूख चूके थे। उसने राजा को कहा, 'स्वामी! मुझे जीवित रखने के लिए कहीं से जल ला दो।' राजा जल लेने गया मगर कहीं पर जल देखने में नहीं आया। पश्चात् पलाश वृक्ष के पत्तों का दोना बनाया, उसमें अपने बाहु की नस में से रुधिर निकाल कर भरा। वह दोना रानी के पास लाकर कहा, 'प्रिये! इस डबरे का जल अति मलिन है, उसे आंख बंध करके पी जा।' रानी ने वैसा करके पान किया। कुछ देर के बाद वह बोली, 'स्वामी! मुझे बहुत भूख लगी है।' राजा कुछ दूर जाकर अपनी जांघ का माँस काटकर उसे अग्नि में पकाकर रानी के पास रखा और पक्षी का माँस कहकर उसे खिलाया। क्रमानुसार वहाँ से किसी देश में जाकर अपने आभूषणों को बेचकर कुछ व्यपार करके राजा उसका पोषण करने लगा।

एक बार रानी ने कहा, 'स्वामी! जब आप व्यापार करने बाहर जाते हो तब मैं अकेली घर में नहीं रह पाती हूँ।' ऐसे वचन सुनकर राजा ने एक पंगु मनुष्य को चौकीदार के रूप में घर पर रखा। पंगु मनुष्य का कण्ठ बड़ा मधुर था। इस कारण उस पर मोहित होकर रानी ने उसको स्वामी स्वीकार लिया, तब से सुकुमालिका अपने पति जितशत्रु को मारने के विचार करने लगी। एक बार राजा रानी को लेकर बसंतऋतु में जलक्रीडा करने के लिये गंगा तट पर गये राजा ने मद्यपान किया।

जब राजा बेहोश हो गया। वहाँ तब रानी ने उसे गंगा के प्रवाह में बहता छोड़ दिया। तत्पश्चात् रानी सुकुमालिका उस पंगु की स्वेच्छा से गान करवाती। कंधे पर बिठाकर भीख माँगती हुई घूमने लगी। यह देखकर लोग उसे पूछने लगे कि, 'यह कौन है?' तब वह कहती, 'मेरे माता-पिता ने ऐसा पति देखा है, इसलिये स्कंध पर उसका वहन करती हूँ।'

वहाँ जितशत्रु को गंगा में बहते हुए होश आ गया, एक लकड़ी का तख्ता हाथ लगा। उसके सहारे वह तैर कर बाहर निकला एवं नदी तट पर एक वृक्ष के नीचे जाकर सो गया। उस समय समीप के नगर के राजा की मृत्यु हो जाने से उसके मंत्रियों ने पंचदिव्य किये, वे उस वृक्ष के पास आकर खड़े रहे तथा मंत्रियों ने राजा को जाग्रत करके राज्यगद्दी पर बिठाया। दैव योग से वह सुकुमालिका पंगु को लेकर उस नगरी में आ पहुँची। वे दोनों सतीपने और गीतमाधुर्य से उस नगरी में विख्यात हुए। उनकी प्रसिद्धि सुनकर राजा ने उनको अपने पास बुलवाया। दोनों को देखकर राजा ने पहचान लिया। राजा बोला, 'हे बाई! ऐसे बीभत्स पंगु को उठाकर तू क्यों घूमती है?' वह बोली, 'मातापिता ने जैसा पति ढूंढा हो उसे सतियों को इन्द्र जैसा मानना चाहिये।' यह सुनकर राजा बोला, 'हे पतिव्रता! तूझे धन्य है। पति के बाहु का रुधिर पिया और जांघ का माँस खाया तो भी अंत में गंगा के प्रवाह में छोड़ दिया है। अहो! कैसा तेरा सतीपना!' इस प्रकार कहकर उस न्यायी राजा ने स्त्री को अवद्य मानकर अपने देश की सीमा से बाहर निकलवा दिया और इस प्रकार प्रत्यक्ष स्त्रीचरित्र देखकर उसने सर्व स्त्रियों का त्याग करने रूप महाव्रत लिया।

सुकुमालिका का चरित्र देखकर जितशत्रु राजा विषयसुख से विरक्त बना और काम-क्रोधादि शत्रुओं पर जय पाकर अपना जितशत्रु नाम सार्थक किया।

●

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधिशोषणाय ॥२६॥

७४ पेथड शाह

कांकरेज के नज़दीक एक गाँव में पेथड नामक एक ओसवाल जाति का भला वणिक रहता था। उसे पद्मिनी नामक पत्नी थी। उसे डंकाण नामक एक पुत्र भी था। दरिद्रावस्था के कारण वह बालक दुखी रहता था। धर्मघोष नामक आचार्य वहाँ पधारे तो उनसे पाँचवा परिग्रह परिमाण व्रत अंगीकार करते हुए पेथड ने 'एक हजार के उपरांत द्रव्य मुझे रखना नहीं' ऐसा कहा। इसलिये आचार्य महाराज ने कहा, 'ज्ञान और चेष्टा से आपका भाग्य बहुत अच्छा दिखाई दे रहा है, सो हे श्रावक इतने द्रव्य से आपका क्या होगा : 'भगवन्! इस समय तो मेरे पास कुछ भी द्रव्य नहीं है, परंतु आपके कहे अनुसार यदि आगे मिल जायेगा तो पाँच लाख से उपर का द्रव्य मैं धर्म मार्ग में खर्च डालूंगा।' उसकी दृढ़ता देखकर गुरु ने उसे उस प्रकार का पच्चखान कराया, तत्पश्चात् दरिद्रावस्था का दुख वृद्धि पाया देखकर पुत्र को छबड़े में सिर पर उठाकर मालवा तरफ चला।

कालानुसार उस देश के मुख्य गाँव में घूसते ही सर्प को उसका मार्ग काटते देखा इसलिये वह अटक कर खड़ा रह गया। उस समय वहाँ एक शुकुनविद्व वहाँ आ पहुँचा। उसने पेथड को पूछा, 'क्यों खड़ा रह गया?' तब उसने मार्ग काटते हुए सर्प को दिखाया। शुकुनविद्व ने सर्प की ओर दृष्टि करके देखा तो उसके मस्तिष्क पर काली देवी (चीड़िया) बैठी हुई देखी। वह तत्काल बोला, 'यदि तू अटके बगैर चल दिया होता तो तुझे मालवा का राज्य मिल जाता, यद्यपि इस शुकुन को मान देकर इसी समय प्रवेश कर। इस शुकुन से तू महाधनवान हो जाएगा।' शुकुनशास्त्र में कहा है कि 'यदि गाँव से निकलते समय बाँयी ओर स्वर होवे, सर्प दाहिनी ओर होवे और बाँयी ओर लोमड़ी बोले तो स्त्री स्वामी को कहती है, हे स्वामीनाथ! साथ में कुछ पाथेय मत लेना, यह शुकुन ही पाथेय दे देगे।'

अपने को हुए शुकुन का ऐसा फल जानकर पेथड़ गाँव में दाखिल

हुआ। वहाँ घोघा राणा के मंत्री के घर सेवक बनकर रहा। एक बार राजा ने कई अश्व मोल लिये। उसका धन देने के लिये मंत्री को कहा, मंत्री ने कहा, 'मेरे पास धन नहीं है।' राजा ने पूछा, 'क्यों? धन कहाँ गया? हिसाब दिखाओ।' मंत्री दिग्मूढ़ हो गया, उससे वह कुछ बोल सका नहीं। राजा ने तत्काल उस पर पहरा लगा दिया। यह समाचार मंत्री की स्त्री को मिलते ही सर्व वृत्तांत पेथड को बताया। पेथड राजा के पास आया और बोला, 'स्वामी! मंत्री को भोजन के लिए भेजो।' राजा ने कहा : 'बहीखाते देखे बगैर भेजूंगा नहीं।' पेथड़ ने कहा : 'मैं पेथड नामक उसका सेवक हूँ एक वर्ष का हिसाब मैं दूंगा।' बाद में राजा ने उसे छोड़ा। मंत्री को भोजन कराकर उसे राजा के सम्मुख पेश किया। पेथड को चतुर जानकर राजा ने उसे मंत्री बनाया; इससे अल्प समय में पेथड के पास पाँच लाख द्रव्य की संपत्ति इकट्ठी हो गयी। इसके पश्चात् जो भी अधिक लाभ हुआ उससे उसने चौबीस तीर्थंकरों के चौरासी प्रासाद कराये। अपने गुरु वहाँ पधारे तब उनको नगर में प्रवेश करवाकर बहत्तर हजार द्रव्य खर्च किये। बत्तीस वर्ष की आयु में उन्होंने शीलव्रत ग्रहण किया। बावन घडी प्रमाण सुवर्ण देवद्रव्य में देकर इन्द्रमाल पहनीं और गिरनार तीर्थ दिगम्बरों के कब्जे में जाता हुआ बचालिया। सिद्धगिरि पर श्री ऋषभदेव प्रभु के चैत्य को इक्कीस घड़ी सुवर्ण से मढ़कर मानो सुवर्ण का शिखर हो ऐसा सुवर्णमय बनवाया। इस प्रकार बहुत सा द्रव्य धर्मकार्य में लगाया।

यह पाँचवां जो परिग्रह परिमाण नामक व्रत है वह धर्म के लिये संपत्ति का एक महत्त स्थान है, उसे संपादन करके जिस प्रकार पेथड शाह ने स्थान स्थान पर समृद्धि और सुख संपादन किया वैसे हर कोई उस व्रत को दृढ़ता से धारण करें।

●

● कंचन तजवो सहज है, सहज त्रिया को नेह,
मान बड़ाई ईर्ष्या तजबो, बहु दुर्लभ एह।

७५ मृगावती

सूरप्रिय नामक यक्ष साकेत नगर में रहता था। वहाँ के लोग उस यक्ष को खूब मानते थे। हर साल उसकी यात्रा के दिन उसके विचित्र रूप को चित्रित करते थे। वह यक्ष उस हरेक चित्रकार को मार डालता था। यदि चित्र चित्रित नहीं किया जाता तो वह यक्ष पूरे वर्ष भर लोगों का पकड़ पकड़ कर नाश करता था। इस प्रकार चित्रकारों का वध हो जाने के कारण कई चित्रकारपरिवार वहाँ से भागकर दूसरे नगर में चले गये। इस दुष्ट यक्ष के डर से राजा ने अपने सैनिको को भेजकर उन चित्रकारों को वापिस बुलवाया और उन सर्व के नामों की पर्चियाँ लिखकर वे सब एक घड़े में डाली, और जिसका नाम आता वह यक्ष की यात्रा के दिन चित्र चित्रित करें और यक्ष उसका वध करे - ऐसा निर्णय लिया गया। इस प्रकार लम्बा काल व्यतीत हुआ।

एक बार कोशांबी नगरी से चित्रकला सीखने के लिये किसी चित्रकार का पुत्र साकेतपुर नगरी में आया और एक चित्रकार की वृद्ध स्त्री के घर ठहरा। उसे उस वृद्धा के पुत्र से मैत्री हो गई। दैवयोग से उस वर्ष उस वृद्धा के पुत्र के नामकी ही चिट्ठी निकली, जो कि वाकई में यमराज का आमंत्रण ही मानी जाती थी। यह खबर सुनकर वृद्धा रुदन करने लगी। यह देखकर कौशांबी के युवा चित्रकार ने रुदन करने का कारण पूछा; 'तब वृद्धा ने अपने पुत्र पर आ पडी विपदा की बात कह सुनायी। वह बोला, माता! घबराना मत, आपका पुत्र घर ही रहेगा, मैं जाकर चित्रकारभक्षक यक्ष का चित्र बनाऊंगा।' वृद्धा ने कहा, 'वत्स! तू भी मेरा पुत्र ही है।' वह बोला, 'माता मैं भी हूँ मगर मेरा भाई स्वस्थ रहे।' तत्पश्चात वह युवक चित्रकार ने छठ्ठी का तप करके, स्नान करके चंदन का विलेपन किया, मुख पर पवित्र वस्त्र आठ परतें करके बांधा। नई तुलिका व सुंदर रंगो से यक्ष की मूर्ति चित्रत की। तत्पश्चात् वह बालचित्रकार यक्ष को शीश झुकाकर बोला, 'हे सूरप्रिय देव! अति चतुर चित्रकार भी आपका चित्र बनाने में समर्थ नहीं है, तो मैं तो गरीब बालक मात्र ! उसके सामने क्या हूँ? यद्यपि हे यक्षराज! मैंने मेरी शक्ति से जो कुछ बनाया है, वह युक्त या अयुक्त जो भी हो उसे स्वीकार करें और कुछ भी भूलचूक हुई हो तो उसके लिए मुझे क्षमा करना; कारण आप निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ

हो।' चित्रकार की विनय से भरी वाणी से यक्ष प्रसन्न होकर बोला, 'हे चित्रकार, वर माँग।' वह बाल चित्रकार बोला, 'हे देव! यदि आप इस गरीब पर प्रसन्न हुए हो तो मैं ऐसा वरदान माँगता हूँ कि अब किसी चित्रकार को मारे नहीं। यक्ष बोला, 'मैंने तूझे मारा नहीं, तब से ही किसी को भी मारना अब बंद है। परंतु हे भद्र! तेरे स्वार्थ की सिद्धि के लिए अब दूसरा वरदान माँग ले।' युवा चित्रकार बोला, 'हे देव! आपने इस नगरी की महामारी हटायी, उससे ही मैं कृतार्थ हो गया हूँ।' यक्ष विस्मित होकर बोला, 'कुमार! परमार्थ के लिये वरदान मांगा, जिससे मैं तुझ पर पुनः संतुष्ट हुआ हूँ। इसलिये स्वार्थ के लिये कुछ वरदान माँग ले।' चित्रकार बोला, 'हे देव! यदि विशेष संतुष्ट हुए हो तो मुझे ऐसा वरदान दो कि जिससे कोई मनुष्य, पशु या अन्य का मैं एक अंश देखूं तो उस अंश के अनुरूप उसके पूरे स्वरूप को वास्तविक रूप से आलेखित करने की शक्ति मुझे प्राप्त हो।' यक्ष ने 'तथास्तु' कहा। तत्पश्चात् नगरजनों से बहुमान पाकर वह उस वृद्धा तथा अपने मित्र पत्रकार से अनुमति लेकर शतानिक राजा से अधिष्ठित कौशांबी नगरी में आया।

कौशांबी में एक बार राजा लक्ष्मी से गर्वित ऐसीराज्यसभा में बैठा था। उस समय देश-परदेश आते जाते एक दूत को पूछा, 'हे दूत! जो अन्य राजाओं के पास है और मेरे पास नहीं है ऐसा क्या है वह मुझे बताओ।' दूत बोला, 'हे राजन्! आपके यहाँ एक चित्रसभा नहीं है।' यह सुनकर शतानिक राजा ने अपने नगर में बसे चित्रकारों को बुलवाकर एक चित्रसभा बनाने की आज्ञा दी। चित्र बनाने के लिये हरेक चित्रकार को उनकी जरूरत के अनुसार जगह बाँट दी। उस युवा चित्रकार को अंतःपुर के नजदीक का एक भाग चित्रकाम के लिये मिला। वहाँ चित्रकार्य करते हुए एक खिड़की में से मृगावती देवी का अंगूठा उसे दिखाई दिया। इस पर से 'यह मृगावती देवी होगी' - ऐसा अनुमान करके उस चित्रकार यक्षराज के वरदान से उसका स्वरूप यथार्थ रूप से आलेखित करने लगा। अंत में उसके नेत्रों का आलेखन करते समय तुलिका से मसी का एक बिंदु चित्र में मृगावती की जांघ पर गिरा। तत्काल चित्रकार ने वह पोंछ लिया। दुबारा मसी का बिंदु वहीं जा गिरा उसे भी पोंछ डाला। तत्पश्चात् तीसरी बार बिंदु गिरा देखकर चित्रकार ने सोचा, जरूर इस स्त्री के उरु प्रदेश में ऐसा लांछन होगा। तो यह लांछन भले ही रहा, मैं अब पोछूंगा नहीं। तत्पश्चात् उसने मृगावती का पूरा चित्र आलेखित किया। इतने में चित्रकार्य देखने के लिए राजा वहाँ आया। चित्र देखते मृगावती के चित्र मे जाँघ

पर लांछन देखकर राजा एकदम क्रोधित हुआ और मन से सोचा, 'जरूर इस पापी चित्रकार ने मेरी पत्नी को भ्रष्ट की हो ऐसा लगता है, नहीं तो वस्त्र के भीतर के लांछन को वह किस प्रकार जान सका?' ऐसा मानकर कोप करके उसका दोष बताकर उसे पकड़कर रक्षकों के स्वाधीन किया। उस समय दूसरे चित्रकारों ने मिलकर राजा को कहा, 'हे स्वामी! यह चित्रकार कोई यक्ष देव के प्रभाव से एक अंश देखकर पूर्ण स्वरूप यथार्थ रूप से आलेखित कर सकता है। इसलिये इसका कोई अपराध नहीं है।' उसके ऐसे वचन से क्षुद्र चित्तवाले राजा ने उस उत्तम चित्रकार की परीक्षा करने के लिये एक कुबडी दासी का मात्र मुख दिखाया। उस पर से चतुर चित्रकार ने उसका यथार्थ स्वरूप आलेखित कर दिखाया। यह देखकर राजा को भरोसा हुआ लेकिन ईर्ष्या हुई, जिससे क्रोध हुआ और चित्रकार के दाँये हाथ का अंगूठा उसने कटवा डाला।

उस चित्रकार ने यक्ष के पास जाकर उपवास किया। यक्ष ने उसे कहा, 'तू बाँये हस्त से भी वैसे चित्र अंकित कर पायेगा' - ऐसा वरदान दिया।

चित्रकार ने क्रोध से सोचा कि, 'शतानिक राजा ने मुझ निरपराधी की ऐसी दशा की, इसलिये कोई उपाय से उसका बदला ले लूं।' ऐसा सोचकर एक पट्ट पर विश्वभूषण मृगावती देवी को अनेक आभूषणों सहित अंकित किया, तत्पश्चात् स्त्री-लंपट और प्रचण्ड ऐसे चण्डप्रद्योत राजा के पास जाकर वह मनोहर चित्र दिखाया। उसे देकर चंद्रप्रद्योत बोला :'हे उत्तम चित्रकार! तेरा चित्रकौशल्य वाकई विधाता जैसा ही है - ऐसा मैं मानता हूँ। ऐसा स्वरूप इस मनुष्यलोक में पूर्व कहीं देखने में आया नहीं हैं। हे चित्रकार! ऐसी स्त्री कहाँ है। वह मुझे सचमुच बता दे तो मैं तुरंत उसे पकड़ ले आऊँ, क्योंकि ऐसी स्त्री किसी भी स्थान पर हो तो वह मेरे लायक है।' राजा के ऐसे वचन सुनकर, 'अब मेरा मनोरथ पूरा होगा' - ऐसा मानकर चित्रकार ने हर्षित होकर कहा, 'हे राजा! कौशांबी नगरी में शतानिक नामक राजा है। उसकी मृगावती नामक यह मृगाक्षी शेर जैसे पराक्रमी राजा की पटरानी है। उसका यथार्थ रूप आलेखित करने विश्वकर्मा भी समर्थ नहीं है। मैंने तो इसमें थोडा रूपमात्र आलेखित किया है।' चण्डप्रद्योत ने कहा, 'मृग को देखकर शेर जिस प्रकार मृगनी ग्रहण करता है उस प्रकार मैं शतानिक राजा के सामने उस मृगावती को ग्रहण करूंगा। यद्यपि राजनीति अनुसार उसकी माँग करने के लिए प्रथम दूत भेजना ही योग्य है, जिससे मेरी आज्ञा माने तो कुछ भी अनर्थ नहीं होगा।'

ऐसा विचार करके चण्डप्रद्योत ने अपने दूत को समझाकर शतानिक राजा के पास भेजा। उस दूत ने शतानिक राजा के पास जाकर कहा, 'हे शतानिक राजा! चण्डप्रद्योत राजा आपको आज्ञा देते है कि तुमने दैवयोग से मृगावती देवी को प्राप्त किया है परंतु वह स्त्रीरत्न मेरे योग्य है, तू तो नाममात्र है; इसलिये यदि राज्य और प्राण प्यारे हो तो उसे शीघ्र यहाँ भेद दे।' दूत के ऐसे वचन सूनकर शतानिक बोला, 'अरे अधम दूत! तेरे मुख से तू ऐसे अनाचार की बात बोल रहा है परंतु जा, दूतपने के कारण आज मैं तूझे मारता नहीं हूँ, जो स्त्री मेरे आधीन है उसके लिए भी तेरे पापी राजा का ऐसा आचार है तो अपनी स्वाधीन प्रजा पर वह कैसा जुल्म करता होगा?' इस प्रकार से कहकर शतानिक ने निर्भिकतापूर्वक दूत को तिरस्कृत करके निकाल दिया। दूत ने अवंति आकर यह बात चम्ड प्रद्योत को कही। वह सुनकर चण्डप्रद्योत को बड़ा क्रोध चढ़ा। जिससे मर्यादारहित सैन्य लेकर कौशांबी तरफ चला। चण्डप्रद्योत को आता सुनकर शतानिक राजा क्षोभ व अतिसार पीड़ित हो जाने कारण तत्काल मृत्यु पा गया।

देवी मृगावती ने सोचा, 'मेरे पति तो मृत्यु पा गये। उदयनकुमार अभी बालक है।' बलवान को अनुसरना' ऐसी नीति है। परंतु स्त्रीलंपट राजा के सम्बन्ध में ऐसा करने से मुझे कलंक लगेगा, सो उसके साथ कपट करना ही योग्य है, इस कारण अब तो यहीं रहकर अनुकूल संदेशा भेजकर उसे लालायीत करके योग्य समय आये तब तक काल निर्गमन कर लूं।' ऐसा विचार करके मृगावती ने एक दूत को समझाकर चण्डप्रद्योत के पास भेजा। वह दूत छावनी में रहे चण्डप्रद्योत के पास जाकर बोला, 'देवी मृगावती ने कहलवाया है कि मेरे पति शतानिक राजा स्वर्ग पधारे हैं, अब मुझे आपकी ही शरण है, परंतु मेरा पुत्र अभी बलरहित बालक है, इसलिये यदि मैं अभी उसे छोड दूँ तो पिता की विपत्ति से हुए उग्र शोकावेग की तरह शत्रु राजा भी उसका पराभव करेंगे। मृगावती की ऐसी बिनती सुनकर चण्डप्रद्योत बड़ा हर्ष पाया और बोला, 'मैं रक्षक, फिर भी मृगावती के पुत्र का पराभव करने के लिये कौन समर्थ है?' दूत बोला, 'देवी ने ऐसा भी ही कहा है कि प्रद्योत राजा स्वामी, तो मेरे पुत्र का पराभव करने के लिए कौन समर्थ है?' परंतु आप पूज्य महाराजा तो बड़े दूर रहते हो और शत्रु राजा तो निकट रहनेवाले हैं, इससे 'सर्प तकिये पर और औषधियाँ हिमालय पर' - ऐसा है तो यहाँ का हित चाहते हो तो उज्जयनी नगरी से इंटे लाकर कौशांबी के चारोंओर मजबूत किल्ला

बनवा दे।' गरजवान को अक्ल नहीं होती है, जिससे चण्डप्रद्योत ने वैसा करना स्वीकारा और कुछ समय में कौशांबी के चारोंओर मजबूत किल्ला बनवा दिया। तत्पश्चात् मृगावती ने फिर से दूत भेजा और कहलवाया, 'हे प्रद्योत राजा! आप धन, धान्य और ईंधन आदि से कौशांबी नगरी को भरपूर कर दो।' चण्डप्रद्योत ने वह कार्य भी शीघ्र करा दिया; 'आशा-पाश' से बंधा पुरुष क्या नहीं करता?' बुद्धिवान मृगावतीने जाना कि, 'अब नगरी विरोध करने योग्य है' जिससे उसने दरवाजे बंद किये और किल्ले पर सैनिकों को चढ़वाया। चण्डप्रद्योत राजा फल से भ्रष्ट हुए कपि की तरह अत्यंत बिलख कर नगरी को घेरा डालकर पड़ा रहा।

एक बार मृगावती को वैराग्य हुआ, 'जहाँ तक श्री वीरप्रभु विचर रहे हैं, वहाँ तक मैं उनसे दीक्षा लूँ।' उसका ऐसा संकल्प ज्ञान से जानकर श्री वीरप्रभु सुर-असुर के परिवार के साथ वहाँ पधारे। प्रभु के बाहर पधारने का सुनकर, मृगावती पुर के द्वार खोलकर निर्भिकता से बड़ी समृद्धि के साथ प्रभु के पास पधारी। प्रभु को वन्दना करके योग्य स्थान पर बैठी। चण्डप्रद्योत भी प्रभु का भक्त होने से वहाँ आकर बैर छोड़कर बैठा और सब वीर प्रभु की देशना सुनने लगे।

'यहाँ सर्वज्ञ पधारे है' - ऐसा जानकर एक धनुष्यधारी पुरुष प्रभु के पास आया और नजदीक खड़ा रहकर प्रभु को मन से ही अपना संशय पूछा। प्रभु बोले : 'अरे भद्र! तेरा संशय वचन द्वारा कह बता कि जिससे ये अन्य भव्य प्राणी प्रतिबोध पाये।' प्रभु ने इस प्रकार कहा तो भी वह लज्जावश होकर स्पष्ट बोलने के लिये असमर्थ था जिससे वह थोड़े अक्षरों में बोला, 'हे स्वामी! यासा, सासा।' प्रभु ने भी छोटा ही उत्तर दिया, 'एव मेव।' यह सुनकर गौतम स्वामी ने पूछा, 'हे भगवंत! 'यासा, सासा' इस वचन का क्या अर्थ है?'

प्रभु बोले, 'इस भरत क्षेत्र की चम्पानगरी में पूर्व एक स्त्रीलंपट सुवर्णकार था। वह पृथ्वी पर घूमता था और जो जो रूपवती कन्याएँ देखता उन्हें पांचसौं - पांचसौं सुवर्णमुद्राएँ देकर उनसे ब्याह करता था। इसी प्रकार क्रमानुसार वह पांचसौं स्त्रीयों से ब्याहा और प्रत्येक स्त्री को उसने सर्व अंगों के आभूषण करा दिये थे जिससे बाद में जिस स्त्री की बारी आती तब वह स्त्री - स्नान, अंगराग वगैरह करके सर्व आभूषण पहिनकर उसके साथ क्रीडा करने के लिये सज्ज बनती थी। उसके सिवा दूसरी कोई भी स्त्री अपने भेष में कुछ भी परिवर्तन करती तो उसका तिरस्कार करके मार-पीट करता था। अपनी स्त्रियों की अति इर्ष्यालुता से उनके रक्षण में

तत्पर वह सोनी नजरकैद की भाँति - कदापि गृहद्वार छोड़ता न था। और स्वजनों को भी अपने घर बुलाता नहीं था तथा स्त्रियों से अविश्वास के कारण वह स्वयं भी अन्य के घर भोजन के लिए न जा पाता था।

एक बार उसकी जाने की चाह नही थी फिर भी उसका कोई प्रिय मित्र अत्याग्रह करके अपने घर भोजन करने ले गया, क्योंकि वही मैत्री का आद्यलक्षण है। सोनी के बाहर जाने पर सब स्त्रियो ने सोचा कि 'हमारे घर, हमारे यौवन और हमारे जीवन को धिक्कार है कि जिसमें हम यहाँ कारागृह की भाँति बंदीवान होकर रहती हैं। हमारा पापी पति यमदूत की भाँति कदापि बाहर जाता नहीं है परंतु आज वह कहीं गया है, इसलिये ठीक हुआ है, चलो आज तो हम थोड़ी देर जो जी में आये वैसा करे।' ऐसा सोचकर सर्व स्त्रियों ने स्नान करके, अंगरांग लगाकर उत्तम पुष्पमाला आदि धारण करके सुशोभित वेष धारण किया। तत्पश्चात दर्पण लेकर वे सब अपना अपना रूप निहार रही थी, उतने में सोनी आया और यह सब देखकर बड़ा क्रोधित हुआ। उनमें से एक स्त्री को पकड़कर उसने ऐसा पीटा कि हाथी के पैर नीचे रौंदी गई कमलिनी की भाँति उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। यह देखकर दूसरी स्त्रियों ने सोचा कि 'इस तरह हमें भी यह दुष्ट मार डालेगा, इसलिये हम इकठ्ठी होकर उसे ही मार डाले। ऐसे सोचकर उन सब ने निःशंक होकर चारसौ निन्यानवें दर्पण उस पर फेंके। सोनी तत्काल मृत्यु पा गया। इसके बाद सर्व स्त्रियाँ पश्चात्ताप करती हुई चितावत गृह को जलाकर भीतर ही रहकर जल मरी। पश्चात्ताप के योग से अकाम निर्जरा होने से वे चारसौं निन्यानवें स्त्रियाँ मृत्यु पाकर पुरुषरूप में उत्पन्न हुई। दुर्दैव योग से वे सब इकठ्ठी मिलकर कोई अरण्य में किल्ला बनाकर रहते और चोरी करने का धंधा करने लगे थे। वह सोनी मृत्यु पाकर तिर्यंच गति में उत्पन्न हुआ। उसकी एक पत्नी जिसने प्रथम मृत्यु पाई थी वह भी तिर्यंच में उत्पन्न हुई और दूसरे भव भव में ब्राह्मण कुल में पुत्र के रूप में उत्पन्न हुई। उसकी पाँच वर्ष की आयु होते ही वह सोनी भी ब्राह्मण के घर कन्या के रूप में अवतरित हुआ।

बड़ा भाई अपनी बहिन का ठीक तरह से पालन करता था तथापि अति दुष्टता से वह रोया करती थी। एक बार वर द्विज पुत्र ने उसके उदर को सहलाते हुए अचानक उसके गुह्यस्थान पर स्पर्श किया, तो वह रोती बंद हो गयी। जिससे उसके रुदन को बंद करने का उपाय समझकर जब जब वह रोती तब उसके गुह्यस्थान

का स्पर्श करता तो वह रोना बंद कर देती थी। एक बार उसके मातापिता ने उसे ऐसा करते हुए देख लिया सो क्रोध करके निकाल दिया। तब वह गिर की कोई गुफा में चला गया। कालानुसार वह जहाँ चारसौ निन्यानवे चोर रहते थे वहाँ पहुँच गया और उनके साथ धंधे में शामिल हो गया।

उसकी बहिन जो द्विज घर में बड़ी हो रही थी, युवावस्था में पहुँचते ही कुलटा बनी। स्वैच्छा से घूमती हुई एक गाँव में पहुँची। वहाँ चोरों ने गाँव लूंटा और उस कुलटा को पकड़कर सबकी स्त्री के रूप में रख ली। कुछ ही दिन में चोरों को हुआ कि 'यह बेचारी अकेली है, हम सब के साथ भोगविलास करने से जरूर थोड़े समय में मृत्यु पायेगी इसलिए कोई अन्य स्त्री ले आये तो ठीक।' ऐसे विचार से वे एक अन्य स्त्री को पकड़ लाये। तब वह कुलटा स्त्री ईर्ष्या से उसके छिद्र ढूंढने लगी और उसे अपना हिस्सेदार मानने लगी। एक बार सब चोर कोई ठिकाने चोरी करने गये थे, उस समय छल करके वह कुलटा स्त्री कुछ नया दिखाने के बहाने एक कुएँ के पास उस स्त्री को ले गयी और कुँए में देखने के लिए कहा। सरल स्त्री कुएँ में देखने लगी तो उसे धक्का मारकर कुँए में गिरा दिया। चोरों ने आकर पूछा कि 'वह स्त्री कहाँ है?' तब उसने कहा, 'मुझे क्या खबर? तुम तुम्हारी पत्नी की क्यों देखभाल नहीं करते? चोर समझ गये कि जरूर उस बेचारी को इसने इर्षा से मार डाला है।' जो ब्राह्मण चोर बना था उसने सोचा कि 'सर्वज्ञ यहाँ पधारे हैं।' इसलिये वह यहाँ आया और अपनी बहिन के दु:शील के बारे में पूछने की लज्जा आने से प्रथम मन से पूछा, बाद में मैने कहा, वाणी से पूछ - इसलिये उसने 'यासा सासा' ऐसे अक्षरों से पूछा कि क्या वह स्त्री मेरी बहिन है?' उसका उत्तर हमने 'एव मेव' कहकर बता दिया, 'वह उसकी बहिन है।' इस प्रकार रागद्वेषादिक से मूढ़ बने प्राणी इस संसार में भवोभव भटकते हैं और विविध दु:ख भुगतते हैं।

इस प्रकार सर्व हकीकत सुनकर वह ब्राह्मण पुरुष परम संवेग पाकर प्रभु से दीक्षा अंगीकार करके वापिस पल्ली में आया और चारसौं निन्यानवें को प्रतिबोधित करके सबको व्रत ग्रहण कराया।

योग्य समय पर मृगावती ने उठ कर प्रभु को शीश झुकाते हुए कहा कि 'चण्डप्रद्योत राजा की आज्ञा पाकर मैं दीक्षा लूंगी।' तत्पश्चात् चण्डप्रद्योत के पास आकर कहा कि 'यदि आपकी संमति हो तो मैं दीक्षा लूं क्यों कि मैं इस संसार से उद्वेगित हुई हूँ और मेरा पुत्र तो आपको सौंप ही दिया है।' यह सुनकर प्रभु

के प्रभाव से प्रद्योत राजा का वैर शांत हो गया सो उसने मृगावती के पुत्र उदयन ने कौशांबीनगरी का राजा बनाया और मृगावती को दीक्षा लेने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् मृगावती ने प्रभु से दीक्षा ली। उसके साथ अंगारवती वगैरह राजा की आठ स्त्रियों ने भी दीक्षा ली। प्रभु ने कइयों को शिक्षा देकर उन्हें चंदना साध्वी को सौंप दिया। उन्होंने साध्वी चन्दनबाला की सेवा करके सर्व जानकारी पाली।

भव्यजनों को प्रतिबोध करते हुए श्री वीर भगवंत फिर से कौशांबी नगरी में पधारे। दिन के आखिरी प्रहर पर चन्द्र, सूर्य शाश्वत विमान में बैठकर प्रभु को वंदना करने आये, उनके तेज से आकाश में उद्योत हुआ देखकर लोग कौतुक से वही बैठे रहे। रात्रि जानकर अपने उठने का समय जानकर चंदना साध्वी अपने परिवार के साथ वीर प्रभु को वन्दना करके उपाश्रय पहुँच गयी, लेकिन मृगावती सूर्य के उद्योत के तेज के कारण दिन के भ्रम से रात्रि हुई जानी नहीं। इससे वह वहाँ ही बैठी रही। तत्पश्चात् जब सूर्य-चन्द्र चले गये तब मृगावती 'रात्रि हो गई' जानकर कालातिक्रमण के भय से चकित होकर उपाश्रय पर आयी। चन्दना ने उसको कहा, 'अरे! मृगावती! तेरे जैसी कुलीन स्त्री को रात्रि में अकेला रहना शोभा देता है?' ये वचन सूनकर मृगावती चन्दना से बार बार क्षमापना करने लगी इस प्रकार शुभ भाव से घाती कर्मों के क्षय से मृगावती को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उस समय निद्रावश बनी हुई चन्दना के समीप से एक सर्प जा रहा था। उसे केवलज्ञान की शक्ति से देखकर मृगावती ने उनका हाथ संथारे पर से उठा लिया, इससे चन्दना ने जागकर पूछा कि 'मेरा हाथ तूने क्यों उठाया?' मृगावती बोली, 'यहाँ से एक बड़ा सर्प जा रहा था।' चन्दना ने पूछा, 'अरे मृगावती! ऐसे अंधेरे में तूने सर्प को किस प्रकार देखा? उसका मुझे आश्चर्य होता है।' मृगावती बोली, 'हे भगवती सती! मुझे उत्पन्न हुए केवलज्ञान चक्षु से उसको मैंने देखा। यह सुनकर वह बोल उठी : 'अरे केवली की आशातना करनेवाली एसेमें - मुझे धिक्कार है!' इस प्रकार अपनी आत्मा की निंदा करने से चंदना को भी केवलज्ञान हुआ।

नोट : मृगावती के केवलज्ञान का ब्यौरा चंदनबाला के चरित्र में आ चुका है फिर भी रसक्षति न हो इसलिए वह यहाँ दुबारा आलेखित किया गया है।

●

७६

श्री शुभंकर

पृथ्वीपुर नामक नगर में शुभंकर नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसको धर्म का मर्म जाननेवाली जैनमति - गुणवंती नामक भार्या थी। यह ब्राह्मण विद्याभ्यास करने के लिये परदेश गया। वहाँ उसने चार वेद, अठ्ठारह पुराण, व्याकरण, अलंकार, न्याय, साहित्य, कोश वगैरह कई शास्त्रों का अभ्यास किया। तत्पश्चात् स्थान स्थान पर अनेक विद्वानों को वाद-विवाद में जीतकर जय पाता हुआ अपने घर लौटा। वहाँ भी वह अपने शास्त्रज्ञान का आडम्बर सब लोगों को दिखाने लगा। वह देखकर उसकी जैन धर्मी भार्या ने सोचा कि 'यह मेरा पति एकांतवादी शास्त्र पढ़ा है, परंतु स्याद्वाद मार्ग को नहीं जाननेवाला मनुष्य वस्तु का यथायोग्य विवेचन जानता नहीं है, इसलिये मैं उसको कुछ पूछुं।' ऐसा निर्णय करके अपने पति को पूछा, 'हे स्वामी! सर्व पाप का बाप कौन?' ब्राह्मण ने कहा, 'हे प्रिया! मैं शास्त्र में देखकर बताऊँगा।' इसके बाद जितने शास्त्र का अभ्यास किया था वे सब उसने देखे मगर उसमें से पाप का बाप कहीं भी निकला नहीं। इससे खेद पाकर उसने स्त्री को कहा, 'हे प्रिया! तेरे प्रश्न काउत्तर तो किसी शास्त्र में से निकलता नहीं है परंतु तूने यह प्रश्न सुना कहाँ से?' वह बोली, 'रास्ते में जाते हुए कोई जैन मुनि के मुख से सुना था कि 'सर्व पापों का एक पिता है' सो मैं आपका उसका नाम पूछती हूँ।' विप्र बोला, 'मैं साधु के पास जाकर पूछ आऊँ और संदेहरहित हो जाऊँ।' बाद में वह विप्र जैन साधू के पास जाकर बैठा और संस्कृत भाषा में कई प्रश्न किये; उसके यथोचित उत्तर सुनकर वह बड़ा खुश हुआ। तत्पश्चात् उसने पूछा, 'हे स्वामी! पाप के बाप का नाम कहो।' गुरु ने कहा, 'संध्या समय पर आप यहाँ आना, उस समय मैं उसका नाम कहूँगा।' ब्राह्मण अपने घर लौटा।

गुरु ने सोचा, 'इस ब्राह्मण को प्रतिबोध कराने के लिये जरूर इसकी भार्या ने भेजा लगता है, इसलिए कोई भी उपाय से उसे प्रतिबोधित करूं।' यों सोचकर एक श्रद्धालु श्रावक को गुरु ने कहा, 'आपके घर से दो अमूल्य रत्न लाकर मुझे दीजिये, एक व्यक्ति के प्रतिबोधित करने के लिये जरूरत है और दूसरा कोई चाण्डाल से एक गधे का मुर्दा उठवाकर इस उपाश्रय से सो गज की दूरी पर एकांत जगह रखवा दे।' श्रावक ने दोनों कार्य शीघ्र कर दिये। संध्या समय होते ही वह ब्राह्मण गुरु के पास आया। गुरु ने उसे एकांत में कहा, 'हमारा एक कार्य करना

कबूल करे तो यह एक रत्न दूं और कार्य समाप्त करने के बाद यह दूसरा रत्न भी दूंगा।' ब्राह्मण ने रत्न देखकर हर्ष से कहा, 'हे पूज्य ! काम बताइये।' गुरु ने कहा, 'इस उपाश्रय के नज़दीक एक गधे का शव पडा हुआ है जिसके पड़े होने के कारण हमें हमारे स्वाध्याय वगैरह धर्मकार्य में विघ्न होता है, अर्थात् हम कर सकते नहीं है, इसलिये तू उसे उठाकर गाँव बाहर फेंक आ।' ब्राह्मण ने सोचा, 'इस समय अंधेरा हो चुका है जिससे मुझ वेदपारगामी को कौन पहचान सकेगा? इसलिए स्वार्थ साध लूं।' ऐसा सोचकर चाण्डाल जैसा भेष बनाकर वह शव कंधे पर चढ़ाकर, यज्ञोपवीत छुपाकर उसे गाँव बाहर फेंक आया। तत्पश्चात् स्नान करके जल्दी से गुरु के पास आया और कहा, 'हे स्वामी! आपका कार्य कर आया! इसलिये आपका वचन आप पालो और दूसरा रत्न दे दों।' गुरुजी ने दूसरा रत्न भी उसे दिया। तत्पश्चात् ब्राह्मण ने सूरि को अपने प्रश्न का उत्तर पूछा, तब गुरु ने कहा, 'क्या अब भी तू तेरे प्रश्न का उत्तर नहीं समझ पाया है?' यह सूनकर लघुकर्मी और सुलभ होने तथा अनेक शास्त्रों का ज्ञाता होने से अच्छी तरह सोच-विचार करने से उसकी समझ में आया, 'अहो! मैं ब्राह्मण! जिसका अर्थ 'ब्रह्मतत्त्व जानकार' होता है, तथा गायत्री का जप करनेवाला फिर भी लोभवश ऐसी निंदनीय दशा पाया। धर्मशास्त्रों में कहा है कि 'अत्यंत पापकर्म को उत्पन्न करनेवाला पाप का बाप यदि लोभ होवे तो अन्य पाप से क्या? यदि सत्य हो तो तप की क्या जरूरत है? यदि मन पवित्र होवें तो तीर्थ में घूमने से विशेष क्या? यदि सुजनता हो तो आप्त मनुष्य का क्या काम है? यदि महिमा हो तो अलंकार पहनने से क्या विशेषता है? यदि अच्छी विद्या होवे तो धन की क्या जरूरत? और यदि अपशय हो तो फिर मृत्यु से बढ़कर क्या है? अथवा अपयश ही मृत्यु है।'

ऐसा विचार करके वह ब्राह्मण अपने घर जाकर अपनी स्त्री को कहने लगा, 'हे प्रिया! जैन साधू ने मुझे अच्छा बोध प्राप्त करवाया। लोभ पाप का बाप है - यह मुझे समझ में आया। जैन धर्म सर्व धर्म में उत्तम और लोकोत्तर है। मात्र एक लोभ नहीं जीतने पाने से सर्व धर्मकृत्य व्यर्थ है। लोभी मनुष्य सर्व प्रकार के पाप करता है।' बाद में वह ब्राह्मण गुरु के पास आया और गुरु को कहा, 'हे स्वामी! आपकी कृपा से मुझे ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी तीन रत्न प्राप्त हुए हैं' इत्यादि गुरु की प्रशंसा करके उनका अत्यंत उपकार माना।

इस बात का तात्पर्य यह है कि 'लोभ का नाश करने जैसा अन्य कोई धर्म नहीं है और लोभ के वश होने जैसा अन्य कोई पाप नहीं है।'

●

७७ शियलवती

जंबूद्वीप के नंदन नामक नगर में रत्नाकर नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उसको पुत्र न था। इस कारण उसने अजितनाथ भगवंत की शासनदेवी अजितबाला की आराधना की, जिससे अजितसेन नामक पुत्र हुआ। वह बड़ा होकर शियलवती नामक स्त्री से ब्याहा। शियलवती ने शकुन शास्त्रादि का अभ्यास किया था। शकुन शास्त्र अनुसार व्यापार करने से अनेक प्रकार से द्रव्य बढ़ता जाता था जिससे वह घर की विशेष चहेती और अधिष्ठात्री बन चुकी थी। उसका स्वामी अजितसेन बुद्धि बल से राजा का मंत्री बना था।

एक बार सरहद के राजा पर चढ़ाई करने जा रहे थे तब अजितसेन को साथ चलने की आज्ञा दी। मंत्री ने शियलवती को पूछा, 'प्रिया! मुझे राजा के साथ जाना पड़ेगा, तू अकेली घर कैसे रह सकेगी? कारण स्त्रियों का शील तो पुरुष समीप रहने से ही रहता है। जो स्त्री प्रोषितभर्तृका (जिसका पति परदेश गया हो ऐसी) हो तो वह उन्मत्त गजेन्द्र के समान कई बार स्वेच्छा से क्रीडा करती है।' पति के ऐसे वचन सूनकर नेत्र में अश्रु लाकर शियलवती ने शील की परीक्षा बतानेवाली एक पुष्प की माला स्वहस्त से गूंथ कर पति के कण्ठ में आरोपित की और बोली, 'हे स्वामी! जब तक यह माला मुरझायेगी नहीं तब तक मेरा शील अखण्ड है ऐसा मानना।' तत्पश्चात् मंत्री निश्चिंत होकर राजा के साथ बाहरगाँव गया।

थोडे दिनों के बाद राजा ने मंत्री के कण्ठ में न मुरझाती हुई माला को देखकर उसके बारे में अपने आदमियों को पूछा, तब उसकी स्त्री के सतीत्व का वर्णन किया। बाद में कौतुकवश राजा ने राजसभा के बीच परस्पर हास्यवार्ता करनेवाले मंत्रियों को कहा, 'हमारे अजितसेन मंत्री की स्त्री का सतीत्व वाकई बहुत बढिया है।' यह सुनकर अन्य एक अशोक मंत्री बोल उठा, 'महाराज! उनको इनकी स्त्री ने भरमाया है। स्त्रियों में सतीत्व है ही नहीं। कहा है कि एकांत या समय मिले नहीं तब तक ही स्त्री का सतीपना है। इसलिये यदि परीक्षा करनी हो तो मुझे वहाँ भेजो।' अशोक नामक हँसी उडानेवाले मंत्री को आधा लाख द्रव्य देकर राजा ने शियलवती के पास भेजा।

अशोक उज्ज्वल भेष धारण करके नगर में गया। वहाँ कोई मालन स्त्री को मिलकर कहा, 'तू शियलवती के पास जाकर कह कि कोई सौभाग्यवान पुरुष तुमसे मिलने की इच्छा रखता है।' मालन ने कहा, 'इसके लिए द्रव्य अधिक चाहिये

क्योंकि धन ही मनुष्यों का वशीकरण है।' अशोक ने कहा, 'यदि कार्य सिद्ध हो जायेगा तो अर्ध लक्ष द्रव्य दूंगा।' इससे मालन संतुष्ट होकर शियलवती के पास गई और शियलवती को सब वृत्तांत बताया। शियलवती ने मन में सोचा, 'परस्त्री के शील का खण्डन करने की इच्छा रखनेवाला यह पुरुष अपने पाप का फल भोगे।' ऐसा मानकर उसने मालन की बात स्वीकार कर ली और मालन से अर्धलक्ष द्रव्य माँगा। मालन ने वह देना स्वीकार किया। इसलिये मिलने का दिन तय किया। तत्पश्चात् शियलवती ने अपनी बुद्धि से विचार करके घर के एक कमरे में कुँए जितना गहरा खड्डा खुदवाया। उसके उपर निवार बिना की चारपाई रखकर उपर चादर बांधकर ढीला रखा। मिलने का समय होते ही अशोक मंत्री अपनी आत्मा को कृतार्थ मानकर अर्धलक्ष्य द्रव्य लेकर वहाँ आया। पूर्व से सिखाई हुई दासी ने कहा, 'लाया हुआ द्रव्य मुझे दीजिये और अन्दर चारपाई पर जाकर बैठो।' अशोक अर्ध लक्ष्य द्रव्य देकर जल्दी अंधेरे कमरे में जाकर चारपाई पर बैठा, संसार में बहुकर्मी प्राणी गिरते हैं उस प्रकार तुरंत ही खड्डे में गिरा।

खड्डे में पड़ा अशोक जब क्षुधातुर होता तब उपर से शियलवती खप्पर पात्र में अन्नपानी देती थी और इस प्रकार बहुत दिन रहने से अशोक में से 'अ' निकल गया और मंत्री शोक रूप बन गया।

एक माह बीतने पर भी अशोक मंत्री वापिस न लौटा तो कामांकुर नामक दूसरा मंत्री वैसी ही प्रतिज्ञा लेकर आया। शियलवती ने उसके पास से भी अर्धलक्ष द्रव्य लेकर उसी खड्डे में डाल दिया। तत्पश्चात् एक माह बाद ललितांग नामक एक तीसरा मंत्री आया। उसने भी अर्ध लाख द्रव्य लेकर उसी खड्डे में डाल दिया। चौथे माह रतिकेली नामक एक मंत्री आया, उसको भी सबके भांति लक्ष द्रव्य लेकर एक खड्डे में ड़ाला। इस प्रकार चारों मंत्री चतुर्गतिरूप संसार में दुःख का अनुभव करने लगे।

कालक्रमानुसार राजा शत्रु पर विजय पाकर वापिस लौटा और बड़े उत्सव के साथ उसने नगरप्रवेश किया। उस समय उन मंत्रियों ने शियलवती को कहा, 'हे स्वामीनी! हमने आपका माहात्म्य देखा, हमारे कृत्य का फल भी भोगा, अब हमें बाहर निकालो।'

शियलवती ने कहा, 'जब मैं 'भवतु' (हो) कहूँ तब आप सबको 'भगवतु' कहना पड़ेगा। मंत्रियों ने वह स्वीकृत किया। तत्पश्चात् शियलवती ने अपने पति को कहकर राजा को भोजन का आमंत्रण दिया। अगले दिन सर्व भोजनसामग्री तैयार करके खड्डेवाले कमरे में रखी। राजा के भोजन करने आने के दिन रसोईघर

में अग्नि भी जलाया नहीं और जल के स्थान पर जल भी रखा नहीं। और कोई भी भोजन करने पधारा तब उसने कोई भोजन सामग्री देखी नहीं, उससे आश्चर्य पाकर वह बैठा। शियलवती स्नान करके कमरे में जाकर पुष्पमाला हाथ में रखकर धूप-दीप करके बैठी और बोली, 'राजा भोजन करने आये हैं इसलिये नाना प्रकार के पकवान भवतु (हो जाये)।' ऐसा बोलने पर चारों मंत्रियों ने उच्च स्वर में कहा, 'भवतु।' तत्पश्चात् मोदक वगैरह सामग्री उस कमरे में से बाहर लाई गयी। फिर घृत, सब्जी वगैरह के लिए भी वैसा ही कहा और हरेक बार भवतु शब्द कहा। इस प्रकार राजा का भोजन पूर्ण हुआ। बाद में तांबुल वगैरह देकर मंत्री अजितसेन राजा के चरणों में गिरा। राजा ने मंत्री को पूछा : 'मंत्री! इस प्रकार रसोई कैसे तैयार हो गयी? मंत्री ने कहा, 'उस कमरे में मुझे प्रसन्न हुए चार यक्ष हैं जो हम मांगते हैं - वह देते है।' राजा ने कहा, 'वे हमें देदो, क्योंकि हमें नगर के बाहर जाना पड़ता है तब वहाँ भोजन माँगे तो वचन मात्र में हो जाये।' राजा के आग्रह से मंत्री ने उन्हें देना स्वीकृत किया।

तत्पश्चात् राजा से छिपाकर गुप्त ढंग से चारों को खड्डे में से निकालकर एक बड़े टोकरे में बंद करके अच्छे वस्त्रों से ढककर राजा को अर्पण करते हुए कहा, 'इस यक्ष का स्वरूप किसीको दिखाना नहीं। राजा ने टोकरे को रथ में छोड़कर स्वयं पैदल चलकर रास्ते में पवित्र जल छिड़कवाते हुए दरबार में लाया। अंतपुर की स्त्रियाँ पीछे पीछे चलती हुई यक्ष के गुण गाने लगी। इस प्रकार उन्हें दरबार में लाकर एक पवित्र स्थान पर रखवाये और प्रातः रसोइयों को रसोई करने की मनाही फरमा दी। प्रातःकाल होते ही भोजन के समय बड़ी पवित्रता से राजा ने पूजा की। राजा ने विज्ञप्ति की, 'हे स्वामी! पकवान तथा दाल-चावल दीजिये।' इसलिये उन चारों ने 'भवतु' कहा लेकिन कुछ हुआ नहीं। इस कारण राजा ने टोकरा खोला तो उसमें पिशाच के समान चार मनुष्य देखने में आये। दाढी, मूछ व सिर के केश बढ़ गये थे। मुख गल गये थे। क्षुधा से कृश हो गये थे और नेत्र गहरे धँस गये थे। राजा ने उनको पहचाना तो हँसमुखे मंत्री कौए की तरह उपहास के पात्र बने। राजा ने हकीकत पूछी तो उन्होंने सर्व वृत्तांत बताया। इससे राजा ने हकीकत पूछी तो उन्होंने सर्ववृत्तांत बताया। इससे राजा आश्चर्यचकित होकर मस्तिष्क हिलाने लगा। शियलवती का शील, उसकी बुद्धि का प्रकाश और पुष्पमाला मुरझायी नहीं इसका कारण राजा की समझ में आया। इस कारण शियलवती की प्रतिष्ठा लोगों में बढ़ गई। तत्पश्चात् वे दम्पती क्रमानुसार दीक्षा लेकर मृत्यु पाकर पाँचवें देवलोक में गये और क्रमानुसार मोक्ष भी प्राप्त करेंगे।

●

७८ श्री भोगसार

कांपिल्यपुर में भोगसार नामक बारह व्रत को धारण करनेवाला श्रावक रहता था। उसने श्री शांतिनाथ भगवान का प्रासाद बनवाया था। वहाँ वह हंमेशां किसी भी प्रकार की लालसा बगैर भगवान की तीन काल की पूजा करता था। एक बार उसकी स्त्री का आयुष्य पूर्ण हो जाने से मृत्यु हो गई। तब 'स्त्री के बिना घर का निर्वाह चलेगा नहीं' ऐसा मानकर उसने दूसरी स्त्री से ब्याह किया। वह स्त्री स्वभाव से अति चपल थी। इस कारण उसने दूसरी स्त्री से ब्याह किया। वह स्त्री स्वभाव से अति चपल थी। इस कारण उसने गुप्त ढंग से धन इकट्ठा करने लगी और अपनी इच्छानुसार खाने-पीने लगी। क्रमानुसार श्रेष्ठी का सर्व धन खत्म हो गया इससे वह दूसरे गाँव में रहने गया। परंतु दोनों प्रकार की जिनपूजा (द्रव्य पूजा तथा भाव पूजा) वह भूलता न था। उसमें भी वह भावपूजा तो हंमेशा त्रिकाल करता।

एक बार उसकी स्त्री तथा अन्य कई लोगों ने उसे कहा 'हे श्रेष्ठि! निग्रह या अनुग्रह के फल को न देनेवाले वीतराग देव को आप क्यों भजते हो? उसकी भक्ति करने से उलटा आपको प्रत्यक्ष दारिद्र प्राप्त हुआ। इसलिये हनुमान, गणपति, चण्डिका, क्षेत्रपाल वगैरह प्रत्यक्ष देवों की सेवा करो जिससे वे प्रसन्न होकर तत्काल मन चाहा फल दे।'

इस प्रकार सुनते ही श्रेष्ठिने विचार किया, 'अहो! ये लोग परमार्थ से अनजान है और मोहरूपी मदिरा का पान किया होने के कारण ज्यों त्यों बोल रहे हैं। पूर्व जन्म में न्यून पुण्य करके इस जन्म में संपूर्ण पुण्य के फल भोगने की स्पृहा करते हैं। यह सर्व मिथ्यात्व की मूढ़ता की चेष्टा है। यहाँ हनुमान, गणेश वगैरह देव क्या निहाल कर देते हैं। जैसा बोओ वैसा ही काटो, इसमें उनका कोई दोष नहीं है परंतु संसार के दुःखो का विस्मरण करने के लिये परमात्मा का स्मरण अहर्निश करना चाहिये, क्योंकि वीतराग के गुणों को याद किये बिना संसार का मोह कैसे नाश पाये? मिथ्यात्व में मगन बने मूढ़ पुरुषों को धिक्कार है, जो सांसारिक इच्छा पूर्ण करने के लिये देव-देवीयों को भजते हैं और मानते हैं कि मेरी इच्छा इन देवों ने पूर्ण की। यह मिथ्या भ्रमणा है। ऐसा सोचकर श्रेष्ठि ने अपने मन में जरा भी विचिकित्सा धारण नहीं की। धन अभाव के कारण श्रेष्ठि खेती करने लगा। उसकी स्त्री हंमेशा पकवान वगैरह पनपसंद भोजन करती है और श्रेष्ठि को चौरा वगैरह कुत्सित अन्न देती है। इस कारण श्रेष्ठि तो मात्र नाम से भोगसार ही रहा परंतु उसकी स्त्री तो वाकई भोगवती बनी। यथाक्रम कुलटा बनी और पर पुरुष के साथ यथेष्ट

भोग भोगने लगी।

एक बार शांतिनाथ प्रभु के अधिष्ठायक देव ने सोचा, 'इस समय अनेक लोगों के मन को आनन्द देनेवाली और उदार ऐसी, धूपादिक सुगंधी द्रव्यों से भगवान की पूजा होती क्यों नहीं है?' तत्पश्चात् अवधिज्ञान के उपयोग से भोगसार की दरिद्रता और उसका कारण जानकर उसने सोचा, 'यह श्रेष्ठि जिनेश्वर का पूर्णभक्त है और आज उसे चौरे की फसल काटने का समय आया है; और उसकी स्त्री कुलटा बन गई है और वह श्रेष्टी पर जरा सा भी भक्तिभाव रखती नहीं है सौ मुझे इस श्रेष्ठि का सांनिध्य करना चाहिये।' ऐसा सोचकर देवता ने श्रेष्ठि के भानजे का रूप लिया और मामा के घर जाकर मामी को प्रणाम किये व पूछा, 'मेरे मामा कहाँ है?' मामी बोली, 'तेरे मामा खेत में गये हैं, वहां हल जोत रहे होंगे।' यह सुनकर वह खेत में गया। वहाँ मामा ने पूछा, 'तू क्यों आया है?' भानजे रूपी देवता बोला, 'मैं सहायता करने आया हूँ।' मामा ने कहा, 'घर जाकर खा ले।' भानजा बोला, 'हम साथ ही खायेंगे।' मामा ने कहा, 'आज खेत में कटाई का काम चल रहा है, जिससे बडी देर हो जायेगी और तू बालक है तो भूख कैसे सहन कर पायेगा?' भानजे ने कहा, 'कुछ हरकत नहीं, मैं भी आपके साथ कटाई का कार्य करूंगा।' ऐसा कहकर उसने दैवी शक्ति से सम्पूर्ण खेत की फसल कटाई थोड़े समय में पूर्ण करके एकत्र कर ली। तत्पश्चात् मामा बोला, 'ये सब चौरे घर किस प्रकार ले जायेंगे?' यह सुनकर वह देवता सर्व चौरे उठकार घर की ओर चला।

उन्हें आता देखकर उस स्त्री ने घर में आया हुआ जार पुरुष चरनी में छुपा दिया और लपसी वगैरह मिष्ठान एक कोठी में छिपा दिये। इतने में भानजे ने मामी को जुहार करते हुए कहा, 'मामा पधारे हैं उनकी आवाभगत करें।' ऐसा बोलते बोलते चौरा का भारा जोर से चरनी में ड़ाला और दाने निकालने के लिये चौरे कूटने लगा। उसके प्रहार से वह जार पुरुष जर्जरित हो गया और स्वयं ही मृत्यु पा जायेगा ऐसा मानने लगा। भोगवती ने अपने जार पुरुष को मृतप्रायः होता देखकर अपने भानजे को कहा, 'आप दोनों थक गये होंगे, इसलिये पहले भोजन कर लो।' यह सुनकर मामा-भानजा दोनों भोजन करने बैठे, तो मामी चौरा आदि कुत्सित अन्न परोसने लगी। तब भानजा बोला, 'ऐसा कुत्सित अन्न मैं नहीं खाऊँगा।' मामी बोली, 'अच्छा खाना मैं कहाँ से दूं?' भानजा बोला, 'हे मामी! मैं यहाँ बैठे बैठे कोठी में प्रत्यक्ष लपसी देख रहा हूँ वह क्यों नहीं परोस रही हो? स्वामी से अधिक कोई नहीं है ऐसा निश्चय जानना।' यह सुनकर मामी तो चकित ही हो गयी। बाद में लपसी परोसकर उसने विचार किया, 'अहो! यह तो बड़ा आश्चर्य! मेरी गुप्तता इसने कैसे जान ली? वाकई में इसमें कोई भूत, प्रेत, व्यंतर या डाकिनीपना होना चाहिये, नहीं

तो वह छिपाया हुआ किस प्रकार जान सका?' तत्पश्चात् भोजन करके दोनों सो गये। उस समय मौका देखकर वह जारपुरुष निकल गया। यह सब देवता तो जानता था फिर भी उसने मौन रखा।

तत्पश्चात् भानजे ने मामा को पूछा, 'यह आपके शामले का विवाह क्यों नहीं करते?' तब मामा ने कहा, 'हे भानजे! यह मनोरथ धन बगैर कैसे पूर्ण होगा?' भानजा बोला, 'हे मामा! ऊठो। मैं तुम्हें पृथ्वी में छिपा धन बताऊंगा। ऐसा कहकर स्त्री के देखते ही उसने भूमि मे गाढा हुआ धन निकाल दिया। देखकर स्त्री बिलख पडी और मन में बोली, 'मैंने चोरी करके जितना धन गुप्त रखा था वह सर्व इसने प्रकट कर दिया। इसलिए वाकई में यह कोई डाकिनी ही है। ननन्द का पुत्र नहीं है, वह यहाँ आया कहाँ से? तो भी उसका अनुनय अच्छी तरह से करूं। नहीं तो कोपित हुआ है तो मेरी सब गुप्त बात प्रकट कर देगा।' ऐसा सोचकर अंदर से कालुष्य भाव रखकर बाहर से मीठी वाणी बोली : 'हे भानजे! तुम्हारी बुद्धि को धन्य है, हमारी दरिद्रता का तुमने नाश कर दिया।'

श्रेष्ठि ने शुभ दिन देखकर पुत्र विवाह उत्सव का प्रारंभ किया। उस समय अपने इष्ट जारपति को उस स्त्री ने आमंत्रण दिया और समझाया, 'तूं स्त्री वेष धरकर सब स्त्रियों के साथ भोजन करने आना।' शादी के दिन वह जार पुरुष स्त्री वेष पहिनकर आया। उसे स्त्रियों के मध्य में बैठा देखकर भानजा बोला, 'मामा! आज परोसने के लिए मैं रहूँगा।' मामा ने कहा, 'बहुत अच्छा।' वह परोसने लगा। परोसते परोसते जब वह उस जार के पास गया तब उसने धीमे से कहा, 'तूझे चरनी में जर्जरित किया था वही तू है न? उसके 'ना' कहने पर इस प्रकार दो तीन बार कहा, तब अन्य लोगों ने भानजे को पूछा, 'तू बारबार इस मुग्धबाला को क्या पूछता है?' तब भानजा बोला, 'इस स्त्री को मैं परोसने जाता हूँ तब वह कुछ भी लेती नहीं है और सर्व पकवान का निषेध करती है। तब मैं उसे कहता हूँ, 'हे स्त्री जब तू थोड़ा भी खा नहीं रही है तो स्त्रियों के मध्य बैठना तेरे योग्य नहीं है। तू थोडी भूखी लग रही है।' इस प्रकार बोलकर देवता ने उसको कुछ भी परोसा नहीं। तब भोगवती को उसके लिए बडा उचाट हुआ। वहाँ से वह उठी और गुप्त रीत से लड्डू लेकर उसकी थाली में परोस दिये। उस जार ने थोड़े खाये और चार लड्डू अपनी कुक्षि में छुपा लिये।

सर्व स्त्रियाँ खा चुकी तब भानजा बोला, 'हरेक स्त्री मेरे मामा के मण्डप को अक्षत से बधावे। यह सुनकर स्त्रियों ने मांगलिक के लिए मण्डप की अक्षत से पूजा की तब वह जार मण्डप बधाने आये नहीं। तब भानजा बोला, 'हे माता! आप क्यों मण्डप बधाती नहीं है? स्त्रियों की पंक्ति में भोजन करने बैठी थी तो अब

उस पंक्ति से अलग होना योग्य नहीं है।' यह सुनकर वह मण्डप बधाने नीचे झुकी तो उसकी कुक्षि में छिपाये हुए मोदक गिर पड़े। जिससे वह खूब शरमाकर एक दम भाग गया। मामा ने भानजे को पूछा, 'यह मोदक कहाँ से आये?' वह बोला, 'आपके पुत्रविवाह उत्सव में मण्डप ने मोदक की वृष्टि की।' मामा बोला, 'हे भानजे! तू इतना ज्ञानी कैसे बना?' वह बोला सर्व बात एकान्त में बताऊंगा।'

विवाह का सर्व कार्य पूर्ण हुआ तब अपना देव स्वरूप प्रकट करके श्रेष्ठी को सर्ववृत्तांत कहा। श्रेष्ठी की स्त्री को देवताओं ने कहा, 'हे स्त्री! तेरा पति कैसा परमात्मा की भक्ति में तत्पर है? वैसी तू भी बन। तू जारपति के साथ हंमेशा क्रीडा करती है, आदि सर्व वृत्तांत मैं जानता हूँ परंतु तीन भुवन के अद्वितीय शरणरूप श्री वीतराग के भक्त की तू भार्या है इससे आज तक मैंने तेरी उपेक्षा की है। इसलिए अब तू समग्र दंभ छोडकर धर्मकार्य में प्रवृत्ति कर। मनुष्य पूर्व में अनंत बार भोगभोगता हैं फिर भी अज्ञान व भ्रम के कारण - सोचता है कि 'मैंने कोई भी समय भोग भोगे ही नहीं है। ऐसा होने से मूर्ख मनुष्यों की काम भोग सम्बन्धी तृष्णा कदापि शांत होती ही नहीं है। उनका वैराग्य होना भी अति दुर्लभ ही हैं। श्री आध्यात्मसार में कहा है कि 'जिस प्रकार शेरों को सौम्यपना दुर्लभ है और सर्पों को क्षमा दुर्लभ है उसी प्रकार विषय में प्रवृत्त हुए जीवों को वैराग्य दुर्लभ है। इससे हे स्त्री! आत्मा के बारे में वैराग्य धारण करके अनेक भव में उपार्जन किये पापकर्म का क्षय करने के लिये और अनादि काल की भ्रांत के नाश के लिये सर्वथा द्रव्य और भाव से दंभ का त्याग करके अनेक उत्तम और शुभ कार्यों के लिए उद्यम कर। दंभ ही सर्व पाप का मूल है तथा अनेक सद्गुणों का नाश करनेवाली है। कहा है, 'जिह्वा रस की लोलुपता छोड़ी जा सकती है, शरीर पर के अलंकारों का मोह छोडा जा सकता है, उसी प्रकार कामभोग भी छोड़ा जा सकता है। परंतु दंभ का सेवन छोड़ना मुश्किल है' और समुद्र को पार करनेवालों को नाव में एक लेशमात्र भी छिद्र होवे तो वह डूबने का कारण है, उसी प्रकार जिसका चित्त अध्यात्म ध्यान में आसक्त है उसे थोडा सा भी दंभ रखना उचित नहीं है क्योंकि वह संसार में डूबने वाला है।

उपदेश सुनकर उस स्त्री ने प्रतिबोध पाया और श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किये। देवता श्रेष्ठी को लाख सुवर्णमुद्राएँ देकर अंतर्धान हुआ। क्रमानुसार भोगसार श्रेष्ठि अपनी पत्नी सहित श्रावक धर्म पालकर स्वर्ग में गया और वहाँ से क्रमानुसार थोडे ही भव करके मुक्ति सुख को पायेंगे।

भोगसार श्रेष्ठि की भाँति धर्म क्रिया में विचिकित्सा का त्याग करना, ऐसे जीवों का देवता भी सेवक की भाँति सान्निध्य करते हैं।

●

७९

निर्मला

राजा प्रजापाल के राजकुल में मोदी धर्ममित्र का चलन था। धर्ममित्र प्रामाणिक व्यापारी था। राजकुल में महारानी से लेकर एक सामान्य दासी को भी उसकी दुकान में ठगा जाने का भय नहीं था। गाँव में भी धर्ममित्र का नाम आया तो उसके माल या भाव के लिये किसीको कुछ पूछने की जरूरत नहीं। राजा के मोदी की प्रामाणिकता के लिये यदि कोई प्रेरणामूर्ति थी तो वह धर्ममित्र की सुशील पत्नी निर्मला थी।

निर्मला रूप रूप का अंबार रूपी रति का अवतार थी, फिर भी उसके देह सौन्दर्य के पीछे आत्मा का सौन्दर्य अनुपम था। स्त्री शरीर का शीलहीन सौन्दर्य अवश्य विकृत पुरुषों के संसार के लिये श्रापरूप है लेकिन यदि उस सौन्दर्य के साथ सुशीलता भरी पडी हो तो वह स्त्री समस्त संसार में आशीर्वाद रूप है। सुवास ज्यों पुष्प का मूल्य है, त्यों सुशीलता स्त्री के शरीर की महामूल्य सम्पति है।

प्रजापाल की राजसभा में कई हजूरिये थे, उसमें एक विघ्नसंतोषी नाई था। अयोग्य मनुष्य का संसर्ग भी अच्छे मनुष्यों के जीवन में दाग लगानेवाला बनता है। प्रजापाल राजा के लिए भी ऐसा ही हुआ।

एक बार राजा के यहाँ गाँव की गपशप चल रही थी, उस समय जीवा नाई ने धीमे से बात रखी, 'मालिक! कहता हूँ, शायद ज्यादा माना जायेगा फिर भी हुजूर के समक्ष कहने में क्या शर्म? हमारे पूरे राज्य में मोदी के घर में जैसा मनुष्य है वैसा तो कोई स्थान पर मिलेगा ही नहीं। अरे खुद मालिक के अंतपुर में भी नहीं।

नाई की जीभ पर ताला न था। आँखों का चमकारा करते हुए बात का मुरमुरा रखा। राजा के निकट उस समय ऐसे ही खुशामतखोरों के सिवा अन्य कोई भी न था। सबने नाई की बात में हामी भरी। राजा का चंचल मन पल भर में विचारों के झूले में झूलने लगा। जीवा विकार का विष बढ़ाने लगा, 'क्या रूप? क्या तेज? अरे! क्या तेज? अरे! क्या सौन्दर्य! मानो इन्द्रलोक की अप्सरा। हुजूर! ऐसा रूप तो जीवनभर में देखा नहीं होगा।' नाई को बोलने की कला किसीसे सीखनी नहीं पड़ती है।

राजा की मनोवृत्ति में विकार का जहर यो धीरे धीरे घुसता गया। ''ऐसी सुन्दर स्त्री मेरे मोदी के यहाँ। एक बार तो उसे देख ही लेनी चाहिये, और इसके बाद उसकी ताक़त भी क्या है कि मेरी 'हाँ' में 'ना' कह सके?''

राजा के मुँह में पानी आ गया है ऐसा जानकर मौका पाकर जीवा नाई कहा करता था कि 'मालिक! ऐसा स्त्री रत्न तो आपके राजमहल में ही शोभा देगा। कौए

के कण्ठ में मोती की माला न होवे। हीरे का हार तो राजा के गले में ही फबेगा।'

राजा ने मोदी की स्त्री को लालायित करने के पेंतरे प्रारंभ कर दिये। अपने खास दास-दासियों द्वारा कीमति वस्तु निर्मला को वह उपहार रूप भेजने लगा। शाणी निर्मला राजा की बूरी भावना पहचान गई। ऐसे हृदयहीन राजवी की मेहरबानी भी अग्नि की ज्वाला के साथ खेलने समान है, वह तुरंत समझ गयी। अपने महामूल्य शीलधन की रक्षा के लिए वह सजग थी। अवसर आने पर बल के बजाय अक्ल से काम लेने का उसने निश्चय किया।

हंमेशा भेजे जाते उपहार निर्मला आनाकानी बगैर स्वीकार लेती है ऐसा जानने के बाद तय किया : 'पंछी जरूर पींजरे में आ गया है।' कारण-विकारवश आत्माओं की सृष्टि, उनके अपने मानसिक, विकारों की प्रतिक्रिया रूप ही लगती है। 'जैसी दृष्टि ऐसी सृष्टि' - यह लोकोक्ति ऐसी आत्माओं के मानस का प्रतिबिम्ब रखती है।

राजा ने निर्मला को मिलने के लिये नयी तुक लडायी। उसने खास काम बताकर मोदी को एक सप्ताह के बाहरगाँव जाने का आदेश दिया। धर्ममित्र ने जब निर्मला को बाहरगाँव जाने की बात कही तब चतुर ऐसी निर्मला राजा की मनोभावना पहचान गयी। उसने जाते समय पति के सम्मुख अथ से इति तक सर्व हकीकत कह सुनाई।

धर्ममित्र को निर्मलता की पवित्रता, दृढता तथा धीरता के प्रति पूर्ण श्रद्धा थी। वह बाहरगाँव गया। घर के दास दासीयों को निर्मला ने सावधान रहने की सूचना दे दी।

राजा ने दूसरे दिन खास व्यक्ति द्वारा गुप्त संदेशा भेजा, 'आज सांय राजाजी आपके यहां आनेवाले है।' निर्मला पहले से ही जानती थी कि ऐसा कुछ होगा। उसने राजा के योग्य सब तैयारियाँ करवाई।

प्रजा के बालक माने जाते राजा के दिल में पाप भावना का अंधेरा ज्यादा गाढ़ बना। सांय गुप्त रूप से मोदी घर में अकेला घूसा। निर्मला ने राजवी के आतिथ्य के लिये सब तैयारी कर दी थी। राजा एकांत चाह रहा था। निर्मला के देहसौन्दर्य के पीछे पागल बने हुए राजा को आज कोई होश न था। निर्मला के साथ एकांत भोगने के लिए बावला बना था।

निर्मला के आदेश अनुसार घर के नोकर सुवर्णजड़ित थाल में एक के बाद व्यंजन परोसने लगे। महामूल्यवान कटोरों में सुंदर गुलाबजामून परोसे। राजा के मुख में पानी छूटा और मन से समझा कि खास मेरे लिए ही मेरी प्रियतमा ने व्यंजन तैयार किये हैं। भोजन प्रारंभ करने से पूर्व हरेक मीठाई थोड़ी थोड़ी खाई हुई तथा किसीकी झूठी की हुई मालूम पड़ी।

तुरंत राजा सत्तावाही आवाज में बोला, 'कौन है यहाँ?' 'जी हुजूर मैं हूँ' कहती हुई एक दासी हाजिर हुई। राजा ने पूछा, 'यह सब थाल किसने भेजे हैं?' 'मालिक! हमारी सेठानी ने।' दासी ने उत्तर दिया। 'कहाँ है तेरी सेठानी?' राजा ने पूछा।

दासी ने कहा, 'खुदाविंद! आप नामदार के स्वागत की योग्य तैयारी करने के लिए...'

राजा ने समझा, अभी थोड़ी देर में सुंदर शृंगार सज-धज कर निर्मला वहाँ आयेगी। इतने राजा के लिये पेय चीजें हाजिर हुई। -'१५-२० महामूल्य प्यालों में केसरी दूध रखा हुआ था। राजा प्याला उठाकर दूध देखने लगा। दूसरा, तीसरा यों प्याले उठाकर देखने पर उसे लगा कि हरेक प्याले में एक ही चीज थी। उसने चखकर देखा कि कोई भी प्याले में अन्य पेय न था। राजा ने दासी को हुक्म दिया, 'जा, तेरी सेठानी को बुला ला।' शीघ्र ही निर्मला पास के कमरे से वहाँ आ पहुँची।

उसका अनुपम तेजस्वी देहलावण्य देखकर राजा की विकारी दृष्टि में यह तेज असह्य बनता जा रहा था। पवित्र तथा सत्त्वशाली निर्मला की भव्य देहलता, तेजपुंज मुखाकृति और मधुर स्मित प्रजापाल राजा को मूर्च्छित बनाने लगे।

थोड़ी देर चुपकीदी छा गई। राजा ने मौन तोडा। कुछ श्वास घोंते हुए मीठे शब्दों में हँसते हँसते वह बोला, 'यह सब क्या खेल है?'

'किसे आप खेल कह रहे हो?' निर्मला ने हृदय के भावों को गूढ रखकर छोटा सा जवाब दिया।

'क्यों! इतना नहीं समझा जा सकता?' प्रजापाल ने दुबारा मीठी आवाज़ में कहा।

निर्मला अपनी चाल में थी। मार्ग भूले हुए राजा को राह पर लगाने का मौका उसने जानबुजकर खड़ा किया था। उसने व्यंग में जवाब दिया : 'मालिक! समझ में आता है वह नहीं समझ सकती और नहीं समझ में आता है वह समझ सकती हूँ।' राजा मोदी की स्त्री में रही हुई गजब की चालाकी प्रथमबार देखकर चकित हो गया। रूप के साथ चतुराई के तेज का मिश्रण देखकर वह दंग हो गया। ऐसी चकोर स्त्री की वाणी में रही गूढ़ता को समझने के लिए उसने खूब कोशिश की। अंत में चिढ़कर वह बोला : 'यह किसीकी खाई हुई झूठी मीठाई यहाँ क्यों रखी है? मैं क्या यहाँ किसीकी झूठन खाने आया हूँ?'

'महाराज! इसमें नया क्या है?' आप यहाँ किसलिए आये हो? यह मैं और आप ही जानते हैं। परायी झूठन को अपवित्र करने ही आप यहाँ पधारे हो। अब यह कहाँ अनजाना है?' निर्मला ने मोहक लेकिन वेधक जबान में राजा को स्पष्ट शब्दो में सुना दिया।

उत्तर सुनकर राजा हक्का बक्का रह गया। उसने नहीं सोची हुई परिस्थिति यूं सहसा खडी हो गयी, वह विचारमग्न बना। निर्मला ने राजा को कहा, 'राजन्! आप प्रजा के मालिक हो, प्रजा के पालक पिता हो। प्रजा आपके पुत्र-पुत्री रूपी संतति है। प्रजा के शील, प्रजा की पवित्रता और उसका धर्म - इन सबके रक्षक आप, आज आपकी पुत्री समान कही जाऊं ऐसी; मेरा शीलधन लूंटने आप यहाँ आये हैं; यह आपके जैसे प्रजापालक को लांछन रूप नहीं है? आपके जैसा पिता, मोदी की झूठन जैसी मुझे, देखकर-सुनकर मोहवश बनकर अकार्य करने के लिये आप तैयार हुए हो - यह समझ में आता है, लेकिन आप जैसे नहीं समझते यह आश्चर्य जैसा है।'

राजा के दिल में ये शब्द आरपार हो गये। उसके बंध विवेक-चक्षु खुलने लगे। उसने फिर से पूछा, 'इन विविधरंगी कीमति कटोरों में एक सा दूध क्यों थोडा थोडा रखा है? एक ही प्याले में सब समा सके ऐसा था, तो सब प्याले बेकार क्यों बिगडे?' नरम स्वर में राजा ने हृदय की गुत्थी बताई।

निर्मला जवाब देने के लिये तैयार थी। राजा की सुध-बुध खोयी हुई आत्मा को ठिकाने लगाने के लिये सावधान थी। उसने स्पष्टता की, 'महाराज! ये प्याले बिगाडे परंतु उसकी किंमत क्या है? प्याले बिगड़े वह आप समझ सके परंतु आपके करोड़ों-अरबो की संपत्ति से भी अधिक मूल्यवान यह मानवभव बिगाड़ने के लिये तैयार हुए हो; इसका क्या? अलग अलग रंग के प्यालों में चीज तो एक ही थी, यह आप जान सके; तो रूप-रंग या देहाकृति से अलग अलग मानी जाती स्त्रियों में चीज तो एक ही है; फिर भी आप इस प्रकार पागल बनकर अधम मार्ग पर जाने के लिये तैयार हुए हो - यह आपके जैसे नवपुंगव राजा को कलंकरूप अपकृत्य नहीं है क्या? आपके अंधेपन को टालने के लिए ही मैंने यह सब किया है। इसके सिवा आपके अंतर्चक्षु पर से यह मोह का आवरण किसी भी प्रकार से हट सके ऐसा न था।

निर्मला जैसी सुशील सती स्त्री के दृढतापूर्वक कहे शब्द राजा के अंतर को प्रकाशित कर गये। उसकी अज्ञानता के पटल दूर हुए और तबसे उसका जीवन राह बदल गया। खराबे में चढ़ी अपनी जीवन नैया के राह पर लाकर अपने लिये मार्गदर्शक गुरु बननेवाली मोदी की स्त्री निर्मला ने किये हुए अनन्य उपकार को राजा प्रजापाल जीवनभर कदापि न भूल पाया।

वह वापिस लौटा सदैव के लिये ऐसे अकार्य से। धन्य हो नारीशक्ति की पवित्रता को!

वाकई में ऐसी पवित्र नारी, नारायणी है।

●

८० सुबुद्धि मंत्री

जितशत्रु राजा चम्पा के राज्य का स्वामी था। उसे धारिणी नामक पट्टरानी थी। अदीनशत्रु नामक उसका युवराज था। राज्य का सब कार्यभार सुबुद्धि नामक श्रमणोपासक उसका मंत्री चलता था।

सुबुद्धि विवेकशील श्रावक था। जितशत्रु राज्य कारभार में इस मंत्री की सलाह लेता। एक बार राजाने अपने यहाँ महोत्सव मनाया उस निमित्त पर उसने अपने यहाँ राज्य के अधिकारी सामंत एवं अग्रणी नागरिकों को भोजन के लिये निमंत्रण दिया।

पांच पकवान, कई सब्जियाँ इत्यादि सुंदर प्रकार की रसवंती रसोई तैयार हुई। सबके साथ भोजन करते हुए राजा ने खूब रसपूर्वक अपनी रसोई की प्रशंसा की। सबने राजा की हाँ में हाँ मिलाई परंतु विवेकशील और गंभीर मंत्रीने थोड़ी देर बाद राजा को कहा, 'प्रभु! आपने कहा था वह बराबर है। पुद्गल के इस प्रकार के स्वभाव में कुछ भी नया नहीं है फिर भी ये सब चीजें आमतौर से अच्छी ही हैं या आमतौर पर बुरी है यूं नहीं कहा जा सकता। जो विषय आज मनोहर दिखता है, वह विषय दूसरे पल में खराब बन जाता है। जो पुद्गल एक पल श्रवण को पसंद हो ऐसा मधुर होता है, तो दूसरे पल श्रवण को नापसंद हो ऐसे कठोर और कर्णकटु बन जाते हैं और जो पुद्गल आँख को अत्यंत प्रसन्नता देनेवाले होते हैं वे कई बार देखने भी न चाहो ऐसे हो जाते हैं। सुगंधी पुद्गल कई बार सिर फट जावे उतने दुर्गंधयुक्त हो जाते हैं; और दुर्गंधी पुद्गल सिर को तरबतर कर दे ऐसे सुवास देनेवाले भी बन जाते हैं। जीभ को स्वाद देनेवाले पुद्गल दूसरे पल बेस्वाद और चखना भी न चाहे ऐसे बन जाते हैं। तो कोई बार मधुर भी बन जाते हैं। जिन पुद्गलों को स्पर्श करने का हमें बार बार मन होता है वहीं पुद्गल कई बार छूना भी न चाहे ऐसे हो जाते हैं। इससे विरुद्ध परिणाम भी कई बार आते हैं। अमुक वस्तु अच्छी और फलां वस्तु खराब है ऐसा - आमतौर पर नियम नहीं। कई बार अच्छी चीजे संजोगवशात् बिगड भी जाती है और खराब चीजे सुधर भी जाती है। वह तो मात्र पुद्गलों के स्वभाव और संयोग की विचित्रता है।

विवेकशील सुबुद्धि की ये तत्त्व भरपूर बाते जितशत्रु को पसन्द आयी नहीं,

क्योंकि उसके हृदय में उस समय मिथ्यात्व प्रवेश कर चुका था; मगर वह चर्चा न करके चुप ही रहा।

एक बार जितशत्रु राजा घोडे पर सवार होकर बड़े परिवार के साथ नगर के बाहर एक खूब दुर्गंध फैलाती हुई खाई के समीप से गुजर रहा था, उसमें रहे पानी का रंग खराब था और सडे हुए मुर्दे जैसी गंध उसमें से आ रही थी। संख्याबद्ध कीडों से गंदा पानी खदबदा रहा था। वहाँ पानी की असह्य दुर्गंध से राजा को नाक दबाना पड़ा। इस दुर्गंध से उबकर थोडा आगे जाकर उसने कहा, 'कितना खराब है यह पानी? सडे मुर्दे की तरह गंध मार रहा है। उसका स्वाद और स्पर्श भी कितना बुरा होगा?' राजा की यह बात भी ज्ञाता और द्रष्टा मंत्री के सिवा सबने स्वीकृत की। सिर्फ सुबुद्धि मंत्री ने कहा, 'स्वामिन्! मुझे तो इस बात में कुछ भी नवीनता नहीं लगती। मैंने पहले कहा था उस प्रकार पुद्गलों के स्वभाव की ही सब विचित्रता है।

राजा जिनशत्रु को बुरा लगा। उसने सुबुद्धि को कहा, 'तेरा अभिप्राय बुरा नहीं है। मुझे तो तेरा कथन दुराग्रहभरा ही लगता है। जो अच्छा है वह अच्छा ही है और जो बुरा है वह बुरा ही है। उसका स्वभाव परिवर्तन हो जावे ऐसा तो होता होगा क्या?

राजा के कथन पर से सुबुद्धि को लगा, 'वस्तुमात्र परिवर्तनशील है' यह बात राजा जानता नहीं है; सो मुझे प्रत्यक्ष प्रयोग करके दिखाना चाहिये कि जैन सिद्धांत में कहा वस्तु का स्वरूप बराबर समझना चाहिये?

ऐसा विचार करके मंत्री ने बाजार से नौ कोरे घड़े मंगवाये और सेवकों द्वारा उस गंदी खाई का पानी उन घड़ो में छानकर भरवाया। तत्पश्चात् घड़े सात दिन तक बराबर बंद करके रखे। तत्पश्चात् अन्य नौ घड़ो वह पानी छान कर भरवाया। इस प्रकार लगातार सात सप्ताह तक किया। सातवें सप्ताह उस पानी का वर्ण, गंध, रस और स्पर्श स्वच्छ से भी स्वच्छ पानी जैसा हुआ। उस उत्तम पानी को - जल को ज्यादा उत्तम बनाने के लिये सुबुद्धि ने उसमे सुगंधित मोथ वगैरह द्रव्य मिलाये और राजा के सेवकों को वह पानी दिया और वह पानी भोजन समय पर राजा को देने की सूचना दी। राजा ने भोजन किया, राजा के सेवक ने वह पानी दिया। भोजन पश्चात् राजा ने पानी के खूब बखान किये और भोजन करने साथ में बैठे हुए मनुष्यों को कहा, 'हमने

जो पानी इस समय पिया वह उत्तमोत्तम है। क्या उसका स्वाद! क्या उसका रंग! क्या उसकी गंध और क्या उसकी हीम से भी अधिक शीतलता! मैं तो ऐसे पानी को सर्वश्रेष्ठ जल कहता हूँ।' प्रशंसा करते करते राजा ने सेवक को पूछा, 'यह पानी तू कहाँ से लाया?'

सेवक बोला : 'महाराज! यह पानी मंत्रीश्वर के यहाँ से आया है।' राजा ने सुबुद्धि को बुलाकर पूछा, 'तू इतना अच्छा पानी कहाँ से लाया?'

सुबुद्धि ने जवाब दिया, 'महाराज! यह पानी वही गंदी खाई का ही है।'

राजा ने विस्मय से पूछा : 'क्या उसी गंदी खाई का है?' सुबुद्धि ने कहा : 'महाराज! यह उसका ही पानी है। जैन शासन कहता है - वस्तु मात्र परिवर्तनशील है। जब आपने भोजन के बखान किये और पानी की निंदा की तब आपको जैन सिद्धांत का परमार्थ समझाने का मैंने किया मगर आपके मानने में वह बात आयी नहीं, इसलिये मैंने खाई के गंदे पानी पर प्रयोग प्रत्यक्ष कर दिखाया।' तथापि राजा को सुबुद्धि मंत्री की बात पर विश्वास न आया। उसने अपनी देखरेख में खास आदमियों द्वारा जल मंगवाकर सुबुद्धि मंत्री के कहे अनुसार वह प्रयोग कर देखा। इसके बाद उसे पूरा भरोसा बैठ गया कि सुबुद्धि का कहना पूर्णरूपेण सही है। इसलिये उसने सुबुद्धि को बुलाकर पूछा : 'वस्तु के स्वरूप विषय का ऐसा ज्ञान तुमने पाया कहाँ से?' सुबुद्धि ने नम्रता से कहा, 'प्रभु जिनेश्वर देव के वचनों से मैं वह सिद्धांत समझा हूँ। इस कारण सुन्दर चीजें देखकर मैं उत्तेजित नहीं होता, और खराब चीजें देखकर उब भी नहीं जाता। वस्तु के पर्यायों का यथार्थ ज्ञान होने से विवेकी आत्मा अपना समभाव टिकाकर बराबर मध्यस्थ रह सकती है। इससे रागद्वेष तथा कषायों के योग से मलिनता उनकी आत्मा में प्रवेश नहीं करती।'

श्रमणोपासक सुबुद्धि मंत्री की ऐसी उमदा बातें सुनकर राजा को जैन सिद्धांत का रहस्य समझने की तीव्र उत्कण्ठा हुई। तत्पश्चात् सुबुद्धि मंत्री ने राजा को जैन सिद्धांत में रहे जीवादि तत्त्वों का रूप समझाया। राजा ने जैन धर्म अंगीकार किया।

क्रमशः सद्गुरु की निश्रा में रत्नत्रयी की आराधना करके उन दोनों ने कर्म क्षय करके मुक्तिपद पा लिया।

●

८१ मरीचि कुमार

भरत चक्रवर्ती का पुत्र मरीचिकुमार एक बार चक्री के साथ आदीश्वर भागवान को वंदन करने गया। वहाँ ऋषभ स्वामी के मुख से स्याद्वाद धर्म का श्रवण करके प्रतिबोध पाकर उसने दीक्षा ग्रहण की। स्थविर मुनियो के पास रहकर ग्यारह अंग का अभ्यास किया और स्वामी के साथ चिरकाल विहार किया।

एक बार ग्रीष्म ऋतु की धूप से पीड़ित हुए मरीचि मुनि चारित्रावरण कर्म का उदय होने से इस प्रकार सोचने लगे, 'मेरु पर्वत जितना भारी और वहन न हो सके ऐसे मुनि के गुणों को वहन करने, सुख की आकांक्षावाला मैं निर्गुणी अब समर्थ नहीं हूँ, तो क्या मैं लिये हुए व्रत का त्याग करू? नहीं... त्याग करने से तो लोगों में मेरी हाँसी होगी, परंतु व्रत का सर्वथा भंग न हो ओर मुझे क्लेश भी न हो ऐसा एक उपाय मुझे सूझा है; ये पूज्य मुनिवरों ने हंमेशा मन, वचन और काया के तीनों दण्ड से पराभव पाया है इसलिये मुझे त्रिदण्ड का चिह्न हो। ये मुनि जितेन्द्रिय होने से केश लोचन करते हैं और मैं उनके द्वारा जिता हुआ होने से मेरा मुण्डन अस्त्रे से हो, तथा मस्तक पर शिखा हो। ये मुनि महाव्रत को धारण करनेवाले हैं और मैं तो अणुव्रत धारण करने में असमर्थ हूँ। ये मुनि सर्वथा परिग्रह से रहित है पर मुझे तो एक मुद्रिका मात्र परिग्रह हो। ये मुनि मोह के ढक्कनरहित और मैं तो मोह से आच्छादित हूँ, जिसमें मेरे सिर पर छत्र धारण करनेलायक हो। ये महाऋषि पैर में उपानह पहने बिना ही विचरते हैं परंतु मेरे पाँव की रक्षा के लिये उपानह हो। ये मुनि शील से ही सुगंधी के लिये चंदन के तिलक आदि हो। ये मुनि कषायरिहत होने से श्वेत वस्त्र धारण करते हैं परंतु मैं क्रोधादि कषायवाला होने से मुझे कषाय रंगवाले वस्त्र हो। ये मुनि बहुत जीवों की हिंसावाले सचित जल का त्याग करते हैं लेकिन मुझे तो स्नान तथा पान परिमित जल से हो।' इस प्रकार चारित्र का निर्वाह करने संबंधी कष्ट सहन करने में कायर बने मरीचि ने अपनी बुद्धि

से विकल्प रखकर परिव्राजक का नया भेष धरा।

उसको नवीन वेषधारी देखकर लोग धर्म पूछते थे परंतु मरीचि तो उन्हें श्री जिनेश्वर ने प्ररुपित किया साधूधर्म ही कहता था। सर्व को जब वह ऐसे शुद्ध धर्म की देशना का प्ररूपण करता तब लोग उसको पूछते, 'आप स्वयं क्यों ऐसे धर्म का आचरण नहीं करते?' उसके जवाब में वह कहता, 'मैं उस मेरु समान भारी चारित्र का वहन करने में समर्थ नहीं हूँ।' ऐसा कहकर अपने सर्व विकल्प वह कह सुनाता था। इस प्रकार उनके संशय दूर करके प्रतिबोध किये हुए वे भव्य जीव जब दीक्षा लेने के लिये तैयार होते तब मरीचि उनको श्री युगादीश के पास ही भेजता था। इस प्रकार आचार पालते हुए मरीचि स्वामी के साथ ही विहार करता था। क्रमानुसार विहार करते हुए स्वामी विनीता नगरी में पधारे।

भरतचक्री ने आकर प्रभु को वंदना की। पश्चात् भविष्य में होनेवाले तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव वगैरह का स्वरूप पूछा, तो प्रभु ने उन सर्व का वर्णन किया। चक्री ने पूछा, 'हे स्वामी! इस पर्षदा में कोई जीव है जो इस भरतक्षेत्र में आपके जैसा तीर्थंकर बननेवाला हो?' स्वामी बोले, 'यह तेरा पुत्र मरीचि इस भरतक्षेत्र में वीर नामक चौबीसवाँ तीर्थंकर होगा। तथा उससे पूर्व इस भरतक्षेत्र में प्रथम वासुदेव होगा तथा महाविदेह क्षेत्र में चक्रवर्ती होगा।' यह सुनकर भरतचक्री मरीचि के पास जाकर उसकी प्रदक्षिणापूर्वक वंदना करके बोला, 'आपका यह पारिव्राजकता वंदन करने योग्य नहीं है, फिर भी आप भावि तीर्थंकर हो इसलिये मैं तुम्हारी वंदना करता हूँ।' ऐसा कहकर प्रभु का कहा हुआ सर्व वृत्तांत मरीचि को कह बताया। वह सुनकर मरीचि महाहर्ष से अपनी काँख को तीन बार आस्फोटित करके उच्च स्वर में बोला, 'मैं प्रथम वासुदेव बनूंगा, मूकानगरी में मैं चक्रवर्ती बनूंगा तथा अंतिम तीर्थंकर भी मैं बनूंगा। अहो! मेरा कुल कितना उत्तम?' और 'मैं वासुदेवों में प्रथम, मेरे पिता चक्रवर्ती में प्रथम और मेरे पितामह तीर्थंकरो में प्रथम!! अहो! मेरा कुल कितना उत्तम है?' इत्यादि आत्मप्रशंसा और अभिमान करने से उसने नीच गौत्र कर्म उपार्जित किया।

एक बार उस मरीचि के शरीर में व्याधि उत्पन्न हुआ, उसकी सेवा किसी साधु ने न की, इससे वह ग्लानि पाकर सोचने लगा, 'अहो! ये साधू दाक्षिण्य

गुण से रहित हैं। मेरी सेवा तो दूर परंतु मेरे सामने देखते भी नहीं हैं। परंतु मैंने यह गलत विचार किया, क्योंकि ये मुनिजन अपने देह की भी परिचर्या करते नहीं हैं, तो मुझ भ्रष्ट चरित्रवाले की सेवा तो करे ही क्यों? इसलिये अब तो जब यह व्याधि शांत हो जावे तब एक शिष्य बनाऊँ।' इस प्रकार सोचते सोचते कई दिनों के बाद मरीचि व्याधि रहित बना।

एक बार उसे कपिल नाम कुलपुत्र मिला। धर्म का अर्थी था, उसने कपिल को आर्हत धर्म कह सुनाया। उस समय कपिल ने उनको पूछा, 'आप स्वयं इस धर्म का क्यों आचरण नहीं करते हो?' मरीचि बोला, 'मैं यह धर्म पालने में समर्थ नहीं हूँ।' कपिल ने कहा, 'तो क्या तुम्हारे मार्ग में धर्म नहीं है?' ऐसे प्रश्न से जिन धर्म में आलसी शिष्य की कामना रखता मरीचि बोला, 'जैन मार्ग में भी धर्म है और मेरे मार्ग में भी धर्म है।' यह सुनकर कपिल उसका शिष्य बना। उस समय उत्सूत्र भाषण (मिथ्याधर्म के उपदेश)से मरीचि ने कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण संसार कर्म का उपार्जन किया। उस पाप की कोई भी आलोचना करे बिना अनसन से मृत्यु पाकर मरीचि ब्रह्म देवलोक में दस सागरोपम के आयुष्यवाला देवता बना। कपिल भी आसूरि वगैरह अपने शिष्य बनाकर उन्हे अपने आचार का उपदेश देकर मृत्यु पाकर ब्रह्म देवलोक में देव हुए। वहाँ अवधिज्ञान से अपने पूर्व जन्म को जानकर वह पृथ्वी पर आया और आसूरि वगैरह को अपना सांख्यमत बताया। उसके प्रभाव से इस पृथ्वी पर सांख्यदर्शन प्रवृत्त हुआ।

'आत्मप्रशंसा और अभिमान करने से मरीचि ने नीच गोत्र कर्म उपार्जित किया और उत्सूत्र की प्ररूपणा करने से असंख्य भव किये। तीर्थंकर भगवान के शास्त्रों से विरुद्ध न बोलना और अभिमान न करना - इतना बोधपाठ सबको ग्रहण करने जैसा है।

●

● है ज्ञान मगर कुछ ध्यान नही, पहचान के सब कुछ सोता है।
ये दुनिया है अपने मतलब की, यहां कौन किसी का होता है॥

८२ — श्री मोहविजेता स्थूलभद्र —

पाटलीपुत्र के शकटाल मंत्री का ज्येष्ठ पुत्र स्थूलभद्र रूपकोशा नामक एक नर्तकी के प्रेमपाश में जकड़ा गया। प्रेम के बंधनवस माता-पिता की आबरू की परवाह न की, भगिनीयों के स्नेह को वह भूल गया और लघु बंधु श्रीयक की सीख भी कुछ काम न लगी।

रूपकोशा के देहसुख में उसे स्वर्ग के सुख भी धूंधले लगने लगे। रूपकोशा के जूडे के लिये वह गुलाब के फूलों की वेणी स्वयं गूंथता था। रूपकोशा के ओष्ठ पर लाल रंग की लाली वह स्वयं लगाता था। विविध आभूषणों से रूपकोशा के देह को स्वयं सजाता था। प्रणय के रंगरांग खेलते हुए दोनों समय का होश गँवा बैठे थे। दिन, महिने, साल रंगराग में गूजर गये। इस प्रकार करते करते बारह वर्ष बीत गये। स्थूलभद्र के पिता शकटाल पाटलीपुत्र में राजा के अत्यंत प्रजाप्रिय मंत्री थे। उनके प्रति वररुचि नामक विप्र अत्यंत इर्ष्या करता था। वह लगातार शकटाल के विरुद्ध राजा के कान भरता था, लेकिन राजा उसकी बातों को महत्त्व देता न था।

शकटाल के घर श्रीयक के ब्याह प्रसंग पर राजा पधारनेवाले थे। उनके सम्मान के लिये शस्त्रों का संग्रह शकटाल ने घर में किया था। वररुचि ने इस मौके का फायदा उठाया। उसने राजा को कहा, 'आपका राज्य छीनने के लिये शकटाल ने शस्त्रों का भण्डार इकठ्ठा किया है। आप जाँच करवाइये।'

राजा के जाँच कराने पर शस्त्र संग्रह की बात सच्ची लगी और राजा का क्रोध आसमान पर पहुँचा।

राजा ने शकटाल के समग्र वंश का नाश करने का निर्णय ले लिया। शकटाल को इस बात का पता चल गया। राजा के कोप से अपने कुटुम्ब की रक्षा के लिये शकटाल ने अपना आत्मबलिदान देने का निर्णय लिया। पुत्र श्रीयक को शकटाल ने कहा : 'बेटा! कल जब मैं महाराजा को प्रणाम करूँ तब तू तलवार से मेरा मस्तक उडा देना।'

'परंतु पिताजी! पितृहत्या का अपवित्र पाप मुझसे कैसे होगा?' श्रायक की मनोवेदना वाचा ले रही थी।

'बेटा! तूझे पितृहत्या का पाप नहीं लगेगा क्योंकि मैं तालपुट जहरवाली हीरे की अंगूठी चूस लूंगा। जिसके कारण मैं मृत्यु पा ही लूंगा। परंतु उसी क्षण तू तलवार चला देना मेरे सिर पर...! आत्मबलिदान के बगैर राजा का कोप शांत नहीं होगा। पुत्र! यह तुझे मेरी आज्ञा है।' पिता शकटाल ने श्रीयक को समझाया।

लाचार श्रीयक को पिता की आज्ञा का स्वीकार करना पड़ा। और दूसरे दिन राजा को प्रणाम करते समय पिता का मस्तक श्रीयक की तलवार से उड़ चुका।

सभा में हाहाकार मच गया। राजा ने जब ऐसा अपकृत्य करने का कारण पूछा तब श्रीयक ने सब बात का घटस्फोट किया। राजा को अब घोर पश्चात्ताप हुआ। राजा ने वररुचि को निकाल दिया और श्रीयक को मंत्रीमुद्रा स्वीकार करने को कहा।

श्रीयक ने कहा : 'महाराज! मेरे बड़े भाई स्थूलभद्र जीवित हैं तब तक मुझ से मंत्रीमुद्रा न स्वीकारी जा सकेगी। आप स्थूलभद्र को मंत्रीमुद्रा अर्पण करो।'

राजा की संमति लेकर श्रीयक स्थूलभद्र को बुलाने के लिये रूपकोशा के रूपभवन में पहुँचा। पिता के लाल खून से रंगी तलवार देखकर और श्रीयक से पिता की हत्या की घटी घटना को सुनते ही स्थूलभद्र का विषयविलास का मोह नशा चूर चूर हो गया। स्थूलभद्र श्रीयक के साथ राजसभा में पहुँचा। राजा ने स्थूलभद्र की आवाभगत की और कहा, 'स्थूलभद्र! आपके पिता का स्थान आप संभालो। इस मंत्रीमुद्रा को धारण करो।'

स्थूलभद्र ने समीप के बगीचे में जाकर (आलोचना) विचारणा करने की आज्ञा मांग। पितृहत्या की इस अपवित्र घटना से स्थूलभद्र की भीतरी आत्मा जाग उठी। मौत का सौदागर और पापों का भण्डार जैसा संसार अब स्थूलभद्र को असार लगने लगा। रूपकोशा के प्रणयसंबंध की मीठी यादें भी उसके वैराग्य को विचलित करने में अब असमर्थ थी।

स्थूलभद्र ने विचारणा करते हुए आलोचना के बदले मस्तक पर के बाल का मुण्ड कर (आलुंचन) कर डाला। धर्मलाभ की शुभाशिष बरसाते मुनि स्थूलभद्र ने राज्यसभा में प्रवेश किया।

इस प्रकार स्थूलभद्र ने मंत्रीमुद्रा न स्वीकारी और कोशा के रूप भवन में भी न जाकर सीधे आचार्य श्री संभूतविजयजी महाराज जहाँ बिराजमान थे वहाँ पहुँचकर, उनके चरणों में गिरकर अपनी जिंदगी के चढ़ाव-उतार की समग्र हकीकत गुरुदेव को बतायी। गुरुदेव ने स्थूलभद्र में छिपे हीरे को पहचान लिया।

और गुरुवर ने विधिपूर्वक स्थूलभद्र को दीक्षा दी।

दीक्षा लेने के बाद दूसरे बारह बारह वर्ष बीत गये। मुनि स्थूलभद्र ने ऐसी प्रचण्ड साधना साध ली थी कि त्रिभुवन की कोई ताक़त उनके शीलव्रत को खण्डित करने का सामर्थ्य नहीं रखती थी।

एक बार वर्षाऋतु आने पर भी संभूतविजयसूरि को वंदना करके तीन मुनियों ने अलग अलग अभिग्रह लिया। उसमें पहले मुनि ने कहा, 'मैं चार माह तक सिंह की गुफा के मुख पर उपवास करके कायोत्सर्ग में रहूँगा।' दूसरे मुनि ने कहा, 'मैं चार माह तक दृष्टि विष सर्प के बिल के मुख पर कायोत्सर्ग धर कर उपवासी रहूँगा।' और तीसरे ने कहा, 'मैं चार माह तक कुएँ के बँडेर पर कायोत्सर्ग करके उपवासी रहूँगा।' उन तीनों को योग्य जानकर गुरु ने उस प्रकार चौमासा व्यतीत करने की आज्ञा दी। स्थूलभद्र मुनि ने उठकर गुरु को विज्ञप्ति की, 'मैं चार माह तक कोशा वेश्या के घर में चौमासा रहूँगा।' गुरु ने उपयोग देकर-उन्हें योग्य समझकर वैसा करने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् सर्व मुनि अपने अंगीकार किये हुए स्थान पर गये। उस समय समता गुणवाले और उग्र तप को धारण करनेवाले मुनिवरों को देखकर वह सिंह, सर्प और कुएँ का रहट घूमानेवाला - ये तीनों शांत हो गये।

स्थूलभद्र भी कोशा के घर गये, उन्हें आते देखकर कोशा ने सोचा, 'ये स्थूलिभद्र चारित्र से उद्वेगित होकर व्रत भंग करने आये लगते हैं, इसलिये मेरा भाग्य जग रहा है।' ऐसा मानकर कोशा एकदम उठकर मुनि को मोतियों से बधाकर दो हाथ जोड़कर खड़ी रही और बोली, 'पूज्य स्वामी! आपका स्वागत है। आपके आगमन से आज अंतराय कर्म क्षय होने के कारण मेरा पुण्य प्रगट हुआ है। आज मुझ पर चिंतामणि कामधेनु, कल्पवृक्ष तथा कामदेव वगैरह देवता प्रसन्न हुए - ऐसा मैं मानती हूँ। हे नाथ! प्रसन्न होकर मुझे जल्दी से आज्ञा दो। यह मेरा चित्त, वित्त, शरीर और घर सर्व आपका ही है। मेरे यौवन को प्रथम आपने ही सार्थक किया है, अब हिम से जली हुई कमलि की भाँति आपके विरह से दग्ध बने मेरे शरीर को निरंतर आपके दर्शन और स्पर्श से आनंदित करें।

यह सुनकर स्थूलभद्र बोले, 'देख, मैं मुनि बना हूँ। मुझ से दूर रहकर जो बात करनी हो वह करो। मैं तेरे यहाँ चौमासा व्यतीत करने आया हूँ। मुझे ठहरने का स्थान बता।' कोशा मन में चिढ़ गई परंतु मुनि को चलित करने के लिए कामशास्त्र अनुसार बनायी हुई चित्रशाला साफ करके चार मास तक रहने के लिये

दी। वहाँ मुनि समाधि तारण करके रहे। कोशा का दिया हुआ कामदेव को प्रदीप्त करनेवाला षट्रसयुक्त आहार करके भी मुनि स्थिर मन रखकर बैठे रहे। कोशा सुन्दर वस्त्राभूषण पंहनकर अनेक प्रकार के हावभाव - नखरें करती हुई मुनि को क्षोभित करने के लिये उनके पास आयी। उस समय मुनि ने कहा, 'साढे तीन हाथ दूर रहकर तुझे नृत्य वगैरह जो कुछ करना हो वह कर।' तत्पश्चात् कोशा साडे तीन हाथ दूर रहकर कटाक्ष से मुनि के सामने देखने लगी। लज्जा का त्याग करके पूर्व की हुई क्रीडा का स्मरण कराने लगी और गात्र को मोड़ने की चतुराई द्वारा त्रिदण्डी से सुन्दर ऐसा मध्य भाग दिखाती, तथा वस्त्र की गांठ बांधने हेतु गंभीर नाभिरूप कूप को प्रकट करती कोशा उनके सम्मुख विश्व को मोहित करनेवाला नाटक करने लगी; फिर भी स्थूलभद्र ने उठाकर उसके सामने देखा भी नहीं और जरा सा भी क्षोभ पाया नहीं।

तत्पश्चात् कोशा अपने सखियों को लेकर वहाँ आयी। उनमें से एक निपुण सखी बोली, 'हे पूज्य! कठोरता का त्याग करके उत्तर दीजिये। क्योंकि मुनियों का मन हंमेशा करुणा के कारण कोमल होता है। भाग्यहीन पुरुष ही प्राप्त हुए भोग को गँवाते हैं, सो हे पापरहित मुनि! आपके वियोग से कृश बनी और आपके ही लिये मरने को तैयार बैठी आपकी कामातुर प्रिया के मनोरथ को सफल करो। यह तपस्या तो सुख से दुबारा प्राप्त होगी, परंतु ऐसी प्रेमी युवती मिलेगी नहीं।' यह सुनकर मुनि ने कोशा को कहा, 'अनंत बार अनेक भव में कामक्रीडादि किये हैं तो भी अब क्यों उसकी ही इच्छा करती है? क्या अब भी तुझे तृप्ति नहीं हुई - जो मेरे सम्मुख यह नृत्यादि का प्रयत्न करती है? यदि शायद ऐसा ही नृत्य प्रशस्त भाव से परमात्मा की स्तुतिपूर्वक उनके समीप किया होता तो सर्व सफल हो जाता : परंतु तूं तो भोग की इच्छा से दीनवाणी बोलती है और सखियों को लाकर भोगप्राप्ति के लिये प्रयत्न कर रही है, परंतु तू क्यों यह जन्म तथा जीवन वृथा गँवा रही है। हे बुद्धिशाली कोशा! तू सर्व प्रयत्न अपनी आत्मा के हित के लिये ही कर।

इस प्रकार के स्थूलभद्र मुनि के वचन सुनकर कोशा ने सोचा, इस मुनि का जितेन्द्रियपन मेरे जैसी असंख्य चतुर नारियों से भी जीता जा सके ऐसा नहीं है।' वह बोली, 'हे मुनिराज! मैंने अज्ञानतावश आपके साथ पूर्व की हुई क्रीडा के लोभ से आज भी क्रीडा की इच्छा से आपको क्षोभित करने के अनेक उपाय किये हैं। अब तो मेरा अपराध क्षमा करें।' बाद में मुनि ने उसको योग्य जानकर श्रावक धर्म

का उपदेश दिया वह भी प्रतिबोध पाकर श्राविका बनीं और 'नंदराजा के भेजे हुए पुरुष के सिवा अन्य सर्व मेरे बंधु समान हैं ऐसा अभिग्रह लिया।

अब वर्षाऋतु पूर्ण हो गयी तो वे तीनों साधू अपने अपने अभिग्रह का यथाविधि पालन करके गुरु के पास आये। प्रथम सिंह की गुफा के पास रहनेवाले साधू को आता देखकर गुरु कुछ उठकर बोले, 'हे वत्स! दुष्कर कार्य करनेवाले! तेरा स्वागत है, तुझे शाता तो है न?' उस प्रकार अन्य दो साधु आये तब उनका भी गुरु ने भली प्रकार से स्वागत किया। स्थूलभद्र को आते देखकर गुरु खड़े हो गये और बोले, 'हे महात्मा! देह दुष्कर-दुष्कर कार्य को करनेवाले तेरा स्वागत है।' यह सूनकर उन तीन साधुओं में से सिंहगुफावासी मुनि ने ईर्ष्या से सोचा, 'यह स्थूलभद्र मंत्री का पुत्र होने से उनको गुरु हमारे से अधिक बहुमान से बुला रहे हैं। चित्रशाला में रहे षट्रस भोजन का आहार करनेवाले और स्त्री के संग में बसे इन स्थूलभद्र को गुरु को दुष्कर दुष्कर कार्य करनेवाले कहे, तो अब मैं भी अगले चतुर्मास में ऐसा ही अभिग्रह करूंगा। ऐसा सोचकर महाकष्ट में आठ मास व्यतीत किये। पश्चात् वर्षाकाल आया तब सिंहगुफावासी अभिमानी साधू ने सुरी को कहा, 'मैं स्थूलभद्र की भाँति कोशा के घर में यह चातुर्मास बीताऊँगा।' गुरु ने सोचा, यह साधू स्थूलभद्र से ईर्ष्या और स्पर्धा के कारण जरूर ऐसा अभिग्रह कर रहा है।' पश्चात् गुरु ने उपयोग देकर उसे कहा, 'हे वत्स! तूं यह अभिग्रह मत ले। इस अभिग्रह का पालन करने में एक स्थूलभद्र ही समर्थ है, अन्य कोई समर्थ नहीं है। क्योंकि 'शायद स्वयंभू रमण सागर भी सुख से पार किया जा सकता है लेकिन यह अभिग्रह धारण करना तो दुष्कर से भी दुष्कर है।

इस प्रकार गुरु के कहे वचनों की अवगणना करके वह अभिमानी साधू कोशा के घर गया। कोशा ने उनको देखकर भांप लिया, 'जरूर यह साधू मेरे धर्मगुरु से स्पर्धा के लिये आया लगता है।' ऐसा मानकर उसने मुनि की अवज्ञा की। मुनि ने चातुर्मास व्यतीत करने के लिये चित्रशाला में जगह माँगी। वह उसने दी। तत्पश्चात् कामदेव को उद्दीपन करनेवाला षट्रसवाला भोजन कोशा ने मुनि को बहोराया। मुनि ने आहार किया। दो-चार दिन बीत गये मगर कोशा मुनि के पास जाती नहीं हैं। अंत में मुनि ही उसे बुलाने लगे। मध्याह्न के समय प्रथम की तरह ही वस्त्राभूषण पहनकर कोशा मुनि की परीक्षा करने आयी। उसके हावभाव, कटाक्ष

तथा नृत्यादिक देखकर मुनि ने पल भर में ही क्षोभ पाया। अग्नि के पास रही लाख, घी और मोम की तरह मुनि कामावेश के आधीन होकर भोग की याचना करने लगे। तब कोशा ने उनको कहा, 'हे स्वामी! हम वेश्याएँ धन के बगैर इन्द्र का भी स्वीकार नहीं करती हैं।' तब मुनि बोले, 'कामज्वर से पीड़ित हुए मुझको भोगसुख देकर प्रथम शांत कर। बाद में द्रव्य प्राप्त करने का स्थान भी तू जहाँ बतायेगी वहाँ से मैं तूझे ला दूंगा।'

यह सुनकर उसे बोध देने के लिये कोशा ने कहा, 'नेपाल देश का राजा नवीन साधू को लक्ष मूल्यवाला रत्नकंबल देता है, तो आप वह मेरे लिये ले आओ; बाद में अन्य बात करो। यह सुनकर बेअवसर वर्षाऋतु में ही मुनि नेपाल की ओर चले। वहाँ जाकर राजा से रत्नकम्बल प्राप्त करके कोशा का ध्यान धरते हुए वे मुनि शीघ्र वापिस लौटे। मार्ग में चोर मिले, उनसे महामुसीबत से दीनता करके कंबल बचाकर कोशा के पास आ पहुँचे और अति हर्षपूर्वक रत्नकंबल कोशा को दिया। वह लेकर कोशा ने तत्काल अपने पैसर पोंछे और घर के बाहर नाबदान के कीचड़ में फेंक दिया। यह देखकर साधू खेदयुक्त होकर बोला; 'हे सुन्दरी! बड़ी मुसीबत से लाया हुआ यह रत्नकंबल तुने कीचड़ में क्यों फैंक दिया?' कोशा ने कहा, 'हे मुनि! जब तुम जानते हो, तो गुण रत्नवाली तुम्हारी इस आत्मा को क्यों नरकरूपी कीचड़ में डाल रहे हो? तीनों भुवन में दुर्लभ महामूल्यवंत आपके संयमधर्म को इस गटर जैसी मलमूत्र से भरी हुई काया में रगड़ने को क्यों तैयार हुए हो? और एक बार वमन किये हुए संसार के भोग दुबारा चाटने की इच्छा क्यों कर रहे हो? इत्यादि कोशा के उपदेश वाक्य सुनकर प्रतिबोधित मुनि ने वैराग्य से कोशा को कहा, 'हे पापरहित सुशील! तूने मुझे संसारसागर में गिरने से बचा लिया। तूने बहुत अच्छा किया। अब मैं अतिचार से उत्पन्न हुए दुष्कर्म रूप मैल को धोने के लिए ज्ञानरूप जल से भरे गुरु रूपी झरने का आश्रय करूंगा।' कोशा ने भी कहा, 'आप के लिए मेरा मिथ्या दुष्कृत हो : क्योंकि मैं शीलव्रत में स्थित थी फिर भी मैंने आपको कामोत्पादक क्रियाओं से खेद दिलाया है, परंतु आपको बोध करने के लिए ही मैंने आपकी आशातना की है तो क्षमा करना और हंमेशा गुरु की आज्ञा सिर पर चढ़ाना।' ऐसा सुनकर 'इच्छामी' यूं कहकर सिंहगुफावासी मुनि गुरु के पास आये।

गुरु वगैरह को वंदना करके 'मैं मेरी आत्मा की निंदा करता हूँ' यों कहकर मुनि बोले, 'सर्व साधुओं में एक स्थूलभद्र ही अति दुष्कर कार्य को करनेवाले हैं, ऐसा गुरु ने जो कहा था वह योग्य ही है। पुष्पफल के रस को (स्वाद को), मद्य के रस को, माँस के रस को और स्त्रीविलास के रस को जानकर जो उनसे विरक्त होते हैं वे अति दुष्कर कार्य करनेवाले हैं। उनको मैं वंदन करता हूँ। और सत्त्व बगैर का मैं कहाँ एवं धीर बुद्धिवाले स्थूलभद्र कहाँ! सरसव का कण कहाँ और हेमाद्रि पर्वत कहाँ? खद्योत कहाँ और सूर्य कहाँ? इस प्रकार कहकर वे मुनि आलोचना लेकर दुष्कर तप करने लगे।

कोशा अपने स्थूलभद्र गुरु की निम्न प्रकार से स्तुति करने लगी :

'जिसने साड़े बारह क्रोड सुवर्णमुद्राएँ मेरे घर पर आकर मुझे दी थी उसने ही साधू अवस्था में मेरे यहाँ आकर मुझे बारह व्रत दियें।'

'स्थूलभद्र ने धन का दान देकर जन्मपर्यंत अयाचक वृत्ति का मुझे सुख दिया, और व्रत का दान देकर अनंत भव का सुख मुझे दिया, इसलिये सर्वदा वे तो मुझे सुख देनेवाले ही बने।'

(२)

पाटलीपुत्र में अकाल पड़ा था जिससे संघ ने स्थूलभद्र वगैरह पांचसौं साधुओं को नेपाल देश में श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी के पास भेजा। उन्हें सूरि पढ़ाने लगे। उनमें स्थूलभद्र के सिवा अन्य सर्व साधु सात-सात वाचना का अभ्यास करने में नहीं पहुँच सकने के कारण अपने अपने स्थान पर लौट गये। स्थूलभद्र मुनि महाबुद्धिमान थे। वे अकेले सूरि के पास रहे। उन्होंने आठ वर्ष में आठ पूर्व का अभ्यास किया। उन्हें एक बार अल्प वाचना से उद्वेग हुआ देखकर सूरि बोले, 'हे वत्स! मेरा ध्यान पूर्ण होने आया है, इसके बाद मैं तुम्हारी इच्छा अनुसार वाचना दूंगा।' स्थूलभद्र ने पूछा, 'हे स्वामी! अब मेरा कितना अभ्यास शेष है?' गुरु ने जवाब दिया, 'बिन्दु जितना तू सीखा है और समुद्र जितना बाकी है।' सूरि का महाप्राणायम ध्यान पूर्ण होते ही स्थूलभद्र दस पूर्व तक गुरुजी के पास पढ़े। इतने में स्थूलिभद्र की बहिने, यक्षा वगैरह साध्वियाँ उनको वंदन करने के लिये आयी। प्रथम सूरि को वंदन करके उन्होंने पूछा, 'हे प्रभु! स्थूलभद्र कहाँ है?' सूरि ने कहा, 'छोटे देवकुल में है।' ऐसा सुनकर साध्वियाँ उस तरफ चली। उन्हें आती देखकर स्थूलभद्र

ने आश्चर्य दिखाने के लिये अपना रूप परिवर्तित करके सिंह का रूप धारण किया। वे साध्वियाँ सिंह देखकर भय पाकर सूरि के पास लौटी और बात बतायी। सूरि ने उपयोग से हकीकत जानकर कहा, 'तुम जाकर वंदना करो, वहाँ तुम्हारा बड़ा भाई ही है, सिंह नहीं है।' इसलिये वे साध्वी वापिस वहाँ गयी। उस समय स्थूलभद्र अपने ही स्वरूप में थे। उन्होंने वंदना की। तत्पश्चात् उनके भाई श्रीयक का स्वर्गगमन का वृत्तांत कहकर और अपने संशय को टालकर साध्वियाँ अपने स्थान पर गयी। तत्पश्चात् स्थूलभद्र वाचना लेने गुरु के पास गये। उस समय गुरु ने वाचना दी नहीं और बोले कि 'तू वाचना के अयोग्य है।' अचानक ऐसा वचन सूनकर स्थूलभद्र अपना अपराध याद करने लगे और बोले, 'हे गुरुदेव! मैंने कोई अपराध किया लगता नहीं है, परंतु आप कहे वह सही।' गुरु बोले, 'क्या अपराध करके कबूल नहीं करता? जिससे क्या पाप शांत हो गया?' तत्पश्चात् स्थूलभद्र ने सिंह का रूप बनाकर की हुई श्रुत की आशातना का स्मरण करके गुरु के चरणकमल में गिर पडे और बोले, 'दुबारा ऐसा कार्य नहीं करूंगा, क्षमा कीजिये।' सूरि बोले, 'तू योग्य नहीं है।' स्थूलभद्र सर्व संघ के पास गये और उन्हें प्रार्थना की। गुरु के पास भेजकर गुरु को मनाने लगे क्योंकि बड़ो का कोप बड़े ही शांत कर सकते हैं।' सूरि ने संघ को कहा, 'जैसे इस स्थूलभद्र ने अभी अपना रूप बदला वैसा दूसरे भी करेंगे और अब मनुष्य मंद सत्त्ववाले होंगे।' तो भी संघ के अधिक आग्रह से स्थूलभद्र को पढ़ाने के लिये कहा तब गुरु ने ज्ञान का उपयोग किया तो जाना कि 'बाकी के पूर्व का मुझसे अभाव नहीं है तो इस स्थूलभद्र को शेष पूर्व पढ़ा दूँ - ऐसा सोचकर गुरु ने 'तुझे अन्य किसी को शेष पूर्व पढ़ाने नहीं' - ऐसा अभिग्रह कराके स्थूलभद्र को सूत्र की वाचना दी जिससे वे चौदह पूर्व को धारण करनेवाले अंतिम मुनि हुए।

आर्य स्थूलभद्र स्वामी! मोह के घर में रहकर जिसने मोहविजय पाया वह महर्षि। जिनकी शीलव्रती सुरभि संसार को सुगंधित करती रहेगी... जिनका नाम शील साधक आत्मा प्रातः काल परमात्मा की तरह स्मरण करेगी। ऐसे सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचर्य के स्वामी संतपुरुष - जिनका नाम चौरासी चोरासी चौबीसी तक लोग याद करते रहेंगे। धन्य धन्य स्थूलभद्र!

●

८३ श्री क्षुल्लककुमार

[बहोत गई थोडी रही]

साकेत नामक नगर में पुंडरिक नामक राजा राज्य करता था। उसका छोटा भाई कंडरीक युवराज पद पर था। कंडरिक को यशोभद्रा नामक अति रूपमती स्त्री थी। उस स्त्री को देखकर पुंडरीक राजा कामराग में मग्न हुआ। इससे उसने दासी द्वारा अपनी इच्छा कहलवायी। यशोभद्रा ने जवाब में कहलवाया, 'हे पूज्य! आप समग्र प्रजा के स्वामी हो, इससे नीतिपथ का त्याग करना आपको उचित नहीं है।' इस प्रकार का यशोभद्रा का वचन दासी ने राजा को कहा, सो राजा ने दुबारा कहलवाया - 'हे स्त्री! स्त्रियों का 'ना' कहने का स्वभाव ही होता है, परंतु हे कृशांगी! मज़ाक छोड़कर मुझे पति के रूप में अंगीकार कर।' यशोभद्रा ने कहा, 'कुल तथा धर्म की मर्यादा मैं छोड़ूंगी नहीं। ऐसे दुष्ट वचन बोलते हुए लज्जा क्यों नहीं पाता।' यह सुनकर राजा ने सोचा, 'जहाँ तक मेरा भाई कंडरीक जीवित है वहाँ तक यह मुझे चाहेगी नहीं, इसलिये उसे मार डालूं।' ऐसा मानकर कपट से अपने छोटे भाई को मार डाला।

विधवा होने के बाद यशोभद्राने सोचा, 'जिस दुष्ट ने अपने भाई की हत्या की वह अवश्य मेरा भी शील भंग करेगा। सो मुझे परदेश जाना योग्य है।' गर्भवती यशोदा गुप्त रूप से वहाँ से भाग गई; और 'शील रक्षण करने के लिए दीक्षा समान कोई श्रेष्ठ साधन नहीं है।' - ऐसा मानकर दीक्षा ग्रहण की। अनुक्रम से गर्भ वृद्धि प्राप्त करने लगा। यह देखकर सर्व साध्वी वगैरह ने उससे पूछा तब उसने सर्व सत्य वृत्तांत कह बताया। श्रावकों के शासन की हेलना न हो इस उसे रखा। समय पूर्ण होने पर उसे पुत्र जन्मा, वह श्रावकों के घर बड़ा होने लगा। श्रावकों ने उसका लालनपालन किया और उसका नाम क्षुल्लककुमार रखा। वह कुमार आठ वर्ष का हुआ तब उसे दीक्षा दी : परंतु चारित्रावरण मोह का उदय होने से उसके चित्त में विषयवासना उत्पन्न हुई। इससे उसने अपनी साध्वी माता को कहा, 'हे माता! विषय का सुख अनुभव करने के बाद मैं फिर से व्रत ग्रहण करूंगा।' उसकी माता ने कहा : 'हे पुत्र! ऐसा संयम का सुख छोड़कर तुच्छ विषय में क्यों आसक्ति करता है? यदि तुझे संयम की इच्छा न हो तो बारह वर्ष तक मेरे वचन से मेरे पास रहकर जिनेश्वर की वाणी सून।' इस प्रकार अपनी माता के वचन सुनकर वह उतने समय तक रहा, और अपनी साध्वी माता से हंमेशा वैराग्यमय वाणी सुनने लगा। परंतु उसके मन में लेशमात्र वैराग्य उत्पन्न हुआ नहीं।

बारह वर्ष पूरे होते ही उसने माता से अनुमति माँगी, तब उसने कहा, 'हे पुत्र!

तू मेरी गुरुनी के पास जाकर अनुमति ले।' तब उसने बड़ी साध्वी के पास जाकर अनुमति माँगी। साध्वी ने कहा, 'हमारे पास रहकर बारह वर्ष तक देशना सुन।' वह भी उसने कबूल किया और उनके पास रहकर अनेक सूत्र के अर्थ सूने, परंतु कुछ प्रतिबोध पाया नहीं। अवधि पूर्ण होने पर उनसे छुट्टी माँगी, 'तुम्हारे आग्रह से बड़ा कष्ट सहन करके भी रहा हूँ, इसलिये अब मैं जाऊंगा।' सुनकर उन्होंने कहा, 'अपने उपाध्यायजी गुरु हैं, उनकी छुट्टी लेने के बाद जा।' तब उसने उपाध्यायजी के पास जाकर छुट्टी माँगी। उपाध्याय ने कहा, 'बारह वर्ष तक हमारे पास रहकर देशना सुन।' उसने वह भी कबूल किया, परंतु बोध लगा नहीं। अवधि पूर्ण होने पर उपाध्याय से छुटी माँगी। तब उसने कहा कि 'गच्छ के अधिपति सूरि के पास जाकर उनको तेरी इच्छा कह।' उसने वैसा किया। आचार्य ने भी उसको अपने पास बारह वर्ष तक रहने के लिये कहा, इस कारण वहाँ रहकर वह अनेक प्रकार की देशना सुनने लगा। इस प्रकार माता वगैरह के आग्रह से अड़तालीस वर्षपर्यंत दीक्षा का पालन किया तो भी विषय से उसका चित्त पराङ्मुख नहीं हुआ। तत्पश्चात् अवधि पूर्ण होते ही उसने सूरि को कहा, 'हे स्वामी! मैं जाता हूँ।' यह सुनकर सावद्य कर्म होने से सूरि तो मौन ही रहे। तब वह अपने आप वहाँ से चल दिया। जाते समय अपनी माता ने पूर्व अवस्था में (गृहस्थीपने में) लाया हुआ रत्नकंबल तथा मुद्रा (अंगूठी) उसको दी। वह लेकर और संयम के सर्व चिह्न छोड़कर क्रमानुसार साकेतपुरी राज्यसभा में संध्याकाल पर पहुँचा, वहाँ कोई नर्तकी नृत्य कर रही थी। उस नृत्य को देखने व्यग्र चित्तवाले सर्व सभासद उसे बार बार धन्यवाद देते थे, और वे नर्तकी की प्रशंसा करते थे। क्षुल्लक भी उसे देखकर उसमें तल्लीन बन गया। रात बहुत बीत गई, इतने में नर्तकी लम्बे समय से नाच कर रही होने कारण थकी होने से उसके नेत्र निद्रा से बोझिल हो गये। यह देखकर उसकी अक्का ने संगीत के आलाप में उसको कहा, 'सुट्ठेगाईअं सुट्ठेवाइअं सुट्ठेनाच्चिअं साम सुंदरी।'

'अणु पालिय दीहराइयं उसुमिणं तेमां प्रमायए।'

भावार्थ : 'हे सुन्दरी! तूने अच्छा गान किया, बहुत अच्छा बजाया और अच्छी तरह नृत्य किया, इस प्रकार रात्रि अधिक व्यतीत कर दी अब थोड़े के लिए प्रमाद मत कर।'

इस प्रकार अक्का का गीत सुनकर नर्तकी फिर से सावधान हो गई।

यहाँ क्षुल्लककुमारने उस गाथा को सुनकर बोध पाया। उसने उस नर्तकी को अपना रत्नकम्बल इनाम में दिया, इसलिये राजपुत्र ने मणिजडित कुण्डल दिये। मंत्री ने मुद्रा रत्न दिये। लम्बे समय से पति के विरहवाली किसी सार्थवाह की स्त्री ने अपना हार दिया। और राजा के महावत ने अंकुश रत्न इनाम में दिया। हरेक इनाम लक्ष लक्ष

मूल्य का था। यह देखकर राजा ने उन सर्व को पूछा, 'आप ने इस प्रकार तुष्टिदान दिया, उसका क्या कारण?' तब प्रथम क्षुल्लक बोला, 'हे राजा! मैं आपके छोटे भाई का पुत्र हूँ। छप्पन वर्ष तक संयम पालकर विषयवासना से राज्य लेने मैं आपके पास आया था। परंतु इस गाथा को सुनकर मैंने सोचा, जिंदगी का बड़ा भाग तो संयम धर्म के पालन में बीत गया। अब थोड़े समय के लिये प्रमाद करना मुझे उचित नहीं है।' ऐसी वैराग्य की बोधक गाथा भी मुझे साधकपन के लिए प्रेरणादायी बनी। प्रथम गुरु के साधक वचन भी मुझे बाधारूप बने थे। अब मैं चारित्रपालन में निश्चल होऊँगा। इस कारण मैंने मुझ पर बड़ा उपकार करनेवाली इस नर्तकी को सर्वप्रथम प्रीतिदान दिया। और हे राजा! यदि आपको मुझे अपने छोटे भाई के पुत्र रूप में पहचानने में संदेह हो तो उस संदेह को मिटानेवाली यह नाममुद्रा देखो।' वह देखकर राजा ने क्षुल्लककुमार को कहा, 'यह राज्य ग्रहण कर।' तब उसने कहा, 'राज्यादिक में आसक्ति उत्पन्न करनेवाला मोहरूपी चोर अब मेरे आत्मप्रदेश से दूर गया है! इसलिये मैं राज्यादिक का क्या करूँ?'

तत्पश्चात् राजा ने अपने पुत्र के प्रीतिदान का कारण पूछा : इसलिए वह बोला, "हे पिता! राज्य के लोभ से आज-कल में आपको मैं विषादिक के प्रयोग से मार डालने के विचार में था, परंतु वह गाथा सुनकर मैंने सोचा, 'पिता वृद्ध हुए हैं, अब उनका आयुष्य बहुत कम शेष रहा होगा' सो उनको मारने नहीं। ऐसा मानकर मैं बड़ा खुश हुआ जिससे मैंने उसे प्रीतिदान दिया।" मंत्री को पूछने पर उसने कहा, 'हे स्वामी! शत्रुओं ने मुझे अपने पक्ष में मिला लिया था परंतु यह गाथा सुनकर मैंने ऐसे पापकर्म से निवृत्ति पा ली है।' तत्पश्चात् पति के विरहवाली स्त्री को पूछने पर वह बोली, 'हे प्रभु! आज-कल करते हुए पति के विरह में मैंने बारह वर्ष निर्गमन किये फिर भी वे तो आये नहीं, इस कारण पुरुष का विरह असह्य लगने से मैं आज परपुरुष का सेवन करके शील भंग करना चाह रही थी। यह गाथा सुनकर फिर से शील में दृढ बनी कि लम्बे काल से पालन किया हुआ शील थोड़े समय के लिये छोड़ना नहीं। इस कारण से प्रसन्न होकर मैंने नर्तकी को प्रीतिदान दिया है।' इसके बाद महावत को पूछने पर उसने कहा, 'मैं आपकी रानी से लुब्ध हुआ हूँ। आज आपका विनाश करना चाह रहा था। परंतु यह गाथा सुनकर वैसे पाप-विचार से निवृत्त हो चुका हूँ और इसी कारण मैंने तुष्टिदान दिया है।'

इस प्रकार सर्व के कारण सुनकर राजा वगैरह सर्व ने हर्ष पाया और उन सबने क्षुल्लककुमार के साथ जाकर दीक्षा ग्रहण की, अनुक्रम से उन्होंने स्वर्गादिक गति पायी।

इस दृष्टांत का सार यह है कि 'काल पक गया हो तब उपदेश वचन का असर होता है और काल न पका हो तब चाहे जितना कहो फिर भी असर नहीं होता।

●

८४ चारुदत्त

चम्पानगरी में भानू नामक श्रेष्ठी रहता था, उसे चारुदत्त नामक पुत्र था। युवा होते ही पिता ने योग्य कन्या के साथ उसका ब्याह किया, परन्तु किसी कारणवश वैराग्य आ जाने से विषय से विरक्त होकर वह अपनी स्त्री के पास जाता नहीं था। इससे उसके पिता ने चातुर्य सीखने के लिए उसे एक गणिका के घर भेजा। चारुदत्त धीरे धीरे उस गणिका पर आसक्त बना। अंत में उसने वेश्या के प्रेम में वश होकर अपना घर भी छोड़ दिया और बारह वर्ष तक वेश्या के घर रहा। एक बार उसके पिता भानू श्रेष्ठी का अंत समय आया सो उसने पुत्र को बुलाकर कहा, 'हे वत्स! तूने जन्म से लेकर मेरा वचन माना नहीं परंतु अब यह अंतिम एक वचन मानना। जब आपको संकट पडे तब नवकार मंत्र को याद करना।' इस प्रकार कहकर उसके पिता ने मृत्यु पायी। थोड़े दिन के बाद उसकी माता ने भी मृत्यु पायी। चारुदत्त ने दुर्व्यसन से मातापिता की सर्व लक्ष्मी उडा दी। चारुदत्त की स्त्री अपने पिता के घर चली गयी।

यहाँ जब धन खूट गया तब स्वार्थी वेश्या उसे घर में से निकाल दिया, इससे वह श्वसुर के घर आया। श्वसुर से कुछ धन लेकर वह जहाज में चढ़ा। देवयोग से जहाज टूटा। परंतु पुण्ययोग से लकड़ी का तख्ता पाकर कुशलक्षेम किनारे पर पहुँचा। वहाँ से अपने मामा के घर गया। वहाँ से द्रव्य लेकर कमाने के लिये पगदण्डी पर चल पड़ा। मार्ग में डकैती पड़ी और सर्वधन चोर ले गये। फिर से दुःखी होकर पृथ्वी पर भटकने लगा। इतने में कोई योगी मिला। उससे आधा आधा भाग ठहराकर रसपूपिका में से रस लेने मांची पर बिठाकर उसको कूपिका में उतारा। रस का कुंभ भरकर उपर आया तो कुंभ लेकर योगी ने मांची कूपिका में डाल दी। चारुदत्त कुए में गिरा और योगी भाग गया। वहाँ कोई मृत्यु पाते पुरुष को उसने नवकार मंत्र सुनाया। तीसरे दिन चंदन गोह वहाँ रस पीने आयी। तीन दिन का क्षुधातुर चारुदत्त उसकी पूंछ पकड़कर बड़े कष्टपूर्वक बाहर निकला। आगे चलते हुए उसके मामा का पुत्र रुद्रदत्त उसे मिला। रुद्रदत्त ने कहा, 'दो भेड लेकर हम सुवर्णद्वीप चलें?' चारुदत्त के हाँ कहने पर दो भेड लेकर वे समुद्रकिनारे पर आये। बाद में रुद्रदत्त ने कहा, 'इन दो भेडों को मारकर उसके चमड़े के भीतर छुरी लेकर घुसेंगे। यहाँ भारड पक्षी आयेगा। वह माँस की बुद्धि से हमें उठाकर

सुवर्णद्वीप में ले जायेगा। हम चमड़े को छेदकर बाहर निकलकर वहाँ से सुवर्ण लायेंगे।' चारुदत्त बोला, 'यह बात तो सही लेकिन हम से जीव वध कैसे होगा? इतने में तो रुद्रदत्त ने शस्त्र का वार करके एक भेड़ को मार डाला। उसके बाद वह दूसरे पर वार करने लगा तो चारुदत्त ने भेड़ को नवकार मंत्र सुनाया। भेड़ ने अनशनव्रत ग्रहण किया। तत्पश्चात् दोनों भेड़ की भाथी के चमड़े में घुसे। भारंड पक्षी वह लेकर उडा। मार्ग में दूसरा भारंड पक्षी सामने मिलने से उसके साथ युद्ध होने के कारण भारंड मुख में से चारुदत्तवाली भाथी गिर पड़ी। भाथी सहित चारुदत्त एक सरोवर में गिर पडा। उसमें से बाहर निकलकर वह स्थान स्थान पर भटकने लगा। क्रमानुसार एक चारण मुनि उनके देखने में आये। मुनि को प्रणाम करके वह उनके पास बैठा। मुनि बोले, 'अरे भद्र! इस अमानुष स्थल पर तू कहाँ से आया?' तो उन्होंने अपना सर्व दुख बताया। सो मुनिराज ने छठ्ठे व्रत का वर्णन किया। कोई भी दिशा में अमुक योजन से आगे जाना नहीं। इस व्रत को पालने से उन उन दिशा में अनेक भावि पापों से बच सकते हैं। चारुदत्त ने प्रीति से दिग्विरति व्रत ग्रहण किया। इस अरसे में किसी देव ने आकर प्रथम चारुदत्त को और बाद में मुनि को वंदना की। उस समय कोई दो विद्याधर मुनि को वंदन करने आये थे। उनमें से एक ने चारुदत्त को शीश झुकाया। उन्होंने उस देव को पूछा : 'हे देव! आपने साधू को छोड़कर प्रथम इस गृहस्थ को क्यों शीश झुकाया?' देव बोले, 'पूर्व पिप्पलाद नामक ब्रह्मर्षि कई लोगों को यज्ञ कराकर पापमय शास्त्रों का प्ररुपण करके नर्क में गये थे। वहाँ से निकलकर पिप्पलाद पाँच भव तक बकरा बने। पाँचवें भव में वे यज्ञ में ही होमे गये। छठ्ठा भव भी बकरा हुए; परंतु उस भव में इस चारुदत्त ने अनशन कराकर नवकार मंत्र सुनाया। उसकी महिमा से मृत्यु पाकर वह स्वर्ग में गया, वह देव मैं हूँ। अवधिज्ञान से पूर्वभव जानकर मेरे इस गुरु ने दिये हुए नवकारमंत्र की महिमा कहने और उपकारी गुरु की वंदना करने मैं यहाँ आया हूँ। पूर्व में मेरे पर किये उपकार से मैंने प्रथम वंदन उन्हें करके, बाद में साधू की वंदना की है।' इस प्रकार की हकीकत सुनकर चारुदत्त ने वैराग्य पाकर दीक्षा ग्रहण की और अनेक प्रकार की तपस्या करके वह स्वर्ग गया। जिस प्रकार चारुदत्त दिग्विरति व्रत लिया न होने से अनेक स्थान पर भटककर दु:खी हुआ, उस प्रकार जो प्राणी व्रत ग्रहण नहीं करेंगे तो दुखी होंगे, इससे भव्य प्राणियों को दिग्विरति व्रत अवश्य ग्रहण करना चाहिये।

सूचना : दिग्विरति व्रत याने निश्चित की हुई सीमा से बाहर न जाना।

●

८५ — श्री मृगापुत्र (लोढिया) —

श्री वीरप्रभु पृथ्वी को पवित्र करते करते मृग नाम गाँव के उद्यान में पधारे। प्रथम गणधर श्री इन्द्रभूति प्रभु की आज्ञा लेकर मृग गाँव में गोचरी के लिये गये। वहाँ से एषणीय अन्नादि लेकर लौटते हुए गाँव में एक अंध और एक वृद्ध कोढी को देखा। उसके मुख पर मक्खियाँ भिनभिना रही थी और वह कदम कदम पर स्खलित होता था। ऐसे दुःख के घर रूप उसको देखकर गौतम स्वामीने (श्री इन्द्रभूति) प्रभु के पास आकर पूछा, हे भगवान! आज मैंने एक एसे महा दुःखी पुरुष को देखा है कि उसके जैसा विश्व में कोई दुःखी होगा!'

प्रभु बोले, 'हे गौतम! उसे कोई बड़ा दुःख नहीं है। इसी गाँव में विजय राजा की पत्नी मृगावती नामक रानी है। उसका प्रथम पुत्र लोढिया जैसी आकृतिवाला है, उसके दुःख के आगे इसका दुःख कुछ भी नहीं है। वह मृगापुत्र मुख, नेत्र और नासिकादिक रहित है। उसके देह में से दुर्गंधी रुधिर और भवाद बहता रहता है। वह जन्म लेने के बाद सदैव भूमिगृह में ही रहता है। इस प्रकार सूनकर गौतम स्वामी चकित हुए और प्रभु से आज्ञा लेकर कर्म के विपाक की भयंकरता को देखने की इच्छा से राजा के घर गये। राजापत्नी मृगावती गणधर महाराज को अचानक आये हुए देखकर बोली, 'हे भगवान! आपका दुर्लभ आगमन आकस्मिक क्यों हुआ है?' गणधर भगवंत बोले, 'मृगावती! प्रभु के वचन से तेरे पुत्र को देखने आया हूँ।' रानी ने तुरंत अपने सुन्दर आकृतिवाले पुत्र बताये, तो गणधर बोले, 'हे राजपत्नी! इनके सिवा तेरे जिस पुत्र को भूमिगृह में रखा है उसे बता।' मृगावती बोली, 'भगवान! मुख पर वस्त्र बांधो और पलभर राह देखो. जिससे मैं भूमिगृह खुलवाऊं और कुछ दुर्गंध निकल जावे ऐसा करूं। पश्चात् क्षण भर बाद मृगावती गौतम स्वामी को भूमिगृह में ले गयी। गौतम स्वामीने नजदीक जाकर मृगावती के पुत्र को देखा। वह पैर के अंगूठे, होठ, नासिका, नेत्र, कान और हाथ बगैर का था; जन्म से नपुंसक, बधिर और गूंगा था। दुस्सह वेदना भोगता था। जन्म से लेकर शरीर के अंदर की आठ नाडी में से और बाहर की आठ नाड़ी में से रुधिर

तथा मवाद बह रहा था। मानो मूर्तिमान पाप समान लोढका कृति पुत्र को देखकर गणधर बाहर निकले और प्रभु के पास आकर पूछा : 'हे स्वामी! यह जीव कौन से कर्मकी नारकी जैसा दुःख भोगता हैं?'

प्रभु बोले : ''शत द्वार नामक नगर में धनपति नामक राजा को अक्खाई राठौर (राष्ट्रकूट) नामक एक सेवक था। वह पाँचसों गाँव का अधिपति था। उसको सातों व्यसन सेवन में बड़ी आसक्ति थी। वे भारी करों द्वारा लोगों को पीड़ा देता था। और कान, नेत्र वगैरह छेदकर लोगों को परेशान करता था। एक बार उसके शरीर में सोलह रोग उत्पन्न हुए। वह इस प्रकार थे : श्वास, खाँसी, ज्वर, दाह, पेट में शूल, भगंदर, हरस, अजीर्ण, नेत्रभ्रम, मुँह पर सूजन, अन्न पर द्वेष, नेत्रपीड़ा खुजली, कर्म व्याधि, जलोदर एवं कोढ। कहा गया है कि : 'दुष्ट, दुर्जन, पापी, क्रूर, कर्म करनेवाले और अनाचार में प्रवर्तक को उसी भव में पाप फलते हैं। उस राठौर ने क्रोध व लोभ वश अनेक पाप किये। उसने अपना सब काल पाप करने में ही गँवाया। इस प्रकार 250 वर्ष का आयुष्य भोगकर, मरण पाकर प्रथम नरक में गया। वहाँ से निकलकर यहाँ मृगावती के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ है। उसको मुख न होने से उसकी माता, राब बनाकर उसके शरीर पर डालती हैं। वह आहार रोग के छिद्रों द्वारा अंदर घुसकर मवाद व रुधिरपना पाकर बाहर निकलते है। ऐसे महा दुःख द्वारा बत्तीस वर्ष का आयुष्य पूर्ण करके मृत्यु पाकर इसी भरतक्षेत्र में वैताढ्य समीप में सिंह बनेगा। वहाँ से मृत्यु पाकर दुबारो प्रथम नरक में जायेगा। वहाँ से सर्पलिया (नेवला) पन पाकर दूसरा नर्क में जायेगा। इस प्रकार एक भव के आंतरे पर सातवे नर्क तक जायेगा। फिर मच्छपना पायेगा। इसके बाद स्थलचर जीवों में आयेगा। तत्पश्चात् खेचतपक्षी की जाति में उत्पन्न होगा। तत्पश्चात् चतुरिंद्रिय, त्रिइन्द्रिय और द्विइन्द्रिय में आयेगा। इसके बाद पृथ्वी वगैरह पाँच पावर में भटकेगा। इस प्रकार चौरासी लाख योनि में बार बार भटक कर अकाम निर्जरा से लघुकर्मी होने से प्रतिष्ठानपुर एक श्रेष्ठि के घर पुत्र के रुप में जन्म लेगा। वहाँ साधू के संग से धर्म पालकर, मृत्यु पायेगा और देवता बनेगा। वहा से च्यव कर कालानुसार सिद्धिपद पायेगा।

इस प्रकार श्री वीर प्रभु ने गौतम स्वामी को लोढक का सम्बन्ध कहा। यह कथा पढ़कर सब महानुभाव चराचर जीवों की हिंसा करने स दूर रहे और निरंतर जीवदया - अहिंसा धर्म के आचरण में रत बने।

●

८६ श्रीकान्त श्रेष्ठी

राजगृही नगरी में श्रीकांत नामक एक श्रेष्ठी था। वह दिन को व्यापार करता और रात्रि को चोरी करता था। एक बार बारह व्रत को धारण करनेवाला जिनदास नामक कोई श्रावक उस नगरी में आया। श्रीकान्त सेठ ने उसे भोजन के लिये आमंत्रण दिया। जिनदास ने कहा, 'जिसकी आजिविका का प्रकार मुझे ज्ञात न हो उसके घर मैं भोजन नहीं करता हूँ।' श्रीकान्त ने कहा, 'मैं शुद्ध व्यापार करता हूँ।' जिनदास ने कहा, 'आपके घरखर्च अनुसार आपका व्यापार दिखता नहीं है, तो जो सत्य हो वह कहो।' इसके बाद श्रीकान्त ने 'जिनदास परायी गुप्तता प्रकट करे ऐसा नहीं हैं' यों भरोसा पडने पर अपने व्यापार एवं चोरी की सत्य बात कही। तब जिनदास ने कहा, 'मैं आपके घर भोजन करूंगा नहीं क्योंकि मेरी बुद्धि भी तुम्हारे आहार से तुम्हारे जैसी हो जायेगी।' श्रीकान्त ने कहा, 'चोरी के त्याग बिना जो तुम कहोगे वह - धर्म मैं करूंगा।'

जिनदास ने कहा, 'तम प्रथम व्रत ग्रहण करो कि असत्य बोलना नहीं। असत्य के बारे में कहा हैं कि तराजू में एक तरफ असत्य का पाप रखो और दूसरी ओर सर्व पाप रखो तो भी असत्य का पाप अधिक होता है। यदि कोई शिखाधारी, मुंडी, जटाधारी, दिगम्बर या वल्कलधारी लम्बे समय तक तपस्या करे तो भी यदि मिथ्या बोले तो चाण्डाल से निंदा करने योग्य होता है। और असत्य तो अविश्वास का कारण हैऔर सत्य विश्वास का मूल कारण है तथा सत्य का अचित्य माहात्म्य है। लोगो में भी कहा जाता है कि द्रौपदी ने सत्य बोलकर आम्रवृक्ष को नवपल्लवित किया था। वह कहानी निम्न अनुसार है : हस्तिनापुर के राजा युधिष्ठिर के उद्यान में माघ मास में अठ्यासी हजार ऋषि एक बार पधारे। राजा ने उनको भोजन के लिये निमंत्रण दिया। तब वे बोले, 'हे राजन्!' यदि आप आम्ररस से भोजन कराए तो हम भोजन करेंगे, वरना नहीं खायेंगे।' यह सुनकर राजा युधिष्ठिर चिंता में पड़ गये कि, 'यह आम्र की ऋतु नहीं है तो आम्रफल मिलेंगे कैसे? इतने में आकस्मिक रूप से नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे। राजा की चिंता को जानकर उन्होंने कहा, 'यदि

आपकी पटरानी द्रौपदी सभा में आकर पाँच सत्य बोले तो इस बेमौके पर भी आम्रवृक्ष फलेगा।' राजा ने बात मान ली, द्रौपदी को सभा में बुलाया। नारद ने सती को पूछा, 'हे सती! पाँच पति से संतोष पानेवाली आप सतीत्व, सम्बन्ध, शुद्धता, पति प्रेम एव मन में संतोष इन पाँच के बारे में जो सत्य हो वह कहें।' द्रौपदी असत्य से भय पाकर स्त्रियों की जो गुह्य बात थी वह सत्य - सत्य प्रकार से कहने लगी : 'हे मुनि!' रूपवान, शूरवीर और गुणी ऐसे मेरे पाँच पति हैं फिर भी कोई बार छट्ठे में मन जाता हैं। हे नारद! जहाँ तक एकान्त, योग्य अवसर और कोई प्रार्थना करनेवाला मिलेगा नहीं तब तक ही स्त्रियों का सतीत्व हैं। स्वरूपवान पुरुष पिता, भ्राता या पुत्र हो तो भी उसे देखकर कच्चे पात्र में जल रीसता हो उस प्रकार स्त्रियों के गुप्तांग भीगते रहते हैं। हे नारद! जैसे वर्षा ऋतु का समय कष्टदायक है, यद्यपि आजिविका का कारण होने से सर्व को प्यारा लगता है, वैसे भरथार भरणपोषण करता है सो स्त्री को प्यारा लगता है। कोई प्रेम से प्यारा लगता नहीं हैं। सरिताओं से समुद्र तृप्त होता नहीं है और सर्व प्राणियों से यमराजा तृप्त नहीं होता, उस प्रकार पुरुषों से स्त्री तृप्त नहीं होती।

हे नारद! स्त्री अग्नि के कुण्ड समान है, इससे उत्तम लोगों को स्त्रियों का संसर्ग छोड़ देना चाहिये। इस प्रकार द्रौपदी पांच सत्य बोली, उसमें प्रथम सत्य पर आम को अंकुर फूटे, दूसरे, सत्य पर पल्लव, तीसरे पर कोंपल और चौथे सत्य पर मंजरी और पाँचवें सत्य पर पक्के मधुर फल लग गये। यह देखकर सर्व सभासद प्रशंसा करने लगे। तत्पश्चात् आम्ररस से युधिष्ठिर ने सर्व मुनिओ को पारणा कराया।

इस प्रकार सत्य वचन की महिमा का लोक में और शास्त्र में वर्णन किया गया हैं। इस कारण हे श्रीकांत श्रेष्ठ! आप भी उस सत्य व्रत स्वीकारें।"

अब श्रीकांत सेठ ने यह व्रत ग्रहण किया यद्यपि उनका चोरी का स्वभाव तो गया ही न था। एक बार श्रीकांत सेठ चोरी करने गये। वहाँ नगरचर्चा देखने निकले श्रेणिक राजा एवं अभयकुमार मिले। उन्होने श्रीकांत को पूछा, 'तू कौन है?' उसने कहा, 'मैं स्वयं हूँ।' दुबारा पूछा, 'तू कहाँ जाता है?' श्रीकांत ने कहा, 'राज भण्डार में चोरी करने जा रहा हूँ। पुनः पूछा कि तू कहाँ रहता है?' श्रीकांत ने कहा, 'अमुक मोहल्ले में।' फिर से पूछा, 'तुम्हारा

नाम क्या है?' श्रीकांत ने कहा, 'मेरा नाम श्रीकांत है।' यह सुनकर श्रेणिक तथा अभयकुमार आश्चर्यचकित हो गये, कि 'चोर इस प्रकार सच बोलता नहीं है। इसलिये यह चोर लगता नहीं है।' तत्पश्चात् वे आगे चले। वापिस लौटते समय श्रीकान्त राजा के भण्डार में से संदूक लेकर जा रहा था। उसे दुबारा श्रेणिक व अभयकुमार मिले। उन्होंने पूछा, 'यह क्या लिया है?' श्रीकान्त ने कहा, 'राजा के भण्डार में से यह रत्न का सन्दूक लेकर घर जाता हूँ।' ऐसा वाक्य सुनकर वे राजमहल में गये। प्रातःकाल भण्डारी भण्डार में चोरी हुई जानकर दूसरी अनेक चीजों की हेराफेरी करके चिल्लाया और कोतवाल को तिरस्कार के साथ कहा, 'भण्डार में चोरी हुई है।' इस बात की राजा को खबर की गयी सो उसने भण्डारी को बुलाकर कहा, 'कोश में से क्या क्या गया है?' भण्डारी ने कहा, 'रत्न के दस सन्दूक गये हैं।' तत्पश्चात् राजा ने मंत्री के सामने देखा और श्रीकान्त को बुलवाया और पूछा, 'रात्रि को तूने क्या क्या चोरी किया है?' श्रीकान्त ने देखा, रात्रि को दो मनुष्य मिले थे वे ही ये हैं तो उसने कहा : 'स्वामीन् ! आप भूल गये क्या? आपके सामने ही मैं मेरी आजीविका के लिये एक संदूक लेकर जा रहा था।' श्रेणिक राजा ने कहा, 'अरे चोर! तू मेरे पास भी सच बोलने में क्यों भय नहीं पाता हैं?' श्रीकान्त बोला, 'महाराज! प्राज्ञ पुरुषों को प्रमाद से भी असत्य नहीं बोलना चाहिये क्योंकि असत्य बोलने से प्रचण्ड पवन द्वारा गिरे वृक्ष की भाँति (सुकृत) भंग हो जाता है। और आप क्रोध पाओगे तो इस लोक के एक भव के सुख का नाश करोगे लेकिन सत्य व्रत का भंग करूंगा तो मुझे अनंत भव का दुःख प्राप्त होगा।' इस प्रकार के उसके वचन सुनकर राजा श्रेणिक ने उसे सजा दी, 'जिस प्रकार तू सत्य व्रत पालता है, उस प्रकार दूसरे व्रत भी पाल।' श्रीकांत ने उसे स्वीकारा, सो राजा ने पुराने भण्डारी को हटाकर उस पद पर श्रीकान्त को रखा। क्रमानुसार वह महावीर स्वामी के शासन का श्रावक बना।

इस प्रकार श्रीकान्त चोर ने जिनदास श्रावक के वाक्य की दृढता से सत्य वचन रूप दूसरा व्रत लिया और पालन किया तो उसने इस लोक में ही इष्टफल प्राप्त किया। इस कारण भव्य प्राणियों को यह सत्यव्रत जरूर ग्रहण करना चाहिये।

●

८७ — वृद्धवादी सूरी एवं सिद्धसेन दिवाकर सूरी —

विद्याधर गच्छ के श्री पादलिप्तसूरी के शिष्य स्कंदीलाचार्य से कुमुद नामक विप्र ने बुढ़ापे में दीक्षा ली, इससे उन्हें विद्या जबान पर चढ़ती न थी। ने ऊँची आवाज़ में (चीख कर) रात्रि के समय रटन करते थे। इससे गुरुमहाराज ने निषेध किया कि रात्रि के समय ऊँची आवाज़ से बोलना नहीं, तथापि वह दिन को भी बड़ी आवाज़ से रटता था, सो श्रावकों ने कहा, 'यह ऊँची आवाज में पूरा दिन रट रट करता है तो क्या मुसल फुलायेगा?' इस वचन से वह बड़ा शरमिंदा हुआ। उसने सरस्वती देवी की आराधना की। इक्कीसवें उपवास पर उसे सरस्वती प्रसन्न हुई और वरदान दिया कि 'तू सर्व विद्या में पारगामी हो जायेगा, तू कहेगा वैसा मैं तुझे कर दूंगी।' इस प्रकार सरस्वती वरदान देकर गयी। तत्पश्चात् उसने चौक में एक मुसल लेजाकर बीचोबीच खड़ा किया और हाथ में पानी की अंजलि लेक निम्नानुसार मंत्र बोला :

'हे सरस्वती देवी! हमारे जैसे जड़भरत भी तेरी कृपा से वादी जैसे विद्वान होते हैं, तो इस मुसल को फुला दे।'

ऐसा मंत्र बोलकर उसने मुसल पर पानी की अंजलि छिडकी तो सरस्वती देवी ने तत्काल उस मुसल को फुला दिया अर्थात् नवपल्लवित बना दिया। सूके लकड़े में भीं शीघ्रं ही पत्ते, फूल, फल, डालियाँ तना, और जड सब कुछ बन गया। हूबहू (हरा पेड) देखकर सब लोग बड़े विस्मित हुए। (यह बात चारोंओर फैल गई जिससे उनका वादीत्व सर्वत्र प्रसिद्धि पा गया। ये वादी ऐसे विद्वान बने कि उनके आगे कोई भी वादी वाद करने में समर्थ न बन सके। उनकी प्रतिष्ठा चारोंओर जम गई। गुरु ने उन्हें आचार्य पद दिया, जिससे उनका नाम 'वृद्धवादीसूरी' पड़ा।

उस समय उज्जेयनी नगरी में विक्रमादित्य राज्य करता था। उनके राज्य में राजा का प्रिय देवर्षि नामक स्त्री से उत्पन्न सिद्धसेन नामक पुत्र था। वह राज्य में बडा पण्डित माना जाता था, अपितु वह अपने बुद्धि-केबल और मिथ्यात्व के उदय से इतना बड़ा अभिमानी हो गया था कि पूरे जगत को एक तिनके की तरह मानता। सिद्धसेन अभिमान से ऐसा कहता कि 'जो कोई भी वाद में मुझे जीत ले तो मैं उसका चेला बन जाऊँ।' ऐसी प्रतिज्ञा धारण करके वह सर्वत्र घूमता था। उतने में उसने

वृद्धवादीसूरी की कीर्ति सूनी, जिससे उन पर इर्षा रखकर उनको जीतने के लिए सम्मुख बढ़ा। भरूच के नजदीक एक गाँव में वृद्धवादी सूरी मिले। परस्पर बातचीत करते हुए सिद्धसेन ने वाद करने की माँग की। वृद्धवादी ने कहा, वाद करने की मेरी ना नहीं परंतु यहाँ गवाह और न्याय करनेवाले कौन हैं? कोई नहीं है। जिससे हमारी 'जय-पराजय' का निर्णय कौन करेगा। अभिमान से उद्धत बने सिद्धसेन ने कहा कि 'इस जंगल के गोपाल (ग्वाले) हमारे साक्षी हैं। हमारा वाद चलने दो।' वृद्धवादी ने कहा: 'जब ऐसा ही है तो प्रथम पूर्व पक्ष आप ही उठाइये।' तत्पश्चात् सिद्धसेन ने तुरंत ही तर्क से कठोर वाक्य वाले उलटे-सूलटे पदों का उच्चारण किया। इससे ग्वाले उब गये और बोले, 'अरे यह तो बेकार बकवास कर रहा है। कुछ भी समझ में आता नहीं है, और फोगट भैंस की भाँति रंभा रहा है, धिक्कार हे उसे।' इसके बाद वृद्धवादी की ओर देखकर ग्वाले बोले, 'अरे भाई बुड्ढे!' कान को मजा आवे ऐसा तू जानता हो तो बोल! सूने तो सही! तब वृद्धवादी सूरी तालियाँ बजाते हुए और नाचते हुए बोले:

नवि मारिये नवि चोरिये
परदारा गमन निवारिये
थोवं थोवं दाइए तो
सग्ग टग टग जाइए (१)
गेहूँ गोरस गोरडी
गज गुणियल व गान
छः गग्गा यदि इहाँ मिले तो
सग्गह का क्या काम (२)
चूडा चमरी चूनरी
चोली चरणा चीर
छः चच्चे सोहे सदा
सती जैसा शरीर (३)

वृद्धवादी का ऐसा निराला गीत सुनकर ग्वाले बड़े प्रसन्न हुए। और सब एक साथ नाचने तथा ताली बजाकर गीत में साथ देने लगे। गायन पूरा होने के बाद बिना पूछे ही सब ग्वाले चिल्ला उठे, 'इस बूढ्ढे ने इस जवान को जीता, जीता, जीता ऐसा कहकर तालियाँ बजाने लगे। इससे सिद्धसेन निस्तेज बन गया। वृधवादी ने उसको

कहा : 'डर मत! इस पास के भरूच नगर में राज्यसभा है। वहाँ कई - पंडित भी हैं, हम यहाँ बाद करेंगे और उसमें जो हो वह सही।' ऐसा कहकर वे भरूच गये। वहाँ राज्यसभा में भी वृद्धवादी की ही जीत हुई और सिद्धसेन हारा। सत्य प्रतिज्ञावाले सिद्धसेन ने वृद्धवादी से जैनधर्म की दीक्षा ली। योग्यता होने से उसने 'दिवाकर' नामका बिरुद प्राप्त किया, जिससे गुरु ने उसे आचार्यपद समर्पित किया।

इसके बाद वे कई जीवों को प्रतिबोध देते हुए उज्जैन पधारे। इससे नगर में "ये तो 'सर्वज्ञ पुत्र' है" - ऐसा घोष होने लगा। विक्रमादित्य ने उनका सर्वज्ञपना देखने के लिए पास आकर मन से नमस्कार किया। सिद्धसेनसूरी ने ज्ञान से जानकर शीघ्र ही सब सुने वैसे 'धर्मलाभ' दिया। विक्रमादित्य बोले, 'नमस्कार किये बिना' धर्मलाभ क्यों देते हो। हमारा धर्मलाभ बेकार नहीं है, देख सुन।" 'दीर्घायु हो' ऐसे आशीर्वाद देवे तो कुछ योग्य नहीं लगता क्योंकि वह तो नारकी के जंतुओं में भी हैं। 'आपको कई पुत्र हो' ऐसा कहे वह भी ठीक नहीं है क्योंकि वह तो मुर्गियों को बच्चे भी होते हैं जिससे उन्हें क्या सुख है? इसलिये सर्व सुख देनेवाला यह 'धर्मलाभ' ही आपको सुखदायी होगा।' इससे राजा ने सर्वज्ञपना स्वीकार किया। तुष्ट होकर उन्हों ने एक करोड़ सुवर्णमुद्राएँ भेट की परंतु निस्पृही होने से उन्होंने उस द्रव्य का स्वीकार नहीं किया। श्रावकों ने इसे झीर्णोद्धार व लोगों को कर्जे से मुक्ति दिलाने वगैरह कार्य में खर्च किया।

सिद्धसेन दिवाकर वहाँ से बिचरते हुए चित्तोड गये। वहाँ एक स्तंभ था। उसमें पूर्व निषेधित पुस्तक छुपाये हुए थे। उन्हें पुस्तक पढने की इच्छा हुई परंतु वह स्तंभ ऐसा था कि जिसे अग्नि, पानी, शस्त्र (औजार) कोई भी भेद सके या तोड सके नहीं इस प्रकार उसकी परत औषधि से वज्रमय बनायी हुई थी। इससे उन्होंने बैठकर सुगंधी लेकर उन्होंने औषधिया पहचानी। उन्होंने प्रतिऔषधियाँ (विरोधी औषधियाँ) से नवपल्लवित करके स्तंभ खोला। उसमें कई चमत्कारिक ग्रंथ थे। प्रथम एक पुस्तक हाथ में लेकर वे पढ़ने लगे। उसके पहले पन्ने पर दो विद्याएँ थी। उसमें पहली विद्या थी सरसव विद्या। सरसव पानी में डालने से घोड़े उत्पन्न किये जा सकें ऐसी विद्या देखी। दूसरी चूर्णयोग से सुवर्ण बनाने की क्रिया थी। ये दोनों विद्या पढ़ने के बाद आगे-पढ़ने पर शासनदेवी ने निषेध किया और पुस्तक हाथ में से खींच लिया, अपितु स्तंभ भी वापिस वज्रमय होकर बंद हो गया। उदास होकर उन्होंने वहाँ से विहार किया। आगे चलते हुए वे कुमारपुर आये। वहाँ देवपाल नामक राजा को नमस्कार करके बिनती की, 'मेरी सीमाओं के राजा मेरा

राज्य ले लेना चाहते हैं (युद्ध करनेवाले हैं) इसलिये आप मुझ पर कृपा करें तो मेरा राज्य स्थिर रहे।' गुरु महाराज ने 'हा' कही। युद्ध हुआ। गुरु की कृपा से देवपाल जीता और राज्य स्थिर बना। राजा जैनी बना। गुरु को बडा राज्यमान मिला। राजा की प्रार्थना से बंदीजनो की स्तवना कराते पालकी में बैठकर गुरु दरबार में आने लगे; इस कारण वे प्रमाद में डूबने लगे। वृद्धवादीसूरी को इस बात का पता चला तो वे उन्हें बोध देने के लिए वहाँ आये। दरबार में जाते हुए पालकी में बैठे सिद्धसेन को देखकर पालकी उठानेवाले एक कहार को खिसकाकर उसके बदले वे स्वयं याने वृद्धवादी ने पालकी का एक दण्ड उठाया। परंतु स्वयं वृद्ध होने से पालकी की चाल में परिवर्तन हो गया। पालकी हचकोले खाती हुई - तेडीमेडी होने लगी। इस कारण अंदर बैठे हुए - सिद्धसेनसूरी मद में आकर बोल उठे :

भूरि भार भरा क्रांत:
स्कंधा : कि तव बाधति।

अर्थात् अधिक भार बढ़ जाने से पीडीत हो रहा है तो क्या तेरा स्कंध (कंधा) दुखता है?

सिद्धसेन को 'बाधते' बोलना चाहिये था, उसके स्थान पर बाधति बोला - इस व्याकरण दोष के कारण वृद्धवादी बोले,

तथा बाधते स्कंधो
यथा बाधति बांधते।

अर्थात् 'उनका कंधा दुखता नहीं है, जितना बाधति प्रयोग सुनने से मन में दु:ख होता है।'

यह सूनकर सिद्धसेनसूरी मन में खिसिया गये। उन्होंने सोचा कि मेरे गुरु के सिवा मेरी वाणी में ऐसा दूषण बतानेवाला कोई नहीं है। क्या ये मेरे गुरु तो नहीं है? ऐसा मानकर तुरंत ये पालकी मे से उतर गये और गुरु के चरणों में गिरे। उन्होंने अपने प्रमाद को छोड़कर, शुद्ध बनकर राजा से आज्ञा लेकर गुरु के साथ विहार किया और पूर्व की भाँति ही बराबर संयम पालन करने लगे।

कालानुसार वृद्धवादी सूरी स्वर्ग में गये। सिद्धसेन एक समय मग्गदयाणं वगैरह प्राकृत पाठ बोलने पर अन्य दर्शनीओं के हाँसी करने पर - वे शरमिंदा हुए। बाल्यावस्था से ही उन्हें संस्कृत का अभ्यास था और कर्मदोष के अभिमान में आकर सिद्धसेन ने नवकार पद 'नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्य:' ऐसा एक पद संस्कृत में बना दिया। पश्चात् - सब सिद्धांत संस्कृत में करने की इच्छा रखी तब

संघ ने मिलकर कह दिया कि :

'बाल, स्त्री, मंद बुद्धिवाले, मूर्ख, जो चारित्र लेने की इच्छा रखते हो, वे प्राकृत हो तो सरलता से सीख सकते हैं। उन पर दया करके तत्त्वविद्वो ने प्रथम से ही सिद्धांत प्राकृत लोकभाषा में की है। तो क्या आप उनसे अधिक बुद्धिमान हो कि प्राकृत में बने सिद्धांतो को संस्कृत में पलट रहे हो? अधिक बुद्धिमानों के लिये क्या चौदह पूर्व संस्कृत में नहीं है? यह आपने जिन आज्ञा विरुद्ध किया, जिससे उनको 'पारांचित' नामक प्रायश्चित्त दिया। आपको पारांचित आलोयण के लिये बारह वर्ष तक गच्छ से अलग किया जाता है।' संघ की आज्ञानुसार साधु का वेष छिपाकर, अवधूत बनकर, मौन धारण करके संयम सहित वे विचरने लगे।

संघ के बाहर सातवें वर्ष उज्जैयनी नगरी के महाकालेश्वर मंदिर में आकर शिवलिंग के सामने पैर करके सो रहे थे। वंदन - नमन करते नहीं है। इससे पुजारी वगैरह लोगों ने उनका तिरस्कार किया और उठाने के लिये मेहनत की मगर वे उठे ही नहीं, जिससे 'यह भी एक कुतूहल है' - ऐसा मानकर विक्रमादित्य राजा उसे देखने आये और बोले, 'अरे अवधूत!' इस शिवलिंग को तू नमन क्यों नहीं करता?' उसने कहा, 'ज्वर से पीडित आदमी जिस प्रकार मोदक नहीं खा सकता उस प्रकार यह शिवलिंग हमारी की हुई स्तवना सह ही नहीं पायेगा।' राजा ने कहा, 'अरे जटील!' यह तू क्या बकता है? स्तुति कर, जिससे हम देख सके कि क्यों सहन नहीं हो पाती?' तत्पश्चात् सिद्धसेन ने वहाँ 'वीर द्वात्रिंशिका' की रचना करके प्रार्थना की, जिसका प्रथम काव्य निम्नानुसार है।

स्वयंभुवं भूत सहस्र नेत्र
मनेक मेकाक्षर भावलिंगम्
अव्यक्त म व्याहतविश्वलोका
मवादि मध्यांतम पुण्यपापं

इस प्रकार बत्तीस काव्य रचकर पार्श्वनाथ की स्तुति करते ही कल्याण मंदिर का ग्यारहवाँ श्लोक रचते ही शिवलिंग फटकर उसमें से बीजली जैसा चमकता दैदीप्यमान अवंति पार्श्वनाथ स्वामी का बिम्ब प्रगट हुआ। इसे देखकर विक्रम आश्चर्यचकित हो गये और पूछने लगे, 'यह मूर्ति किसने भरवायी है?' गुरु ने कहा, 'यहाँ पहले भद्रा नामक सेठानी को अवंति सुकुमार नामक श्रीमंत पुत्र था। उसे बत्तीस रानियाँ थी। एक समय अपने महल के झरोखे में खड़ा था, उस समय आर्य सुहस्तिसूरी के मुख से नलिनी गुल्म नामक विमान का वर्णन सुनकर जातिस्मरण

पाकर उन्होंने गुरु को पूछा, 'क्या उस विमान से आप आये हो?' गुरु ने कहा, ऐसा नहीं है परंतु सर्वज्ञ के वाक्यों से (सूत्रों से) हम यह सब जानते हैं। तब फिर से उन्होंने पूछा, 'यह विमान कैसे मिलता है?' 'चारित्र से मिलता है' यों गुरु ने कहा - जिससे उसने दीक्षा ली। परंतु सदैव तप करने की शक्ति न थी तथा नलिनी गुल्म विमान में जाने की तत्परता से गुरु की आज्ञा लेकर स्मशान भूमि पर जाकर उन्होंने अनशन किया। उनके पूर्वभव में अपमानित बनी स्त्री मरकर वहाँ लोमड़ी बनी थी। उसने उन्हें देखा और बैर भाव उत्पन्न होने से रात्रि के तीन प्रहर तक उनके शरीर का भक्षण किया। अति वेदना सहन करते हुए शुभभाव के चौथे - प्रहर कालानुसार वे नलिनीगुल्म विमान के देवता बने। यह बात जानकर वैराग्यभाव से उनकी माता ने एक गर्भवती बहू को घर पर छोड़कर बाकी इकतीस बहूओं के साथे दीक्षा ली। घर पर रही बहू को पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने अपने पित्रा के नाम की स्मृति के लिये - उसी स्थान पर 'अवंति पार्श्वनाथ' की प्रतिना भरवायी। बडा जिनमंदिर बनवाकर उसमे स्थापना की। यही वह बिंब है लेकिन विप्रो ने इकट्ठे मिलकर उस प्रतिमा के उपर ही शिवलिंग की स्थापना कर दी थी। यह शिवलिंग मेरी की हुई स्तुति कैसे सहन कर पाता? यह सब सुनकर विक्रम बड़ा राजी हुआ। और उसने उस प्रतिमा के पूजन के लिये 100 गाँव दिये तत्पश्चात् बोला, 'हे महाराज! मेंढक को भक्षण करनेवाले अनेक चतुर सर्प हैं परंतु धरती का धारण करनेवाला तो शेषनाग एक ही है। उसी प्रकार नाम से तो पण्डित अनेक हैं परंतु तुम्हारे जैसा कोई नहीं। ऐसी स्तवना करके राजा अपने स्थान पर लौट गया। इस प्रकार सिद्धसेनने गँवाया हुआ तीर्थ पुनः प्राप्त करके जैनशासन की बड़ी उन्नति करवाई जिससे बारह वर्ष की आलोयणा के सात वर्ष व्यतीत हुए थे। और पांच वर्ष बाकी रहे थे फिर भी संघ ने उन्हे पुनः गच्छ में ले लिये और उन्होंने पुनः आचार्य पद संभाला। तब से वे कुवादमे अंधकार रूपी तिमिर का नाश करने से दिवाकर के समान सिद्धसेन दिवाकर सूरी कहे जाने लगे।

वहाँ से वे विहार करके ओंकारपुर पधारे वहाँ मिथ्यावादियों का बड़ा जोर था। वे जैन चैत्य बनाने न देते थे। इससे उन्होंने विक्रम राजा को समझाकर वहाँ जैन चैत्य बनवाया। वहाँ से वे दक्षिण की और विहार करते हुए प्रतिष्ठानपुर पहुँचे। तत्पश्चात् अपना आयुष्य पूर्ण होने आया है। ऐसा जानकर वे अनशन प्रारंभ करके स्वर्ग पधारें।

●

८८ मदिरावती

क्षितिप्रतिष्ठित नगर में रिपुमर्दन राजा को मदनरेखा नामक रानी से मदिरावती नामक पुत्री हुई। वह बाला दूज के चन्द्रमा की भाँति बढ़ती हुई क्रमानुसार युवा हुई।

एक बार राजसभा में राजा बैठा था तब मदनरेखा ने उत्तम वस्त्रों और गहनों वगैरह से सजाकर मदिरावती को राजसभा में भेजा। राजा ने उसे गोद में बिठाकर ऐश्वर्य के मद के अभिमान से सभा के लोगों को कहा, 'ऐसी दिव्य समृद्धिवाली सभा और मुझ से अधिक उत्तम शोभावाला परिवार किसके पास है?' लोगों ने कहा, 'आप जैसी सभा तथा परिवार अन्य कहीं नही है।' यह सूनकर मदिरावती ने हँसकर सिर हिलाया। राजा ने सिर हिलाने का कारण पूछा तो पुत्री ने कहा, 'पिताजी !' ये लोग आपको प्रसन्न करने के लिये कहते हैं, परंतु यह सब गलत है। लोग एक से बढ़कर एक होते ही हैं। इसलिये आपको इस प्रकार ऐश्वर्य में मद करना ठीक नहीं हैं।

राजा ने लोगों को पुनः पूछा, 'आपका ऐसा सुख किसके प्रासाद से मिला है?' लोगों ने कहा, 'आपके प्रासाद से।' मदिरावती ने लोगों को कहा, 'आप गलत क्यों कहते हो?' हरेक जीव अपने शुभाशुभ कर्म से भला या बुरा फल पाता है।' इस प्रकार अपनी बात तोडनेवाली पुत्री को अपनी दुश्मन मानकर राजा ने पूछा : 'तू किस कारण सुख भोग रही है?' वह बोली, 'मैंने पूर्व भव में शुभ कर्म किये हैं जिसके फलस्वरूप मैं यह सुख भोग रही हूँ। यदि आप ही सर्व लोक के सुख का कारण हैं तो सबको सुख क्यों नहीं देते?' कई हाथी, घोडे, पालकी पर बैठकर जाते हैं और कई दुःखी सेवक तुम्हारे आगे दौड़ते हैं। पापीओं को सुख देने में आप समर्थ नहीं हैं, मैं मेरे पुण्य से आपके यहाँ उत्पन्न हुई हूँ। आप तो मात्र निमित्त हैं। पुत्री के ऐसे वचन सूनकर क्रोधित बने राजा ने कहा, यदि तू मेरा प्रसाद मानेगी तो तेरा उत्तम राजकुमार के साथ ब्याह करवाऊँगा, वरन् दीनदुखी के साथ ब्याह करवाऊँगा।' पुत्री ने कहा, 'आप गर्व न करें। मेरे कर्म अनुसार होगा वह सही होगा।' राजा ने क्रोध से सेवकों को आज्ञा दी, 'कोई नीच कुल के दरिद्री को लाओ। उसके साथ कर्म में मानती इस पुत्री की शादी करा दूँ।' जिसके शरीर से मवाद बह रहा था ऐसे एक कोढी को सेवकों ने राजा के सम्मुख पेश किया।

राजा ने पुत्री को कहा, 'तेरे कर्म से यह कोढी आया है। इससे तू ब्याह कर।' मदिरावतीने उठकर तत्काल उस कोढी से पाणिग्रहण किया। उस समय सब लोग हाहाकार करने लगे। राजा ने पुत्री के सर्व अलंकार उतार लिये - और कोढी के साथ नगर के बाहर धकेल दिया। धर्म मे अति दृढ रुचिवाली मदिरावती कोढी के साथ

देवमंदिर में जाकर ध्यान धरने लगी।

कोढी ने मदिरावती को कहा, 'राजा ने अघटित कार्य सोचे समझे बगैर किया परंतु यदि तुझे सुखी होना है तो कोई समृद्धिवाले के साथ ब्याह कर। मेरी संगति से तो तुझे भी कोढ लग जायेगा। शादी बराबरीवालों की होती है। मैं तो दु:खी हूँ और तुझे यदि दु:खी करूंगा तो मेरा छूटकारा किस भव में होगा?'

कोढी के वचन सुनकर मदिरावती ने कहा, 'हे नाथ! ऐसा अयोग्य वचन बोलना आपको शोभा नहीं देता। अनंत पापराशी इकट्ठी होती है तब स्त्री का अवतार मिलता है। इसमें यदि शील रहित होऊं तो भव भव में दु:खी बनूंगी। मैंने मन, वचन काया से और पिता की अनुमति से आपको स्वामी के रूप में स्वीकारा है। इसलिये आप ना कहेंगे तो मैं अग्नि की शरण लूंगी।' यह सूनकर कोढी संतोष पाकर सो गया। मदिरावती पति के पैर दबाकर पंचपरमेश्वर का स्मरण करने लगी। इतने में एक देवी दिव्य शृंगार से सुशोभित पुरुष को लेकर आयी, मदिरावती को कहने लगी, 'तेरे पिता ने तेरी विटंबना फोगट में की है, यह देखकर दया से मैं तेरे पास आयी हूँ। मैं इस नगर की अधिष्ठाइका देवी हूँ और इस भाग्वान् पुरुष को लायी हूँ। वह तेरी आज्ञा अनुसार चलेगा, इस कोढी को छोड़कर मगधदेश के नरकेसरी राजा के इस पुत्र नरशेखर को तेरा पति बना। मैं तुम दोनों को जीवन पर्यंत सुखसंपत्ति दूंगी।'

मदिरावती ने मन में धैर्य धारण करके दृढतापूर्वक कहा, 'हे माता! आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, परंतु मैंने मेरे मातापिता और नगरजनों के सम्मुख इस कोढी पति का हाथ पकड़ा है तो अब दूसरे को किस प्रकार वरुं? इस लोक में ओर परलोक में पुण्ययोग से मुझे इस कोढी पुरुष से सर्व मनोवांछित भोगसपत्ति मिलेगी, इसलिये कृपा करके मेरे भाई समान इस नरशेखर को राज्यलक्षी सहित उसके राज्य मे पहुँचा दो।'

मदिरावती के एसे वचन से क्रोधित बनी देवी नें उसे पैर से पकडकर आकाश में उछाला। गिर रही थी तब उसे त्रिशूल पर धर कर कहा, 'हे मूरख! मेरे कहे अनुसार कर वरना मार डालूंगी।' कन्या ने निश्चय मन में करके देवी को कहा : 'में प्राणान्त के बाद भी शीलभ्रष्ट नहीं बनूंगी। मैंने कई बार जीवित और यौवन लक्ष्मी का सुख वगैरह इच्छित वस्तुएँ पायी हैं परंतु चिंतामणि समान निर्मल शील पाया नहीं हैं। इसलिये हे देवी! यदि तू मारना चाहे तो मैं मरने के लिये तैयार हूँ परंतु तेरे कहे अनुसार दूसरा वर करूंगी नहीं।

इस प्रकार कह कर मदिरावती मन से नवकार मंत्र स्मरण करने लगी। इतने में उसने सुख से अपने को खड़ा पाया तथा देवी और नरशेखर का खड़ा देखा नहीं। कोढी के बदले वस्त्राभरण युक्त कोई अन्य पुरुष को देखकर मदिरावती मन में सोचने लगी, 'यह स्वप्न है क्या? मेरा कोढी पति कहाँ गया?' ऐसा सोच रही थी कि उस पुरुष ने

कहा :

'हे कन्या! मेरा चरित्र सून, मैं वैताढ्य पर्वत पर के मणिपुर नगर का विद्याधर राजा मणिचूड हूँ। एक दिन नगरचर्चा देखने में रात्रि को निकला। वहाँ उत्तम श्लोक सूना कि सर्व स्थानों पर कौएँ काले होते हैं और तोते हरे होते हैं। सुखी पुरुष को सुख मिलता है और दु:खी को दुख मिलता है। यह सच्चा है या झूठा-ऐसे विचार से मैं विद्या के बल से कोढी का रूप लेकर नगर में खडा रहा था। राजा के सेवक मुझे पकडकर राजसभा में ले गये। हे सुंदरी! वहाँ तू मुझ से ब्याही, परंतु उसका कारण मैं जानता नही हूं, तुझको दु:ख उत्पन्न करनेवाली परीक्षा भी ली, परंतु जिस प्रकार मेरुशिखर कम्पित नहीं होता है उस प्रकार तू शीलरूप आचार से कम्पित नहीं हुई। इसलिये तू धन्य है, प्रशंसा - योग्य है। मैं भी तूझसे ब्याह करके अपने आपको धन्य मानता हूं।'

विद्याधर के ऐसे वचन सूनकर मदीरावती विचारने लगी। शील के प्रभाव से मुझे उत्तम पति मिला। तत्पश्चात् विद्याधर ने अपनी शक्ति से सात मंजिल का महल बनाकर रात्रि बीताई। सूर्योदय होते ही विद्याधर ने रानी को पूछा: 'तेरे पिता को मैं यहाँ भक्ति से बुलवाऊँ या शक्ति से?' रानी ने कहा, 'उनको किसान के भेष में बुलाओ जिससे उनका मद उतर जावे।' विद्याधर राजा ने एक बड़े सैन्य के साथ एक दूत को रिपुमर्दन राजा के पास भेजकर कहलवाया कि वैताढ्य पर्वत का राजा मणिचूड विद्याधर आपके पर चढ़ आया है। यदि आप राज्य चाहते हो तो किसान के भेष में आकर उन्हें नमस्कार करो।'

राजा क्रोध से उत्तर देने जा ही रहा था कि प्रधानने उसे रोककर कहा, 'बराबरी के हो तो कोप करना ठीक है लेकिन यह विद्याधर राजा अति बलवान है। उन्हें नमस्कार योग्य - सत्कारपूर्वक नमस्कार करें।' मंत्रियों को के कहे अनुसार राजा ने किसान के भेष में जाकर विद्याधर राजा को शीश झुकाया। विद्याधर ने राजा का वस्त्रालंकार से सत्कार किया। अपनी पुत्री को विद्याधर के पास देखकर उसे बहुत खेद हुआ तब पुत्री ने कहा, 'जिस कोढी के साथ आपने मेरा ब्याह किया था वही यह पुरुष है। उसने ही आपके शरीर पर से किसान का वेष उतारकर नये वस्त्रालंकार दिये हैं।'

यह सुनकर विस्मित बने राजा ने विद्याधर को कहा, 'आपका चरित्र जो हो वह कहो।' विद्याधर ने अपना चरित्र कहा और बोला, 'हे राजन्! आपकी पुत्री उत्तम शीलवती होने से आपको धन्य है।' ऐसा कहकर अपनी समृद्धि दिखाई और राजा का सन्मान करके विद्याधर मदिरावती को लेकर वैताढ्य पर्वत पर गया। वहाँ मदिरावती शील के प्रभाव से विविध प्रकार के भोग भोगती हुई जीनधर्म की आराधना करने लगी और आराधना के योग से मृत्यु पाकर देवलोक में गयी। वहाँ से च्यव कर मनुष्यभव में आयी, सकल कर्म का क्षय करके मोक्ष जायेगी।

●

श्री दामन्नक

हस्तिनापुर में सुनंद नामक एक कुलपुत्र रहता था। उसे जिनदास नामक श्रेष्ठी के साथ मित्रता थी। वह श्रेष्ठी से हंमेशां पच्चक्खान महिमा सुनता था। एक बार श्रेष्ठी उसे गुरु के पास ले गये। गुरु ने अनागत आदि प्रत्याख्यान का स्वरूप तथा फल का वर्णन किया। यह सूनकर सुनंदने मद्य और माँस नहीं खाने का पच्चकखान शुद्धभाव से ग्रहण किया। इसके बाद वहाँ कोई बड़ा अकाल पड़ा जिससे छट्ठे आरे की भाँति सर्व लोक प्राय: माँस--भक्षण करनेवाला हो गया। सुनंद के स्वजन क्षुधा से अत्यंत पीड़ित होने लगे। इससे एक दिन बड़ा उपालंभ देकर उसे साले के साथ मछली लेने के लिए भेजा। सुनंद ने जल में जाल फेंका। परंतु जाल में फँसी हुई मछलियाँ देखकर उन्हें छोड़ देता था। यह देखकर उसके साले ने कहा : हे बहनोई। आप कोई मूण्डे के वाक्यरूपी जाल में फँसे हो, जिससे आपके स्त्री - पुत्रादिक को दु:ख रूपी जाल में से किस प्रकार निकाल पाओगे? जान ली तुम्हारी दयालुता!' आदि व्यंग कहे तो भी उसने उस दिन एक भी मछली नहीं पकड़ी उस प्रकार दूसरे दिन भी एक भी मछली न पकडी और कहने लगा, 'मैं क्या करूं। किसी भी समय मछली पकडने का अभ्यास नहीं है।' यह सुनकर उसके स्वजन उसे सीखाने लगे परंतु उसकी निर्मल धर्मभावना टूटी नहीं। तीसरे दिन तालाब पर जाकर उसने जाल फेंका, इससे एक मछली का पंख टूटा। यह देखकर सुनंद अत्यंत शोकातुर बना। उसने स्वजनों को कहा, 'मैं कभी भी ऐसा हिंसा का काम नहीं करूंगा।' ऐसा कहकर प्रफुल्लित मन से उसने निरवशेष अनशन का पच्चक्खाना किया। अर्थात् आहार का त्याग किया। वहाँ से मरकर वह राजगृह नगर में मणिकार श्रेष्ठी के घर पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। मातापिता ने उसका दामन्नक नाम रखा। वृद्धि पाते हुए क्रमानुसार वह आठ वर्ष का हुआ। तब महामारी के उपद्रव से उसके पूर्ण कुटुंब का नाश हुआ। उसके भय के कारण अपने घर से भाग गया। घूमते घूमते उसी नगर में सागरदत्त नामक श्रेष्ठी के घर पहुँचा और उसके घर नौकरी करके आजीविका कमाने लगा।

एक दिन कोई दो मुनि गोचरी के लिये उस सेठ के घर आये। उनमें बड़े साधू सामुद्रिक शास्त्र में निपुण थे, उन्होंने दामन्नक को देखकर दूसरे

मुनि को कहा, 'यह दासत्व करनेवाला मनुष्य है जो वृद्धि पाकर इसी घर का स्वामी बनेगा।' इस प्रकार के साधू के वचन श्रेष्ठी ने दिवार की ओर में खड़े रहकर सूने। इससे मानो वज्राघात हुआ हो ऐसा बड़ा खेद उसे हुआ। उसने सोचा 'इस बालक को किसी भी उपाय से मार डालूं तो बीज का नाश करने के बाद अंकुर कहाँ से आये?' इस प्रकार सोचकर उसने उस बालक को लड्डू का लालच देकर चाण्डाल के घर भेजा। वहाँ एक चाण्डाल को श्रेष्ठी ने पहले से ही द्रव्य देकर साध रखा था और उसे कहा था कि 'मैं तेरे पास भेजूं उस बालक को मारकर उसकी निशानी मुझे बताना।' उस बालक को हिरन के बच्चे की भाँति मुग्ध आकृतिवाला देखकर उस चाण्डाल को दया आ गयी, जिससे उसकी कनिष्टिका ऊंगली काटकर बालक को कहा, 'रे मुग्ध! यदि तू जीवित रहना चाहता हो तो यहाँ से जल्दी भाग जा।' यह सूनकर उसी सागर श्रेष्ठी के गोकुल गाँव में वह पहुँचा। गोकुल गाँव के रक्षक ने उसे विनयी जानकर पुत्र के रूप में रखा। वहाँ वह सुख से रहने लगा। क्रमानुसार वह युवा हुआ।

एक बार सागर श्रेष्ठी गोकुल में आये। वहाँ छिदी हुई ऊंगली के चिह्न से उन्होंने दामन्नक को पहचाना। इसके बाद गोकुल के रक्षक ने किसी कामका बहाना बताकर दामन्नक को अपने नगर राजगृह भेजा। साथ में एक चिठ्ठी दामन्नक को दी और अपने पुत्र को देने के लिए कहा। दामन्नक पत्र लेकर शीघ्र राजगृह पहुँचा। ज्यादा चलने से वहाँ पहुँचते ही वह थक चुका था, जिससे गाँव बाहर उद्यान में कामदेव के मंदिर में विश्रांति लेने बैठा। वहाँ थकान के मारे सो गया। उतने में सागर श्रेष्ठी की विषा नामक पुत्री अपनी इच्छा से उसी कामदेव के मंदिर में आयी। वहाँ दामन्नक के पास अपने पिता की मुद्रावाला कागज देखकर उस कागज को उसने धीरे से ले लिया और कागज खोलकर धीरे से उसे पढ़ने लगी।

'स्वस्ति श्री गोकुल से लि. श्रेष्ठि सागरदत्त पुत्रको स्नेहपूर्वक फरमाते हैं कि इस पत्र लानेवाले को विलम्ब बगैर तुरंत ही विष देना। इसमें कोई संदेह मत करना।'

इस प्रकार का लेख पढ़कर दामन्नक के रूप से मोहित बनी विषाने विष के 'ष' के आगे अपनी आँख के काजल द्वारा 'T' काना (आकार का चिह्न) बढ़ा दिया जिस कारण विष की जगह विषा पढ़ा जाता था। पश्चात् वह कागज मोड़कर

जैसा था वैसा रखकर हर्ष से अपने घर गई। थोड़ी देर के बाद दामन्नक भी जागृत हुआ तो गाँव में जाकर उसने श्रेष्ठी पुत्र को वह कागज दिया, वह भी पत्र पढकर आनंदित हुआ, और उसी समय बडे ठाठ-बाठ-आडम्बर से अपनी बहन विषा का उसके साथ ब्याह कर दिया। दामन्नक उसके साथ सुख से विलास करने लगा। कई दिनों के बाद सागर श्रेष्ठी घर आया। उसे विषा के ब्याह की बात जानकर बड़ा खेद हुआ। उसने सोचा, 'अहो! मेरा सोचा हुआ कार्य उलटा हो गया और यह तो मेरा जवाँई बन गया, तो भी प्रपंच से उसे मार डालूं। पुत्री विधवा भले हो जाये परंतु शत्रु की वृद्धि हो वह ठीक नहीं।' - इस प्रकार विचार करके चाण्डाल के पास जाकर कहा, 'अरे तूने मुझे उस दिन ऊँगली की निशानी देकर ठगा था वह ठीक नहीं किया था' चाण्डाल बोला, 'हे सेठजी! अब उसे दिखाओ, मै जरूर मार डालूंगा।' तत्पश्चात् श्रेष्ठी उसे मारने के लिये मातृकादेवी के देहरे का संकेत देकर घर आये और दामन्नक को कहा, 'हे वत्स! तू आज शाम को विषा के साथ मातृका देवी के प्रासाद में पूजा करने जाना जिससे देवी की कृपा से तुम दोनों का कुशल हो।'

सांय काल देवी के मंदिर में दोनो जाने वाले थे लेकिन संयोग से उनका साला उनसे पहले मंदिर पहुँचा। प्रथम से ही श्रेष्ठी का संकेत होने से उस चाण्डाल ने देहरे में मानो देवी का बलिदान देता न हो वैसे उसे मार डाला। पुत्र का मरण सुनकर सागर श्रेष्ठी की छाती फट गयी और उसकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् राजा ने दामन्नक को उसके घर का स्वामी बनाया।

एक बार रात्रि के अंतिम प्रहर में भाटचारण के मुख से दामन्नक ने एक गाथा सुनी, जिसका भावार्थ ऐसा था कि, 'निरपराधी को अनर्थ में डालने के लिये अनेक प्रयत्न किये तो वह भी उलटे ही उसे गुणकारी बनते है। दुःख के लिये किये उपाय सुख देनेवाले होते हैं क्योंकि देव ही जिसका पक्ष करते हैं उन्हें दूसरा क्या कर सके?'

यह गाथा भाट तीन बार बोला, इसलिये दामन्नक ने तीन लाख द्रव्य दिया। राजा ने यह सब देने का कारण पूछा, तब दामन्नक ने सर्व पूर्व वृत्तांत कहा। एक बार ज्ञानी गुरु मिलने पर उसके अपने पूर्व भव में किये प्रत्याख्यान का फल जानकर जाति स्मरण होने से दामन्नक विशेष रूप से धर्म का रागी बना। कालानुसार मृत्यु पाकर देवलोक का सुख प्राप्त किया। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर क्रमानुसार सिद्धि पद की पायेगा।

●

१० श्री हेमचंद्राचार्य

धंधूका नगर में चाचिंग नामक सेठ रहते थे। उनको पाहिनी नामक पत्नी थी। वह गुणवान व शीलवती थी। जैन धर्म के प्रति उन्हें पूर्ण श्रद्धा थी।

एक रात्रि को पाहिनी को स्वप्न आया। उसे दो दिव्य हाथ दिखे। दिव्य हाथों में दिव्य रत्न थे। 'यह चिंतामणि रत्न है, तू ग्रहण कर' कोई बोला नहीं, पाहिनी ने रत्न ग्रहण किया। वह रत्न लेकर आचार्यदेव श्री देवचन्द्र सूरी के पास जाती हैं। 'गुरूदेव, यह रत्न आप ग्रहण करें।' और रत्न गुरूदेव को अर्पण कर देती हैं। उसकी आँखों में हर्ष के आंसू उभर आते हैं।

स्वप्न पूरा हो जाता है। वह जागती हैं। जागकर नवकार मंत्र का स्मरण करती हैं। वह सोचते हैं - गुरूदेव श्री देवचन्द्रसूरी नगर में ही हैं। उनको मिलकर स्वप्न की बात करूं।

सुबह उठकर स्नानादि से निवृत्त होकर वह गुरूदेव के पास गई और स्वप्न की बात उनको कही।

गुरूदेव ने कहा, 'पाहिनी, तूझे खूब अच्छा स्वप्न आया है। तूझे श्रेष्ठ रत्न जैसा पुत्र होगा और वह पुत्र तू मुझे देगी। यह तेरा पुत्र जिनशासन का महान आचार्य बनेगा और शासन को शोभायमान करेगा।'

पाहिनी राजी राजी हो गयी। उसे गुरूदेव पर श्रद्धा थी। साधू जीवन में सच्चा सुख है ऐसा वह समझती थी, उसने अपनी साडी के सिरे पर गांठ बांधकर स्वप्न बांध लिया।

उसी रात्रि को उसके पेट में कोई उत्तम जीव गर्भ रूप में ठहरा।

पाहिनी गर्भ को कोई नुकसान न हो उस प्रकार से शरीर संभालती है। रोजाना प्रभुभक्ति - परमात्मा की पूजा करती है। गरीबो को दान देती हैं। अपने पति के साथ तत्त्वज्ञान की बातें करती हैं। विक्रम संवत 1145 की कार्तिक पूर्णिमा को पाहिनी ने पुत्र को जन्म दिया। वह पूर्णिमा के चांद जैसा गोरा गोरा पुत्र देखकर खुश खुश हो गयी।

उस समय आकाशवाणी हुई : 'पाहिनी और चाचिंग का यह पुत्र तत्त्व का ज्ञाता बनेगा और तीर्थंकर की भाँति जिन धर्म का प्रसारक बनेगा।'

पुत्र का नाम बुआ ने 'चांगदेव' रखा। जरा बड़ा होने पर पाहिनी ने उसे अरिहंत का 'अ' बोलते सिखाया और तत्पश्चात् नवकार मंत्र का 'न' सिखाया।

पाहिनी चांगदेव को भगवान का दर्शन वंदन करना सीखाती है और बार बार गुरुदेव के पास ले जाती है। उसे हाथ जोडकर, शीश झुकाकर वंदन कराती है। गुरुदेव के सामने देखकर चांगदेव हँसते हैं। गुरुदेव धर्मलाभ का आशीर्वाद देते हैं।

वह बड़ा होता जाता है, पढ़ने के लिये शाला में छोड़ा जाता है। वह उसकी असाधारण यादशक्ति से अध्यापक का लाड़ला बन जाता है।

पांच वर्ष का चांगदेव पाहिनी के साथ एक बार जिनमंदिर में गया। आचार्य श्री देवचन्द्रसूरीजी वहाँ दर्शनार्थ वहाँ पधारे थे। उनके शिष्यने आचार्यदेव को बैठने के लिये आसन बिछाया था जिस पर चांगदेव बैठ गया। यह देखते ही आचार्य श्री हँस पडे। चांगदेव भी हँसने लगा। आचार्यश्री ने पाहिनी को कहा, 'श्राविका! तुझे याद तो है न तेरा स्वप्न, रत्न तुझे मुझको सौंपना होगा। वह स्वप्न इसी का इशारा है। तेरा पुत्र मेरी गद्दी संभालेगा और जिन शासन का महान प्रभावक आचार्य बननेवाला है। तू मुझे सौंप दे इस पुत्र को। सूर्य एवं चन्द्र को घर में नहीं रख सकते और यदि घर में रहे तो दुनिया को प्रकाश कौन देगा? तेरा पुत्र सूर्य जैसा तेजस्वी है और चन्द्र जैसा सौम्य है। उसका जन्म घर में रहने के लिये नहीं हुआ। वह तो जिन शासन के गगन में चमकने के लिये जन्मा है। इसलिये उस पर का मोह छोडकर मुझको सौंप दे।'

पाहिनी ने गुरुदेव को उसके पिता से उसकी मांग करने के लिये कहा।

एक दिन चाचिंग को उपाश्रय पर बुलाकर गुरुदेव ने कहा, 'चांगदेव बड़ा भाग्यशाली है। उसका भविष्य बड़ा उज्वल है। उसका मोह तुम्हें छोड़ना पडेगा।'

'याने गुरुदेव?' चाचिंग ने पूछा।

'चांगदेव को मुझे सौंपना होगा, उसका घाट (आकार) मैं गढ़ूंगा। वह मेरे पास रहेगा।' गुरुदेव ने कहा।

चाचिंग ने ऐसा कहा कि सोचकर जवाब दूंगा।

गुरुदेव ने कहा, 'पुत्रस्नेह से मत सोचना, उसका हित सोचना। तुम्हारा यह पुत्र लाखों जीवों का तारणहार बननेवाला है।'

चाचिंग सेठ घर आये। उन्होंने चांगदेव को पूछा, 'बेटा! गुरुदेव तुम्हें

पसन्द हैं?'

'हाँ पसन्द हैं, मैं गुरुदेव के साथ रहूंगा। उनके पास पढ़ूंगा। वह जैसा कहेगें वैसा करूंगा।'

चाचिंग सेठ ने पाहिनी देवी से भी चर्चा की। पाहिनी ने अपनी अनुमति दे दी।

और चाचिंग सेठ चांगदेव गुरुदेव को सौंपने का विचार करने लगा।

माता के पास आचार्य फिर से पुत्र की माँग करते हैं। उस समय चाचिंग घर नहीं है, फेरी करने गया हैं। क्षण भर के लिए माता झिझकती है। परंतु शुभ भावि को ध्यान में लेकर पुत्र को अर्पण कर देती है। और आचार्य उसको लेकर विहार करके खंभात जाते हैं। इस तरफ चाचिंग घर आता है। उसको मालूम पडता है कि चांगदेव को आचार्य ले गये हैं : तो उसे वापिस ले आने खंभात जाते हैं। वहाँ उदयन मंत्री और आचार्य के के समझाने पर गुरुदेव को पुत्र अर्पण करके वापिस लौट जाते हैं।

गुरुदेव देवचन्द्रसूरीजी चांगदेव को पढ़ाने लगे। उसका विनय और बुद्धि देखकर गुरुदेव को भरोसा हो गया कि यह लड़का बडी जल्दी विद्वान बन जायेगा। सब शास्त्रों का अभ्यास कर लेगा।

एक दिन गुरुदेव ने गुजरात के महामंत्री उदयन को अपने पास बुलाकर चांगदेव के बारे में बात की। उनको जैन धर्म पर बड़ी श्रद्धा थी। उन्होंने चांगदेव की दीक्षा का सब खर्च और महोत्सव करने के लिये प्रसन्नता से हाँ कह दी और महासुदी चौदहवीं के दिन बड़े उत्सवपूर्वक दीक्षा दी और उसका नाम सोमचन्द्र सूरीश्वर मुनि रखा।

आचार्यदेव श्री देवचन्द्र सूरीश्वरजी स्वयं सोमचन्द्र मुनि को अभ्यास करवाते हैं। साधूजीवन के आचार-विचार सीखाते हैं। सोमचन्द्र मुनि पढ़ा हुआ याद रखते हैं। गुरु महाराज का विनय करते हैं।

सोमचन्द्र मुनि गुरु महाराज से महान ज्ञानी पुरुषों के जीवनचरित्र सुनते हैं। उन्हें चौदह पर्व के नाम और उन शास्त्रों के विषय में संक्षेप में समझाते हैं।

इस प्रकार ज्ञान उपार्जन करते हुए सोमचन्द्र मुनि के मन में विचार आते कि मैं ऐसा ज्ञानी न बन सकूं? मुझे ऐसा ज्ञानी बनना हो तो मुझे माता सरस्वतीदेवी की उपासना करनी चाहिये। इसलिये जहाँ सरस्वती देवी की मूल पीठ जो काश्मीर

मे है वहाँ जाकर मुझे उनकी उपासना करनी चाहिये। इस प्रकार विचारते हुए उन्होंने काश्मीर जाकर सरस्वतीदेवी की उपासना करने के लिये गुरुदेव से आज्ञा मांगी। और गुरुदेव ने प्रेमपूर्वक काश्मीर जाने के लिये अनुमति व आशीर्वाद दिये। शुभ दिन अन्य एक मुनि के साथ सोमचन्द्र मुनि ने प्रयाण किया।

विहार करते हुए वे खंभात नगर के बाहर आये। वहाँ नेमनाथ भगवान का सुन्दर जिनालय था। वहाँ भगवान की नयनरम्य मूर्ति देखकर सोमचन्द्रजी ध्यान में बैठ गये और वातावरण शांत होने से रात्रि को उसी मंदिर में सरस्वती देवी की आराधना प्रारंभ करने लगे। भगवान के सामने पद्मासन लगाकर बैठ गये और देवी सरस्वती के ध्यान में लीन हो गये। इस प्रकार रात्रि के छः घण्टे बीत गये। मुनिराज स्थिर मन से जाप-ध्यान कर रहे थे और देवी सरस्वती साक्षात् प्रकट हुई। देवी ने मुनि पर स्नेह बरसाया। कृपा का प्रपात बहाया। देवी ने कहा, 'वत्स! अब मुझे प्रसन्न करने के लिये तुझे काश्मीर जाने की जरूरत नहीं है। तेरी भक्ति और ध्यान से मैं देवी सरस्वती तुझ पर प्रसन्न हुई हूँ। मेरे प्रसाद से तू सिद्ध सारस्वत् बनेगा।' इतना कहकर देवी तत्काल अदृश्य हो गयी और सोमचन्द्र मुनि की प्रज्ञा तत्काल विकसित हुई, उनके मुख से सरस्वती की स्तुतिओं का प्रवाह बहने लगा। साथ साथ भगवान नेमनाथ की स्तवना की।

प्रातः होते ही वे धर्मशाला में आये और सहवर्ती मुनि को कहा, जो काम काश्मीर जाकर करना था वह सरस्वती की कृपा से यहाँ पर हो गया है। चलो हम गुरुजी के पास जावे।'

दोनों मुनिराज गुरुजी के पास पहुँच गये और रात्रि का वृत्तांत गुरुदेव को कह सुनाया। गुरुदेव ने सोमचन्द्र मुनि के मुख पर परिवर्तन देखा। अपूर्व तेज उनको दिखा। वे बड़े प्रसन्न हुए और निखालस हृदय से सोमचन्द्र मुनि की प्रशंसा की। गुरु भी गुणवान शिष्य की प्रशंसा करते हैं।

गुरुदेव ने कहा, 'वत्स! एक ही दिन की उपासना से तू ऐसी सिद्धि प्राप्त कर सका। यह तेरा महान सौभाग्य उदय में आया है। अब तू कोई भी विषय पर लिख सकेगा, दूसरों को समझा सकेगा। तू राजा-महाराजाओं को प्रतिबोध देकर मोक्षमार्ग का आराधक बन सकेगा। सोमचन्द्र मुनि ने नम्रता से कहा, 'गुरुदेव, आपकी कृपा से यह सिद्धि मिली है।'

तब से सोमचन्द्रमुनि धर्मग्रंथो का सर्जन करने लगे और दिन व रात एक ही

काम। एक मिनिट की भी आलस करे बगैर साहित्य का सर्जन।

आचार्य देवचन्द्रसूरीजी शिष्य परिवार के साथ विहार करते करते नागपुर पहुंचे। यहाँ नागपुर में धनद सेठ नामक एक खूब ही धनवान सेठ बसता था। उनके पास बहुत धन था। सुन्दर परिवार था। धन मुसीबत के समय काम में आये ऐसे विचार से चरु में सुवर्ण कव्य भरकर चरु जमीन में गाढ़े थे। कर्मसंयोग से व्यापार में खूब घाटा गया। व्यापार में घाटा हुआ तो सेठ ने गाढा हुआ धन निकालने के लिये सोचा। चरु जमीन से निकालने पर चरु में से सोने की ईंटो के बजाय कोयले ही हाथ लगे। सेठ को यह घाव बड़ा बुरा लगा। वे अत्यंत गरीबी में रहने लगे। स्त्रियों के गहने बेचे। अपनी हवेली के सिवा दूसरी जो भी कोई सम्पत्ति थी वह बेच डाली। चरु में से निकले कोयले का ढ़ेर हवेली के कम्पाउण्ड के एक कौने में रखा।

एक दिन सोमचन्द्र मुनि अन्य एक मुनि के साथ गोचरी के लिये सेठ की हवेली पर पधारे। सेठ व उनका कुटुम्ब आटा भीगोकर बनायी हुई राब पी रहा था। यह देखकर सोमचन्द्र मुनि ने अन्य मुनि को कहा, 'यह सेठ क्यों ऐसा आहार कर रहे हैं? वे तो खूब धनवान है। देखो उस कौने में सुवर्ण का ढेर पडा है।' सेठ ने इसमें से कुछ सुन लिया। बराबर तो समझ में आया नहीं परंतु दूसरे जो मुनि थे उनको पूछा, 'यह महाराज क्या कहते हैं?' दूसरे मुनि ने कहा, 'ये तो हमारे बीच की बातें थी।' परन्तु सेठ ने 'सुवर्ण' शब्द सुना था इसलिये उन्होंने आग्रह किया। महाराज ने पूछा, 'आप धनवान होने पर भी गरीब के भाँति क्यों रहते हो?' सेठ ने अपनी कथनी सुनायी। मुनि सोमचन्द्र ने कहा, 'यह ढेर कोयले का नहीं सुवर्ण का ही है।' और सेठ का हाथ पकडकर उस ढेर के समीप ले गये। सेठ को अभी भी कोयले ही नजर आ रहे थे। उन्होंने कहा, 'ये तो कोयले ही है।' मुनि ने कहा, 'नहीं... नहीं...। यह तो सुवर्ण ही है।' सेठ ने कहा, 'गुरुदेव! आप अपने कर कमलों से इस ढेर को पावन करें जिससे वह मुझे सुवर्ण दीखे। गुरु ने नवकार मंत्र पढकर ढेर पर हाथ रखा और सेठ ने आश्चर्य के साथ सुवर्ण देखा। उन्होंने सोमचन्द्र मुनि का उपकार माना और उनके पीछे पीछे उपाश्रय गये।

वहाँ जाकर आचार्यश्री को कहा, 'यह धन अब मेरा नहीं है। श्री सोमचन्द्र मुनि के प्रभाव से यह धन जो कोयलेरूप था वह मुझे मिला है।'

आचार्यश्री ने सेठ को रास्ता दिखाया। उस धन को एक सुन्दर प्रभु महावीर

का मंदिर बनाकर खर्च करने को कहा, और सेठ ने उस प्रकार मंदिर बनवाया। एक तरफ मंदिर बनता गया दूसरी तरफ सेठ का धंधा सुधरता गया और व्यापार में खूब मुनाफा हुआ।

मंदिर तैयार होते ही अच्छे मुहूर्त पर प्रतिष्ठा महोत्सव किया और भगवान महावीर स्वामी की भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी।

नागपुर से विहार करके आचार्य देव पाटण पधारे। पाटण में देवेन्द्रसूरी नामक आचार्यदेव बिराजमान थे। वे भी देवचन्द्रसूरीश्वरजी के ही शिष्यरत्न थे। देवेन्द्रसूरी और सोमचन्द्रसूरी दोनों खास मित्र थे। उनके साथ ज्ञानचर्चा करते और एक-दूसरे के मन की बातें भी करते थे।

एक दिन उपाश्रय में दोनो मुनिराज ज्ञान चर्चा करते थे। वहाँ एक पुरुष ने आकर वंदना की और वहाँ आकर बैठा। अपना परिचय देते हुए कहा, 'मैं पाटण का ही निवासी हूँ। भारत के कई प्रदेश में घूमा हूँ। महात्मा! मैंने आपके गुणों और ज्ञान की प्रशंसा सुनी है सो आपके दर्शन करने आया हूँ और कुछ कहने का मन है।'

आचार्य श्री देवचन्द्रसूरीजी ने कहा, 'क्या कहना है आपको? संकोच छोड़कर जो कुछ कहना हो वह कहो।'

'महाराज! आप दोनों गौड़ देश में जाये, वहाँ कई मांत्रिक और तांत्रिक है, अनेक दिव्य शक्ति धारक महापुरुष हैं, वहाँ आप पधारे और शक्तियाँ प्राप्त करें।'

मुनिराजों ने उस पर विचार करके योग्य करने को कहा। वह पुरुष चला गया। दोनों मुनिओं ने एक-दूसरे के सामने देखा। उन्हें इस मनुष्य की बात तो पसन्द आयी। यदि गुरुदेव छुट्टी देवे तो गौड देश दोनों जायेंगे ऐसा तय किया।

दोनों ने गुरुदेव के पास जाकर गौड देश जाने की आज्ञा माँगी। गुरुदेव ने आशीर्वाद के साथ अनुमति दी।

दोनों ने विहार शुरू किया। एक संध्या को खेरालु नामक गाँव में दोनों आ पहुँचे। रात्रि बीताने के लिए उपाश्रय में रूके।

वहाँ एक वृद्ध साधू आ पहुँचे। पडछंद काया, सुन्दर रूप और आँख में अपूर्व तेज। आते ही उन्होंने पूछा, 'महात्माओं! क्या मैं यहाँ रात्रिवास कर सकता हूँ?'

दोनों ने कहा, 'पधारें महात्मा, बड़ी खुशी से आप हमारे साथ रात्रिवास करें, हमें आनंद होगा।'

यह साधूपुरुष उनको कोई महान विद्यासिद्ध पुरुष लगा। दोनों ने उनकी वंदना करके कुशलता पूछी।

वृद्ध महात्मा ने उनको पूछा, 'कहाँ जाने निकले हो?' दोनों ने कहा, 'विद्याप्राप्ति के लिये गौड देश जाने के लिये निकले हैं।'

वृद्ध पुरुष ने कहा, 'विद्याप्राप्ति के लिये उतना दूर जाने की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हें तुम्हारी मनोवांछित विद्याएँ दूंगा। लेकिन मैं चल नहीं सकता और मुझे गिरनार जाना है, आप मुझे वहाँ पहुँचा दो, मैं आपको विद्याएँ दूंगा।'

दोनों साधू गाँव के मुखियों के पास जाकर डोली और उठानेवाले मनुष्यों की व्यवस्था कर आये।

दोनों मुनि बाते करते करते सो गये, उन्हें पता ही न चला। ब्राह्म मुहूर्त में जब वे जगे, श्री नवकार मंत्र का स्मरण करके आँखे खोली तो... उनके आश्चर्य के बीच वे पहाडो में थे। खेरालु से वे यहाँ कैसे पहुँचे? यह तो गिरनार लगता है। कोई विद्याशक्ति ने हमें यहाँ लाकर छोड़ दिया है।

दोनों मुनि खड़े हुए। एक घटाटोप वृक्ष के नीचे खड़े रहे। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। उन्होंने अपने समीप एक प्रकाशमय तेज का वर्तुल देखा। तीव्र प्रकाश फैल रहा था। दोनों के लिये यह नया आश्चर्य था।

एक तेजस्वी देह प्रभाववाली देवी प्रकट हुई। वह दोनों महात्माओं के समीप आयी। उसके मुख पर थोड़ी मुस्कान थी। वह बोली :

'मैं शासनदेवी हूँ, तुम्हारे उत्कृष्ट भाग्य से आकर्षित होकर यहाँ आयी हूँ।'

'परंतु हमें खेरालु से यहाँ कौन ले आया?' सोमचन्द्र मुनि ने पूछा।

'मैं ही ले आयी हूँ आपको।' देवी बोली।

'और हमारे साथ रात्रिवास करनेवाले वृद्ध महात्मा कहाँ गये?'

'वह मैं ही थी, विद्याओं की आपकी तीव्र अभिलाषा जानकर उस रूप में मैं ही आपको मिली थी। मैं आपको यहाँ गिरनार महातीर्थ में ले आयी हूँ। इस तीर्थ के अधिपति है भगवान नेमनाथ।'

'महात्माओं! यह पहाड़ अद्‌भुत है। यहाँ अनेक दिव्य औषधियाँ है। यहाँ की हुई मंत्रसाधना जल्दी सिद्ध होती है। मैं तुम्हें कई दिव्य औषधियाँ बताऊँगी और सुनते ही सिद्ध हो जाय ऐसे दो मंत्र दूंगी।'

'एक मंत्र से देवों को बुला सकोगे और दूसरे मंत्र से राजा-महाराजा वश

हो जायेंगे। ये दो मंत्र मैं देती हूँ, वह एकाग्रचित्त से सूनो।

शासन देवी ने ये दो मंत्र सुनाये। सुनाकर कहा, 'चलो आपको कई दिव्य औषधियाँ बता दूँ। आप वह बीन लेना। ये औषधियाँ रोग पर तत्काल असर करनेवाली हैं।'

अभी सूर्योदय हुआ न था। दोनों महात्माओं ने कई औषधियां इकट्ठी कर ली।

देवी ने कहा : 'आप ये अमृत पी जाओ ताकि आपको सुनाये हुए दो मंत्र भूल न पाओ।'

देवी ने अमृत से भरा कमण्डल उनके आगे धरा।

देवेन्द्रसूरी ने पीने की ना कही क्योंकि अभी रात्रि का समय था। सोमचन्द्र समयज्ञ थे - नियम व अपवाद के जानकार थे। वे तुरंत ही सब अमृत घटघटा गये। दोनों मंत्र सोमचन्द्र मुनि की स्मृति में बैठ गये। देवेन्द्रसूरी ये दोनों मंत्र भूल गये।

शासनदेवी ने दोनों महानुभावों को मंत्रबल से उठाकर पाटण में उनके गुरुदेव देवचन्द्रसूरी के पास छोड़ दिया। और शासनदेवी अदृश्य हो गयी।

देवेन्द्रसूरीजी तथा सोमचन्द्र मुनि के मुख से यह चमत्कारिक घटना सुनकर देवचन्द्रसूरीजी अत्यंत प्रसन्न हुए। सोमचन्द्र मुनि बड़े विनयी, विनम्र, विवेकी, बुद्धिमान, गुणवान, भाग्यवान और रूपवान हैं। उनको आचार्यपद देने का सोचा। संघ को इकट्ठा करके सोमचन्द्र मुनि को आचार्य पद देने की बात कही। संघ ने हर्षपूर्वक बात को स्वीकारा। वैशाख सुदी तीज - अक्षयतृतीया के दिन शुभमुहूर्त में सोमचन्द्र मुनि ने देवचन्द्रसूरीजी को आचार्य पदवी दी और उनका नाम हेमचन्द्रसूरी जाहिर किया। संघ ने उनका जयजयकार किया। अब हम सोमचन्द्र मुनि को आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरीजी के नाम से पहचानेंगे।

आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरी पाटण के राजमार्ग पर चले जा रहे हैं। उनके पीछे दो शिष्य है। सामने से गुजरात के राजा सिद्धराज की सवारी आ रही थी। राजा हाथी पर बैठा हुआ, नगर को देख रहा था। लोग दो हाथ जोड़कर राजा का अभिवादन कर रहे थे।

राजा की नजर हेमचन्द्रसूरी पर गिरी। प्रतापी व प्रभावशाली आचार्य को देखकर राजा स्तब्ध हो गया और उसे लगा कि यह साधू कौन होंगे? मैंने आज तक ऐसे साधू देखें नहीं हैं।

हाथी उपर से राजा की और श्री श्री हेमचन्द्राचार्य की आँख से आँख मिली। राजा ने दो हाथ जोड़कर प्रणाम किये। आचार्य ने दाहिना हाथ ऊँचा करके 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया।

राजा ने हाथी खड़ा रखवाया। नीचे उतरकर कुछ उपदेश देने के बिनती की।

आचार्य ने निम्नानुसार कहा : 'सिद्धराज! तुमने गज को क्यों रुकवाया? उसे एकदम वेग से आगे चलाओ जिससे उसको देखकर सर्व दिग्गज त्रस्त होकर जाते रहे क्योंकि अब पृथ्वी का भार आपने उठाया है, ये दिग्गजों की क्या जरूरत है?'

राजा ने यह सूनकर खूब ही आनंदित हुआ। शीघ्र काव्य रचना और आचार्यदेव की कल्पनाशक्ति उसको असर कर गयी। राजा ने कहा, 'गुरुदेव! मुझ पर कृपा करके आप प्रतिदिन राज्यसभा में पधारें।'

'राजन्! अनुकूलता अनुसार आपके पास आने का प्रबन्ध रखूंगा।' दुबारा 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद देकर आचार्य श्री आगे चले।

यह थी सिद्धराज के साथ हेमचन्द्राचार्य की पहली मुलाकात। इसके बाद कभी-कभार आचार्य श्री राजसभा में जाने लगे। उनकी मधुर और प्रभावशाली वाणी का राजा पर अच्छा असर पडने लगा। और राजा जैन धर्म तरफ आकर्षित हुआ।

मालवा के राजा को पराजित करके ही राजा पाटण में प्रवेश करना चाह रहा था। मात्र उन्हें मालवा का राज्य ही पसन्द था अपितु उन्हें मालवा की कला, साहित्य और संस्कार भी पसन्द थे। यह सब वह गुजरात में लाना चाह रहा था। मालवा की धारा नगरी से विशाल ज्ञान भण्डार बैलगाडियों में भरकर वह पाटण लाया, उसमें से राजा भोज द्वारा लिखा हुआ ग्रंथ 'सरस्वती कंठाभरण' उसके हाथ में आया। यह ग्रंथ देखकर उसे विचार आया कि 'ऐसा ग्रंथ गुजरात का कोई विद्वान न बना सकेगा? ग्रंथ के साथ मेरा नाम जुड़ेगा तो ग्रंथ और मैं दोनों अमर हो जायेंगे।'

राजसभा में ही राजा ने सरस्वती कण्ठाभरण का ग्रंथ हाथ में लेकर राजसभा में बैठे हुए विद्वानों को कहा, 'राजा भोज द्वारा रचे गये ऐसे व्याकरण शास्त्र जैसा शास्त्र क्या गुजरात का कोई विद्वान नहीं रच सकेगा?' क्या ऐसा कोई विद्वान विशाल गुजरात में नहीं जन्मा है?'

राजा की और हेमचन्द्रसूरी की आँखे मिली!

'मैं राजा भोज के व्याकरण से भी सवाये व्याकरण की रचना करूंगा।'

हेमचन्द्रसूरीजी ने आह्वान स्वीकार कर लिया।

आचार्य देव ने व्याकरण के आठ ग्रंथ काश्मीर से मंगवाये। इन सब ग्रंथों की खूबियाँ, कमजोरी खूब बारीकाई से पहचान ली। सिद्धराज से माँगनें पर सब सुविधा मिलने लगी जिससे एक ही वर्ष में सवा लाख श्लोक से प्रमाणित व्याकरण का महाग्रंथ बनाया और उसे नाम दिया, 'सिद्ध हेम व्याकरण।' सिद्ध याने सिद्धराज और हेम याने हेमचन्द्रसूरी।

सिद्धराज यह ग्रंथ देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने गाजे-बाजे के साथ हाथी के सिर पर रखकर बडी धामधूम से सब राजमार्गो पर घूमाकर राजसभा में ले गया। इस ग्रंथ का पूजन करके ग्रंथ को ग्रंथालय में रखा गया।

३०० कातिबों को बिठाकर इस ग्रंथ की प्रतिलिपियाँ की गई। राजा द्वारा ये प्रतिलिपियाँ भारत के सभी राज्यों में भेजी गयी। अनेक विद्वानों ने इस ग्रंथ की प्रशंसा की। आज भी संस्कृत भाषा का अभ्यास करनेवाले 'सिद्धहेम' व्याकरण पढ़ते हैं।

सिद्धराज सब बात से सुखी था। परंतु एक दु:ख था कि उसे कोई संतान न थी। रानी के आगे वह अपना दुख व्यक्त करता था। रानी आश्वासन देती कि यह सब भाग्य के आधीन है, तो उसके बारे में शोक करने से क्या होगा? पूर्व जन्म में कोई पुण्यकार्य नहीं करे होंगे फिर भी हम तीर्थयात्रा करेंगे तो इच्छित फल मिलेगा। सिद्धराज के गले में यह बात उतर गयी। उसने श्री हेमचन्द्राचार्य को तीर्थयात्रा के लिये पूछा और तीर्थयात्रा में साथ चलने की विनंती की। आचार्य ने देव राजा का आग्रह देखकर और साथ चलने की स्वेच्छा न होने पर भी सम्मति दे दी।

शुभ मुहूर्त पर राजा ने शत्रुंजय गिरिराज तरफ प्रयाण किया। अनेक मुनिवरों के साथ आचार्यदेव ने भी राजा के साथ ही प्रयाण किया।

राजा सिद्धराज रानी के साथ रथ में प्रवास कर रहे थे, लेकिन आचार्यदेव अन्य मुनिवरों के साथ पैदल चलते होने से सिद्धराज को वह बात पसन्द न आयी। उन्होंने आचार्यदेव को रथ देने के लिये कहा, परंतु गुरुदेव ने ना कह दी। और कहा, 'हम वाहन में बैठ नहीं सकते हैं। जूते पहने बिना हमें नंगे पैर चलना होता है। यदि हम वाहन में बैठेंगे तो वाहन खींचनेवाले घोडो' को कष्ट होगा और वाहन के नीचे अनेक छोटे-बड़े जीवों की हिंसा होगी।

सो राजन्! हम वाहन में नहीं बैठेंगे।'

राजा को यह सूनकर गुस्सा आया और आचार्यदेव को गुस्से में कडवे वचन कहे।

सिद्धराज का रथ आगे चलता है। थोड़ी दूर आचार्यदेव अन्य मुनिवरों के साथ चलते हैं। राजा गुस्से के कारण आचार्यदेव को मिलते नहीं है। एक दिन, दो दिन, इस प्रकार तीन दिन बीत गये।

राजा को लगा, 'गुरुदेव मेरे पर नाराज हुए हैं। मेरी बिनती से वे मेरे साथ आये हैं। मुझे उनका मन दुःखी नहीं करना चाहिये, प्रसन्न रखना चाहिये।

चौथे दिन राजा आचार्यदेव के पडाव पर आये। आचार्यदेव शिष्य के साथ भोजन कर रहे थे। उनके भोजनपात्र में रुखी-सूखी रोटियाँ देखी, व पानी की कांजी देखकर राजा सोचते हैं :

'अहो! ये जैन साधू कैसी कड़ी तपश्चर्या करते हैं! वाकई ये महात्मा पूजा के योग्य हैं। उनका मैंने अपमान किया! मुझे उनकी क्षमा माँगनी चाहिये।'

आहार-पानी से निवृत्त होने के बाद आचार्यदेव के चरणों में गिरकर राजा ने क्षमा माँगी।

आचार्य ने कहा, 'आपका कोई अपराध नहीं है। इस कारण हमें क्षमा देनी पडे ऐसा है ही नहीं। आपको यह नहीं समझना चाहिये कि हम क्रोधित हुए हैं।'

राजा की समझ में आया कि इन गुरुदेव को तो मेरी कोई जरूरत नहीं है, मुझे उनकी जरूरत है। आचार्यदेव से आशीर्वाद लेकर राजा अपने स्थान पर लौट गया और रोजाना आचार्यदेव को मिलने लगा। उनके पास बैठकर जैन धर्म का तत्त्वज्ञान प्राप्त करने लगा।

ऐसा करते करते उनका संघ पालीताणा पहुँच गया। शत्रुंजय गिरिराज के दर्शन करके सिद्धराज का हृदय नाच उठा। दूसरें दिन आचार्यदेव तथा अन्य मुनिवरों के साथ राजा शत्रुंजय पहाड पर चढ़े। ऋषभदेव के दर्शन करके सब धन्य बने, भावपूर्वक पूजा की, नये संस्कृत काव्य की रचना करके भगवान की स्तुति की। पहाड उतरकर राजा ने तलहटी पर सदाव्रत प्रारंभ किया। राजा ने यात्रा के निमित्त पर याचकों को दान में सुवर्णमुद्राएँ तथा सुन्दर वस्त्र दिये।

शत्रुंजय की यात्रा करके संघ गिरनार आया। गिरनार पर प्रभु नेमनाथ के दर्शन किये और नेमनाथ का चरित्र राजा को सुनाया। यह चरित्र सुनकर राजा

आश्चर्यचकित हो गया।

गिरनार का पहाड़ उतरकर गुरुदेव को प्रभास पाटण जाकर सोमनाथ महादेव का दर्शन करने की बिनती की। आचार्यदेव ने सोमनाथ जाने की संमति दी। राजा के मन में शंका थी कि जैन आचार्य सोमनाथ महादेव को नमन करेंगे या नहीं। परंतु आचार्य देव तो महादेव की मूर्ति के समक्ष वीतरागी महादेव को स्मृति पट्ट पर लाकर प्रणाम करके स्तुति बोलने लगे। ४४ श्लोक बनाकर बोले : 'जन्म रूपी बीच के अंकुर को जन्म देनेवाले, रागादि जिनके नाश पाये हैं वे, विष्णु हो, शिव हो या जिन हो - उनको मेरे नमस्कार।'

गिरनार की यात्रा करके संघ कोडीनार आया। कोडीनार में अंबिकादेवी याने साक्षात् देवी। उसके प्रभाव की बातें सौराष्ट्र एवं गुजरात में फैली हुई है।

राजा ने आचार्यदेव को अति नम्रता से बिनंती की : 'गुरुदेव मेरे पास सबकुछ है, फिर भी मैं और रानी दोनों दुःखी हैं, क्योंकि आप जानते हैं कि हमें एक भी पुत्र नहीं है।' इस कारण गुरुदेव आप देवी अम्बिका की आराधना करके पूछ लो कि मुझे पुत्र मिलेगा या नहीं? और मेरे मृत्यु के बाद गुजरात का राज्य कौन भोगेगा?'

आचार्यदेव ने कहा, 'मैं देवी की आराधना करके पूछ लूं।' आराधना के लिये आचार्य देव ने तीन उपवास किये, तत्पश्चात् देवी के मंदिर में बैठ गये; ध्यान में मग्न हो गये। तीसरे दिन मध्यरात्रि के समय देवी अंबिका गुरुदेव के सामने प्रकट हुई। देवी ने गुरुदेव के हाथ जोड़कर वंदना की और पूछा, 'गुरुदेव! मुझे क्यों याद किया?'

'गुजरात के राजा सिद्धराज के भाग्य में पुत्रप्राप्ति का योग है या नहीं - यह पूछने के लिये आपको याद किया है।'

देवी ने कहा, 'उसके पूर्वजन्म के पापकर्मों के योग से पुत्रप्राप्ति नहीं होगी।'

'तो सिद्धराज के मृत्यु के बाद गुजरात का राजा कौन होगा? देवी!' आचार्यश्री ने पूछा।

देवी ने कहा, 'त्रिभुवनपाल का पुत्र कुमारपाल राजा बनकर जैन धर्म का बड़ा प्रसार करेगा।'

इतना कहकर देवी अदृश्य हो गयी। आचार्यदेव अपने स्थान पर आये। तीन दिन के उपवास का पारणा किया।

राजा सिद्धराज खूब उत्कण्ठा के साथ गुरुदेव के पास आया। गुरुदेव की

वंदना की और विनयपूर्वक बैठा।

गुरुदेव ने कहा, 'तुम्हारे भाग्य में पुत्र योग नहीं है। और आपके बाद गुजरात का राजा कुमारपाल बनेगा।'

'कौन कुमारपाल?' राजा ने आश्चर्य से पूछा।

'त्रिभुवनपाल का पुत्र कुमारपाल!' गुरुदेव ने कहा। सिद्धराज अत्यंत खिन्न हो गया। आचार्य देव ने सिद्धराज के अशांत मगज को शांति देने के लिये योग्य उपदेश दिया। परंतु पुत्रप्राप्ति की तीव्र इच्छा के कारण उनका उत्पन्न हुआ दुःख दूर न हुआ।

संघ प्रयाण करके पाटण आया। राजा ने श्रेष्ठ ज्योतिषीयों को बुलाकर पुत्रप्राप्ति के लिये पूछा। उनकी ओर से भी देवी अम्बिका जैसा ही उत्तर मिला।

अब पुत्रप्राप्ति की इच्छा पूर्ण नहीं होगी - ऐसा समझने से सिद्धराज ने अपना ध्यान कुमारपाल का काँटा निकालने में लगाया और अपने तरीके से कार्य प्रारंभ किया। आचार्य श्री हेमचन्द्राचार्य ने अथाग मेहनत से अपनी बीस वर्ष की आयु से साहित्यसर्जन का कार्य प्रारंभ किया था जिसे उन्होंने अपनी चौरासी वर्ष पर हुई मृत्यु तक याने चौसठ वर्ष तक चालू रखा।

उनके साहित्य सर्जन में 'सिद्धहेम शब्दानुशासन व्याकरण' के अलावा 'अभिधान चिंतामणि द्वारा उन्होंने एक अर्थ के अनेक शब्द दिये - अनेकार्थ संग्रह द्वारा एक शब्द के अनेक अर्थ दिये।' अलंकार चूडामणि' और 'छंदानुशासन' द्वारा काव्य छंद की चर्चा की और द्वायाश्रय द्वारा गुजरात, गुजरात की सरस्वती और गुजरात की अस्मिता का वर्णन किया। द्वायाश्रय में चौदह सर्ग तक सिद्धराज के समय की बातें की और बाद के सर्गों में कुमारपाल के राज्यकाल की बातें आती है। कुल मिलाकर साड़े तीन करोड श्लोक प्रमाण जितना उनका साहित्य माना जाता है।

जब उनको लगा कि मेरा अंत समय नजदीक है तब उन्होंने संघ को, शिष्यों को, राजा को, सबको आमंत्रित करके अंतिम हित शिक्षाएँ दी और सबसे क्षमापना करके योगिन्द्र की भाँति अनशन व्रत धारण करके, श्री वीतराग की स्तुति करते हुए देह छोड़ा।

श्री हेमचन्द्राचार्य का जन्म संवत् ११४५, दीक्षा ११५६, सूरीपद ११६६ और स्वर्गवास संवत् १२२९ में नोट किया गया है।

●

११ श्री कुमारपाल

राजा सिद्धराज जब राजगद्दी पर आया तब अपने चाचा के लडके त्रिभुवनपाल को अपना भाई जैसा मानकर उसे मान देता था; परंतु हेमचन्द्राचार्य से देवी अंबिका के वचन सुने, 'त्रिभुवनपाल का पुत्र कुमारपाल उसके बाद राज्य संभालेगा' - तब उसका मन परिवर्तित हो गया।

त्रिभुवनपाल की पत्नी काश्मीरादेवी के पेट में एक उत्तम जीव आया तो उसके मन में अच्छी अच्छी इच्छाएँ जागने लगी, जैसे कि मैं जगत के सब जीवों को अभयदान दूँ! मैं मनुष्य को सब व्यसनों से छुडाऊँ! मैं खूब दान करूं! मैं परमात्मा के मंदिर बनवाऊँ वगैरह वगैरह।

नौ महिने पूर्ण होते ही काश्मीरादेवी ने एक सुन्दर और तन्दुरस्त पुत्र को जन्म दिया। उस समय आकाश में देववाणी हुई, 'यह बालक विशाल राज्य प्राप्त करेगा और धर्म का साम्राज्य स्थापित करेगा।'

नया जन्मा यह पुत्र सुन्दर था, सबको प्यारा लगे ऐसा और भाग्यशाली था। उसका नाम 'कुमारपाल' रखा।

माता ने पुत्र को गुणवान बनाने के लिए ठीक ठीक मेहनत ली। उसे व्यावहारिक शिक्षण के साथ साथ युद्धकला भी सीखायी गयी।

युवा अवस्था में आते ही मातापिता ने भोपलदेवी के साथ पुत्र की शादी की।

कुमारपाल मातापिता के साथ दधिस्थलि में रहते थे। जरूरी प्रसंग पर त्रिभुवनपाल पाटण आते-जाते रहते। एक बार त्रिभुवनपाल के साथ कुमारपाल भी पाटण गये। उन्होंने हेमचन्द्रसूरीजी की बड़ी प्रशंसा सुनी थी। उन्होंने उपाश्रय पहुँचकर दो हाथ जोड़कर सिर झुकाया और गुरुदेव की वंदना की। अपना अल्प परिचय दिया। गुरुदेव ने 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया।

कुमारपाल ने नम्रता से आचार्यश्री को पूछा, 'गुरुदेव! आज्ञा हो तो एक प्रश्न पूछना है।'

गुरुदेव ने सुख से पूछने के लिये कहा।

'गुरुदेव! सृष्टि में अनेक प्रकार के मनुष्य बसते हैं, उनके अलग अलग प्रकार के गुण होते हैं। प्रभु! उनमें श्रेष्ठ गुण कौनसा है?'

गुरुदेव ने कहा : 'सत्त्व श्रेष्ठ गुण है। जिस मनुष्य में सत्त्व होता है उसमें सब गुण आ जाते हैं।'

'इस सत्त्व गुण के बारे में मुझे विस्तार से समझाने की कृपा करें।' कुमारपाल ने बिनती की।

हेमचन्द्राचार्य समझाते हैं :

- सत्त्वशील पुरुष दु:ख में भी धर्म छोड़ता नहीं है।
- वह ली हुई प्रतिज्ञा का दृढ पालन करता है।
- वह दु:ख में हिंमत हारता नहीं है और निराश नहीं हो जाता।
- उसके लिये कोई काम असंभव नहीं है।
- वे कभी 'हाय हाय' या अरेरे ऐसे कायरतासूचक शब्द बोलते नहीं है।
- वर्षों तक दु:ख सहन करने का वह धीरज रखता हैं।
- वह राजा हो तो प्रजा की रक्षा के लिये लगातार प्रयत्न करता रहता है, जरूरत पड़ने पर अपना बलिदान भी दे देते हैं।'

इस प्रकार परोक्षरूप में आचार्यदेव ने कुमारपाल के भावि जीवन के बारे में निर्देश दिया और कहा, "देखना कुमार, तेरे सिर पर दु:ख का पहाड़ टूटने वाला है, तब तू हिम्मत हारना नहीं और तेरे 'सत्त्व' का परिचय कराना।"

कुमारपाल यह बोध सुनकर, नमस्कार करके अपने स्थान पर चल दिया।

हेमचन्द्रसूरीजी को खयाल आ गया था कि कुमारपाल सिद्धराज के मृत्यु बाद राजा बने, यह बात सिद्धराज को जरा भी जची नही है। और इसी कारण वह डंकोला राजा कुमारपाल को मार डालने का प्रयत्न अवश्य करेगा।

आखिर में बूढे होते जाते सिद्धराज ने कुमारपाल को मारने के लिए जाल बिछा दिया था। कुमारपाल भी यह बात समझता था। वह सावधान था। समय पहचान कर वतन छोड़ दिया और लुक-छिपकर घूमने लगा। कभी खाना मिलता है तो कभी भूखा भी रहता हैं। भटकते हुए कभी पानी की भी व्यवस्था नहीं हो पाती।

इस प्रकार वह एक बार खंभात आ पहुँचा। श्री हेमचन्द्राचार्य खंभात में है यह जानकर वह उपाश्रय में महाराजश्री की वंदना करने गया, वंदना की।

आचार्यश्रीने कुमारपाल को पहचान लिया। धर्मलाभ के आशीर्वाद दिये।

कुमारपाल ने कहा, 'हे आचार्यदेव! आप तो ज्ञानी है? राजा के घर में जन्म

लेने पर भी वन वन भटक रहा हूँ। मुझे यह कहें कि इस असह्य दुःख का अंत कब आयेगा? मेरे प्रारब्ध में सुख है या नहीं?'

आचार्यदेव ध्यानस्थ बने। उनको देवी अम्बिका के शब्द आये। उन्होंने आँखे खोलकर कुमारपाल को कहा, 'वत्स! तुझे थोड़े समय के बाद राज्य मिलेगा। तू इस गुजरात का राजा बनेगा।'

'कुमारपाल इस बात पर हँस पडा... उसने कहा, 'जिस प्रकार एक भिखारी से अधिक मेरी दशा खराब है, कभी दो-तीन दिन खाने के लिये अन्न नहीं मिलता - ऐसा मैं अभागी राजा बनूंगा? नहीं रे नहीं...?'

गुरुदेव ने कहा, 'कुमार! तेरी बात भी सच्ची है। ऐसी स्थिति में तुझे राजा बनने की बात सच्ची न लगे, परंतु मुझे तेरा भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल लगता है।'

उस समय महामंत्री उदयन उपाश्रय में आये। उसने गुरुदेव को वंदना की और पास में बैठा।

कुमार ने सोचा, 'ये योगी पुरुष हैं, उनका कथन गलत नहीं होगा, परंतु इतना तो पूछ लूं कि मुझे कब राज्य मिलेगा?'

उसने गुरुदेव को पूछा, 'हे योगीराज! क्या आप कह सकोगे कि किस वर्ष में, किस माह में और किस तिथि के दिन में राजा बनूंगा?'

गुरुदेव ने ध्यान धर कर जवाब दिया, 'वि. सं. ११९९ मागशीर्ष कृष्ण चौथ के दिन तूझे राजगद्दी मिलेगी।'

उन्होंने शिष्य से यह भविष्यकथन दो कागजों पर लिखवाया। एक कागज कुमारपाल को दिया और दूसरा कागज महामंत्री उदयन को दिया।

आचार्यदेव ने उदयन मंत्री को एक तरफ लेजाकर, कुमारपाल की कठिनाइयाँ समझायी और उसकी खबर लेते रहने के लिये समझाया और कहा, 'यह भविष्य का राजा है, इसके प्राणों की रक्षा करनी है। सिद्धराज उसे मारने के लिये प्रयत्नशील है। किसीको पता न चले उस प्रकार आपकी हवेली में उसे रखो।' आचार्यश्री की आज्ञानुसार वे कुमारपाल को अपने यहाँ ले गये। लम्बे समय के बाद कुमारपाल ने वहाँ स्वादिष्ट भोजन किया और थकान उतारने के लिए आराम से बारह घण्टे की नींद खींच डाली।

कुछ दिन शांति से गुजर गये। गुप्तचरों द्वारा सिद्धराज को पता चला कि कुमारपाल खंभात में हैं। उसने सैनिको की एक टुकडी कुमारपाल को ढूंढकर मार

डालने के खंभात भेजी।

उदयन मंत्री को पता चल गया कि सिद्धराज कुमारपाल को ढूंढकर मार डालना चाहता है और सैनिक खंभात आ पहुँचे हैं। उन्होंने कुमारपाल को हेमचन्द्राचार्य के उपाश्रय में भेजकर कुमारपाल को बचाने के लिये आचार्यश्री को कहा।

गुरुदेव ने कुमारपाल को तहखाने में पुस्तकों की पीछे छिपा दिया और थोड़ी सी भी आवाज न करने के लिये कहा।

सैनिक ढूंढते ढूंढते उपाश्रय पर आये और तुच्छता से आचार्यश्री को 'कुमारपाल यहीं है, दे दो' ऐसा रोब से कहा। आचार्यश्री ने कहा :

'यहाँ नहीं है, नहीं मानते हो तो देख लो सब जगह।' सैनिकों ने चारोंओर खोज की और वापिस लौट गये। इस प्रकार कुमारपाल एक धात से बच गये।

थोड़ी देर के बाद कुमारपाल को तहखाने से बाहर निकाला। कुमारपाल ने सैनिकों के साथ की सब बात सुनी थी। उसने गुरुदेव का उपकार माना और कहा कि कदापि आपका यह उपकार नहीं भूलूंगा, आज से मैं आपका दास हूँ। श्री हेमचन्द्राचार्य ने कहा, 'राज्य मिले तब जैन धर्म का प्रचार करना, भविष्य में असंख्य जीवों की तू रक्षा करेगा, इस लाभ का विचार करके यह चालाकी आजमायी थी।

वि.सं. ११९९ बैठते ही कुमारपाल पाटण पहुँच गया और अपनी बहिन प्रेमलदेवी के घर रहा। बहनोई कृष्णदेव ने उनको योग्य सम्मान के साथ रखा। महाराज सिद्धराज मृत्युशय्या पर थे तब कुमारपाल पाटण पहुंच गये थे। अब कोई भय नहीं है ऐसा कृष्णदेव ने कहा।

कुमारपाल के पाटण जाने के बाद सातवें दिन सिद्धराज की मृत्यु हुई और मागशीर्ष वदी चौथ के दिन सर्वानुमति से राजा कुमारपाल राजगद्दी पर बैठा।

कुमारपाल के राजा बनने की खबर सुनने के बाद हेमचन्द्राचार्य विहार करके खंभात से पाटण आये। महामंत्री उदयन को यह समाचार मिलते ही नगरजनों के साथ आचार्यदेव का भव्य स्वागत किया। आचार्यदेव ने कुमारपाल के समाचार उदयन मंत्री को पूछे। 'जिस जिसने कुमारपाल को भूतकाल में मदद की थी उन सबको योग्य पुरस्कार दिये हैं - ऐसा मंत्री ने कहा। मंत्री ने ऐसा भी कहा कि आपको खास याद करते हो ऐसा लगता नहीं है।

हेमचन्द्राचार्य ने उदयन मंत्री को कहा, 'आप कुमारपाल के पास जाओ और

कहो कि आज रात्रि को रानी के महल पर न जाये।' उदयन ने उस प्रकार कुमारपाल के पास जाकर कहा। कुमारपाल रानी के महल पर उस रात्रि को न गया। उस रात्रि को महल पर बीजली गिरी। महल जल गया और रानी भी मर गयी।

'सुबह महामंत्री ने ये समाचार सूनकर शीघ्र ही कुमारपाल को जाकर मिले। कुमारपाल ने आश्चर्यसहित पूछा, 'ऐसी अचूक भविष्यवाणी किसने की थी?'

'श्री हेमचन्द्राचार्य की यह भविष्यवाणी थी' – ऐसा जानकर कुमारपाल गद्‌गद् हो गया और तीन तीन बार जिसने मेरा प्राण बचाया वह कहाँ है?' ऐसा पूछने लगे। वे पाटण में ही है ऐसा जानकर कुमारपाल ने उनसे मिलने की आकांक्षा दर्शायी। मंत्री ने राजसभा में कुमारपाल को पधारने के लिए कहा, और हेमचन्द्राचार्य को वह वहाँ बुलवायेगा ऐसी व्यवस्था की।

आचार्यश्री उदयन मंत्री के साथ राजसभा में पधारे। कुमारपाल तथा अन्य अधिकारी उनका स्वागत करने दरवाजे पर खडे थे। कुमारपाल ने झुककर वंदना की और 'तीन तीन बार प्राण बचाने के एवज में यह पूरा राज्य आप स्वीकार करें' – ऐसा आग्रह हेमचन्द्राचार्य को करा।

हेमचन्द्राचार्य ने जैन साधू के आचार समझाये और कहा, 'हम ऐसा कुछ स्वीकार नहीं कर सकते, हाँ, यदि हो तो हम छोड़ सकते हैं अब यदि तुझे उपकार का बदला चुकाना है तो तेरा आत्महित सिद्ध कर ले, इस कारण तू जिनेश्वर धर्म को ग्रहण कर। तूने पहले भी वचन दिया था – इसलिये तेरा वचन पाल। तू वचन सच कर दिखा क्यों कि महापुरुषों के वचन मिथ्या नहीं होते।'

कुमारपाल ने कहा, 'आप कहेंगे उस अनुसार ही मैं करूगा। आपके सम्पर्क में लगातार रहकर मैं कुछ तत्त्व प्राप्ति कर सकूंगा। राजा एवं आचार्य के ये सम्बन्ध मृत्युपर्यंत सदैव अखण्ड बने रहे। एक बार कुमारपाल राजसभा में बैठे थे तब देवपत्तन से आये सोमनाथ महादेव के पुजारियों ने प्रवेश किया। महाराजा को प्रणाम करके अपना परिचय दिया तथा निवेदन किया, 'महाराज, देवपत्तन में समुद्र तट पर स्थित भगवान सोमनाथ का काष्ठ मंदिर जीर्ण हो चुका है, इसलिये इस मंदिर का जीर्णोद्धार करना अति आवश्यक है। आपको हमारी बिनती है कि इस मंदिर के जिर्णोद्धार का पुण्य आप प्राप्त करें।'

राजा कुमारपाल को यह सत्कार्य जचा। पांच अधिकारियों को मंदिर के जिर्णोद्धार का कार्य सौंपा। अल्प समय में ही पाषाण का मंदिर बनवाने का कार्य

शुरू हो गया परंतु मंदिर का कार्य राजा ने सोचा था उतनी तेजी से नहीं हो रहा था। इस कारण राजा अशांत था। उसने इस मंदिर का कार्य जल्दी पूर्ण करने का उपाय बताने के लिये आचार्यश्री को बिनती की। श्री हेमचन्द्राचार्य ने इसके लिये कोई व्रत लेने के लिये कहा और कहा, 'व्रतपालन से पुण्य बढ़ता है और कार्य जल्दी पूरा होता हैं।'

कुमारपाल ने प्रसन्न होकर व्रत लेने के लिये हाँ कही और योग्य लगे वह व्रत देने के लिए गुरुदेव को कहा।' आचार्यश्री ने मांसाहार व मदिरापान छोड देने के लिये कहा। राजा ने दो प्रतिज्ञाएँ ली।'

'मांसाहार जीवनपर्यंत नहीं करूंगा।'

'शराब जीवनपर्यंत नहीं पीऊँगा।'

गुरुदेव को संतोष हुआ, राजा को आनंद हुआ।

दो वर्ष में सोमनाथ मंदिर का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ। राजा ने वहाँ की यात्रा करने का निश्चय किया। आचार्यश्री को भी सोमनाथ के दर्शन करने के पधारने की प्रार्थना की। गुरुदेव ने कहा, 'श्री शत्रुंजय तथा गिरनार की यात्रा करके वे सीधे देवपत्तन आयेंगे।' राजा अपने रिसाले के साथ देवपत्तन गये और गुरुदेव शत्रुंजय एवं गिरनार की यात्रा करके देवपत्तन पहुँचे। राजा हर्षित हुआ और धामधूम से राजा रिसाले तथा गुरुदेव ने अपने शिष्यों के साथ मंदिर में प्रवेश किया।

बड़े भावपूर्वक सबने वंदना की, गुरुदेव ने दो हाथ जोड़कर शीश झुकाकर स्तुति की, 'जिनके रागद्वेष का नाश हो चुका है – वे ब्रह्मा हो, विष्णु हो या महादेव हो, उनकी मैं वंदना करता हूँ।'

स्तुति सुनकर राजा नाच उठा। राजा ने एक चित्त से ध्यान धरने के लिए गुरदेव को पूछा, 'ऐसा कौनसा धर्म है और ऐसे कौनसे देव हैं जो मुझे मोक्ष दिला सके।'

राजा की बात सुनकर गुरुदेव ने दो क्षण के लिए अपनी आँखे बंद की, मानों कुछ संकेत मिला। आँखे खोलकर उन्होंने राजा के सामने देखा और हाथ पकड़कर कुमारपाल को महादेव के गर्भद्वार में ले गया और कहा, 'देखो! मैं आपको इस देव के आपको प्रत्यक्ष दर्शन करा दूँ। वे देव जैसी कहे वैसी उपासना आप करें।'

राजा ने आश्चर्य से पूछा, 'क्या ऐसा हो सकता है?'

'हाँ अब मैं ध्यान धरता हूँ। इस धूपदानी में धूप डालते जाना। शंकर भगवान प्रगट होकर ना न कहे तब तक यह सुगंधी धूप डालते रहना।' और गर्भद्वार बंद

कर दिया।

गर्भद्वार बंद है। आचार्यश्री और कुमारपाल दोनों अंदर सोमनाथ महादेव सम्मुख खडे हैं। आचार्य ध्यानस्थ है और कुमारपाल धूपदानी में धूप डाल रहे हैं। धूप के धुएँ से गर्भगृह सम्पूर्ण भर चुका है, अंधेरा छा गया, घी के दीपक बुझ गये। धीरे धीरे शंकर भगवान के लिंग में से प्रकाश फूटने लगा। प्रकाश बढ़ता गया। उसमें से एक दिव्य आकृति प्रकट हुई। सुवर्ण जैसी उज्ज्वल काया, सिर पर जटा। जटा में से बहती गंगा और उपर चन्द्रकला। आहा! राजा ने अपना हाथ फिराकर निर्णय लिया कि यही देवता हैं और जमीन पर अपने पांच अंगो को छुआकर (पंचाग प्रणाम) किये और प्रार्थना की।

'हे जगदीश! आपके दर्शन से मैं पावन हुआ हूँ। मेरे इस उपकारी गुरुदेव के ध्यान से आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मेरी आत्मा हर्ष से उछल रही है।'

भगवान सोमनाथ की गंभीर ध्वनि मंदिर में गूंज उठी : 'कुमारपाल! मोक्ष देनेवाले धर्म की कामना हो तो साक्षात् परब्रह्म जैसे सूरीश्वर की सेवा कर। सर्व देवों के अवतार रूप, सर्वशास्त्रों के पारगामी, तीनों काल के स्वरूपों के ज्ञाता ऐसे हेमचन्द्रसूरी की हरेक आज्ञा का पालन करना, जिससे तेरी सर्व मनोकामना फलीभूत होगी।'

इतना कहकर शंकर स्वप्न की भाँति अदृश्य हो गये।

राजा आनंदविभोर हो गये। उन्होंने गुरुदेव को कहा, 'आपको तो ईश्वर वश है। आप ही मेरे देव हो। आप ही मेरे तात और मात हो। मेरे परम उद्धारक आप हो।' राजा हेमचन्द्राचार्य के चरणों में गिर पड़ा। यात्रा सफल हुई सब आनंदपूर्वक पाटण पधारे।

देवबोधि नामक एक संन्यासी पाटण में आये और लोगों को चमत्कार दिखाने लगे। चमत्कार देखकर लोगों को देवबोधि श्रेष्ठ और अद्‌भुत कलाकार लगा। पाटण में जगह जगह बातें होने लगी। कुमारपाल को भी इस चमत्कारिक संन्यासी के चमत्कार देखने की इच्छा हुई। कुमारपाल ने देवबोधि को राजसभा में बुलवाया। देवबोधि निपट नन्हें बालकों द्वारा पालकी उठवाकर, अंदर बैठकर राजसभा में आया।

राजा ने योग्य सत्कार किया। देवबोधि ने कुमारपाल को पूछा, 'अपना शैव धर्म छोड़कर इस जैन धर्म का स्वीकार क्यों किया है?' महाराजा ने बताया कि

'शैवधर्म अच्छा है परंतु उसमें हिंसा का आचरण होता है, जब कि जैन धर्म अहिंसा का उपदेश देता है इसलिये मैंने उस धर्म को स्वीकारा है।' कुमारपाल के पूर्वज वगैरह शैवधर्म का पालन करते थे और उनको प्रत्यक्ष दिखाने के लिये देवबोधि ने मंत्रबल से उसके पूर्वज मूलराज वगैरह को हाजिर किया। कुमारपाल ने उन सबको प्रणाम किया। तत्पश्चात् देवबोधि ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को बुलाया। यह कुमारपाल आश्चर्यचकित हो गया। देवों ने सब छोड़कर उनकी उपासना करने के लिये कुमार को कहा। और थोड़ी देर में ये देव तथा मूलराज वगैरह अदृश्य हो गये।

कुमारपाल सोच में पडा। इसमें सत्य क्या? एक तरफ देवपत्तन के सोमनाथ के वचन, दूसरी तरफ देवबोधि ने बताये देवों के वचन! उसका सिर घूमने लगा।

इस पूरी घटना के दौरान महामंत्री उदयन का पुत्र वाग्भट मंत्री कुमारपाल के साथ था। उसने श्रीहेमचन्द्राचार्य के पास जाकर सब हकीकत बतायी और शंका व्यक्त की, 'कुमारपाल शायद जैनधर्म छोड दे।'

हेमचन्द्राचार्य ने वाग्भट्ट को थोड़ी सी भी चिंता न करने के लिये कहा, और दूसरे दिन व्याख्यान के समय कुमारपाल को लेकर आने को कहा और बताया, 'कल व्याख्यान के समय ऐसा चमत्कार देखने मिलेगा कि उस योगी के दिखाये हुए चमत्कार मामूली लगेंगे।

दूसरे दिन व्याख्यान चल रहा है, राजा कुमारपाल, वाग्भट्ट और अनेक स्त्री पुरुष उपदेश सुनने में लीन बने हैं। और... आहा! एक के बाद एक पाट ऐसी सात पाट जिस पर गुरुदेव बैठे थे वह वहाँ से खिसक गयी। आचार्य बिलकुल ऊँचे बैठे हुए लोगों को दिखे, और व्याख्यान की वाग्धारा चालू रही। राजा कुमारपाल की आँखें यह देखकर फैल गयी। वे बोल उठे, 'अद्भुत-अद्भुत! योगशक्ति के दर्शन कुमारपाल को प्रत्यक्ष हुए।'

व्याख्यान के बाद श्री हेमचन्द्राचार्य ने कहा, 'चलो मेरे साथ सामनेवाले कमरे में।' श्री गुरुदेव, राजा तथा वाग्भट्ट तीनों कमरे में गये। कमरा बंद किया। गुरुदेव एक आसन पर बैठे, आँखे बंद की और ध्यान लगाया। कमरा प्रकाश से भर गया।

कुमारपाल तथा वाग्भट्ट ने प्रत्यक्ष ऋषभदेव से महावीर स्वामी तक के चौबीस तीर्थंकर प्रत्यक्ष समवसरण में बैठे हुए देखे।

तीर्थंकर उपदेश दे रहे थे। कुमारपाल ध्यान से सुन रहा था। 'कुमारपाल!

सोना, हीरा, मोती वगैरह द्रव्यों की परीक्षा करनेवाले कई होते हैं, परंतु धर्मतत्त्व का परीक्षक वीरला ही होता है! ऐसा वीरला तू है। तुने हिंसामय धर्म का त्याग करके दयामय अहिंसा धर्म स्वीकारा है। याद रख राजन्! तेरी समृद्धि वृक्ष के पुष्प समान है। आगे तुझे उसके मोक्षरूपी फल प्राप्त होनेवाले हैं। वाकई में तेरा महान भाग्य है कि तुझे ऐसे ज्ञानी हेमचन्द्रसूरी मिले हैं। तू उनकी आज्ञा मानकर चलना।'

तीर्थंकरों की वाणी बंद हो गयी। वे अदृश्य हो गये।

तत्पश्चात् कुमारपाल के पूर्वज राजा प्रगट हुए। उन्होंने कुमारपाल को गले लगाया। गुरुदेव की वन्दना की और कुमारपाल को कहने लगे :

'वत्स, कुमारपाल! गलत धर्म छोड़कर सही धर्म तुने स्वीकारा है। ऐसा पुत्र होने के लिये हम अपने आपको धन्य मानते हैं। जिनधर्म ही मुक्ति देने के लिये समर्थ है। इसलिये तेरे चंचल चित्त को स्थिर कर और तेरे परम भाग्य से प्राप्त इन गुरुदेव की सेवा कर और उनकी आज्ञा का पालन कर।'

इस प्रकार कुमारपाल को सलाह देकर पूर्वज हवा में विलीन हो गये। कुमारपाल स्तब्ध हो गया। हेमचन्द्राचार्य ने उसे समझाया, देवबोधि के पास तो ऐसी ही एक कला है जब कि मेरे पास ऐसी सात कलाएँ हैं। सब इन्द्रजाल है। हम दोनों ने तुझे दिखाया वह तो स्वप्न समान है। सच तो सोमनाथ महादेव ने जो जैनधर्म पालन करने का कहा वही है।

राजा के मन का समाधान हुआ। उसने हेमचन्द्राचार्य को वंदन किया और एक नया उपकार करने के लिए उनका आभार माना।

एक दिन कुमारपाल श्री हेमचन्द्राचार्य के पास बैठे हैं, भूतकाल में वे इधर-उधर ठोकरें खाते रहें उसकी बातें कर रहे हैं और कहते हैं : 'एक दिन सिद्धराज के भय से छिपता हुआ अरवल्ली के पहाड़ पर एक वृक्ष के नीचे बैठा था। वहाँ एक चूहें को बील में से बाहर निकलता देखा। उसके मुँह में चांदी का सिक्का था। एक जगह पेड़ के नीचे रखा और बील में गया और दूसरा सिक्का लेकर बाहर आया। इस प्रकार वह बत्तीस सिक्के बाहर लाया। मुझे विचार आया कि चूहा इन सिक्कों का क्या करेगा? इसलिये जब चूहा बील में गया तो सिक्के मैंने ले लिये। जब चूहा बाहर आया, सिक्के न देखे तो चूहा अपना सिर पत्थर पर पटकने लगा। इस प्रकार अपना सिर पत्थर पर टकराकर चूहा मर गया। मुझे बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि इस तिर्यंच के जीव को भी लक्ष्मी का मोह है। इस पाप का प्रायश्चित मुझे दो।'

गुरुदेव ने कहा, 'कुमारपाल! जिस स्थान पर चूहे ने मृत्यु पायी वहाँ एक भव्य मंदिर बनवा। वहीं तेरा प्रायश्चित है।'

कुमारपाल ने वहाँ एक भव्य मंदिर बंधवाया। आज भी तारंगा के पहाड पर वह मंदिर खडा है। उसमें भगवान अजितनाथ की भव्य प्रतिमा बिराजमान है।

गुरुदेव हेमचन्द्राचार्य के उपदेश अनुसार इस प्रकार कई जैनमंदिर कुमारपाल ने बनवाये। हरेक मंदिर के समीप एक एक बगीचा भी बनवाया ताकि इन मंदिरो में सदैव पुष्पपूजा हो सके। इन बगीचों में जो भी फूल लगते वे सब जिनेश्वर भगवान की पूजा में ही प्रयुक्त होते थे।

भरुच में भी एक ऐसा मंदिर 'समडी-विहार' था जो जीर्ण हो चुका था। भरुच के दण्डनायक श्री आम्रभट्ट ने इस मंदिर को नये सिरे से बनवाना शुरू किया। वहाँ की देवी नर्मदा ने विघ्न डाला। नीव खोदी गई तो देवी नर्मदा ने मजदूरो को उछाल दिया और प्रकट होकर कहा, 'यह नीव अधिक गहरी खोदकर मेरा अपमान किया है। इसके लिये मुझे एक बत्तीस लक्षणवाले स्त्री-पुरुष का बलिदान दे।' देवी के बलिदान के लिये आम्रभट्ट और उसकी पत्नी अपनी बलि देने के लिये तैयार हुए। नवकार मंत्र का ध्यान धरकर दोनों खड्डे में एकसाथ कूद पड़े। यह देखकर नर्मदा ने प्रकट होकर आम्रभट्ट और उसकी पत्नी का मनुष्यप्रेम और प्रभुभक्ति देखकर नया जीवन दिया। सब मजदूर और आम्रभट्ट तथा उसकी पत्नी अच्छे-भले होकर खड्डे में से बाहर आये।

दण्डनायक आम्रभट्ट ने देवी को उत्तम फल व नैवेद्य चढ़ाकर उनकी पूजा की और मंदिर अन्य कोई उपद्रव बगैर बना। गुरु श्रीहेमचन्द्राचार्य और कुमारपाल ने भी भरुच आकर भगवान मुनि सुव्रतस्वामी की प्रतिष्ठा करवायी।

तत्पश्चात् आम्रभट्ट कड़ी बीमारी में फँस गये। दण्डनायक की वृद्ध माता ने देवी पद्मावती की आराधना की। पद्मावती प्रकट हुई और कहा :

'गुरुदेव हेमचन्द्रसूरी ही इनको अच्छा कर सकते हैं। यह दैवी उपद्रव है, उन्हें गुरुदेव ही शांत कर सकेंगे।'

माता ने दो पुरुषों को पाटण भेजकर गुरुदेव का यह संदेश भेजा। गुरुदेव गंभीर विचार करके शिष्य यशचन्द्र को साथ लेकर आकाश मार्ग से प्रयाण करके अल्प समय में ही भरुच पहुँच गये और सैंधवीदेवी जिसने यह उपद्रव किया था उसे योग द्वारा श्री यशचन्द्र ने वश करके श्री आम्रभट्ट को निरोगी बनाया।

श्री हेमचन्द्रसूरीजी ने कुमारपाल को शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा का फल बताया। कुमारपाल ने प्रसन्न होकर यात्रा करने की हाँ कही। बड़े संघ के साथ पैदल यात्रा जाने के लिए तेजी से तैयारियां होने लगी मगर न सोचा हुआ एक विघ्न आया।

गुप्तचरों ने आकर राजा कुमारपाल को कहा : 'राजा कर्ण विशाल सैन्य के साथ गुजरात की तरफ चला आ रहा है। तीन दिन में वह पाटण की सीमा पर पहुँचेगा। राजा को कर्ण का कोई भय न था। ऐसे कई कर्ण आवे तो भी मुकाबला कर सके ऐसा था; परंतु उसे चिंता हुई तीर्थयात्रा की।

कुमारपाल यात्रा पर निकल जाय तो उसकी अनुपस्थित का लाभ लेने के लिये राजा कर्ण ने आक्रमण की योजना बनायी थी।

कुमारपाल ने गुरुदेव का ही मार्गदर्शन लेने का निर्णय लिया, क्यों कि तीर्थ यात्रा करनी ही थी। और तीर्थयात्रा के लिए निकले तो राजा कर्ण - गुजरात जीत ले।

वाग्भट्ट मंत्री के साथ कुमारपाल ने उपाश्रय पर आकर इस बारे में सलाह माँगी।

सूरीजी ने थोड़ी देर आँखे बंद करके ध्यान धरा और कुमारपाल को कहा, 'चिंता छोड़कर तीर्थयात्रा के लिए समयानुसार निकलने की तैयारी करो। कर्ण की चिंता छोड़ दो।'

राजा और मंत्री महल में तो आये परंतु समझ न सके कि किस प्रकार सूरीजी यह प्रश्न हल करेंगे।

कुमारपाल सोचता रहा। सूरीजी की आज्ञानुसार धर्मध्यान में मग्न था। सुबह होते ही महल में उसे अपने गुप्तचर ने आकर समाचार दिया कि 'राजा कर्णदेव तेजी से पाटण की तरफ बढ़ रहा था। वह हाथी पर बैठा हुआ था। रात्री होने से कर्ण को हलका सा नींद का झोंका आ गया। इतने में उसके गले का महामूल्यवान हार एक पेड़ की डाली में फँस गया, हाथी तीव्र वेग से चल रहा था। इस कारण गले का हार उसका फांसी का फंदा बन गया और थोडी ही क्षणों में राजा का शव पेड के साथ लटकता हुआ सैन्य को दिखने लगा। सैन्य हताश हो गया और आया था उसी रास्ते वापिस लौट गया।

यह समाचार सुनकर कुमारपाल आश्चर्यमुग्ध हो गया। श्री हेमचन्द्राचार्य की अथाग कृपा का परिणाम वह समझ सका। तय किये हुए मुहूर्त पर संघ निकला।

शत्रुंजय और गिरनार की यात्रा करके कुमारपाल और संघ के हजारों लोग धन्य बन गये।

जिस प्रकार कुमारपाल के हृदय में हेमचन्द्रसूरी बसे हुए थे वैसे ही हेमचन्द्रसूरी के मन में भी कुमारपाल बसे थे।

धर्म के महान कार्य कुमारपाल करता था। उसके मातहत अठ्ठारह देश में अहिंसा फैला कर उसने हजारों जिन मंदिर बनवाये। अनेक ज्ञान भण्डार बनवायें और लाखों दुःखी साधर्मिक जैनों को सुखी बनाया।

ऐसे सत्कार्यों के कारण राज्य की तिजोरी का तल दिखने लगा था। कुमारपाल ने इस बारे में सूरीजी को प्रार्थना भी की, 'यदि सुवर्णसिद्धि प्राप्त हो जाय तो अनेक साधर्मिक दीन-दुःखी वगैरह का उद्धार कर सके। इसका खयाल रखकर आचार्यश्री सोच रहे थे कि कुमारपाल के पास यदि सुवर्णसिद्धि होगी तो परोपकार के कार्य सही तरीके से करा करेगा। हेमचन्द्राचार्य के पास कई योगशक्तियाँ थी। वे आकाश में उड सकते थे और देव-देवीयों के उपद्रव शान्त कर सकते थे परंतु उनके पास सुवर्ण सिद्धि विद्या न थी। एक बार अपने पूज्यपाद गुरुदेव श्री देवचन्द्रसूरीजी को लोहे के टुकडे को किसी बेल के रस में डूबोकर सुवर्ण बनाया था वह बात उनके मनमें घूम रही थी। यदि गुरुदेव कृपा करके आज यह सुवर्णसिद्धि विद्या कुमारपाल को दे तो कुमारपाल और बड़े सत्कार्य कर सकता है।

आचार्यश्री ने वाग्भट्ट को गुरुदेव श्री देवचन्द्रसूरी के पास भेजा और कहलवाया कि 'किसी उपकारी कार्य के लिये आप पाटण पधारें। हेमचन्द्राचार्यभी आपके दर्शन-वंदना करना चाह रहे हैं।' गुरुदेव ने परमार्थ के कार्य के लिये पाटण आने के लिए हामी भरी और प्रखर विहार करके पाटण पधारे।

सकल पाटण की जनता उनका स्वागत करने के लिये गाँव के दरवाजे पर इकट्ठी हुई थी। परंतु गुरुदेव तो अन्य दरवाजे से जल्दी उपाश्रय में पहुँच गये थे। उनको जाहिर में दिखना और मानसम्मान पसन्द न थे।

हेमचन्द्राचार्य ने कुमारपाल के पास आदमी दौडाया और कहलवाया कि गुरुदेव उपाश्रय में आ पहुँचे हैं। सब उपाश्रय में व्याख्यान के लिए आ जाय।

व्याख्यान के पश्चात् गुरुदेव ने हेमचन्द्राचार्य को पूछा, 'संघ का क्या कार्य है? कहो।'

व्याख्यान से उठने बाद एक परदे की ओट में गुरु देवचन्द्रसूरी, हेमचन्द्राचार्य

और कुमारपाल बैठे। हेमचन्द्राचार्य ने गुरुदेव को कहा, 'इस परमार्हत राजा कुमारपाल ने अपने देश में से हिंसा को देशनिकाला दिया है। हजारों मंदिर बनवाकर अपूर्व पुण्योपार्जन किया है। अब यदि उसे सुवर्णसिद्धि मिल जावे तो दुनिया में वह किसी मनुष्य को दुःखी नहीं रहने देगा। गुरुदेव आपके पास वह सुवर्णसिद्धि है। मैं जब छोटा था, सोमचन्द्रमुनि था तब आपने मेरे आग्रह से लोहे के टुकडे को सोने का टुकडा कर दिखाया था। कृपा करके इस कुमारपाल को वह सुवर्ण सिद्धि दीजिये - ऐसी मेरी बिनती है।'

शांति से बात सुनने के बाद गुरुदेव ने कुमारपाल को कहा, 'राजन! तूने हिंसा का निवारण और जिन मंदिरों का सर्जन यह दो श्रेष्ठ सुवर्णसिद्धियाँ प्राप्त की है।' कुमारपाल गद्‌गद् हो गया और गुरु के चरण में सिर झुकाकर वंदना की।

हेमचन्द्राचार्य के सामने देखकर गुरुजी ने कहा, 'कुमारपाल के भाग्य में नहीं है इसलिये राजा को या तुझे यह सिद्धि नहीं दूंगा। भाग्य के बिना उत्तम चीजें मनुष्य के पास टिकती नहीं है।'

ऐसा कहकर देवचंद्रसूरी खड़े हो गये और हेमचन्द्राचार्य को कहा, 'ऐसे कार्य के लिए मुझे यहाँ मत बुलाना। मेरी आत्मसाधना उलझ जाती है।' और गुरुदेव खंभात की तरफ विहार कर गये।

श्री हेमचन्द्राचार्य को अपना अंत समय नजदीक दीख रहा था। उन्होंने भाविकों को बुलवाया। संघ के साथ क्षमापना करके सबको अंतिम धर्मोपदेश दिया।

कुमारपाल भी आ पहुँचे थे। उन्होंने गुरुदेव को वन्दना करके कहा, 'गुरुदेव! आपके बगैर मुझे धर्म कौन प्राप्त करवायेगा?' हेमचन्द्राचार्य ने कहा, 'वत्स! कुछ समय के बाद तेरी भी मृत्यु हो जायेगी। परंतु तुने धर्म पाया ही है। तीसरे भव तूं तो मोक्ष पायेगा।'

गुरुदेव हेमचन्द्रसूरी आँखे बंद करके पद्मासन पर बैठ गये। परमात्म ध्यान में निमग्न हुए और कुछ ही देर में उन्होंने प्राण त्याग दिये।

इस शोक के समय में भी आनंदलहरी कुमारपाल के मन में उठी। तीसरे भव में मोक्ष जानकर वे आनंद से नाच उठे।

●

९२ श्री पादलिप्ताचार्य

अयोध्या नगरी में पडीमा श्राविका के पुत्र ने आठ वर्ष की उम्र में नागहस्तीसूरी से दीक्षा ली थी। एक बार एक शिष्य किसी श्रावक के घर से चावल का धोवन गोचरी में लाया और गुरु को दिखाया। गुरु ने कहा, 'तूं भले ही ले आया मगर इसकी आलोयणा जानता है?' यहाँ पर गुरु का पूछने का भाव यह था कि यह धोवन कई बार सचित होता है और कई बार अचित्त होता है इसलिये यह धोवन विचार करके लाया है न? यदि विचारे बिना लाया हो तो उसकी आलोयणा लेनी पडेगी। यहाँ आलोयणा एक प्रकार की शिक्षा के अर्थ में गुरु ने पूछा, पर शिष्य तो व्याकरण के हिसाब से सोचने लगा, इसलिये आलोयणा एक नाम है अथवा विचारने की क्रिया है, इसलिये गुरु पूछ रहे हैं कि यह धोवन सोच कर लिया है या नहीं? इसलिये उसने जवाब दिया, 'हा महाराज! लाल कमल के पत्र जैसे जिसके नेत्र हैं, प्रफुल्लित पुष्प कलियाँ जैसी जिसकी दंत पंक्तियाँ हैं, ऐसी नवपरिणीत युवा स्त्री ने, नये धान के छड़े हुए चावल का जमाया धोवन बड़े हर्षपूर्वक दिया है।' ऐसा शृंगारिक जवाब सुनकर गुरु कोपायमान हो गये, वे शीघ्र बोल उठे, "जा जा 'पलीत' (पाप से लिप्त)।" तब उसने गुरु के समीप जाकर कहा, "महाराज! आपने मुझे जो आशीर्वाद दिया उसमें एक अक्षर और एक काना (चरण) बढा दीजिये न! जिससे मैं 'पायलित्त' बन जाऊँ (पायलित याने पैर में लेप करने से ऊडने की शक्ति आवे ऐसा)।" गुरु महाराजा इस शिष्य की बुद्धि देखकर नाराज होने के बजाय उस पर प्रसन्न हुए और उसे वह विद्या दी। इतना ही नहीं अंत में उसकी योग्यता देखकर उसका नाम 'पादलिप्ताचार्य' स्थापित करके आचार्य पद भी दिया।

पादलिप्ताचार्य गुरुकृपा से महाविचक्षण हुए और अनुक्रम से विहार करके खेडा नगर आये। वहाँ (१) जीवाजीवोत्पत्ति प्राभृत, (२) विद्या प्राभृत, (३) सिद्ध प्राभृत, (४) निमित्त प्राभृत - ऐसी चार सिद्ध विद्याएँ प्राप्त की। इससे कई वस्तुओं का योग मिलाकर पाँव पर लेप करने से आकाश में ऊडने की शक्ति उन्होंने प्राप्त की जिससे वे रोजाना पांचों तीर्थ की यात्रा करके आने

के बाद ही आहार-पानी करते। ऐसी विद्याओं से उनकी व जैनशासन की बड़ी उन्नति होने लगी और जिससे वे एक बड़े सिद्ध प्रभावक गिने जाते थे।

विचरते विचरते पादलिप्तसूरी ढाका में पधारे। वहाँ नागार्जुन नामक योगी ने अपने कलाकौशल्य से कई लोगों को मोहित किया था। नागार्जुन योगी आकाशगामीनि विद्या सीखने के लिए कपट से उनका श्रावक बना। वह हररोज वंदन करने के बहाने पैरों का स्पर्श करके सूंघ कर एक एक औषधि पहचान रहा था। इस उसने एकसौं सात औषधियां उसने पहचान ली। वह उनका मिश्रण करके पैर में लेप करके थोड़ा उडता लेकिन मूर्गे की तरह वापिस जमीन पर गिर जाता। रोजाना एक-दो बार उड-उडकर गिर जाता जिससे उसके पैर व घुटने पर कई घाव पड़े। यह देखकर पादलिप्तसूरी ने जब उसको पूछा तब उसने सच बात बता दी। उसकी बुद्धि देखकर गुरु उस पर बड़े प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् उसको सच्चा श्रावक बनाकर कहा, 'तुने जो एकसौं सात औषधि मुझ से छिपकर सीखी वह तो सब सही और बराबर है लेकिन सब सामग्री एकत्र करके साठी चावल के धोवन में मिलाकर पैर पर लेप करे तो ठीक तरह से उडा जा सकता है। यह बात उसने बराबर समझकर उस अनुसार किया और वह आकाशगामीनी विद्या सीख गया।

यह सीखने के बाद नागार्जुन को स्वर्णसिद्धि साधने की इच्छा हुई जिससे उसके पीछे पड कर वह भी प्राप्त कर ली। इस मिश्रण के बावन तोले सिर्फ एक रती पत्थर या लोहें पर गिरते ही सोना बन जावे ऐसे कोटी वैद्य रस की एक बोटल तैयार करके अपने शिष्य के साथ अपने गुरु श्री पादलिप्ताचार्य को उपहार स्वरूप भेजी। गुरु महाराज ने बोटल हाथ में लेकर कहा, 'हमें तो सुवर्ण या कंकर दोनों ही समान है। इसलिये हमें इसकी कोई जरूरत नहीं है। यह तो अनर्थ का हेतु है इसलिये हम इसे रखनेवाले नहीं है। हमें यह शीशा भेजा ही क्यों? ऐसा कहकर उस मिश्रण को राख के कुण्ड में फेंक दिया और खाली हुए उस शीशे में अपना पेशाब भर कर नाराजगी दिखाते हुए भेज दिया। उस शिष्य ने नागार्जुन के पास जाकर घटना कह सुनाई। इससे नागार्जुन को बड़ा गुस्सा आया और बोला, 'अरे! गुरु इतने अधिक अविवेकी है कि कोटि वेध रस को अपने पेशाब के बराबर माना।' ऐसा कहकर वह

शीशा एक पत्थर की शिला पर पछाड़ा, शिला जो पत्थर की थी तो भी पेशाब की महिमा से सुवर्ण शिला बन गयी। यह देखकर नागार्जुन विस्मित होकर लज्जित होकर बोला :

'मैंने तो मेहनत से क्लेश सहन करके कोटि वेध रस बनाया हुआ था वह अर्थात् वैसा कोटी वेध रस तो उनके शरीर से उत्पन्न हुए पेशाब में भी स्वभाव से ही रहा है। इसलिए धन्य है उनको।'

तत्पश्चात् नागार्जुन ने अपना अभिमान छोड़कर पादलिप्ताचार्य को कल्पवृक्ष के समान मानकर उनकी सेवा में आकर रहा।

एक बार शालिवाहन राजा के दरबार में चार बड़े पण्डित एक एक लाख श्लोक के चार बड़े पुस्तक लेकर आये। राजा को इन पुस्तकों को पढ़ने के लिये कहा। राजा ने कहा, 'इतने बड़े पुस्तक पढ़ने की फुर्सत नहीं है। पण्डितों ने उनका सारांश छोटे पुस्तकों में करके राजा को पढने के लिये दिया। राजा ने उसे भी पढ़ने की फुर्सत नहीं है ऐसा कहा। इससे पण्डितों ने एक ही श्लोक में सारांश प्रस्तुत किया। यह सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। उसमें आत्रेय नामक पण्डित ने पूरे वैदकशास्त्र का सार एक ही पाद में सुनाया, ''जीर्णे भोजन मात्रेय:'' - याने भोजन पचने के बाद ही दूसरा भोजन करना - ऐसा वैदक शास्त्र का स्पष्ट मत है। दूसरे कपिल मुनि ने कहा ''कपिल: प्राणी दया'' - प्राणी पर दया करने से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। तीसरे बृहस्पति ने नीति शास्त्र का सार कह सुनाया कि 'बृहस्पति विश्वास:,' किसी का भी विश्वास रखना नहीं। चौथे पंचाल नामक पण्डित ने कहा कि 'पंचाल: स्त्रीषु मार्दवं' इसमें कामशास्त्र सार है कि स्त्री के साथ कोमलता रखनी - इन चारों पण्डितों की पण्डिताई देखकर उन्होंने बड़ा अच्छा सत्कार किया। इतना ही नहीं राजा उनकी पण्डिताई मे इतना लीन हो गया कि बात बात में सभा के बीच या जहाँ तहाँ उनकी ही प्रशंसा करता रहता था। इससे राजा की भोगवती रानी एक बार चीढ गयी और नाराज होते हुए बोली : 'वादी रूप हाथी मद में आकर भले ही गर्जना करे, मगर पादलिप्तसूरी रूप सिंह की आवाज़ जब सूनेंगे तब शीघ्र उन्हें अपना मद छोड़कर भाग जाना पड़ेगा।'

पादलिप्ताचार्य की इतनी प्रशंसा सुनकर राजा ने शीघ्र ही अपनी ओर से उन्हें आमंत्रण देने के लिये दीवान को भेजा राजा के आमंत्रण को मानकर

पादलिप्ताचार्य भी वल्लभी के नज़दीक आ पहुँचे। तब वहाँ के कई पण्डितों ने मिलकर उनके पांडित्य की परीक्षा करने के लिये घी का एक थाल भरकर उनके सामने भेजा। पादलिप्ताचार्य ने विचार करके उस थाल में एक सुई चुभा कर थाल वापस भेजा। यह बात राजा को मालूम हुई तब पण्डितों को बुलाकर पूछा, 'आपने क्या गुप्त समस्या की?' तब पण्डितों ने समझाया कि 'घी की भाँति यह नगर पण्डितों से भरपूर है। इसलिये सोच समझकर शक्ति हो तो ही इस नगर में पधारना।' आचार्य ने सुई चुभोकर बताया कि तीक्ष्णता से जिस प्रकार यह सूई - इस घी में घुस जाती हैं उस प्रकार इस नगर के पण्डितों की पंक्ति में घुल-मिल जाऊँगा पर वहाँ से किसी प्रकार से पीछे नहीं हटूंगा।'

ओर पण्डितों ने कहा, यह देखते हुए लगता है कि आचार्य सचमुच विचक्षण हैं, इसलिये उनको हमें मान देना योग्य है।

तत्पश्चात् पण्डितों सहितों राजा ने उनका बडे ठाठ से नगरप्रवेश कराया। पाँचसौं पण्डित सहित राजा हररोज उनके व्याख्यान में आने लगा। उनके पांडित्य तथा व्याख्यानकला से पंण्डित तथा राजा एवं वहाँ की प्रजा बड़ी ही विस्मित हुई। इतना ही नहीं परंतु आचार्य महाराज ने वहाँ 'निर्वाणकलिका' और 'प्रश्न प्रकाशादि' ग्रंथ नये रचकर सुनाये। जिससे कई पण्डित तथा प्रजा सहित राजा भी जैन बने। ऐसी जैन शासन की बड़ी प्रशंसा कराकर पादलिप्ताचार्य ने श्री शत्रुंजय पर्वत पर जाकर यात्रा की और बत्तीस उपवास अनशनपूर्वक करके उनकी आत्मा ने स्वर्ग प्रयाण किया।

●

● अतिका भला न बोलना, अतिका भला न चुप।
अतिका भला न बरसना, अतिका भला न धूप॥

९३ पद्म शेखरराय

पृथ्वीपुर में पद्मशेखर नामक राजा राज्य करता था। वह धर्म का रागी था। वह जब राजसभा में आकर बैठता तब सभा समक्ष जैनगुरु के गुणों का वर्णन करते हुए इतनी अच्छी तरह समझाता था कि वह सुनकर प्राणियों के हृदय में उन पर बहुमान और आदर हुए बिना रहता ही नहीं था। जैसे कि 'प्रमाद में पड़े हुए अन्य को अटकाये एवं स्वयं भी पापरहित मार्ग पर चले। मोक्षार्थी प्राणीयों को भी तत्त्वग्रहण कराये और सर्व का भला करे - ऐसा जो होवे उसे सद्गुरु कहते हैं।'

और 'कोई वंदना करे तो प्रसन्न न होवे, कोई हेलना करे उससे वे नाराज न होवें। चित्त को दमन करके धीर वीर होकर चले। राग और द्वेष का जिसने नाश कर दिया है। ऐसे धीर मुनि होते हैं।' और गुरु दो प्रकार के बताये हैं : 'तपोवउत्ते और नाणोवउत्ते। तपोवउत्ते वे तप से तपयुक्त होते हैं। वे अपनी आत्मा को तारते हैं।' जबकि नाणोवट्ठते अर्थात् ज्ञान का उपयोगवाले गुरु जहाज के समान होते हैं - सो वे अपनी ओर पर की आत्मा को तारते है।' इस प्रकार गुरु के गुणों का हररोज वर्णन करके उन्होंने कई जैन धर्मी बनाये, परंतु उसी नगर में एक जय नामक बनिया नास्तिक मतवाला था। वह लोगों को ऐसा उपदेश करता था कि इन्द्रिय अपने अपने विषय में प्रवर्तती हैं, उन्हें रोके रखनी ऐसा तो संभव हैं ही नहीं। इसलिये तपश्चर्या द्वारा शरीर का शोषण करना केवल मूर्ख का ही काम है। तप करने से परलोक में सुख मिलेगा ऐसा लोग कहते हैं परंतु स्वर्ग है या नहीं यह कौन जानता है?'

जिस प्रकार राजा पद्मशेखर लोगों को धर्म की और मोड़ रहा था उस प्रकार यह जय वणिक लोगों को भरमाकर पाप मार्ग की ओर मोड़ रहा था। वह कहता था कि तप करके इस समय तो दुःखी ही होना है। मरने के बाद सुख मिलेगा वह मूर्ख लोगों की मान्यता है। इसलिये इसी जन्म में खानपान करके मनमाना सुख भोग लेना चाहिये, वगैरह।

पद्मशेखर राजा ने इस वणिक की कार्यशैली पहचानी। उसको धर्ममार्ग पर मोड़ने के लिये एक योजना बनायी। एक लाख सुवर्ण मुद्राओं का एक

कीमती हार उस जय बनिये के घर में उसके निजी आभूषण रखने के संदूक में रखवा दिया और नगर में ढिंढोरा पीटवाया कि राजा का एक लाख की लागत का हार खो गया है। वह जिसके पास हो वह तुरंत राजदरबार में दे जाये। उसे निरपराधी मानकर हार लेकर छोड़ दिया जायेगा। आठ दिन में यदि हार वापिस दरबार में नहीं आया तो हरेक के घर की तलाशी ली जायेगी और जिसके वहाँ से वह मिलेगा उसे चोर मानकर कड़ां दण्ड दिया जायेगा। परंतु कोई वह हार नहीं दे गया। उससे राजा ने नगर के सब घर की तलाशी लेने का हुक्म मिला। तलाशी लेते समय वह हार जय बनिये के यहाँ से मिला। इस कारण राजसेवकों ने तुरंत ही जय सेठ को बांधकर राजा के पास लाकर खड़ा कर दिया। जब उसे रंगेहाथ पकड़ा है तो उसे मार ही डालना चाहिये - ऐसा राजा ने फरमाया। तब उसके रिश्तेदार राजा के पास आकर गिडगिडाने लगे। राजा ने उनको पूछा, 'प्रत्यक्ष प्रमाण मिलने पर भी आप उसे छोड देने के लिये क्यों कहते हो? ऐसा कैसे हो सकता है? परंतु जब आप उसके लिए इतना गिडगिडा रहे हो तो मैं कहूँ वैसा वह करेगा तो उसे जरूर छोड़ दिया जायेगा।' तब रिश्तेदार बोल उठे कि 'आप कहो वैसा वह करने के लिये तैयार है।'

तब राजा ने कहा, 'तेल से भरा एक बर्तन उसके हाथ में दिया जाय, वह लेकर पूरे नगर के चौरासी चौक घूम कर आये मगर उसमें से एक भी तेल का बिन्दु जमीन पर गिरने न दे और जैसा भर कर दिया हो वैसा ही वह बर्तन यदि लाकर मुझे देगा तो जरूर उसे छोड दूंगा। परंतु यदि उसमें से एक भी बूंद जमीन पर गिरा तो तुरंत मेरे नौकर उसका सिर उडा डालेंगे। ऐसा करना उसे कबूल है?' मृत्यु के भय से उसने कहे अनुसार करना स्वीकार किया। और जब वह तेल का पात्र हाथ में लेकर घूमने निकला तो राजा ने पूरे नगर के लोगों को ऐसा हुक्म दिया कि जगह जगह पर नृत्यांगना अच्छे आभूषण पहनकर नृत्य करे - गणिकाएँ उत्तम शृंगार सजकर सर्व इन्द्रियों को सुखदायी हो वैसे नाटक-चेष्टा और गान चौरे - चौहट्टे पर इसके आगमन समय पर करे। इस प्रकार नाटक, नृत्यगान, हावभाव वगैरह दिल लुभानेवाले कार्यक्रम उसके निकलने के मार्ग पर होने लगे। जय सेठ इन सब विषयों में रसिक था। जानता था कि यदि इस पात्र में से एक बूंद भी जमीन पर

गिरेगी तो राजसेवक जो नंगी तलवार के साथ चल रहे हैं वे सिर काट डालेंगे। मरण भय के कारण उन सब आकर्षणों की ओर नजर न डालकर सब जगह घूम कर राजा के पास आया। उसने एक बूंद भी गिराये बगैर का तेल से भरा पात्र राजा को थमाया तब राजा ने हँसकर उसको कहा कि, 'तूं तो कहता है कि यह इन्द्रियाँ और मन अत्यंत चपल होने के कारण किसीसे रूक सकते नहीं हैं। यदि ऐसा है तो तू तेरे मन और इन्द्रियों को किस प्रकार रोक सका?' जय ने जवाब दिया कि महाराज! मरण के भय से मैंने मन और इन्द्रियाँ स्वाधीन रखी थी' तब राजा ने कहा, 'जब एक बार के मरण भय को देखकर तूने तेरा प्रमाद अटकाया, जिससे तूं इन्द्रियाँ और मन को काबू में रख सका; तो अनंता भव के जन्ममरणों के भय को देखकर जैन मुनि अपनी इन्द्रियाँ व मन अपने वश में रखते हैं, उसमें क्या आश्चर्य! जो कहता हूँ वह ध्यान देकर सुन।'

"यदि इन्द्रियों को वश में न रखी हो तो वह दुःख देनेवाली होती है, इसलिये यदि दुःख से दूर रहना हो तो सब इन्द्रियों को अपने स्वाधीन रखो। और राग एवं द्वेष पर विजय पायी तो इन्द्रियों पर विजय मानी जायेगी सो हितकारक कार्य में इन्द्रियों को रोकनी नहीं परंतु अहित कार्यों में प्रवर्तक इन्द्रियों को शीघ्र ही रोकनी। संयमधारी पुरुष इसी प्रकार का आचरण करते हैं।'

राजा के ऐसे हितकारी वचन सुनकर जय सेठ समझ गये। बोध पाकर जैनधर्म का स्वीकार किया। इस तरह कई लोगों को प्रतिबोधित करके पद्मशेखर राजा ने अंत में देवगति पायी।

●

● **सकल पदार्थ है जग मोंही।**
कर्म हीन नर पावत नाही॥

१४ श्री जंबू स्वामी

पूर्व भवदत्त और भवदेव नामक दो भाई थे। बड़े भाई भवदत्त ने चारित्र ग्रहण किया था। उसने अपने छोटे भाई भवदेव को समझाकर नवविवाहित नागीला का त्याग करवाकर दीक्षा दिलवाई थी। भवदत्त मुनि के स्वर्ग जाने के बाद भवदेव पुनः नागीला के संग संसार भोगने के विचार से अपने गाँव आया परंतु नागीला के उपदेश से चारित्र में स्थिर रहा। उस भवदेव का जीव विद्युत्माली नामक देव बना। उसी जीव ने ऋषभ नामक श्रेष्ठि की धारिणी नामक स्त्री के पुत्र रूप में जन्म लिया और उसका नाम जंबू रखा गया।

क्रमानुसार वह युवा हुआ। एक बार वैभारगिरि पर श्री सुधर्मास्वामी पधारे। उनको वंदना करने जंबूकुमार गया। उनकी देशना सुनकर वापिस लौट रहा था उस समय गाँव के दरवाजे में घूसते ही शत्रु को मारने के लिये दरवाजे पर आधा लटकते हुए धरन के भारी लकड़े को देखकर उसने सोचा कि यह भारी लकड़ा सिर पर गिरे तो? इसलिए मैं वापिस लौटकर सुधर्मा स्वामी गणधर के पास जाकर जीवन पर्यंत ब्रह्मचर्य का पच्चक्खान लेकर आऊँ। ऐसा सोचकर वे गणधर के पास जाकर आजीवन ब्रह्मचर्य पालन का व्रत लेकर घर आये।

मातापिता को उन्होंने कहा : 'मैं आपकी आज्ञा से सुधर्मा स्वामी से दीक्षा लेना चाहता हूँ। ऐसा वज्र जैसा उनका वचन सुनकर मातापिता ने अपने पुत्र पर के स्नेह से मोहित होकर संयम की दुष्करता, वगैरह का वर्णन किया। उनको बढिया उत्तर देकर जंबूकुमार ने अपने मातापिता को निरुत्तर किया। इससे वे बोले, 'हे वत्स! तेरे लिये प्रथम से तय की हुई आठ कन्याओं से ब्याह करके हमारे मनोरथ पूर्ण कर, बाद में तू चाहे वैसे करना।' इस प्रकार कहने पर उसके मातापिता ने सोचा कि शादी के बाद स्त्रीयों के प्रेम में पड़ने के बाद वह संसार नहीं छोड़ पायेगा। जंबूकुमार ने अनिच्छा से मातापिता की आज्ञा मानी। आठों कन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया मगर ब्याह से पहले ही आठों कन्याओं को अपने मनोरथ जंबूकुमार ने कहलवाये थे। परंतु आठों कन्याओं ने कहा कि, 'हमारे तो इसी भव में या परलोक में जंबूकुमार ही स्वामी है।' ऐसा कहकर वे जंबूकुमार से ब्याही। शादी के बाद स्पृहारहित

जंबूकुमार शयनगृह में गया। वहाँ कामदेव से पीडित उन स्त्रियों के साथ विकाररहित वैराग्य की बातें करने लगा। उस समय उन स्त्रियों ने स्नेहवृद्धि हो ऐसी एक एक वार्ता हरेक स्त्री ने कही। उसके उत्तर में कुमार ने वैराग्य उत्पन्न हो ऐसी आठ वार्ताएँ कहीं। यह वार्ताएँ चल रही थी तो उस समय पांचसौं चोर सहित प्रभव नामक राजपूत अवस्वापिनी और तालोद्घाटिनी (ताले खुले ऐसी) विद्या के प्रभाव से, जंबूकुमार के महल में आकर चोरी करने लगा। इन सबको किसी देवताने स्थंभित किया इसलिये प्रभव चोर ने सोचा, 'कि इन महात्मा से ही मैं परिवार सहित स्थंभित हुआ हूँ।' ऐसा सोचकर सब स्त्रियों को उत्तर-प्रत्युत्तर देकर समझाते हुए जंबूकुमार के सामने प्रकट होकर उसने कहा, 'हे महात्मा ! मैं इस दुष्ट व्यापार, चोरी करने के काम से निवृत्त हुआ हूँ। इसलिए मुझसे ये दो विद्याएँ लेलो और आपकी स्थंभिनी विद्या मुझे दो।' यह सुनकर जंबूकुमार बोले, 'मैं तो प्रातःकाल में ही इन सांसारिक बंधनों का त्याग करके श्री सुधर्मा स्वामी से दीक्षा लेनेवाला हूँ। इसलिये मुझे तेरी विद्या की कोई जरूरत नहीं है। और हे भद्र! मैंने तुझे स्थंभित नहीं किया। परंतु किसी देवता ने मेरे पर की भक्ति से प्रेरित होकर तुझे स्थंभित करा होगा। और भव की वृद्धि करे ऐसी विद्याएँ मैं लेता या देता नहीं हूँ परंतु समस्त अर्थ को साधनेवाली श्री सर्वज्ञभाषित ज्ञानादिक विद्या को ही ग्रहण करना चाहता हूँ।'

ऐसा कहकर उसने चमत्कार पाये ऐसी धर्मकथाएँ विस्तारपूर्वक कही। वह सुनकर प्रभव बोला, 'हे भद्र! पुण्य से प्राप्त हुए भोगों को आप क्यों नहीं भोगते हो? जंबूकुमार ने जवाब दिया, किपाक वृक्ष के फल की तरह जिस प्रकार अंत में दारुण कष्ट को देनेवाले और मनोहर दिखे-ऐसे विषयों को कौन समझदार मनुष्य भोगेगा? याने कोई न भोगेगा।' ऐसा कहकर प्रथम उसने मधु बिन्दु का दृष्टांत कहा, फिर से प्रभव ने कहा, 'आपको पुत्र होने के बाद दीक्षा लेनी योग्य है क्योंकि पिण्ड देनेवाला पुत्र न हो तो उसे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती।' यह सूनकर जंबूकुमार ने हँसकर कहा, 'यदि ऐसा ही है तो सूअर, सर्प, श्वान, साँड वगैरह के कई पुत्र होते हैं, जिससे स्वर्ग में वे ही जायेंगे और बाल्यावस्था से ब्रह्मचर्य पालनेवाले स्वर्ग में नहीं जायेंगे?'

तत्पश्चात् जंबूकुमार की आठ स्त्रियाँ क्रमानुसार बोली। उनमें पहली और

सबसे बड़ी समुद्र बोली, 'हे स्वामी! पुण्य से प्राप्त हुई इस लक्ष्मी का त्याग करके आप चारित्र लेना चाहते हैं?' जंबूकुमार ने जवाब दिया कि 'बीजली की तरह चंचल लक्ष्मी का क्या विश्वास ? इसलिये हे प्रिये ! उस लक्ष्मी को छोड़कर मैं दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। तत्पश्चात् दूसरी पद्मश्री ने कहा, 'छः दर्शनों का मत ऐसा है कि दानादिक धर्म से उपकारी होने के लिये गृहस्थाश्रमी का धर्मश्रेष्ठ है। कहा है कि इस दानादिक गृहस्थियों का धर्म दोनों भव में हितकारी होने से धीर पुरुष पालन करते हैं और कायर मनुष्य उसे छोड़ देते हैं।' जंबू ने कहा, 'सावद्य की पापयुक्त क्रियाओं का सेवन करने से गृहस्थधर्म किस प्रकार श्रेष्ठ कहा जायेगा? कारण गृही और मुनि के धर्म में मेरु और सरसव तथा सूर्य एवं खद्योत जितना अंतर है।'

तत्पश्चात् तीसरी पद्मसेना ने कहा, 'कदली के गर्भ जैसा कोमल आपका शरीर संयम के कष्ट सहन करने योग्य नहीं है।' जंबू ने कहा, 'अरे! कृतघ्नी और क्षणभंगुर ऐसे इस देह पर बुद्धिमान पुरुष किस प्रकार प्रीति करेगा?'

चौथी कनकसेना बोली, 'पूर्व जिनेश्वरों ने भी प्रथम राज्य का पालन करके संसार के भोग भोगने के बाद व्रत ग्रहण किया था। तो आप क्या नये मोक्ष की कामनावाले हुए हो?' जंबू ने कहा, 'जिनेश्वर अवधिज्ञानवाले होने से वे अपने व्रत योग्य समय को पहचानते हैं; सो हाथी के साथ गधे की भाँति उनके साथ हमारे जैसे सामान्य मनुष्यों की क्या स्पर्धा? प्राणियों के जीवितरूपी महा अमूल्य रत्न का कालरूपी चोर आकस्मिक आकर मूल में से ही चोरी कर लेता है, इसी कारण समझदार पुरुष संयमरूपी पाथेय लेकर, उसके सहारे मोक्ष पुरी को प्राप्त करते हैं कि जहाँ इस कालरूपी चोर का जरा सा भी भय नहीं रहता।'

तत्पश्चात् पांचवीं नभसेना बोली, 'हे प्राणनाथ! इस प्रत्यक्ष और स्वाधीन ऐसे कुटुम्ब का सुख प्राप्त हुआ है, उसे छोड़कर देह बिना के सुख की (मोक्ष सुख की) क्यों इच्छा रखते हो?' जंबू ने जवाब दिया, 'हे प्रिया! क्षुधा, तृषा, मूत्र, युरीष और योगादिक से पीडा पाते इस मनुष्य देह में इष्ट वसु के समागम से भी क्या सुख है? कुछ नहीं।'

छट्ठी कनकश्री ने पूछा, 'प्रत्यक्ष सुख पाया फिर भी उसे छोड़कर परोक्ष सुख की बातें करनी बेकार है। भोग की प्राप्ति के लिये व्रत ग्रहण करना,

तो जब वे भोग प्राप्त हुए ही है तो व्रत के आचरण से क्या? खेत में वृष्टि से ही अन्न पका हो तो कुँए से पानी खींचकर सिंचाई करने का प्रयास कौन करे?' कुमार ने उसको उत्तर दिया, 'हे प्रिया! तेरी बुद्धि बराबर ठीक तरह से चल नहीं रही है। और ऐसा बोलने से तेरा अदीर्घदर्शीपन प्रकट होता है, और वह अन्य के लिये हितकारी नहीं है। क्योंकि स्वर्ग तथा मोक्ष देनेवाले इस मनुष्य देह को ही लोग भोग-सुख में गँवाते हैं। वे मूल धन को खानेवाले की भाँति अत्यंत दुःखी परिणाम प्राप्त करते हैं। इसलिये हे प्रिया! जल्दी से नाश पानेवाले ऐसे इस मनुष्य जन्म को पाकर मैं इस प्रकार करूंगा कि जिससे किसी भी समय पर पश्चात्ताप करना न पडे।'

तत्पश्चात् सातवीं क्रनकवती ने पूछा : 'हे नाथ! हाथ में रहे 'रस को उंडेलकर पात्र के काँठे चाटना' - कहावत को आप सत्य करके दिखा रहे हो।' जंबू ने कहा, 'हे गोरे अंगवाली प्रिया! भोग हाथ में आये फिर भी नाश हो जाते हैं, इससे उसमें मनुष्यों का स्वाधीनपना है ही नहीं, फिर भी हाथ में आये हुए मानते हैं कि वे भूत की तरह भ्रम हुए है - ऐसा समझना। विवेकीपुरुष स्वयं ही भोग के संयोगों का त्याग करते हैं और जो अविवेकी पुरुष उसका त्याग नहीं करते उनका तो भोग ही त्याग करता है।'

तत्पश्चात् अंतिम जयश्री (आठवीं) बोली, 'हे स्वामी! आप सत्य कहते हो, परंतु आप परोपकाररूपी उत्तम धर्म को ग्रहण करनेवाले हो; इसलिये भोग की इच्छा करे बिना हम पर उपकार करने के लिये हमारा सेवन करो। मनुष्यों के ताप को दूर करने रूपी उपकार के लिये वृक्ष स्वयं धूप सहन करते हैं। और क्षीर समुद्र का पानी भी मेघ के संयोग से अमृत समान बनता है। इस प्रकार आपके संयोग से प्राप्त हुए भोग भी हमारे सुख के लिए होंगे।'

कुमार ने कहा, 'हे प्रिया! भोग से क्षण मात्र दुःख-सुख होते हैं। परंतु चिरकाल तक दुःख होता है। ऐसे परमात्मा के वचन से मेरा मन उससे निवृत्ति हुआ है, और उसमें भी तुम्हारा कुछ कल्याण हो - ऐसा मुझे लगता नहीं है। इसलिए हे कमल जैसे नेत्रोंवाली प्रिया! इस प्रकार के अहितकारी भोग में आग्रह करना वह कल्याणकारी के लिये नहीं है। कुमनुष्यों में, कुदेवोमें, तिर्यंचों में और नरक में भोगी जन जो दुःख पाते है वह सर्वज्ञ ही जानते है।'

इस प्रकार कुमार के उत्तर सूनकर वे आठों स्त्रियाँ ने वैराग्य पाया तो वे हाथ जोड़कर बोली, 'हे प्राणनाथ! आप जिस मार्ग का आश्रय करें वही मार्ग हमारा भी सेव्य है।'

यह सब देखकर प्रभव चोर भी सोचने लगा, 'धन्य है इस महात्मा को जिसे लक्ष्मी स्वाधीन है उसका त्याग करता है और निर्लज्ज जैसा मैं हूँ जो लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये ऐसे चोरी जैसे महापाप करता हूँ। इसलिये मैं अत्यंत निंद्य हूँ। मुझे-अधर्मी को धिक्कार है।' इस प्रकार के विचार से परिवार सहित वैराग्य पाया हुआ प्रभत बोला, 'हे महात्मा! मुझे आज्ञा दीजिये, मुझे क्या करना चाहिये?'

जंबूकुमार ने उत्तर दिया, 'जो मैं करूं वह तूं भी कर।'

तत्पश्चात् प्रातःकाल में संघ तथा प्रभुपूजन करके, बुझुर्गों को नमस्कार करके कुमार ने स्नान-चंदन का विलोपन किया। श्वेत वस्त्र तथा सर्व अंगों पर अलंकार धारण करके पुरुषों से वहन होती शिबिका में आरूढ हुए। मार्ग में दीन लोगों को दान करते और लोगों का रंजन करते - वाजिंत्रो के नाद के साथ जहाँ सुधर्मा स्वामी बिराजमान थे वहाँ आये, साथ में अपनी आठ पत्नियाँ अपने अपने माँ बाप के साथ, प्रभव सहित पांच सौं चोरों को भी लाये थे। सब सुधर्मा स्वामी के पास आये। नमन करके, वंदना करके जंबूकुमार ने अपने परिवार और चोरों सहित पांचसौ सत्ताइस (५२७) व्यक्तिओं को दीक्षा देने के लिये अनुरोध किया तो सुधर्मा स्वामी ने अपने हस्तों द्वारा जंबूकुमार को उसके परिवार के साथ तथा सब चोरों को भी दीक्षा दी। जंबूस्वामी को उनके शिष्य के रूप में प्रभव मुनि को सौंपा।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण के बाद के दसवें वर्ष में सुधर्मा स्वामीने जंबू स्वामी को गणधर की पदवी दी और उसके चौवनवें वर्ष पर जंबू स्वामी ने प्रभव स्वामी को गणधर की पदवी दी।

प्रभव स्वामी के गणधर होने के बाद श्री जंबूस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और मोक्ष पधारे। इस काल में मोक्ष जानेवाले जंबूस्वामी है।

●

चम्पापुरी नगरी में सोमदेव नामक ब्राह्मण था। उसको नागश्री नामक स्त्री थी वह सुंदर रसोई करके परिवार को भोजन कराती थी। एक बार उसने तूंबे का साग बनाया परंतु उसे चखते ही मालूम पडा कि यह तो कडुआ है। इस कारण उस साग को एक ओर रख दिया क्योंकि मसाले, तैल वगैरह प्रयुक्त होने के कारण फेंकते हुए उसका जी न चला। परिवार के लिये दूसरा साग बना ड़ाला।

इतने में एक साधू 'धर्मलाभ' कहकर पधारे। नगरी में हाल ही में श्री धर्मघोष मुनि पधारे थे। उनके शिष्य श्री धर्मरुचि महाराज गोचरी के लिये निकले थे। वे यहाँ आये थे। नागश्री यति की द्वेषी थी। उसने एक ओर रखा कडवी तूंबी का साग इस महाराज को गोचरी में दे दिया। वह लेकर श्री धर्मरुचि महाराज अपने गुरु श्री धर्मघोष के पास आये। वहाँ उसके लाये हुए तूंबी के आहार देखकर गुरु ने कहा, 'यह तूंबे का फल अति कडुआ है, इससे यह साग प्राणहारक है इसलिये इसे कोई निरवद्य भूमि में गाड़ दो। (त्याग दो)। गुरु का ऐसा आदेश सुनकर शिष्य उद्यान में गया। वहाँ साग का एक बिन्दू भूमि पर गिर गया। उससे इकट्ठी हुई सब चींटियाँ मर गई। यह देखकर शिष्य को बड़ी करुणा उत्पन्न हुई और सोचा कि 'यह साग भूमि में गाडूंगा तो जीव की हानि होगी, इससे मैं ही उसका भक्षण करूं ऐसा सोचकर स्वयंने सब कडुआ साग खा लिया और पंचपरमेष्ठी के ध्यान में लीन हो गये। इस उत्तम ध्यान के कारण वह मृत्यु पाकर सर्वार्थसिद्धि विमान में देव बने।

कालानुसार जिसने कडवी तूंबी का साग दिया था वह नागश्री मरकर छठ्ठे नरक में गयी, वहाँ से मत्स्य होकर सातवीं नरक में गयी और आगे भी नरक में गयी इस प्रकार सात बार नरकगमन और मत्स्य के भव हुए। अंत में नागश्री का जीव चम्पानगरी में सागरदत्त श्रेष्ठी की सुभद्रा नामक पत्नी की कोख से पुत्री के रूप में अवतरित हुआ। उसके मातापिता ने सुकुमारिका नाम रखा।

सुकुमारिका युवा होते ही मातापिता ने उसी नगर के जिनदत्त श्रेष्ठी के सागर नामक पुत्र के साथ उसकी शादी कर दी और घरजमाई के रूप में उसे अपने घर रखा।

रात्रि में सागर, सुकुमारिका के साथ शय्या में सो रहा था। उतने में सुकुमारिका

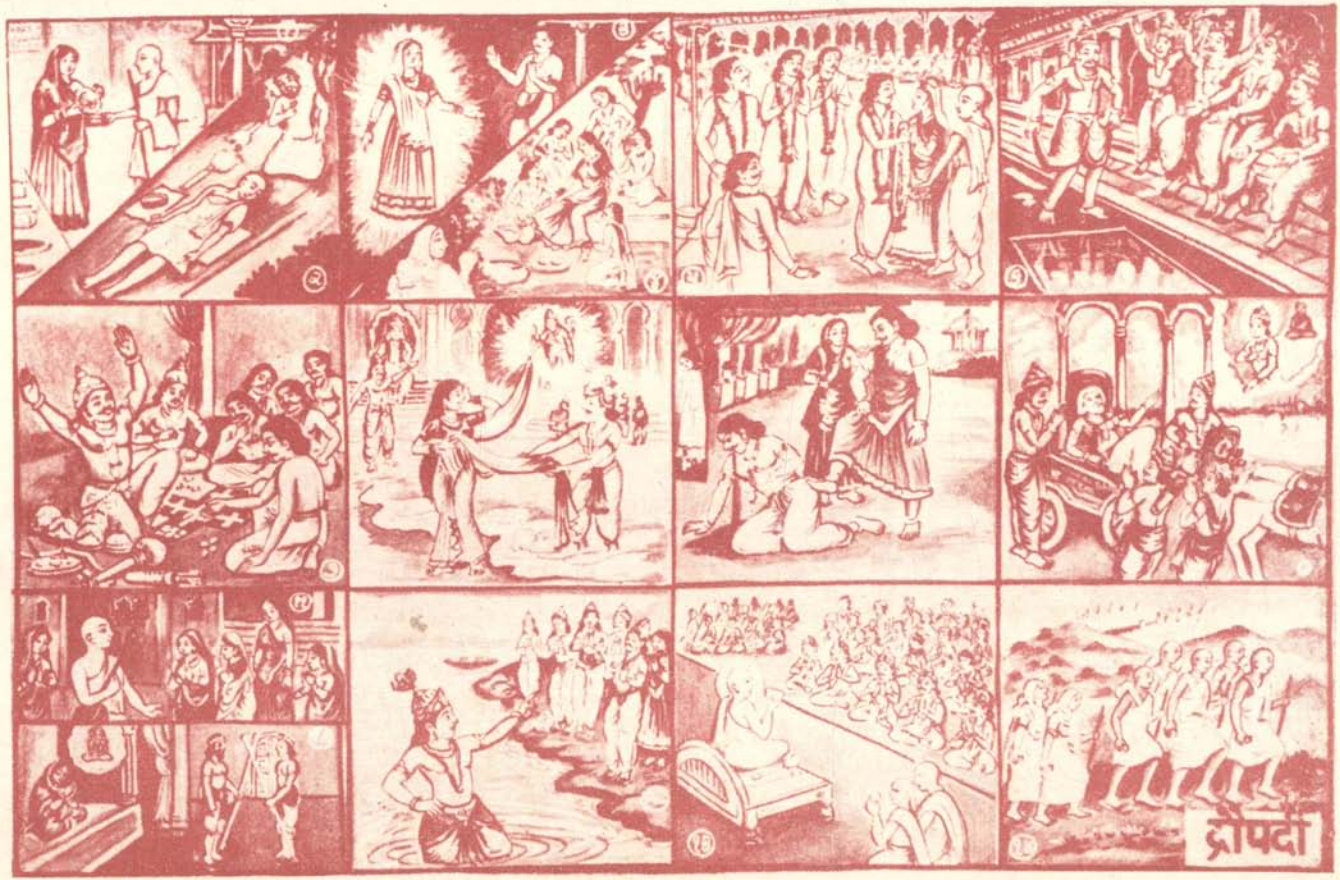
द्रौपदी

द्रौपदीजी

(१) पूर्व भव में द्रौपदी ने मुनि को कडवे जहरीले तूँबे की सब्जी गोचरी में दी।

(२) फेंक देने में जीव हिंसा देखकर मुनि ने खा लिया, मुनि स्वर्ग पधारे।

(३) मुनिहत्या से द्रौपदी को नरकादि का भवभ्रमण हुआ। तत्पश्चात् अंगार जैसा शरीर होने से दो पतियों ने छोड़ दी।

(४) दीक्षा ली। भयंकर धूप में आराधना की। पाँच यारों का सेवन करती हुई वेश्या को देखकर पांच पति माँगे।

(५) द्रौपदी ने वरमाला अर्जुन के गले में डाली, परंतु वह पाँच की पत्नी बनी। नारदजी ने वरदान की स्पष्टता की।

(६) जल मानकर धोती ऊँची करते दुर्योधन का पाण्डवों द्वारा उपहास हुआ।

(७) जुए में पाण्डव, राज्य और द्रौपदी भी हार गये। दुर्योधन जीत गया।

(८) सभा में द्रौपदी का वस्त्राहरण हुआ।

(९) कीचक का वध हुआ।

(१०) युद्धभूमि में घायल भीष्म को देवों द्वारा दीक्षा-समय की सूचना मिली।

(११) अविरति अवस्था में नारदजी का द्रौपदी ने बहुमान न किया।

(१२) इससे नारदजी ने अमरकंका में द्रौपदी का अपहरण करवाया।

(१३) नौका न भेजने से कृष्णजी का पाण्डवों पर तीव्र रोष हुआ, देशनिकाल का हुक्म दिया।

(१४) कुंती, द्रौपदी सहित पाण्डवों ने दीक्षा ली।

(१५) उग्र तप द्वारा द्रौपदी स्वर्ग में गयी और अन्यों ने सिद्धाचलजी पर मुक्ति पायी।

धन्य सती द्रौपदी

के शरीर का स्पर्श होती ही वह केर के अंगारे समान खूब गर्म लगा। जिससे वह विरागी होकर उसे सोती छोड़कर अपने घर चला गया। सागर के चले जाने से प्रभात में सुकुमारिका अत्यंत रुदन करने लगी, 'मेरे पति मुझको छोड़ गये हैं।' यह जानकर उसके पिता सागरदत्त जीनदत्त को मिले और कहा, 'आपका लड़का मेरी लड़की के साथ शादी करके छोड़कर आपके यहाँ आया है। इस कारण जीनदत्त ने अपने लडके सागर को समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु सागर ने कहा, 'हे तात! आज्ञा दो तो जल या अग्नि में प्रवेश कर लूं लेकिन उस स्त्री के शरीर का स्पर्श अंगारे समान है। इसलिये उसके पास पलभर भी मैं रहूंगा नहीं।' सागरदत्त ने घर आकर पुत्री को कहा, 'हे पुत्री! सागर तेरे लिए मन से भी नहीं सोचता है तो बात तो करे कहाँ से? इसलिये तेरे लिये दूसरा उत्तम, कुलीन वर ढूंढूंगा। तुझे इस बात का दुःख मन में नहीं रखना है।'

तत्पश्चात् सागरदत्त ने अन्य निर्धन पुरुषों को अपनी पुत्री के पाणीग्रहण के लिये, लाया, परंतु उन हरेक को सुकुमारिका का शरीर अग्नि जैसा लगने से उसे छोड़कर भाग गये।

इस प्रकार होने से सुकुमारिका बहुत रुदन करने लगी। यह देखकर उसके पिता सागरदत्त उसे सांत्वना देकर कहते, 'पूर्व किये हुए कर्म छूटते नहीं है। वह भोगने ही पड़ते हैं। गुणीजनों को भी भिक्षार्थ भटकना पड़ता है और कोई मूर्ख होने पर भी संपत्ति भोगता है, सो पूर्व के कर्मों का नाश करने के लिए तूं दान दे, तपश्चर्या कर और आत्मा को शांत करके रह।'

पिता के ऐसे वचनों को सुनकर वह संतोषपूर्वक रहने लगी और जैन धर्म का महत्त्व समझकर दान, तप वगैरह में अपना समय बिताने लगी।

एक बार कोई साध्वी गोचरी के लिए वहाँ पधारी। उनको शुद्ध अन्न पानी से भावसहित प्रतिलाभित करके उसने दीक्षा ग्रहण की और पूर्व के उपार्जित किये कर्मों का नाश करने के लिये दुष्कर तप प्रारंभ किये।

थोड़े दिनों के बाद उसको इच्छा हुई, 'किसी एकांत वन में जाकर वहाँ छठ्ठ, अठ्ठम का तप करके सूर्य के सामने ही दृष्टि रखकर एकाग्र मन से आतापना करूं।'

इसके लिये उसने प्रवर्तिनी की आज्ञा माँगी। प्रवर्तिनी ने समझाया कि बाहर उद्यान या वन में जाकर आतापना करनी साध्वी को लेशमात्र योग्य नहीं है। फिर भी वन में जाने का बड़ा आग्रह किया। चारा न देखकर गुरुजी ने उसे 'जहाँ-सुखं' कहकर आज्ञा दी।

एक उद्यान में जाकर उसने आतापना प्रारंभ की। सात-आठ दिन हुए। आकस्मिक वहाँ कोई एक वेश्या को एक पुरुष की गोद में सोते हुए देखा, दूसरा पुरुष उसके बालों में पुष्प की वेणी बांध रहा था। तीसरा पुरुष उसे पंखे से हवा डाल रहा था, चौथे ने उसके मस्तक पर छत्र धरा था और पाँचवां उसके शरीर की थकान उतारता था। इस प्रकार पाँच पुरुषों से सेवा पाती गणिका को देखकर सुकुमारिका ने सोचा, 'अहो! इस स्त्री को धन्य है कि पांच पांच पुरुष तो उसकी सेवा करते हैं! और मुझे तो किसीने चाहा ही नहीं, पति ने त्यज दिया।' ऐसा विचार करके उसने नियाणा बांधा कि, 'यदि मेरे प्रारंभ किये हुए तप का कुछ भी फल हो तो मुझे भी इस भाँति पांच भरथार प्राप्त हो।' अन्य साध्वियों ने उसे ऐसा नियाणा न बांधने के लिये बड़ा समझाया। पर व नहीं मानी। तत्पश्चात् आठ माह तक संलेखना करके वह सौधर्म में नौ पल्योपम के आयुष्यवाली देवी हुई। वहाँ से वह पांचाल देश में कपिलपुर नामक नगर में द्रुपद नामक राजा के यहाँ पुत्री के रूप में अवतरित हुई। राजा ने बड़े धामधूम से जन्मोत्सव मनाया और उसका नाम द्रौपदी रखा। क्रमानुसार वयवृद्धि होते ही पिता ने उसे धर्म-कर्म शास्त्रादि में प्रवीण बनाया।

समय होते ही द्रौपदी युवा बनी। द्रुपद राजा उसका ब्याह कराने के लिये योग्य वर ढूंढने की चिंता में थे।

बड़ा विचार करके उसने द्रौपदी का ब्याह राधाबेध करनेवाले के साथ करने का तय किया। उसने कई देशों में इस बारे में कुंकुम पत्रिका भेजी। सब राजा इकठ्ठे हुए तब द्रुपद राजा ने जाहिर किया कि 'जो कोई भी इस राधाबेध को सिद्ध करेगा उसके साथ मेरी इस पुत्री का ब्याह होगा।'

राधाबेध में एक ऊँचा स्तंभ खड़ा किया था। उसके पर एक घूमता चक्र लगाया गया था। उस पर एक पूतली रखी गयी थी। नीचे भूमि पर तैल से भरी एक कढ़ाई रखी। अब नीचे तैल की कढ़ाई में पडते प्रतिबिंब पर नज़र डालकर उपर घूमते हुए चक्र पर रखी हुई पूतली की बाँयी चक्षु तीर से बेधनी थी। राधा याने पूतली और बेध याने बेधना। यह काम करने के लिये कई राजा तथा राजकुमारों ने मेहनत की पर कोई कर सका नहीं। तब अर्जुन ने खड़े होकर आसानी से उस पूतली को बेधा और राधाबेध सिद्ध किया। उस वक्त द्रौपदी ने उसके गले में वरमाला आरोपित की। वरमाला अर्जुन के अन्य चारों भाइयों के कण्ठ में भी गिरी! यह देखकर राजा सोचने लगे, अब करना क्या?' वरमाला तो पाँचों भाइयों के गले

में थी। इतने में आकस्मिक रूप से चारण श्रमण महात्मा पधारे। सर्व ने खड़े होकर उनको नमन किया और उनसे धर्मोपदेश श्रवण किया। तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने ज्ञानी महात्मा को पूछा, 'मेरी पुत्री ने अर्जुन के कण्ठ में आरोपित की हुई वरमाला अन्य चारों के कण्ठ में किस प्रकार गिरी? अब क्या होगा?'

उस समय मुनि ने कहा, 'द्रौपदी को पूर्व भव में किया हुआ कर्म भोगना है।' ऐसा कहकर उपर कहा है उन भवों का वर्णन किया। यह वृत्तांत सुनकर द्रुपद राजा ने मन मोड लिया कि हरेक मनुष्य कर्म के फल भोगता है। और पाँच पाण्डव द्रौपदी को लेकर हस्तिनापुर आये। पांचों पाण्डव द्रौपदी को अपनी अपनी बारी अनुसार भोगने लगे।

एक बार द्रौपदी स्वयं अपना शरीर दर्पण में निरख रही थी। उतने में नारदऋषि वहाँ पधारे। इससे उसे नारद के आगमन की खबर नहीं लगी। इस कारण नारद रोष सहित खडे होकर घातकी खण्ड में स्थिर अमरकंका नगरी को गये। वहाँ के राजा पद्मोतर के राजदरबार में पहुँचे। राजा ने विनयपूर्वक उनको वंदन किया और पधारने का प्रयोजन पूछा।

नारद ने उत्तर दिया, 'मैं हस्तिनापुर गया था, वहाँ पाण्डवों के अंत:पुर में द्रौपदी को देखा। उसके जैसी एक भी स्त्री तेरे अंतपुर में नहीं है।' इस कारण पद्मोत्तर राजा ने उसे उठा लाने के लिए एक देव की आराधना की। देव द्रौपदी को हस्तिनापुर से उठाकर अमरकंका के राजा के पास ले आया। राजा ने द्रौपदी को कहा, 'हे द्रौपदी! तूं मेरे साथ भोग भोग ले। यह राज्य तेरा ही है ऐसा समझ ले। तूं मेरी सर्व पत्नियों में मुख्य मानी जायेगी और मैं मेरा सर्व कार्य तूझे पूछकर करूंगा।' इस प्रकार द्रौपदी को कई प्रकार से प्रलोभन देने के प्रयत्न किये, परंतु इससे उसके अंत:करण में लेश भी विकार नहीं हुआ। वह तो पंचपरमेष्ठी के ध्यान में लीन रहकर वहाँ छठ्ठ-अठ्ठम आदि तप करने लगी।

द्रौपदी का हरण हुआ जानकर पांचों पाण्डव श्रीकृष्ण के पास गये। उनको यह बात बतायी। ध्यान धरकर श्रीकृष्ण ने कहा, 'द्रौपदी को कौन हर ले गया यह इस समय ज्ञात नहीं हो रहा है।' इतने में नारद वहाँ स्वयं आये। श्रीकृष्ण ने उन्हे पूछा, 'हे नारद ऋषि! आपने द्रौपदी को देखा?' नारद ने उत्तर दिया, 'घातकी खण्ड की अमरकंका नगरी के राजा पद्मोत्तर के अंत:पुर में एक द्रौपदी जैसी स्त्री को मैंने देखा था।' यह सुनकर श्रीकृष्ण ने सुस्थित देव की आराधना की, इस कारण

सुस्थित देव ने उन छः जनों को रथ में बिठाकर अमरकंका नगरी तक पहुँचाया। वहाँ कृष्ण के सिवा पांच पाण्डवों ने राजा पद्मोत्तर के साथ युद्ध किया परंतु उसमें हारे तो श्रीकृष्ण ने रणसंग्राम में आकर जय पायी। पद्मोत्तर राजा गढ़ में घूस गया और किल्ले के द्वार ठीक तरह से बंद करवा दिये। श्रीकृष्ण ने किल्ले पर चढकर नरसिंहरूप धारण करके धरती को कम्पाया, जिससे कई नगरवासियों के घर गिर पड़े। इससे डरकर पद्मोत्तर राजा श्रीकृष्ण के पास आकर उनके चरणों में झुका और क्षमा मांगकर कहा, 'मैंने प्रथम मूढता तो यह की कि मैंने द्रौपदी का हरण किया, और दूसरी मूढता, कि मैंने आपके साथ संग्राम किया। अब मुझ पर उपकार करके द्रौपदी का अंगीकार करो। मैं आपको शीश झुकाता हूँ इसलिये आप मेरे पर अब कोप करना मत।'

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने अपना मूल रूप धरा। पश्चात् पद्मोत्तर राजा श्रीकृष्ण को नगर में ले गया और भोजन वगैरह से उनकी भक्ति की और अंतपुर में से द्रौपदी को लाकर उनको सौंप दी। इस महासती को लेकर श्रीकृष्ण वापिस लौटे और पाण्डवों को लेकर मथुरा आये। वहाँ से कुंती माता हर्ष पाकर द्रौपदी को घर ले गई और वहाँ पुण्यदान किये।

श्री नेमिनाथ भगवान मथुरा में पधारे। कुंती माता पांच पाण्डवों तथा द्रौपदी को लेकर उनको वंदन करने गयी और प्रभु का धर्मोपदेश सुना, 'इस लोक के बारे मनुष्यपना, आर्यक्षेत्र, उत्तम जाति, अच्छा कुल, अच्छा रूप, निरोगी लम्बा आयुष्य, अच्छी बुद्धि, शास्त्र का श्रवण और शुद्ध संयम, ये सब पाना महादुर्लभ है।'

इत्यादि उपदेश सुनकर सातों जनों ने समकित के मूल बारह व्रत ग्रहण किये। क्रमानुसार पांच पाण्डवों ने अपने पुत्रों को राज सौंपा व कुंती तथा द्रौपदी के साथ गुरु से दीक्षा ली। अच्छी तपश्चर्या करके द्रौपदी एक बार श्री शत्रुंजय तीर्थ गयी। वहाँ कड़ा तप करके आयुष्य क्षय होने पर पांचवें देवलोक में पहुँची। वहाँ आकर क्रमानुसार कुछ ही भवों में मुक्ति पायेगी।

●

* अधार्मिक पशु समान है।
* पानी बिलोने से मक्खन नहीं निकलता है।
* आलस जीवित व्यक्ति की कबर है।

'सहकार दर्शन' में से

१६ श्री नागकेतु

पूर्वभव में नागकेतु कोई एक वणिक का पुत्र था। बचपन में ही उसकी माता मर गई और उसके पिता अन्य कन्या से ब्याहे। उस नयी आयी स्त्री को उसकी सौत का पुत्र काँटे की तरह चुभने लगा। और इस कारण कई तरह से उसे पीडा देने लगी। पूरा खाना न देती। घरकाम खूब कराती और मूढ मार मारती थी। लम्बे समय तक ऐसी पीडा सहते सहते वह त्रस्त हो गया और घर छोड़कर अन्य जगह भाग जाने के लिये एक सायं घर से भाग निकला।

भागते समय नगर के बाहर निकलने से पूर्व जिनेश्वर के दर्शन करने एक मंदिर में जाकर स्तुति वंदना की और उसके चबूतरे पर बैठा था। सद्भाग्य से उसका एक मित्र मंदिर में से बाहर निकला और मित्र को निराश वदन से बैठा हुआ देखकर उसको पूछा, 'क्यों भाई! किस चिंता में है?'

मित्र ने जवाब दिया, 'कुछ कहा जाय ऐसा नहीं है, अपार दुखियारा हूँ और अब त्रस्त होकर घर से भाग जाने निकला हूँ।'

श्रावक मित्र ने उसे सांत्वना देते हुए कहा : 'भाई, घबराना मत। धर्म से सब कुछ ठीक हो जाता है। तप से कई कर्म नाश हो जाते हैं। पूर्व भव में तूने तप किया नहीं है, इसलिए तू दुःखी होता है, इसलिए तूं एक अठ्ठम कर।' आगामी वर्ष पर्युषण पर्व आए, तब अठ्ठम तप करने का निश्चय किया; सो बाहरगाँव न भागते हुए रात्रि को वापिस घर आया। घर का दरवाजा तो बंद था इस कारण घर के बाहर घास की गंजी थी उस पर वह सो गया। परंतु मन में अठ्ठम तप जरूर करूंगा ऐसी भावना करता रहा। अपर माता ने खिड़की में से देख लिया कि यह शल्य आज ठीक पकड़ में आया है। गंजी को आग लगा दूं तो यह मर जायेगा, और लम्बे समय से इसका काँटा निकालने की इच्छा है जो आज पूरी हो जायेगी। ऐसा विचार करके घोर रात्रि में घास की गंजी को आग लगा दी। बाहर का पवन तथा अग्नि का साथ... कुछ ही देर में गंजी चारोंओर से जल गई और वह वणिकपुत्र जिंदा ही जलकर राख हो गया। परंतु मरते मरते भी अठ्ठम तप करना है ऐसी भावना आखिरी

क्षण पर भी रही।

वहाँ से मरकर चन्द्रकान्त नामक नगरी में विजयसेन नामक राजा के राज्य में श्रीकांत नामक सेठ के यहाँ उसकी सखी नामक भार्या की कोख से पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम नागकेतु पड़ा।

यहाँ उसके मातापिता बड़े धर्मशील थे और पर्युषण आ रहे होने से एकांत में अठ्ठम तप करने की बातें हुई। यह बात सुनकर नागकेतु को जातिस्मरण ज्ञान हुआ और उस ज्ञान के बल से अपना पूर्वभव जाना। अठ्ठम तप करना है, अवश्य करना हैं उसका स्मरण हुआ।

इस भावना को सफल करने के लिये उसने भी पर्युषण में अठ्ठम तप प्रारंभ किया। ताजे जन्मे हुए नागकेतु का शरीर निरा कोमल था। उसकी आत्मा ज्ञान प्रकट होने से बलवान बनी, परंतु शरीर में इतना बल कहाँ था। दूध न पीने से उसका शरीर क्षीण होने लगा। उसके मातापिता को खबर नहीं है कि बालक ने अठ्ठम का तप किया है सो स्तनपान करता नहीं है, पानी भी लेता नहीं है। वे अनेक उपचार करने लगे लेकिन यह न तो स्तनपान करता न दवा पीता। फलस्वरूप कमजोरी इतनी बढ गई कि बालक मूर्च्छा पा गया। मूर्च्छाप्राप्त बालक को लोगों ने मरा हुआ मान लिया और उसे जंगल में लेजाकर गाड़ दिया।

अपना पुत्र मर गया ऐसा समझे हुए सेठ को बड़ा आघात लगा। सेठ मूल तो निःसंतान थे। कई मनौतियों के बाद यह पुत्र हुआ था। वह मर गया ऐसा जाना और उनको लगा आघात सहन न होने के कारण बालक का बाप वाकई मे मृत्यु पा गया।

उस काल में राज्य में ऐसा कानून था कि पुत्रहीन का धन राजा ग्रहण कर लेता था। कोई भी व्यक्ति मर जाता और यदि उसे पुत्र न होता तो उसके धनादिक का मालिक राजा बनता। राज्य के कानून अनुसार सेठ का धन लेने के लिये राजा ने अपने सेवकों को सेठ के घर भेजा। यहाँ बना ऐसा कि बालक के अठ्ठम तप के प्रभाव से धरणेन्द्र का आसन का काम्प उठा। अपना आसन काम्पने से धरणेन्द्र ने ज्ञान का उपयोग छोड़ा और सब बात समझ जाने से धरणेन्द्र वहाँ आ पहुँचा। पहले भूमि में रहे बालक पर अमृत छिड़ककर आश्वासन दिया और तत्पश्चात् ब्राह्मण का रूप लेकर जो राजसेवक धन लेने

आये थे उन्हें सेठ का धन ग्रहण करने अटकाया।

यह बात राजसेवकों ने जाकर राजा को कही, इस कारण राजा स्वयं वहाँ आये। उन्होंने आकर ब्राह्मण को राज्य का कानून समझाया और 'हमारा यह परम्परागत नियम है कि निसंतान का धन ग्रहण करना। तो इसमें तुम क्यों रूकावट डाल रहे हो?' ब्राह्मण ने कहा, 'आपको तो निःसंतान हो उसकाही धन ग्रहण करना है न? इसका पुत्र तो जीवित है।' राजा ने कहा, 'कहाँ है? कहाँ जीवित है वह बालक?'

ब्राह्मण ने भूमि में गड़े हुए बालक को बाहर निकालकर बताया और छाती की धडकन बताकर समझाया कि बालक जीवित है। इससे राजा, उसके सेवक और नगर के लोग बड़े आश्चर्यचकित हुए। आश्चर्य में पड़े हुए राजा ने पूछा, 'आप कौन हो? और यह बालक कौन है?' उस समय वेश धरे ब्राह्मण ने कहा, 'मैं नागराज धरणेन्द्र हूँ। इस बाल महात्मा ने अठ्ठम का तप किया है, जिसके प्रभाव से यहाँ उसे सहाय करने के लिये आया हूँ।' राजा के पूछने पर धरणेन्द्र ने बालक के पूर्वभव का वृत्तांत भी कह सुनाया। और अंत में कहा कि 'लघुकर्मी यह महापुरुष इसी भव में मुक्ति पायेगा और यह बालक भी राज्य पर बड़ा उपकार करनेवाला होगा।'

ऐसा कहकर नागराज धरणेन्द्र ने अपने गले का हार निकालकर नागकेतु को पहनाया और अपने स्थान पर लौट गया। व्याख्यानकार आचार्य श्री लक्ष्मीसूरीजी ने इस कारण से ही ऐसा कहा है कि 'श्री नागकेतु ने उसी भव में अठ्ठम तप का प्रत्यक्ष रूप पाया।'

बड़ा होकर नागकेतु परम श्रावक बना। एक बार राजा विजयसेन ने कोई एक मनुष्य जो वाकई में चोर न था उसे चोर ठहराकर मार डाला। इस प्रकार अपमृत्यु पाया हुआ वह मरकर व्यंतर देव बना। वह व्यंतर बना तो उसे खयाल आया कि अमुक नगरी के राजा ने मेरे सिर पर चोरी का झूठा कलंक लगाकर मुझे मार डलवाया था, जिससे उस व्यंतर को उस राज्य पर बहुत गुस्सा आया। उस राजा को उसकी पूरी नगरी सहित साफ कर देने का निर्णय किया। इसलिये उस राजा को लात मारकर सिंहासन परसे गिरा दिया और खून वमन करता बना दिया। तत्पश्चात् नगरी का नाश कर डाले ऐसी एक शिला आकाश में रच दी। आकाश में बनी बड़ी शिला को देखकर नगरजन बड़ी घबराहट में

गिर पड़े। श्री नागकेतु को चिंता हुई कि, 'यह शिला यदि नगरी पर गिरेगी तो महा अनर्थ होगा। नगरी के साथ जिनमंदिर भी साफ हो जायेगा। मैं जीवित होऊँ और श्री संघ के श्रीजिनमंदिर का विद्धंश हो जावे यह कैसे देख सकूँ?' ऐसी चिंता होने से श्री नागकेतु जिनप्रासाद के शिखर पर चढ़ गया और आकाश में रही शिला की ओर हाथ दिया।

श्री नागकेतु के हाथ में कितना बल होवे? परंतु वह ताकात उनके हाथ की न थी, वह ताकत उनके प्रबल पुण्योदय की थी। उन्होंने जो तप किया था उस तप ने उनको ऐसी शक्ति का स्वामी बना दिया था। उनकी इस शक्ति को वह व्यंतर सहन न कर सका। इसलिये व्यंतर ने तुरंत अपनी रची हुई शिला को स्वयं ही समेट लिया और आकर नागकेतु के चरणों में गिर पड़ा। श्री नागकेतु के कहने से उस व्यंतर ने राजा को भी निरुपद्रव किया।

एक बार श्री नागकेतु भगवान की पूजा कर रहे थे और पुष्प से भरी पूजा की थाली अपने हाथ में थी। उसमें एक फूल में रहे सर्प ने उन्हें काटा। सर्प के काटने पर भी नागकेतु जरा से भी व्यग्र न हुए। परंतु सर्प काटा है यह जानकर ध्यानारूढ बने। ऐसे ध्यानारूढ बने कि क्षपक श्रेणी में पहुँचे और उन्होंने केवलज्ञान पाया। उस समय शासनदेवी ने आकर उन्हें मुनिवेष अर्पण किया और उस वेष को धरकर केवलज्ञानी नागकेतु मुनिश्वर विहरने लगे।

कालानुसार आयुष्य पूर्ण होते ही वे मोक्ष पधारे।

●

दया धर्म को मूल है,
पाप मूल अभिमान ।
कहे तुलसी दया कबहु न छोडिये,
जब तक घट में प्राण।

१७ मंखलीपुत्र गोशाला

राजगृही नगरी के नालंदा नामक स्थान पर मंख और सुभद्रा का पुत्र गोशाला था। वह बहुल नामक ब्राह्मण की गोशाला में जन्म था।

यह गोशाला एक बार प्रभु महावीर के पास आया। वहाँ भगवान महावीर को मासक्षमण के पारणे पर विजय नामक सेठ ने सुन्दर आहार गोचरी मे दिया। यह देखकर गोशाला को लगा कि 'यदि मैं इनका शिष्य बन जाऊँ तो खाने-पीने का खूब मजा आयेगा।' उसने भगवान को कहा, 'मैं आपका शिष्य हूँ।' अपने आप गोशाला भगवान महावीर का शिष्य बन गया। इस प्रकार चार मासक्षमण के पारणे तक भगवान के साथ रहा, तत्पश्चात् उनसे अलग हो गया।

अलग होने के छः माह के बाद पुनः गोशाले का मिलाप प्रभु से हुआ।

विहार करते करते प्रभु कूर्म गाँव गये। वहाँ वैश्यायन तापस ने आतापना ग्रहण करने के लिये अपनी जटा खुल्ली रखी थी, उसमें जूँ देखकर गोशाले ने 'यूकाशय्यातर' (जूँओं को आश्रय देनेवाला) कहकर उसकी मजाक उडाई। इस प्रकार जहाँ-तहाँ वह अशिष्ट आचरण करता था।

वैश्यायन तापस से यह मजाक सहन न हुआ। उस तापस ने क्रोधायमान होकर गोशाले पर तेजोलेश्या (अग्निज्वाला) छोड़ी। उस समय पास खड़े श्री वीर प्रभु को लगा, 'कुछ भी है, मगर यह मेरा आश्रित तो है।' इस कारण दयारस के सागर प्रभु ने तेजोलेश्या के सामने शीतलेश्या (शीतल अंगारवायु) छोड़कर तेजोलेश्या को ठण्डा कर दिया और गोशाले को बचा लिया। गोशाले ने प्रभु को तेजोलेश्या की सिद्धि का उपाय पूछा, अवश्यभावि भाव के योग से सर्प को दूध पिलाने की भाँति तेजोलेश्या की विधि प्रभु ने गोशाला को सिखायी।

भगवान ने कहा, 'सूर्य की धूप में बैठना, छठ्ठ का तप करना, अडद (सिर्फ नाखून में समाये उतने) के दलहन तथा गर्म पानी की एक अंजलि से पारणा करना। इस प्रकार करनेवाले को छः मास के अंत में तेजोलेश्या प्राप्त होती है। यह विधि जानकर गोशाला प्रभु से अलग हुआ। गोशाले ने श्रावस्ती नगरी में जाकर प्रभु के बताये उपाय अनुसार कुम्हार के बाड़े में रहकर तेजोलेश्या की साधना की और श्री पार्श्वनाथ प्रभु के शिथिलाचारी शिष्यों से अष्टांग निमित्त का जानकर भी हुआ।

अब तो वह स्वयं को सर्वज्ञ मानने लगा और मनवाने लगा।

प्रभु महावीर को केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद अशाता वेदनीय कर्म का प्रबल उदय हुआ; यह आश्चर्यकारी घटना निम्नानुसार घटी।

एक बार भगवान महावीर देव श्रावस्ती नगरी में पधारे। वहाँ गौतम गणधर ने जो सुना था उसके बारे में भगवंत को पूछा, 'हे भगवन्! यह गोशाला अपने आपको अन्य जिन के रूप में परिचित करवाता है। तो यह दूसरा जिन कौन है? दूसरा जिन तो हो ही नहीं सकता है न?'

भगवंत ने कहा, 'हे गौतम! वह खरा जिन नहीं है, परंतु मंखलि और सुभद्रा का पुत्र है। पूर्व वह मेरा शिष्य बनकर रहा था। वह गो-बहुल ब्राह्मण की गौशाला में पैदा हुआ सो 'गौशाला' कहा जाता है। भवितव्यता के योग से मुझसे तेजोलेश्या की विद्या सीखा है। अष्टांग निमित्त वगैरह ज्ञात करके वह स्वयं का जिन के रूप में परिचय देता है।' यह बात धीरे धीरे समस्त श्रावस्ती नगरी में फैल गयी। यह जानकर गोशाला भडक उठा। उसे ऐसा लगा, 'महावीर क्या धंधा लेकर बैठा है? मुझे ही बदनाम करना?' इस प्रकार उसका गुस्सा बहुत बढ़ गया। उतने में गोशाला ने प्रभु के एक साधू आनंदमुनि को गोचरी के लिए जाते हुए देखा। वह चिल्लाकर बोला, 'ओ आनंद! खडा रह। तेरे गुरु को जाकर कहना कि अधिक गड़बड़ न करें, उलटी सुलटी कोई बात मेरे लिए न कहे कि मैं उनका शिष्य बनकर रहा था और उनसे विद्या सीखा था। ऐसा कहकर मुझे बदनाम न करें। अन्यथा मैं उसे और तुम सबको जलाकर राख कर दूंगा।'

यह सुनकर आनंद मुनि घबराये। उन्होंने आकर भगवंत को बात की। भगवंत ने आनंद मुनि को कहा, 'तूं गौतम गणधर आदि को कह दे कि सब साधू इधर-उधर हो जावे। गोशाला आ रहा है, कोई उसके साथ बात करना मत।'

इतने में झुंझलाता हुआ, छटपटाता हुआ गोशाला वहाँ आ पहुँचा और बोलने लगा, 'हे महावीर! तू झूठा है, तू जिन नहीं है, मैं ही जिन हूँ। तू मेरी मंखलिपुत्र के रूप में पिछान करवाता है परंतु वह मंखलिपुत्र तो मर गया है। वह अन्य था, मैं अन्य हूँ। उसके शरीर को परिषह सहन करने योग्य समझकर मैंने उसमें प्रवेश किया है। सो अब तू गड़बड बंद कर दे। गोशाले के शरीर में प्रवेश करनेवाला मैं जिन हूँ, सर्वज्ञ हूँ।'

भगवान बोले, 'हे गोशालक! तूं ऐसा झूठ बोलकर किसलिये अपनेआपको

दुर्गति में डाल रहा है? तूं स्वयं गोशाला था, वही तू आज है। किसीके शरीर में प्रवेश करने का झूठ तूं क्यों बोलता है?' यह सुनकर अग्नि में घी होमा हो उस प्रकार भगवान को ज्यों त्यों बोलने लगा। यह वहाँ खडे सुनक्षत्र और सर्वानुभूति नामक दो मुनियों से यह सहन न हुआ। वे आगे बढे, गोशाले को ज्यों त्यों बकता अटकाने के लिये कुछ कहने लगे। गोशाले के मुख से अग्नि प्रकटी और उन दोनों को जलाकर भस्म कर डाला। गुरु के प्रति अगाध भक्ति के कारण भगवान ने बोलने की ना कहने पर भी भीतर भक्तिभाव उछल आया, इस शुभ भावना के कारण कालानुसार दोनों देवलोक में गये। उसके बाद गोशाला ने प्रभु की ओर तेजोलेश्या छोडी। उस तेजोलेश्या ने भगवान को तीन प्रदक्षिणा दी और पुनः गोशाले के शरीर में प्रवेश कर गयी। वह आकुल-व्याकुल हो गया और छटपटता हुआ वहाँ से चल दिया। जाते जाते बका : 'ओ महावीर! तेरी मृत्यु छः मास में ही हो जायेगी।' भगवंत ने कहा, 'हे गोशालक! मैं तो अभी और सोलह वर्ष इस पृथ्वी पर विचरूंगा, लेकिन तेरे शरीर में प्रवेशी हुई इस तेजोलेश्या से तूं सात दिन में ही मृत्यु प्राप्त करेगा।'

गोशाला वहाँ से चला गया परंतु उसके शरीर में प्रसरी हुई तेजोलेश्या से उसे भयंकर दाह उत्पन्न हुआ। मार्ग में उसकी भक्त हालाहला कुम्हारन का घर आया, तीन चार दिन वहाँ रहा। उसके दाह की पीड़ा बढती जानकर भक्तों की टोलियाँ गोशाला की शाता पूछने आने लगी, गोशाला हाथ में मद्य का पात्र लेकर मद्य पीने लगा और गाने लगा एवं नाचने लगा तथा ज्यों त्यों असंबंध वचन बोलते हुए उसने कहा, हे शिष्यों! मेरे मरण के बाद मेरे मृत शरीर को सुगंधित जल से स्नान कराके सुगंधी विलेपन लगाना। उस पर उत्कृष्ठ वस्त्र लपेटना। दिव्य आभूषणों से सजाकर सहस्त्र पुरुषों से वहन करातीं हुई शिबिका में बिठाकर उत्सव सहित बाहर निकालना और उस समय 'चालू अवसर्पिणी के चौबीसवें तीर्थंकर ये गोशालक मोक्ष पधारे हैं' ऐसा कहते हुए उच्च स्वर में पूरी नगरी में उद्घोषणा करवाना।' उनके शिष्यों ने ऐसा करना स्वीकृत किया। तत्पश्चात् सातवें दिन गोशाले का हृदय सचमुच शुद्ध हुआ, वह अत्यंत पश्चात्ताप करने लगा, 'अहो! मैं कैसा पापी! कैसा दुर्मति! मेरे धर्मगुरु श्री वीर अर्हंत प्रभु की मन-वचन-काया से मैंने अत्यंत आशातना की। मैंने सर्व स्थानों में मेरी आत्मा को मिथ्या ही सर्वज्ञ कहलवायी व सत्य समान दिखते मिथ्या उपदेश से सर्व लोगों को छला; अरे! मुझे धिक्कार है।

गुरु के दो उत्तम शिष्यों को मैंने तेजोलेश्या से जला डाला। और अंत में मेरी आत्मा का दहन करने के लिए मैंने प्रभु पर भी तेजोलेश्या छोड़ी। मुझे धिक्कार है। अरे! थोडे दिन के लिए लम्बे काल नरकवास में निवास हो वैसा अनार्यकार्य मैंने किया। ऐसे ऐसे पश्चात्ताप के वचन बोलते हुए सब शिष्यों को पास बुलाकर कहा, 'हे शिष्यों! सूनों। मैं अर्हंत नहीं हूँ व केवली भी नहीं हूँ। मैं तो मंखली का पुत्र और श्री वीरप्रभु का शिष्य गौशाला हूँ। मैंने इतने लम्बे काल तक दंभ से मेरी आत्मा और लोगों को ठगा है। मेरी अपनी ही तेजोलेश्या से स्वयं जलता मैं छद्मस्थरूप में मृत्यु पाऊँगा। मेरे मरण के बाद मेरे शरीर के चरणों को बांधकर मुझे पूरे नगर में घसीटना। मरे हुए श्वान की भाँति खींचते हुए मेरे मुख पर थूंकना और पूरी नगरी में चौक, चबूतरे और गली गली में ऐसी उद्घोषणा करना कि लोगों को दंभ से ठगनेवाला, मुनि का द्रोह करनेवाला, जिन न होते हुए भी अपने को जिन कहलानेवाला, दोष का ही निधान, गुरु द्रोही और गुरु का ही विनाश चाहनेवाला मंखली का पुत्र यह गोशाला है, वह जिन नहीं है। जिनेश्वर भगवान तो सर्वज्ञ, करुणानिधि हितोपदेशक श्री वीरप्रभु हैं। यह गोशाला वृथा अभिमानी है।' इस प्रकार करते हुए, उपस्थित सर्व को सौगन्ध देकर गोशाला व्यथा से अत्यंत पीडा सहन करते हुए मृत्यु पा गया। उसके शिष्यों ने लज्जा से उसके शव को कुम्हारन के घर से बाहर निकालकर गोशाला के अंतिम वचनों के अनुसार रस्सी से पैर बांधकर उद्घोषणापूर्वक घसीटा और उसके उपासकों ने बड़ी समृद्धि से उसका अग्नि संस्कार किया।

श्री वीरप्रभु को तत्पश्चात् श्री गौतम ने पूछा, 'हे स्वामी! गोशाला ने कौनसी गति पायी?' प्रभु बोले, 'अच्यूत देवलोक में गया।' गौतम ने पुनः पूछा, 'प्रभु! ऐसा उन्मार्गी और अकार्य करनेवाला दुरात्मा गोशाला देवता कैसे बना? इससे मुझे बड़ा आश्चर्य होता है।' प्रभु ने उत्तर दिया, 'हे गौतम! अंत समय में अपने दुष्ट कृत्य की निंदा करता है, उससे देवत्व दूर नहीं है, गोशाला ने भी वैसा किया था। गौतम की अधिक पूछताछ पर प्रभु ने कहा, 'उसे करे हुए कर्म अन्य जन्मो में अधोगामी होकर भुगतने पडेंगे।'

अपने गुरु का द्रोह कभी भी न करना - यह पूरी कहानी का सारांश है।

●

१८ सम्राट संप्रति

सम्राट अशोक के समय की बात है।

एक दोपहर के समय साधू सब गोचरी के लिये निकले थे। गोचरी लेकर वे पास लौट रहे थे, तो उनको एक भिखारी मिला। उसने कहा, 'आपके पास भिक्षा है तो थोड़ा भोजन मुझे दो। मैं भूखा हूँ। भूख से मर रहा हूँ।' उस समय साधू ने वात्सल्यभाव से कहा, 'भाई! इस भिक्षा में से हम तुझे कुछ भी नहीं दे सकते क्योंकि उस पर हमारे गुरुदेव का अधिकार है। तूं हमारे साथ गुरुदेव के पास चल। उन्हें तूं प्रार्थना करना। उनको योग्य लगेगा तो वे तुझे भोजन करायेंगे।

साधू के सरल और स्नेहभरे वचनों पर उस भिखारी को विश्वास बैठा। वह उन साधुओं के पीछे पीछे गया। साधुओं ने गुरुदेव आचार्यश्री आर्यसुहस्ति को बात की। भिखारी ने भी आचार्यदेव को भाव से वंदना की और भोजन की मांग की। आचार्यश्री आर्यसुहस्ति विशिष्ट कोटि के ज्ञानी पुरुष थे। उन्होंने भिखारी का चेहरा देखा। कुछ पल सोचा, भविष्य में बड़ा धर्मप्रचारक होगा ऐसा जानकर भिखारी को कहा, 'महानुभाव! हम तुझे मात्र भोजन दे ऐसा नहीं परंतु हमारे जैसा तुझको बना भी दे। बोल तुझे बनना है साधू?'

भिखारी भूख से व्याकुल था, भूख का मारा मनुष्य क्या करने के लिए तैयार नहीं होता? भिखारी साधू बनने के लिए तैयार हो गया। उसे तो भोजन से मतलब था और कपड़े भी अच्छे मिलनेवाले थे। भिखारी ने साधू बनने की हाँ कही। दयाभाव से साधुओं ने उसे वेश परिवर्तन कराकर दीक्षा दी और गोचरी के लिए बैठा दिया।

इस नये साधू ने पेट भरकर खाया। बडे लम्बे समय के बाद अच्छा भोजन मिलने से, खाना चाहिये उससे अधिक खाया। रात को उसके पेट में पीडा हुई। पीड़ा बढती गयी। प्रतिक्रमण करने के बाद सब साधू उसके पास बैठ गये और नवकार महामंत्र सुनाने लगे। प्रतिक्रमण करने आये हुए श्रावक भी इस नये साधू की सेवा करने लगे।

आचार्यदेव स्वयं प्रेम से धर्म सुनाने लगे। यह सब देखकर नया साधू

मन में सोचने लगा कि मैं तो पेट भरने के लिये साधू बना था। कल तक तो ये लोग मेरी ओर देखते भी नहीं थे और आज मेरे पैर दबा रहे हैं। और ये आचार्यदेव! कितनी ज्यादह करुणा है उनमें। मुझे समाधि देने के लिए वे कैसी अच्छा धार्मिक बातें मुझे समझा रहे हैं। यह तो जैन दीक्षा का प्रभाव। परंतु यदि मैंने सच्चे भाव से दीक्षा ली होती तो....।' इस प्रकार साधूधर्म की अनुमोदना करते करते और नवकार मंत्र का श्रवण करते करते उसकी मृत्यु हुई और महान अशोक सम्राट के पुत्र कृणाल की रानी की कोख से उसका जन्म हुआ। उसका नाम संप्रति रखा।

वयस्क होने पर उन्हें उज्जैन की राजगद्दी मिली और सम्राट संप्रति के रूप में पहचाने जाने लगे।

एक बार वे अपने महल के झरोखे में बैठे थे और राजमार्ग पर आवागमन देख रहे थे। वहाँ उन्होंने कई साधुओं को गुजरते हुए देखा। उनके आगे साधू महाराज थे, वे उन्हें कुछ परिचित लगे। उनके सामने वे अनिमेष देखते रहे। अचानक ही उनको पूर्वजन्म की याद ताजा हो गई। उनके समक्ष पूर्व भव की स्मृति लहराने लगी और वे पुकार उठे, 'गुरुदेव! तुरंत ही वे सीढी उतरकर राजमार्ग पर आये और गुरु महाराज के चरणों में सिर झुका दिया, और उनको महल में पधारने का आमंत्रण दिया।

उनको महल में ले जाकर पीढे पर बिठाकर सम्राट संप्रति ने पूछा, 'गुरुदेव! मेरी पहचान पड़ रही है।'

'हाँ वत्स! तुझे पहचाना। तूं मेरा शिष्य। तूं पूर्वजन्म में मेरा शिष्य था।' गुरुजीने कहा।

संप्रति ने कहा, 'गुरुदेव! आपकी कृपा से ही मैं राजा बना हूँ। यह राज्य मुझे आपकी कृपा से ही मिला है। मैं तो एक भिखारी था। घर घर भीख माँगता था और कहीं से रोटी का एक टुकड़ा भी मिलता नहीं था। तब आपने मुझे दीक्षा दी। भोजन भी कराया। खूब ही वात्सल्य से अपना बना दिया। हे प्रभो! रात्रि के समय मेरे प्राण निकल रहे थे तब आपने मेरे समीप बैठकर नवकार महामंत्र सुनाया। मेरी समता और समाधि टिकाने का भरपूर प्रयत्न किया। प्रभु! मेरा समाधिमरण हुआ और मैं इस राजकुटुम्ब में जन्मा। आपकी कृपा का ही यह सब फल है।''

'हे गुरुदेव! यह राज्य में आपको समर्पित करता हूँ। आप इसका स्वीकार करें और मुझे ऋणमुक्त करें।

आर्यसुहस्ति ने संप्रति को कहा : 'महानुभाव! यह तेरा सौजन्य है कि तूं तेरा पूरा राज्य मुझे देने के लिये तत्पर हुआ है। परंतु जैन मुनि अकिंचन होते हैं। वे अपने पास किसी भी प्रकार की संपत्ति या द्रव्य रखते नहीं है।'

सम्राट संप्रति को 'जैन साधू संपत्ति रख सकते नहीं है' इस बात का ज्ञान न था। पूर्व भव में भी उसकी दीक्षा केवल आधे दिन की थी। इस कारण उस भव में भी इस बारे में उसका ज्ञान सीमित था।

संप्रति के हृदय में गुरुदेव के प्रति उत्कृष्ठ समर्पण भाव छा गया था। यह था कृतज्ञता गुण का आविर्भाव।

आचार्यश्री ने सम्राट संप्रति को जैन धर्म का ज्ञाता बनाया। वे महाआराधक और महान प्रभावक बने। सम्राट संप्रति ने अपने जीवनकाल मे सवा लाख जिन मंदिर बनवाये और सवा करोड़ जिनमूर्तियाँ भरवायी और अहिंसा का खूब प्रचार किया।

गुरुदेव के उपकारों को भूलना नहीं, यही इस कथा का सार है।

●

तीन चीजों को भूलो मत	-	**उपदेशक, उपकार, उदारता।**
तीन चीजों को मान दो,	-	**न्याय, माता-पिता, बुजुर्ग।**
तीन चीजों से महान बनो	-	**धीर-गंभीर-सदाचार।**
तीन चीजों के लिए प्राण अर्पण करो	-	**देश-धर्म-मित्र॥**
तीन चीजों के लिए अभिमान न करो	-	**धन, विद्या, सौन्दर्य।**

१९ — विश्वभूति और विशाखानंदी —

मरीचि का जीव कई भवों के पश्चात् पूर्वजन्म में उपार्जन किये हुए शुभ कर्म से विशाखाभूति युवराज की धारिणी नामक स्त्री से विश्वभूति नामक पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ।

विश्वभूति को विशाखानंदी नामक चचेरा भाई था। एक बार विश्वभूति अपने अंत:पुर सहित पुष्पकरंडक नामक उद्यान में क्रीडा कर रहा था। वहाँ विशाखानंद आकस्मिक आ पहुँचा परंतु उद्यान में विश्वभूति होने से अन्दर न पहुँच सका। इस कारण उसको बाहर निकालने के लिये गलत प्रचार करवाया कि एक सामंत उद्धत हो गया है, सो राजा उसे पकडने के लिये स्वयं जा रहा है। यह खबर सुनकर सरल स्वभाव का विश्वभूति उद्यान से बाहर आया। इस मौके का लाभ लेकर विशाखानंदी उद्यान में अपने अंत:पुर के साथ घूस गया। विश्वभूति राजा को जाने की जरूरत नहीं - ऐसा समझाकर सेना के साथ स्वयं गया। कुछ आगे कूच करते हुए पुरुषसिंह नामक सामंत मिला और वह राजा का आज्ञाकारी है - ऐसा जानकर वापिस लौट चला। मार्ग में पुष्पकरंडक वन नज़दीक आते ही द्वारपाल ने बताया कि अन्दर विशाखानंदीकुमार है। यह सुनकर वह सोचने लगा कि मुझे कपट से पुष्पकरंडक वन में से निकाला जिससे क्रोधित होकर एक मुष्टि से कपित्थ वृक्ष पर प्रहार किया। इस कारण पेड पर के सब कैथ फल जमीन पर गिर पडे और विशाखानंदी को सुनाते हुए बोला : 'यदि बुजुर्ग पिताश्री पर मेरी भक्ति नहीं होती तो मैं सि कैथ फल की तरह तुम्हारे सर्व के मस्तिक भूमि पर गिरा डालता।' इस प्रकार उत्तेजित विश्वभूति संसार के प्रपंचो से ऊब गया। वह संभूति मुनि के पास पहुँचा और चारित्र ग्रहण किया।

गुरू की आज्ञा से एकाकी विहार करते हुए और प्रखर तप करते करते विश्वभूति मुनि मथुरा आये। उस दिन विशाखानंदी राजपुत्री को ब्याहने मथुरा आया था। विश्वभूति मासक्षमण के पारणे हेतु गोचरी के लिये जा रहे थे। वे विशाखानंदी की छावनी के नज़दीक आये तो उसके मनुष्यों ने 'यह विश्वभूति कुमार मुनि जा रहे हैं' ऐसा कहकर विशाखानंदी को दिखाया। उनको देखकर

विशाखानंदी को कोप चढ़ा। इतन में विश्वभूति मुनि एक गाय के साथ टकराये और गिर पड़े। यह देखकर 'कैथ फलों को तोडनेवाला तेरा बल कहाँ गया?' ऐसा कहकर विशाखानंदी हँस पडा। यह सुनकर विश्वभूति को गुस्सा आया। अपना बल दिखाने के लिये उन्होंने गाय को सिंगों से पकडा और आकाश में घुमाया। उछाल कर वापस पकड भी ली। तत्पश्चात् ऐसा नियाणा बांधा कि 'इस उग्र तपस्या के प्रभाव से मैं भवांतर में बड़ा पराक्रमी और बलवान् बनूं। उसके बाद कोटि वर्ष का आयुष्य पूर्ण करके पूर्व किये हुए 'नियाणा' की आलोचना किये बिना मृत्यु पाकर वह विश्वभूति महाशुक्र देवलोक में उत्कृष्ट आयुष्यवाला देवता बना।

तत्पश्चात् त्रिपृष्ठ वासुदेव नामक भव में इस विश्वभूति के जीवको अतुल और अपूर्व शक्ति मिली परंतु साधूता नहीं मिली। उस शक्ति ने उनकी आत्मा को पतन के पथ पर चलाया। मरकर वे नर्क में गये। उनकी आत्मा - मरीचि, विश्वभूति, त्रिपृष्ठ और श्री महावीर - ये सब एक ही आत्मा के अलग अलग भव हैं इससे पक्का ज्ञात होता है कि करे हुए पापकर्म किसीको छोड़ते नहीं है।

●

बिखरे मोती

- ज्ञान वह है जिसमें शोक व हर्ष न हो।
- अहिंसा अव्यवहार्य नहीं बल्कि वह जीवन के हर पहलु में व्यवहार्य है।
- वाणी का मीठा प्याला, नरक को स्वर्ग बना देता है।
- वाणी के मिठास से बढकर दुनिया में कोई वस्तु मीठी नहीं।

१०० श्री कामदेव श्रावक

चम्पा नगरी में कामदेव नामक बड़ा गृहस्थ रहता था महाधनिक होने के कारण उसने छः कोटि द्रव्य पृथ्वी में गाढा था। छः कोटि द्रव्य व्यापार में लगाया था और छः कोटि द्रव्य घर, गृहस्थी और वस्त्र आभूषण आदि में लगाया था। उसके दस दस हजार गायोंवाले छः गोकुल थे।

एक बार श्री महावीर स्वामी उस नगरी के पूर्णभद्र नामक चैत्य में पधारे। वहाँ श्री जिनेश्वर की वंदना के लिए नगरजन जाते थे। यह देखकर कामदेव भी गया। वहाँ श्री वीरप्रभु को प्रणाम करके उनकी देशना सुनी। इससे कामदेव ने प्रतिबोध पाया और आनन्द श्रावक की भाँति उस समय श्रावक धर्म ग्रहण किया। पश्चात् अपने घर आकर उल्लासपूर्वक स्वयं को धर्म की प्राप्ति होने का वृत्तांत अपनीपत्नी को कहा। यह सुनकर भी बड़ी समृद्धिपूर्वक प्रभु के पास जाकर श्राविक धर्म ग्रहण किया।

निरंतर उत्तम प्रकार से श्रावक धर्म का प्रति पालन करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। पन्द्रहवें वर्ष मैं एक बार मध्यरात्रि को धर्म जागरिका के वक्त जागते हुए कामदेव को विचार आया कि 'घर का समग्र कारोबार पुत्रों पर डालकर अब मैं श्रावक की बारह महा प्रतिज्ञाएँ वहन करूं।' प्रातःकाल उठकर अपने पुत्रों को घर का सर्व कारोबार सौंपकार स्वयं पौषधशाला में रहकर दर्भ के संथारे पर बैठकर श्री जिनेश्वर का ध्यान धरने लगा। एक रात्रि को कामदेव ध्यान में बैठा था, उस समय सौधर्मेन्द्र ने अपनी सभा में कामदेव की प्रशंसा की। उस पर श्रद्धा न रखकर कोई एक देव कामदेव की परीक्षा करने आया। वह देव दैवी शक्ति से कई भयंकर रूप दिखाकर उसे डराने लगा और बोला कि तूं धर्म को छोड़ दे नहीं तो तीक्ष्ण खड्ग के प्रहार से तूझे बेमौत मार दूंगा। जिससे तूं आर्तध्यान से पीडित होकर अनंत दुर्गति का दुःख पायेगा।' इस प्रकार उसने बार बार कहा परंतु उस श्रेष्ठीने थोडा सा भी भय न पाया तब उस देव ने क्रोध से उस पर खड्ग के प्रहार किये, फिर भी श्रेष्ठी ने क्षोभ न पाया। तब उस देव ने भयानक हस्ती का रूप लिया और बोला, 'हे दंभ के सागर! इस सूंढ से तुझे आकाश में उछालकर जब

पृथ्वी पर गिराऊँगा। तब चारों पैरों से दबाकर चूर्ण कर डालूंगा।' ऐसा कहकर उस देवता ने सर्व शक्ति से हस्तीरूप परिषह दिया मगर श्रेष्ठी जरा सा भी क्षोभ न पाया। तब उसे क्षोभ देने के लिये महाभयंकर अनेक फनवाले सर्प का रूप लिया और सब फनों से फुफकारता हुआ वह बोला, 'अरे! मृत्यु की प्रार्थना करनेवाले! श्री वीर धूर्त के धर्म को छोड़कर मुझे प्रणाम कर, नहीं तो मैं ऐसा दंश दूंगा कि जिसके विष की वेदना से पीडीत होकर तूं दुर्गति पायेगा।' ऐसी वाणी से भी श्रेष्ठी जरा सा भी न घबराया। तब सर्प ने उसके शरीर पर तीन लपेट ली और उसके कण्ठ पर निर्दयता से दंश दिया। विष की वेदना को भी श्रेष्ठी ने सम्यक प्रकार से सही और मन में श्री महावीर परमात्मा का स्मरण करते हुए अधिक से अधिक ध्यान धरने लगा।

देवता को लगा कि इसके दृढ मनोबल की शक्ति का अल्प नाश करने के लिए भी वह समर्थ नहीं है, अंत में देवता थक गया। तब श्रेष्ठी को प्रणाम करके बोला कि 'हे श्रावक! तुझे धन्य है। माया रूपी पृथ्वी को खोदनेवाले हल समान ऐसे परम धीर श्री महावीर स्वामी ने कहे धर्म मार्ग में स्थिर तूं सत्य है। तेरे इस समक्ति रूप दर्पण में देखने से मुझमें भी सम्यग् दर्शन स्वरूप प्रगट हुआ है, और अनादिकाल के मिथ्यात्व का नाश हुआ है। तेरे धर्माचार्य तो श्री महावीर हैं। परंतु मेरा धर्माचार्य तो तू है। चन्दनवृक्ष की भाँति तुने परिषह सहन करके मुझे सम्यक्त्वरूपी खुशुबों दी है। ये मेरे सर्व अपराध क्षमा करना' इत्यादि वचनों से श्रेष्ठी की स्तुति करके देवता ने स्वर्ग से स्वयं के आने का कारण कह सुनाया। और बोला कि 'मैं स्वर्ग से सम्यक्त्व रहित यहाँ आया था, और उससे परिपूर्ण होकर वापिस स्वर्ग जाऊँगा। तुने बहुत अच्छा किया कि एक मिथ्यात्व रूपी बोझ हटाकर मुझे खाली कर दिया और एक सम्यक् दर्शन रूप रत्न के दान से मुझे भरपूर बना दिया।' ऐसा कहकर वह देव श्रेष्ठी को तीन प्रदक्षिणा देकर उसके उपकार का स्मरण करता हुआ स्वर्ग गया। तत्पश्चात् श्रेष्ठी कायोत्सर्ग पूरा करके वहाँ पधारे हुए श्री महावीर स्वामी को वंदन करने गया। उस समय चार पर्षदाओं के समक्ष प्रभु ने कहा, 'हे श्रावक, तुहने आज रात्रि को तीन महा भयंकर परिषहों को ठीक तरह से सहन किया और धर्मध्यान से जरा भी चलित नहीं हुआ। उस देवता ने क्रोध से अपनी सर्वशक्ति लगायी और तुमने भी आत्मवीर्य की खूशबो महकाकर

मन से स्थिरता रखी। तेरा व्रत पालन मेरु पर्वत के जैसा अचलित है। अंत में वह देवता तुझसे क्षमापना करके गया। यह सब हकीकत सही है?'

कामदेव ने कहा, 'प्रभु! ऐसा ही है।' इस प्रकार प्रभु ने उसकी दृढता की प्रशंसा करके सर्व साधू - साध्वियों को कहा, 'हे गौतमादिक साधू! जब श्रावक भी ऐसे - उपसर्ग सहन करते हैं तो तुम्हें तो उससे भी अधिक सहन करने चाहिये क्योंकि उपसर्ग रूपी सैन्य को जीतने के लिये ही रजोहरण रूपी वीर वलय को धारण करके विचरते हो।' यह सुनकर सबने 'तहत्ति' कहकर प्रभु के उस उपदेश का स्वीकार किया और वे भी कामदेव की प्रशंसा करने लगे।

तत्पश्चात् कामदेव श्रावक अपने घर गया और आनंद श्रावक की भाँति श्रावक के व्रतों का पूर्ण पालन करके वर्षों तक जैन धर्म पालन किया। आयुष्य के अंत में एक माह की संलेखना करके प्रथम देवलोक में चार पल्योपम के आयुष्यवाला वैमानिक देवता बना। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धिपद पायेगा।

'भयंकर उपसर्ग आये फिर भी दृढता व्रत में तल्लीन रहे कामदेव श्रावक को धन्य है कि जिनकी श्लाघा तीर्थंकरोंने भी की है।'

●

वर्तमान दूषित वातावरण में

सत्य सरस था किन्तु, परिभाषाओं ने जटिल कर दिया॥
हृदय विमल था किन्तु, अभिलाषाओंने कुटिल कर दिया॥
मन अविचल था किन्तु, भ्रमणाओं ने उसे चंचल कर दिया॥
तर्क सरल था, किन्तु कुंठाओं ने उसे कठिन कर दिया॥

१०१ श्री उदयन मंत्री

एक बार श्री कुमारपाल राजा ने सोरठ देश के राजा समरसेन को जीतने के लिये - अपने मंत्री उदयन को भेजा। पालिताणा पहुँचने पर तलहटी के दर्शन करके श्री ऋषभदेव भगवान की वंदना करने की इच्छा होने से वह अन्य सैनिकों को आगे बढ़ने का कहकर वह शत्रुंजय पर्वत पर चढ़ा। दर्शन वंदन करके तीसरी-निसीही कहकर चैत्यवंदन करने वह बैठा।

चैत्यवंदन करते हुए उसकी नज़र के समक्ष एक चूहा दीये की जलती बत्ती लेकर अपने बील की ओर दौडता देखा। मंदिर के पूजारीयों ने दौड़कर चूहे से बत्ती छुडवाकर बुझा दी। यह सब देखकर मंत्री ने मन से सोचा - मंदिर तो काष्ठ का है। काष्ठ के स्तंभ, छत बगैरह होने के कारण कोई बार ऐसी घटना से आग लगने का संभव हो सकता है।

राज्य के राजा तथा समृद्ध व्यापारी काष्ठ मंदिर को पत्थर का बनाकर जीर्ण चैत्य को नूतन क्यों न बनाये? ऐसा वे न करें तो मुझे इस मंदिर का जीर्णोद्धार करना चाहिये। ऐसी भावना से जहाँ तक जीर्णोद्धार न हो तब तक ब्रह्मचर्य, एकासना, पृथ्वी पर शयन और तांबूल का त्याग आदि अभिग्रह प्रभु समक्ष ग्रहण किये। और सिद्धगिरि पर से उतरकर प्रयाण करते हुए अपने सैनिकों के साथ हो गये।

समरसेन राजा के साथ युद्ध होने पर अपना सैन्य भागने के कारण उदयन मंत्री संग्राम में उतरकर शत्रु सैन्य को घायल करने लगे। खुद शत्रु के बाणों से बड़े घायल हुए पर अपने बाण से समरराजा पर विजय पायी। इस कारण शत्रु सैनिक भाग खड़े हुए और उस देश में अपने राजा कुमारपाल की अहिंसा की आज्ञाएँ देकर मंत्री स्वदेश की ओर लौटे।

मार्ग में शत्रु के प्रहार की पीडा से उदयन मंत्री की आँखों में अंधेरा छा जाने से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे और करुण स्वर में रोने लगे। सामंतो ने उन पर जल छिड़का और अपने वस्त्रों से पवन डालकर, कुछ शुद्धि में लाकर उनको पूछा, 'आपको कुछ कहना है?' तब उदयन मंत्री ने करुणता से कहा, 'मेरे मन में चार शल्य हैं।' छोटे पुत्र अंबड को सेनापति पद दिलाना, शत्रुजय गिरि पर पत्थरमय प्रसाद बनाना, गिरनार पर्वत पर चढने के लिए नयी सिढ्यिाँ बनवानी और अंत समय पर मुझे कोई मुनि महाराजा पुण्य सुनाकर समाधिचरण कराये।

मंत्री की ये चार इच्छाएँ सुनकर सामंतो ने कहा, 'चार में से तीन तो आपका बड़ा पुत्र बाहडदेव जरूर पूर्ण करेगा। परंतु यहाँ जंगल में धर्म सुनानेवाले मुनिराज हो तो तलाश करके जल्दी से लाने का प्रबन्ध करते हैं।'

थोडी दूर गाँव में एक भाँड रहता था जो बहुरूपिये का पेशा करके धन कमाता था। सैनिको ने वहाँ जाकर बताया कि एक जैन मुनि महाराज की जरूरत है। भाँड बोला, 'मुझे चौबीस घण्टें का समय दो, मैं जैन मुनि के बारे में सब जानकर, जैन मुनि का वेष जरूर अच्छा निभा लूंगा।'

जैसे तैसे अतिशय पीडा से पीडित मंत्री ने अर्धबेहोशी में रात गुजार दी। भाण्ड सुबह में ठीक साधू महाराज जैसा भेष बनाकर ओथा, मुहपत्ती के साथ आ पहुँचा और 'धर्मलाभ' कहकर खडा रहा। कुछ होश में आते ही मंत्रीश्वर ने बैठकर गौतम स्वामी की तरह झुककर समग्र प्राणियों से मन से क्षमापना की। करे हुए पापों की निन्दा तथा पुण्यकरणी की अनुमोदना करते हुए मुनिराज से धर्म सुनने लगे।

तीन बार नवकार मंत्र सुनाया। भक्तामर स्तोत्र की पहली तथा दूसरी गाथा बड़े मधुर स्वर से गायी। भक्तामर की दूसरी गाथा पूरी होते ही 'स्तोष्ये किलाहमपितं प्रथमं जिनेन्द्रम' बोला। उस समय मंत्री गुरु को वंदन हेतु झुकते हो उस प्रकार झुके और उनका प्राणपंखेरु उड गया। समाधिमरण होते ही उदयन मंत्री स्वर्ग गये।

सामंतो ने साधू के वेशवाले भाण्ड को सुंदर अभिनय से वेष करने का अच्छा पुरस्कार धरा और अब साधू भेष उतार देने के लिए कहा। परंतु वह तो सोच रहा था कि अहा! साधूवेष की कैसी महिमा है? मैं भिक्षुक हूँ और ये सैनिक वगैरह जिनकी पूजा करते हैं, वंदना करते हैं, उन्होने मेरी वंदना की; सो यह वेष अब नहीं छोडा जा सकता। उसको सद्गुरु के पास जाकर भाव से विधिपूर्वक दीक्षा लेकर वाकई मे साधू बनकर साधूवेष शोभायमान करने की भावना जाग्रत हुई। उसने पुरस्कार अस्वीकार करते हुए कहा : 'मंत्रीश्वर की आँखें बंद हो गई लेकिन मेरी आँखें खुल गयी।''

'मेरी तो सचमुच दीक्षा लेकर भव पार करने की एक मात्र इच्छा है' यूं कहकर एक आचार्य से दीक्षा लेकर गिरनार पर्वत पर जाकर दो माह का अनसन करके कालानुसार देव लोक गया।

मृत्यु समय पर मंत्रीश्वर ने जो अन्य तीन इच्छाएँ की थी वह पाटण लौटने पर बाहड मंत्री ने पूर्ण कर दी।

●

१०२ — शैलक राजर्षि एवं पंथक मुनि —

शैलक राजर्षि पांचसौं शिष्यों के साथ विचर रहे थे। ज्ञान, ध्यान के साथ वे उग्र तपश्चर्या करते थे। लगातार आयंबील का तप और रूखासूखा भोजन करने से, उनके शरीर में 'दाहज्वर' का रोग हुआ। परंतु उनको तो शरीर पर ममत्व ही नहीं था। रोग होन पर भी वे इलाज नहीं कराते थे।

पांचसौं शिष्यों के परिवार के साथ वे शेलकपुर पधारे, जहाँ राजा - मंडुक राज्य करते थे। वे एक दिन आचार्य का दर्शन करने आये। दर्शन वंदन करके उन्होंने आचार्य देव की कुशलता पूछी और ज्ञात कर लिया कि गुरुदेव दाहज्वर से पीड़ीत हैं और शरीर निरा कृश बन चुका है।

राजा ने आचार्यश्री को बिनती की, 'हे कृपावंत! आप यहाँ स्थिरता करें। रोग की चिकित्सा करने का मुझे लाभ दीजिये। आप निरोगी होगें तो अनेक जीवों को उपदेश द्वारा उपकारी होंगे। इसलिये मेरी प्रार्थना स्वीकारे।'

मंडूक राजा की आग्रहपूर्वक की बिनती शैलकाचार्यने स्वीकृत कर राजा की यानशाला में स्थिरता की । (रथ वगैरह रखने की जगह को यानशाला कहते हैं)

कुशल बैद्यो द्वारा आचार्य श्री की चिकित्सा प्रारंभ हुई, परंतु कुछ दिन की चिकित्सा के बाद कुछ फर्क न दिखा तो बैद्यो ने मुनियों को कभी भी खपता नहीं हो परंतु रोग निवारण के लिये 'मद्यप्रान' करने के लिए कहा। हरेक नियम का अपवाद हो सकता है ऐसा समझकर आचार्यश्री ने दवाओं के साथ मद्यपान करना शुरू किया।

शरीर निरोगी बनता गया परंतु कमजोरी तो थी। राज्य के रसोईघर से घी - दूध के साथ साथ पुष्टिकारक व्यंजन भी आने लगे। मद्यपान के साथ ये स्वादिष्ट व्यंजन और पूर्ण आराम के कारण शरीर आलसी बनता गया। धीरे धीरे प्रतिक्रमण पडिलेहण भी छूटता गया। स्वादिष्ट व्यंजन खाना, मद्यपान करना और आलस के कारण सोना-ऐसा नित्यक्रम हो गया शैलकाचार्य का।

मद्यपान वाकई में अच्छे-अच्छों का पतन कराता है। आचार्य तो भूल गये कि 'मैं साधू हूँ।' मैं पांचसौं शिष्यों का गुरु हूँ। भूल गये कि' मैं जैन धर्म का आचार्य हूँ।

शिष्य सब सोचने लगे कि अब क्या करना। साधारण संयोगों में गुरु

को उपदेश नहीं दिया जा सकता। शायद दो अक्षर कहे तो नशे में चकचूर गुरु कुछ सुने ऐसे न थे। धीरे धीरे शिष्य गुरु को छोड़कर अन्य आचार्यों के पास चले गये। उन्हें अपना चारित्र संभालना था।

परंतु एक शिष्य 'पंथक मुनि' ने गुरु को किसी भी प्रकार से पुनः सन्मार्ग पर लाने की आशा के कारण गुरु का त्याग न किया वह मार्ग भूले गुरु से सटा रहा। उनकी सेवा सुश्रूषा जारी रखी। 'गुरु परम उपकारी है। इस समय उनका पापोदय है। परंतु ऐसे समय पर गुरु का त्याग करना ठीक नहीं है। एक दिन जरूर उनकी आत्मा जागेगी और पुनः संयम में स्थिर हो जायेंगे। इस प्रकार कई दिन बीत गये। पंथक मुनि गुरू की वयावच्य बराबर करते रहे।

इस तरह चातुर्मास पूर्ण हुआ। शैलकाचार्य की स्थिति तो वही बनी रही, खाना पीना और सोना।'

चौमासी प्रतिक्रमण का समय हुआ। पंथक मुनिवर ने समयोचित प्रतिक्रमण प्रारंभ किया। प्रतिक्रमण की क्रिया में जब गुरू महाराज से क्षमापन की क्रिया आयी तो पंथक मुनि ने धीरे से गुरुदेव के चरणों पर हाथ रखा।

शैलकाचार्य चीडा उठे : 'क्यों मुझे जगाया। परेशान क्यों करता है?'

'गुरुदेव! क्षमा चाहता हूँ। मैं अविनीत हूँ। मैंने आपकी निन्द्रा में बाधा डाली। आज - चौमासी चौदहवी का प्रतिक्रमण करते हुए क्षमापना के लिये आपके चरणों पर हाथ रखा है।'

चौमासी प्रतिक्रमण का नाम सुनकर गुरुदेव चौंके, 'है? आज चौमासी चौदहवीं। चातुर्मास पूर्ण हो गया।'

राजर्षि खड़े हो गये। पंथक मुनि से क्षमापना की और शीघ्र ही प्रतिक्रमण करने बैठ गये। आत्मसाक्षी से खूब आत्मनिंदा की और प्रतिक्रमण किया।

दूसरे दिन राजा मंडुक को कहकर शैलकाचार्यने पंथक मुनि के साथ विहार किया। पंथक मुनि बड़े प्रसन्न हुए। मार्ग भूले गुरूदेव पुनः मोक्षमार्ग पर चढ़ गये। विहार करते करते ४९९ शिष्य धीरे धीरे शैलकाचार्य के पास आ गये। पुनः पुनः एक दूसरे से क्षमापना की। सबने पंथक मुनि को लाख लाख अभिनंदन दिये। भले प्रकार से संयम की आराधना की, शैलकाचार्य शत्रुंजय गिरिराज पर पहुँचे। एक माह का अनशन किया। सर्व कर्मों का क्षय किया। सबने निर्वाण प्राप्त किया। धन्य प्रमाद त्यागी गुरू, धन्य शिष्य पंथक...

●

१०२ क्षुल्लक शिष्य

वसंतपुर में देवप्रिय नामक श्रेष्ठी रहता था। युवावस्था में उसकी स्त्री का मरण हुआ और उससे उसे वैराग्य हुआ। इस कारण अपने आठ वर्षीय पुत्र सहित उसने दीक्षा ग्रहण की। देवप्रिय बहुत अच्छी तरह से चारित्र पालते थे परंतु बालक जिसका नाम क्षुल्लक था वह जैन आचार पालन में शिथिल था। वह परिषहों को सहन नहीं कर पाता था। जूते बिना चलना उसको मुश्किल लगता था इसलिये एक बार अपने साधू पिता को उसने कहा, 'ब्राह्मणों का दर्शन श्रेष्ठ लगता है, जिसमें पाँवों की रक्षा हेतु जूते पहनने की विधि है। यह सुनकर देवप्रिय मुनि ने क्षुल्लक तो बालक है और कुछ अंश में पुत्र के प्रति राग के कारण उसे जूते पहनने की छूट दी।'

थोड़े दिन बाद क्षुल्लक ने अपने गुरु पिता को कहा, 'हे पिता! धूप में बाहर निकलते ही मेरा सिर तप जाता हैं। तापसों का धर्म ठीक हैं क्योंकि वे सिर पर छत्र रखते हैं। यह सुनकर गुरु ने - इस क्षुल्लक में परिपक्वता नहीं है और यदि छाते वगैरह की अनुमति उसकी जरूरत अनुसार नहीं दूंगा तो शायद दीक्षा छोड देगा। ऐसा समझकर कुछ श्रावकों को कह कर उसे छाता दिलवाया।'

कई माह के पश्चात् क्षुल्लक ने पुनः कहा 'गोचरी के लिये घर घर भटकना बडा मुश्किल लगता है। पंचाग्नि साधन करनेवाला आचार मुझे श्रेष्ठ लगता है क्योंकि कई लोग - उनके समक्ष आकर भिक्षा दे जाते हैं। गुरू ने पूर्वानुसार सोचकर भिक्षा लाकर स्वयं उसे देने लगे। इससे क्षुल्लक मुनि ने गोचरी के लिए जाना बंद कर दिया। एक दिन सवेरे उठकर क्षुल्लक मुनि ने शाक्यमत की प्रशंसा करते हुए कहा, 'पृथ्वी पर संथारा करने से मेरा शरीर दुखता है, सो सोने के लिये एक पलंग हो तो कितना अच्छा।' इस कारण गुरु ने उपाश्रय में से लकड़े की चौकी सोने के लिए उसे दी। तत्पश्चात् पुत्र मुनि को स्नान बिना ठीक न लगा तो उसने शौचमूल धर्म की प्रशंसा की। तब पिता ने उबाला हुआ पानी लाकर उससे स्नान करने की अनुज्ञा दी। समय बीतने पर लोच सहन नहीं कर सकने के कारण उस्त्रे से मुण्डन कराने की भी अनुमति दी।

इस प्रकार करते क्षुल्लक मुनि युवावस्था में पहुँचे। एक बार उसने गुरु

पिता को कहा, 'गुरुजी मैं ब्रह्मचर्य पालने में समर्थ नहीं हूँ' ऐसा कहकर उसने गोपी और कृष्ण लीला की प्रशंसा की। यह सुनकर पिता ने सोचा, 'वाकई, यह पुत्र सर्वथा चारित्र पालने में असमर्थ है। मोहवश इतने समय तक उसने जो माँगा वह दिया। परंतु यह माँग तो किसी भी तरह से स्वीकृत नहीं की जा सकती। यह यदि मैं स्वीकृत करकर उसे अनुमति दूं तो वह तो नर्क मे जायेगा, मैं भी नर्क मे जाऊँगा।'

इस जीव को अनंता भवो में अनंत पुत्र हुए है तो उस पर किसलिये मोह रखना चाहिये? इत्यादि विचार करके क्षुल्लक मुनि को उन्होंने गच्छ बाहर निकाल दिया। इस प्रकार पिता से दूर होते ही अपनी मर्जी अनुसार जीवन बीताने लगा। क्रमानुसार वह अन्य भव में भैंसा बना और उसके पिता मुनि स्वर्गलोक में देवता बने।

देवता ने अवधिज्ञान से पुत्र को भैंसा बना देखकर सार्थवाह का रूप धारण करके उस भैंसे को खरीदा और उसका पानी की मशके भर लाने के लिये उपयोग करने लगा। उबड खाबड मार्ग पर चलते हुए भैंसा खडा रहता तब सार्थवाह कोडे से कडी मार मारता, तब भैंसा जोरो से चीखता तब सार्थवाह भी जोरो से चिल्लाता, 'अरे! क्यों चीखता है? पूर्व जन्म में मैं यूं करने में शक्तिमान नहीं हूं, त्यों करने में शक्तिमान नहीं हूं - यों बारबार कहता था, अब कह, भुगत तेरे कर्मो के फल।' इस प्रकार कहते हुए जोर से कोडा मारा।

कोडे की मार और सार्थवाह के ऐसे वचन सुनकर भैंसे को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। पूर्व भव नजर समक्ष आया और उसके नेत्र में से अश्रुपात करते हुए सोचने लगा, 'पूर्व भव में पिता के कहे अनुसार मैने चारित्र पालन नहीं किया और महामुश्किल से प्राप्त मनुष्य भव मैंने गँवा दिया। धिक्कार है मुझे। मेरे कर्मों से मैं भैंसा बना हूँ।'

भैंसे को ज्ञान हुआ जानकर देवता ने कहा, 'मैं तेरे पूर्व भव का पिता हूँ और तुझे पूर्वभव का स्मरण दिलाने आया हूँ। अभी भी यदि शुभगति की इच्छा हो तो अनशन ग्रहण कर।' यह सुनकर भैंसे ने अनशन ग्रहण किया और वहाँ से मरकर वैमानिक देवता बना। इसलिये लिये हुए व्रत का शुद्धतापूर्वक पालन करना और क्षुल्लक मुनि की भाँति दूसरे दर्शन के आचार देखकर उनकी आकांक्षा करनी नहीं। श्री जिनेश्वर भगवान ने कहा वही सत्य है, उसमें किसी प्रकार से शंका न करनी।

●

१०४ श्री कुरगडु मुनि

एक दृष्टिविष सर्प था। उसको किसी भी तरफ से देखने वाले की मृत्यु हो जावे ऐसा विषयुक्त उसका शरीर था। पूर्व भव में किये हुए पापों का जाति स्मरण ज्ञान होने से उसे याद आया तो उस कारण से वह बिल मे ही मुँह रखने लगा - मुँह बाहर निकाले और कोई देखे तो लोगों की मृत्यु हो जाय-ऐसा मुझे नहीं करना चाहिये - ऐसा सोच समझकर पूंछ बाहर रहे उस प्रकार से बिल में रहने लगा।

कुंभ नामक राजा के पुत्र को किसी सर्प ने डस लिया। जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी। कुंभ राजा शत्रु पर बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने हुकम दिया कि जो कोई सर्प को मारकर उसका शव ले आयेगा तो हरेक शब के लिए एक एक सुवर्णमुद्रा इनाम में दी जायेगी। इस ढंढेरे से लोग ढूंढ ढूंढ कर साँप मारकर उनके मृत शरीर को लाने लगे। एक व्यक्ति ने दृष्टिविष सर्प की पूंछ देखी। वह जोर से पूंछ खींचने लगा मगर दयालु सर्प बाहर न निकला। पूंछ टूट गयी। सर्प यह वेदना समता से सहन कर रहा था। और टूटी हुई पूंछ का थोडा भाग दीखते ही उस व्यक्ति ने काट लिया। इस प्रकार शरीर का छेदन-भेदन हो रहा था, उस वक्त सर्प सोच रहा था कि 'चेतन! तूं ऐसा मत समझ कि यह मेरा शरीर ही कट रहा है परंतु ऐसा समझ कि यह शरीर कटने से तेरे पूर्व किये हुए कर्म कर रहे हैं। यदि उनको समता से सहन करेगा तो यह दर्द भविष्य में तेरा भला करनेवाला होगा' ऐसा सोचकर उसने अंत में मृत्यु पायी।

एक रात्रि को कुंभ राजा को स्वप्न आया कि तेरा कोई पुत्र नहीं है उसकी लगातार चिंता तूं करता है। यदि मैं अब कोई सर्प को नहीं मारूंगा ऐसी प्रतिज्ञा तूं लेगा तो पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी। इस कारण कुंभ राजा ने अब किसी सर्प को न मारने की किसी आचार्य से प्रतिज्ञा ली।

दृष्टिविष सर्प मरकर इस कुंभराजा की रानी की कुक्षि से अवतरित हुआ। उसका नाम नागदत्त रखा। यौवन अवस्था में पहुँचने पर एक बार अपने झरोखे में खड़े खड़े नीचे जैन मुनियों को जाते हुए देखा और सोचते सोचते जातिस्मरण होते ही उसको सर्प का अपना पूर्व भव याद आया। उसने नीचे उतरकर साधू महाराज को वंदन किया। वैराग्य उत्पन्न होने से दीक्षा लेने के लिये भी तैयार हुआ। मातापिताने उसे बड़ा समझाया पर किसीकी बात न मानते हुए महाप्रयास से उनकी आज्ञा लेकर उसने सद्गुरु से दीक्षा ग्रहण की। वह तिर्यंच योनि से आया होने के कारण, वेदनीय कर्म का उदय होने से वह भूख सहन नहीं कर पाता था। इस कारण एक पोरसी मात्र का भी पच्चकखाण उससे नहीं

करा जाता था। ऐसी उसकी प्रकृति होने से गुरु महाराज ने योग्यता जानकर उसको आदेश दिया कि 'यदि तुझसे तपश्चर्या नहीं हो सकती तो तुझे समता ग्रहण करनी, इससे तुझे बड़ा लाभ होगा।'

वह दीक्षा का पालन भली प्रकार करने लगा। परंतु हररोज सुबह में उठकर एक गडुआ (एक प्रकार का बर्तन) भरकर कुर (चावल) लाकर रोज उपयोग करे तब ही उसे होश-कोश आता था। ऐसा हररोज करने से उनका नाम कुरगडु पड गया।

जिन आचार्य से कुरगडु ने दीक्षा ली थी उनके गच्छ में अन्य चार साधू महातपस्वी थे। एक साधू एक माह के लगातार उपवास करते। दूसरे साधू लगातार दो माह के उपवास करते थे। तीसरे साधू तीन माह के उपवास के बाद पारणा करते थे और चौथे साधू चार माह के उपवास बिना रूके कर सकते थे। ये चारों साधु महाराज इन कुरगडु मुनि की 'नित्यखाऊं' कहकर हरेराज निन्दा करते थे। परंतु कुरगडु मुनि समता रखकर सह लेते थे। उन पर तिलमात्र द्वेष नहीं करते थे।

एक बार शासन देवी ने आकर 'कुरगडु' मुनि को प्रथम वंदन किये। यह देखकर एक तपस्वी मुनिने कहा, 'तुमने प्रथम इन तपस्वी मुनियों की वंदना न करके इन तुच्छ मुनि की वंदना क्यों की?' तब शासनदेवी ने कुरगडु मुनि की स्तुति करते हुए कहा, 'मैं द्रव्य तपस्वीयों' की वंदना नहीं करती, मैंने भाव तपस्वी की वंदना की हैं।

एक महापर्व के दिन प्रातः कुरगडु मुनि गोचरी लेकर आये और जैन आचार अनुसार उन्होंने हरेक साधू को बताकर कहा, 'आप में से किसीको उपयोग करने की अभिलाषा हो तो ले लें।' इतना सुनते ही तपस्वी मुनि क्रोधायमान होकर ज्यों-त्यों बोलने लगे और कहा, 'इस पर्व के दिन भी आप तप नहीं करते? धिक्कार है आपको, और हमें भी प्रयोग में लेने के लिए कहते हो?' इस प्रकार लाल पीले होकर क्रोध से 'हाख थूं' कहकर उनके पात्र में थूंके। फिर भी कुरगडु को बिलकुल गुस्सा आया नहीं और मन से सोचने लगे, 'मैं प्रमाद में गिरा हूं। छोटा सा तप भी मैं नहीं कर सकता, धिक्कार है मुझे। ऐसे तपस्वी साधुओं की योग्य सेवा भी करता नही हूँ। आज उनके क्रोध का साधन मै बना।'

आत्मनिंदा करते हुए पात्र में रहा आहार निःशंक रूप से प्रयोग करने लगे और शुक्ल ध्यान में चढ़ कर तत्काल केवलज्ञान पाया। देवता तुरंत दौडे आये और उनको सुवर्णसिंहासन पर आरुढ कराकर केवलज्ञान महोत्सव मनाने लगे।

चारों तपस्वी मुनि अचरज में पड़ गये और 'अहो! ये सच्चे भाव तपस्वी हैं। हम तो सिर्फ द्रव्य तपस्वी ही रहे। वे तैर गये। आह! धन्य है उनकी आत्मा को।' ऐसा कहकर केवलज्ञानी कुरगडु मुनि से क्षमापना करने लगे। त्रिकरण शुद्धि से उनकी सच्चे भाव से क्षमापना करने से उन चारों को भी केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

●

१०५ जीरण सेठ

विशाला नगरी में एक श्रेष्ठी रहता था। वह परमार्हत श्रावक थे।

एक बार भगवान महावीर चौमासी तप करके इस नगरी के उपवन में काउसग्ग ध्यान कर रहे थे। प्रभु पधारे हैं ऐसा ज्ञात होते ही श्रेष्ठी ने वहाँ आकर प्रभु को वंदना की और कहा, 'स्वामी! आज मेरे घर पारणा (गोचरी हेतु) करने आप पधारना।' ऐसा कहकर अपने घर गया मगर प्रभु उसके घर आये नहीं। जिससे दूसरे दिन वहाँ आकर 'छठ्ठ तप' होगा ऐसा सोचकर प्रभु के प्रति ऐसी अर्ज की, 'हे कृपावतार!' आज मेरे घर पधारकर मेरा आंगन पवित्र करना।' ऐसा कहकर घर गया। परंतु भगवंतने तो हाँ या ना का कोई उत्तर नहीं दिया। इस प्रकार हररोज निमंत्रण करते हुए चार माह बीत गये। चोमासी पारणे के दिन वह मन में सोचने लगा कि आज तो अवश्य प्रभु को पारणा होगा ही, इस कारण प्रभु के पास जाकर बोला, कि 'दुर्वार संसारमय धन्वंतरी (दुःख जिसमें से दूर नहीं किये जा सकते ऐसे संसाररूपी रोग को दूर करने में साक्षात् धन्वतरी वैद्य) जैसे हे प्रभु! कृपामय! आपके इन लोचनों से मुझे देखकर, आप मेरी अरजी अवश्य स्वीकार करना।' ऐसा कहकर अपने घर गया। समय होने पर मध्याह्न काल में हाथ में मोती से भरा थाल लेकर प्रभु को बधाने के लिए घर के दरवाजे पर खड़े होकर सोच रहा है, 'आज जरूर जगतबंधु पधारेंगे, तब मैं उनको परिवार सहित वंदन करूंगा। घर में बहुमान सहित ले जाऊँगा, उत्तम प्रकार के अन्नपानी अर्पण करूंगा, अर्पण करने के पश्चात शेष अन्न मैं मेरी आत्मा को धन्य मानकर खाऊँगा।'

इस प्रकार मनोरथ की उच्च श्रेणी पर चढ़ता गया जिससे उसने बारहवे देवलोक के योग्य कर्म उपार्जित किया। उस समय श्री महावीर प्रभु अभिनव नामक एक श्रेष्ठी के घर पहुँचे। उस समय उसने नौकर द्वारा भगवान को आहार-पानी दिलवाए।

इस दान के प्रभाव से वहाँ पाँच दिव्य प्रगट हुए। (फूल की वृष्टि, वस्त्रों की वृष्टि, सुवर्णमुद्राओ की वृष्टि एवं देवदुंदुभी बजे 'अहोदान अहोदान'

देवता आकाश से बोले उसे पाँच दिव्य कहा जाता है।) यहाँ जीरण सेठ ने भावना करते करते देवदुंदुभि सुनी। उसने सोचा मुझे धिक्कार है। मैं अधन्य हूं। अभागी हूं सो प्रभु मेरे घर नहीं पधारे। इस प्रकार ध्यानभंग हुआ और मनदुःख के साथ भोजन किया।

तत्पश्चात् कोई ज्ञानी गुरु उस नगर में पधारे। उनको वंदन करके राजा ने कहा, 'मेरा नगर प्रशंसा के पात्र है क्योंकि प्रभु महावीर स्वामी को चौमासी पारणा करानेवाले महाभाग्यशाली अभिनव श्रेष्ठी यहीं पर रहते हैं। ऐसे पुण्यात्मा से मेरा नगर शोभित है। ज्ञानी गुरु बोले कि 'ऐसा कहना योग्य नहीं है। क्योंकि अभिनव सेठ ने तो द्रव्यभक्ति की मगर भावभक्ति तो जीरण श्रेष्ठी ने की हैं। इसलिये उनको अधिक पुण्यवंत मानने चाहिये। जीरण सेठ ने देवदुंदुभी की आवाज़ कुछ क्षणों के लिये सुनी नहीं होती तो वे उस श्रेणी पहुँच चुके थे कि उनको तत्काल केवलज्ञान हो जाता। राजा इस कारण जीरण सेठ की भूरी भूरी अनुमोदना करने लगे और जीरण सेठ कालानुसार बारहवें देवलोक में देव बने। वहाँ से कालक्रमानुसार मोक्ष पायेंगे।

●

अनमोल वचन

ज्ञान समुं धन नही, समता समु नहीं सुख।
जीवित समु आश नहीं, लोभ समुं नहीं दुःख॥
परावलम्बी सदा दुःखी।
स्वावलम्बी सदा सुखी॥

मीठा सरखो रस नही, ज्ञान सरखो नहीं बंधु।
धर्म सरखो कोई मित्र नहीं, क्रोध सरखो नहीं कोई शत्रु॥

दुःख के कारण – अंधकार (अज्ञान) अहंकार, अधिकार, अलंकार, असहकार जो आत्मशान्ति में बाधक है।

संसार में स्व-पर का ज्ञान होने पर यह निश्चित हो जायगा कि मेरा सो जावे नहीं, जावे सो मेरा नहीं।

१०६ महाराजा श्रेणिक

भगवान महावीर के समय में मगध देश में राजा श्रेणिक राज्य करते थे। शरू शरू में ज्ञान न होने के कारण उनको शिकार करने का भारी शौक था। शिकार करने में उन्हें मजा आता।

एक दिन श्रेणिक जंगल में शिकार करने गये। वहाँ दूर से एक हिरनी को देखा। उन्होंने अपना घोड़ा उस ओर दौडाया - धनुष्य पर बाण चढाया घोडा - दौड रहा है, हिरनी भी दौड रही है। बराबर निशान ताककर श्रेणिक ने तीर छोडा। तीर हिरनी के पेट में धँस गया। उसका पेट फट गया। पेट में से मरा हुआ बच्चा बाहर निकला। हिरनी भी मर गई। श्रेणिक घोडे पर उतरकर मरी हुई हिरनी के पास आया। दृश्य देखकर बडा प्रसन्न हुआ। गर्व से बोला, 'मेरे एक ही तीर से दो - दो पशु मर गये। हिरनी और उसका बच्चा भी! शिकार इसे कहा जाता है।' श्रेणिक को आनंद समाया नहीं जा रहा था। हर्ष से झूम उठा और श्रेणिक राजा ने तीसरे नर्क - गति का कर्म बांध लिया।

तत्पश्चात् श्रेणिक कालक्रमानुसार धीमे धीमे ज्ञान प्राप्त होने पर भगवान के परम उपासक बने। भगवान महावीर के परिचय में आये। एक बार भगवान को अपनी गति पूछी। तब सर्वज्ञ भगवानने कहा, 'श्रेणिक! मरकर तूं तीसरे नर्क को जायेगा।' श्रेणिक घबराये, वे बोले : 'प्रभु! मैं आपका परम भक्त और नर्क में जाऊँगा?'

भगवान ने कहा, 'श्रेणिक! तू शिकार करके खूब हर्षित बना था, इससे तेरा नर्क गति का आयुष्य बंध गया है। तेरा वह पापकर्म निकाचित था। वह कर्म भोगना ही पडेगा। हम भी उसे निष्फल करने में समर्थ नहीं है।'

'हे राजन्! इस नरक की वेदना तुझे भुगतनी ही है परंतु तू जरा सा भी खेद मत कर क्योंकि भावि चौबीसी में तूं पद्मनाभ नामक प्रथम तीर्थंकर बनेगा।' श्रेणिक बोला, 'हे नाथ! ऐसा कोई उपाय हैं कि जिससे अंधकूप मे गिरे अंध की भाँति नर्क में मेरी रक्षा हो?'

प्रभु बोले, 'हे राजन् !' कपिला दासी द्वारा यदि साधुओं को प्रसन्नता

से भिक्षा दिलवा दे और कालसोरिक का कसाई का काम छुडवा दे तो नर्क से तेरा मोक्ष हो सकता है। उसके सिवा नहीं हो सकता।' यह उपदेश सुनकर श्रेणिक अपने स्थान पर गये।

इसके बाद श्रेणिक ने गाँव में से कपिला दासी को बुलवाया और उससे माँग की, 'हे भद्रे! तूं साधुओं को श्रद्धा से भिक्षा दे। मैं तूझे धन देकर न्याल कर दूंगा।' कपिला बोली, 'कदापि मुझे पूरी सुवर्णमय करो या मुझे मार डालो तो भी मैं ऐसा कृत्य नहीं करूंगी।' तत्पश्चात् राजा ने कालसौरीक को बुलाकर कहा, 'यदि तूं यह कसाइपना छोड दे तो मैं तुझे बहुत द्रव्य दूंगा, क्योंकि तूं भी धन लोभ के कारण कसाई बना है। कालसौरिक बोला, 'इस कसाई के काम में क्या दोष है? जिससे अनेक मनुष्यों के पेट भरे जाते हैं ऐसे कसाई के धंधे को मैं कदापि नहीं छोडूंगा। यह सुनकर राजा ने उसे एक रात्रि-दिन कुएँ में डाल दिया और कहा, 'अब तूं कसाई का व्यापार किस प्रकार करेगा?'

तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने भगवंत के सम्मुख जाकर कहा, 'हे स्वामी! मैंने कालसौरीक को एक रात्रि - दिन तक कसाई कार्य छुडवाया है।'

प्रभु बोले, 'हे राजन् ! उसने अंधकूप में भी कोयले से भैंसे बनाकर पाँचसौं भैंसे मरवाये हैं।' श्रेणिक ने तत्काल जाकर देखा तो उसी तरह था। उसे बड़ा उद्वेग हुआ कि 'मेरे पूर्व किये कर्मों को धिक्कार है।' एसे दुष्कर्म के कारण भगवान की वाणी अन्यथा होगी नहीं।'

कालक्रमानुसार श्रेणिक राजा वृद्ध हुए। उनके पुत्र अभयकुमार ने दीक्षा ली। इस कारण मौका अच्छा मिला है यो समझकर श्रेणिक के दूसरे पुत्र कुणिक ने अपने काल वगैरह दस बंधुओं को एकत्र करके कहा, 'पिता वृद्ध हुए पर राज्य छोडते नहीं है। हमारे ज्येष्ठ बंधु अभयकुमार धन्य हैं कि युवा होने पर भी राज्यलक्ष्मी को छोड़ दी। हमारे विषयांध पिता तो इस समय पर भी राज्य भोगने में कुछ भी देखते नहीं है। इसलिये आज उनको बंदी बनाकर राज्य ग्रहण कर लें।' ऐसा सोचकर उसने पिता को एक रस्से से बांधकर पिंजरे में बंद कर दिया। उनको खान पान भी नहीं देता था। उलटा वह पापी कुणिक प्रतिदिन सवेरे और शाम को सौं सौं कोड़ें मरवाता था। कुणिक श्रेणिक के पास किसीको जाने नहीं देता था। सिर्फ माता चेल्लणा को वह रोक नहीं सकता था। रानी चेल्लणा सर के बाल अच्छी तरह धोकर उसमें पुष्प गुच्छ

की भाँति ऊडद का एक पिण्ड छिपाकर ले जाती और श्रेणिक वह पिण्ड दिव्य भोजन समझकर खाता और प्राणरक्षा करता।

कुछ समय के बाद माता चेल्लणा के कुछ स्पष्टीकरण से कुणिक को सद्‌बुद्धि आयी और 'ओह! अविचारी कार्य करनेवाला मैं, मुझे धिक्कार हो! अब मैं किसीकी अमानत लौटाते हो उस प्रकार अपने पिता को राज्य पुनः सौंप दूं!' इस प्रकार अर्ध भोजन करते हुए उठा - पूरा भोजन करने भी न रूका और पिता को पहनायी हुई लोहे की बेडियाँ तोडने के लिए एक लोहदण्ड उठाकर, श्रेणिक के पास जाने के लिए दौडा।'

श्रेणिक के समीप रखे गये पहेरेदार पूर्व परिचित होने के कारण श्रेणिक के पास दोड़ते हुए आये और कुणिक को लोहदण्ड के साथ आता हुआ देखकर बोले, 'अरे राजन्! साक्षात् यमराजा की भाँति लोहदण्ड धारण करके आपका पुत्र उतावला होकर आ रहा है। वह क्या करेगा ? हम जानते नहीं हैं।' यह सुनकर श्रेणिक ने सोचा, 'आज तो वह जरूर मेरे प्राण लेगा। क्योंकि आज तक तो वह हाथ में कोडा लेकर आता था और आज वह लोहण्ड लेकर आ रहा है। और मैं ज्ञात भी नहीं कर सकता कि वह मुझे कैसी कडी मार से मार डालेगा! सो वह यहाँ आ पहुँचे उससे पूर्व ही मुझे मरण की शरण में जाना योग्य है। ऐसा सोचकर उसने तत्काल तालपुट विष जिह्वा पर रख दिया, जिससे उसके प्राण तत्काल निकल गये।

कुणिक नजदीक आया तो वहाँ उसने पिता को मृत्यु पाया हुआ देखा। इस कारण उसने तत्काल छाती कूटकर पुकारते हुए कहा, 'हे पिता। मैं ऐसे पापकर्म से इस पृथ्वी पर अद्वितीय पापी बना हूँ। और 'मेरे पिता से क्षमापना करूं' ऐसा मेरा मनोरथ - भी पूर्ण नहीं हुआ है। इसलिये मैं अति पापी हूँ। पिताजी। आपके प्रसाद का वचन तो दूर रहा और मै आपका तिरस्कार भरा वचन भी सुन न सक। बड़ा दुर्देव बीच मे आकार मेरी बाधा बना। कैसे भी करके मुझे मरना ही योग्य है।' इस प्रकार अति शोक ग्रस्त बना कुणिक मरने के लिये तैयार हुआ, परंतु मंत्रियों ने उसे समझाया सो उसने श्रेणिक के देह का अग्निसंस्कार किया।

महाराजा श्रेणिक की आत्मा तीसरी नर्क में पहुँची। कालक्रमानुसार अगली चौबीसी में वह प्रथम तीर्थंकर होगी।

●

१०७ श्री कुणिक

श्रेणिक पुत्र कुणिक ने श्रेणिक राजा को बंदी बनाकर कैद कर रखा था और रोजाना दो समय सौं सौं कोड़े मरवाता था।

उग्रता से राज्य करते कुणिक को पद्मावती नामक रानी से एक पुत्र हुआ। उसका उदायी नाम रखा। इस पुत्र पर कुणिक को बेहद प्रेम था।

एक बार पुत्र वत्सल कुणिक अपने बाँये रान पर पुत्र को बिठाकर भोजन कर रहा था। उसने अर्ध भोजन किया था कि बालक ने मूत्रोत्सर्ग किया, मूत्र की धारा भोजन थाल में गिरी। पुत्र के पेशाब की गति में भंग न हो ऐसा सोचकर कुणिक ने अपनी जाँघ को हिलाया भी नहीं। मूत्र से बिगड़ी थाली को दूर न करके पुत्र वात्सल्य के कारण थोड़ा खराब अन्न दूर करके उसी थाली में वह पुनः भोजन करने लगा। उस समय उसकी माता चेल्लणा वहाँ बैठी थी। उसको कुणिक ने पूछा, 'हे माता! ऐसा किसीको अपना पुत्र प्रिय था? या होगा?' चेल्लणा बोली : 'अरे पापी! अरे राजकुलाधम! तूं तेरे पिता को इससे भी अधिक प्रिय था, क्या तूं नही जानता है? मुझे दुष्ट दोहद होने पर तूं जन्मा है और इसलिये ही तूं अपने पिता का बैरी है। सगर्भा स्त्रीयों को गर्भानुसार ही दोहद होता है। गर्भ में रहा तूं, तेरे पिता का बैरी है - ऐसा जानकर मैंने पति कल्याण की इच्छा से गर्भपात कराने के प्रयत्न भी किये थे यद्यपि तेरा उन औषधों से नाश होने के बजाय तूं पुष्ट हुआ था। 'बलवान् पुरुषों को सर्व वस्तु पथ्य होती है।' तेरे पिता ने 'मैं पुत्र का मुख कब देखूं?-' ऐसी आशा से मेरे बुरे दोहद को भी पूर्ण किया था। तत्पश्चात् तेरा जन्म हुआ तब तुझे पिता का बैरी मानकर मैंने तेरा त्याग किया उस समय मुर्गी के काटने पर तेरी एक ऊंगलि पक गयी थी। तूझे अत्यंत पीड़ा हो रही थी। उस समय तेरी ऊँगलि को भी तेरे पिता अपने मुख में रखते थे, और जब तक मुख में रखेत तब तक तेरा दुःख टलता था। इस कारण उतना समय तूं न रोता और शांत रहता। अरे अधम! इस प्रकार तेरे जिस पिता ने महाकष्ट सहकर लालन पालन किया था उन्हें तूने बदले में - उपकारी

पिता को कारागृह में डाला हैं।'

उस समय कुणिक ने एक पुरानी बात याद करके पूछा, 'माता! मेरे पिता ने मुझे गुड़ के मोदक भेजे और हल्ल विहल्ल को शक्कर के भेजे, उसका क्या कारण?' तब चेलण्णा ने उत्तर दिया, 'हे मूढ! तूं तेरे पिता का द्वेषी है - ऐसा जानकर मुझे अप्रिय था सो गुड़ के मोदक तो मैंने भेजे थे।' इस प्रकार स्पष्टता होने पर कुणिक बोला, 'अहा! मुझे धिक्कार है, अविचारी कार्य मैंने किया है, परंतु अमानत वापिस लौटाने की भाँति मैं मेरे पिता का राज्य वापिस लौटा देता हूँ।' ऐसा कहकर आधा भोजन छोडा और धात्री को पुत्र सौंपकर पिता को मुक्त करने के लिए एक लोहदण्ड बेडी को तोडने के लिए उठाकर दौडा।

परंतु श्रेणिक के समीप पहुँचने से पूर्व श्रेणिक ने 'इस लोहदण्ड से मेरा घात करेगा' ऐसा मानकर अपनी जिह्वा पर तालपुट विष रखकर प्राण छोड दिया। तत्पश्चात् चक्रवर्ती बनने के लिए कई खूंखार युद्ध लडने के बाद किसीकी बात न सुनने पर स्वयं को तेरहवाँ चक्रवती बताते हुए कृतपाल देव ने उसे जलाकर भस्म कर डाला और कोणिक मृत्यु पाकर छट्ठे नर्क में गया।

●

अद्य में सफलं गात्रं जिनेन्द्र तव दर्शनात्
दर्शनात् दुरित ध्वंसी, वन्दनात् वांछितप्रदः
पुजनात् पूरकः श्रीणां, जिनः साक्षात् सुरद्रुमः
पाताले यानि विम्बानि, यानि विम्बानि भूतले
स्वर्गेपियानि विम्बानि, तानि वन्दे निरन्तरम्
अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम,
तस्मात् कारूण्य भावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर
जिने भक्ति जिने भक्ति, जिने भक्ति दिने दिने
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे
ॐकार बिंदुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायंति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः

१०८ गुरू गौतम स्वामी

मगध देश में गोबर नामक गाँव में वसुभूति नामक एक गौतम गोत्री ब्राह्मण रहता था। उसे पृथ्वी नामक स्त्री से इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति नामक तीन पुत्र हुए।

अपावा नगरी में सोमिल नामक एक धनाढ्य ब्राह्मण ने यज्ञ कर्म में विचक्षण ऐसे इन तीन गौतम गौत्री ब्राह्मणों और उस समय के ब्राह्मणों में महाज्ञानी माने जाते अन्य आठ द्विजों को भी यज्ञ करने बुलाया था। सबसे बड़े इन्द्रभूति गौतम गोत्री होने से गौतम नाम से भी पहचाने जाते थे।

यज्ञ चल रहा था, उस समय वीर प्रभु की वंदना की इच्छा से आते देवताओं को देखकर गौतम ने अन्य ब्राह्मणों को कहा, 'इस यज्ञ का प्रभाव देखो! हमारे मंत्रों से आमंत्रित देवता प्रत्यक्ष यहाँ यज्ञ में आ रहे हैं।' उस समय यज्ञ का बाडा छोड़कर देवताओं को समवसरण में जाता देखकर लोग कहने लगे : 'हे नगरजनों! सर्वज्ञ प्रभु उद्यान में पधारे हैं। उनकी वंदना करने के लिये ये देवता हर्ष से जा रहे हैं।' 'सर्वज्ञ' ऐसे अक्षर सुनते ही मानो किसीने वज्रपात किया हो उस प्रकार इन्द्रभूति कोप करेले बोले, 'अरे! धिक्कार! धिक्कार! मरु देश के मनुष्य जिस प्रकार आम्र छोडकर करील के पास जावे वैसे लोग मुझे छोड़कर उस पाखंडी के पास जाते हैं। क्या मेरे से अधिक कोई अन्य सर्वज्ञ है?' शेर के सामने अन्य कोई पराक्रमी होता ही नहीं। कदापि मनुष्य तो मूर्ख होने से उनके पास जाएं तो भले जाएँ मगर ये देवता क्यों जाते हैं? इससे उस पाखंडी का दंभ कुछ महान लगता है।'

परंतु जैसा वह सर्वज्ञ होगा वैसे ही ये देवता लगते हैं, क्योंकि जैसा यज्ञ होता है वैसा ही बलि दिया जाता है। अब इन देवों और मनुष्यों के इतने में तो समक्ष मैं उसकी सर्वज्ञता का गर्व हर लूं। इस प्रकार अहंकार से बोलता हुआ गौतम पाँचसौ शिष्यों के साथ समवसरण में सुरनरों से घिरे हुए श्री वीर प्रभु जहाँ बिराजमान थे वहाँ आ पहुँचा। प्रभु की समृद्धि और चमकता तेल देखकर आश्चर्य पाकर इन्द्रभूति बोल उठा, 'यह क्या ?' इतने में तो 'हे गोतम! इन्द्रभूति आपका स्वागत है।' जगद्गुरु ने अमृत जैसी मधुर वाणी में कहा। यह सुनकर

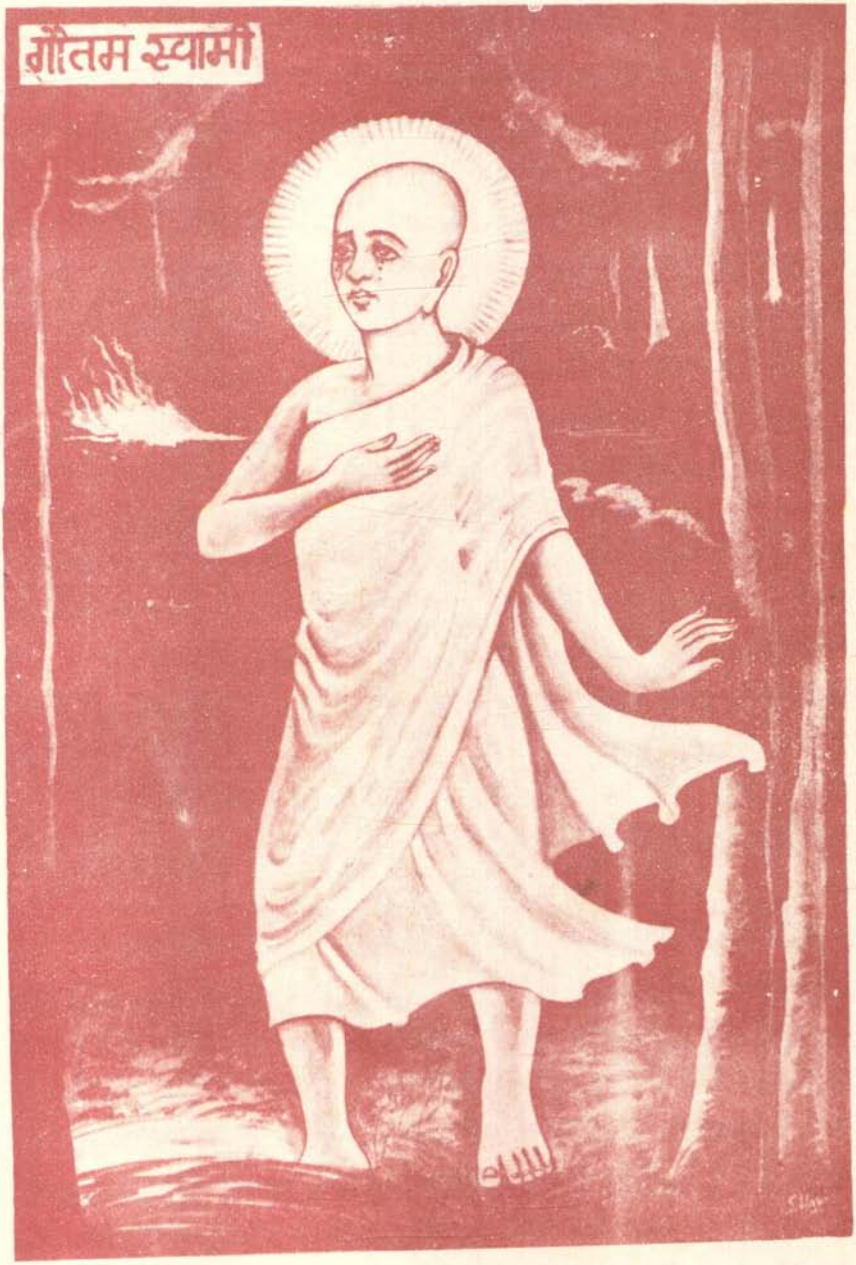
गौतम स्वामी

गौतम स्वामी

(1) गौतम स्वामी चरम शासनपति महावीर देव के प्रथम शिष्य थे। साथ साथ परमात्मा के प्रति बेहद भक्ति-राग था।

निर्मल ज्ञान से परमात्मा का मोक्ष नजदीक आते देखकर गौतम स्वामी को देवशर्मा के पास प्रतिबोध देने भेजा।

(2) इस तरफ परमात्मा अपापापुरी में हस्तिपाल राजा की सभा में नवमल्ली और नवलच्छि देश ऐसे अठ्ठारह देश के राजन निर्जल छठ्ठ तप के साथ पौषध लेकर 16 प्रहर की देशना सुनने बैठे। 64 इन्द्र, करोड देवता आदि 12 पर्षदा के सम्मुख अखण्डाधर देशना दी और दिपावली के दिन निर्वाण पाया।

(3) गौतम स्वामी को वापिस लौटते समय यह खेदप्रद समाचार देवों की शोकातुर, अश्रुभरी आँखें देखकर मिले।

(4) तब 'हाय...! वीर' कहते हुए वे गिर पडे। ऐसे वज्राघात समान समाचार से वे आकुल-व्याकुल हो गये।

बेशुद्ध अवस्था में उठे, तो 'हे वीर... हे वीर...' कल्पांत करते हुए विलाप करने लगे।

भारी रुदन करते हुए वह कह रहे थे, 'हाँ... हाँ... वीर... तूने यह क्या किया' उनको विलाप की भयंकर अवस्था में विशेष ज्ञान हुआ।

गौतम सोच में डूबा कि 'क्या यह मेरे गोत्र और नामको भी जानता है? हं... जानता ही होगा न, मुझ जैसे जगप्रसिद्ध मनुष्य को कौन नहीं जानेगा? परंतु यदि मेरे हृदय में रहे हुए संशय को वह बताये और उसे अपनी ज्ञान संपत्ति से छेद डाले तो वे सच्चे आश्चर्यकारी हैं, ऐसा मैं मान लूं।

इस प्रकार हृदय में विचार करते ही ऐसे संशयधारी इन्द्रभूति को प्रभु ने कहा, 'हे विप्र! जीव हैं कि नहीं? ऐसा तेरे हृदय में संशय है, परंतु है गौतम! जीव है, वह चित्त, चैतन्य विज्ञान और सज्ञा वगैरह लक्षणों से जाना जा सकता है। यदि जीव न हो तो पुण्य - पाप का पात्र कौन? और तुझे यह यज्ञ - दान वगैरह करने का निमित्त भी क्या?' इस प्रकार के प्रभु के वचन सुनकर उसने मिथ्यात्व के साथ संदेह भी छोड दिया और प्रभु के चरणों में नमस्कार करके बोला, 'हे स्वामी! ऊँचे वृक्ष का नाप लेने वामन पुरुष की भाँति मैं दुर्बुद्धि से आपकी परीक्षा लेने यहाँ आया था। हे नाथ! मैं दोषयुक्त हूँ, फिर भी आपने मुझे भली प्रकार से प्रतिबोध दिया है। तो अब संसार से विरक्त बने हुए मुझको दीक्षा दीजिये। अपने प्रथम गणधर बनेंगे ऐसा जानकर प्रभु ने उनको पाँचसौं शिष्यों के साथ स्वयं दीक्षा दी। उस समय कुबेर देवता ने चारित्र धर्म के उपकरण ला दीये और पांचसौं शिष्यों के साथ इन्द्रभूति ने देवताओ ने अर्पण किये हुए धर्म के उपकरण ग्रहण किये।

इन्द्रभूति की तरह अग्निभूति वगैरह अन्य दस द्विजों ने बारी बारी से आकर अपना संशय प्रभु महावीर ने दूर किया, इसलिये अपने शिष्यों के साथ दीक्षा ग्रहण की।

वीर प्रभु विहार करते करते चम्पानगरी पधारे। वहाँ साल नामक राजा तथा महासाल नामक युवराज प्रभु की वन्दना करने आये। प्रभु की देशना सुनकर दोनों ने प्रतिबोध पाया। उन्होने अपने भानजे गागली का राज्याभिषेक किया और दोनों ने वीर प्रभु से दीक्षा ग्रहण की। प्रभु की आज्ञा लेकर गौतम साल और महासाल साधू के साथ चम्पानगरी गये। वहाँ गागली राजा ने भक्ति से गौतम गणधर की वंदना की। वहाँ देवताओं ने रचे सुवर्ण कमल पर बैठ कर चतुर्ज्ञानी गौतम स्वामीने धर्मदेशना दी। वह सुनकर गागलीने प्रतिबोध पाया तो अपने पुत्र को राज्यसिंहासन सौंपकर अपने मातापिता सहित उन्होंने गौतम स्वामी से दीक्षा ली। ये तीन नये मुनि और साल, महासाल, ये पाँच जन गुरु गौतम स्वामी के पीछे

पीछे प्रभु महावीर की वंदना करने जा रहे थे। मार्ग में शुभ भावना से उन पांचों को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सर्वज्ञ प्रभु महावीर स्वामी जहाँ बिराजमान थे वहाँ आकर प्रभु की प्रदक्षिणा की और गौतम स्वामी ने प्रणाम किये, तीर्थंकर को झुककर वे पांचों केवली की पर्षदा में जले। तब गौतम ने कहा, 'प्रभु की वंदना करो।' प्रभु बोले, 'गौतम! केवली की आशातना मत करो।' तत्काल गौतम ने मिथ्या दुष्कृत देकर उन पाँचों से क्षमापना की।

इसके बाद गौतम मुनि खेद पाकर सोचने लगे कि 'क्या मुझे केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होगा? क्या मैं इस भव में सिद्ध नहीं बनूंगा।' ऐसा सोचते सोचते प्रभु ने देशना में एक बार कहा हुआ याद आया कि 'जो अष्टापद पर अपनी लब्धि से जाकर वहाँ स्थित जिनेश्वर की वन्दना करके एक रात्रि वहाँ रहे वह उसी भव में सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।' ऐसा याद आते ही गौतम स्वामी ने तत्काल अष्टापद पर स्थित जिनबिंबो के दर्शन करने जाने की इच्छा व्यक्त की। वहाँ भविष्य में तापसों को प्रतिबोध होनेवाला है। यह जानकर प्रभु ने गौतम को अष्टापद तीर्थ, तीर्थंतरो की वन्दना के लिए जाने की आज्ञा दी। इससे गौतम बडे हर्षित हुए और चरणलब्धि से वायु समान वेग से क्षण भर में अष्टापद के समीप आ पहुँचे। इसी अरसे में कौडिन्य, दत्त और सेवाल वगैरह पन्द्रहसों तपस्वी अष्टापद के मोक्ष का हेतु सुनकर उस गिरि पर चढने आये थे। उनमें पांचसों तपस्वियों ने चतुर्थ तप करके आद्रकंदादि का पारणा करने पर भी अष्टापद की प्रथम सीढी तक आये थे। दूसरे पांचसौं तापस छठ्ठ तप करके सूखे कंदापि का पारणा करके दूसरी सीढी तक पहुँचे थे। तीसरे पांच सो तापस अठ्ठम का तप करके सूखी काई का पारणा करके तीसरी सीढी तक पहुँचे थे। वहाँ से ऊँचे चढने के लिये अशक्त थे। उन तीनों के समूह प्रथम, द्वितीय और तृतीय सीढी पर लटक रहे थे। इतने में सुवर्ण समान कांतिवाले और पुष्ट आकृतिवाले गौतम को आते हुए उन्होंने देखा। उनको देखकर वे आपस में बात करने लगे कि हम कृश हो चुके हैं फिर भी यहाँ से आगे चढ़ सकते नहीं हैं, तो यह स्थूल शरीरवाला मुनि कैसे चढ़ सकेगा? इस तरह वे बातचीत कर रहे थे कि गौतम स्वामी सूर्य किरण का आलंबन लेकर उस महागिरि पर चढ़ गये और पल भर में देव की भाँति उनसे अदृश्य हो गये। तत्पश्चात् वे परस्पर कहने लगे, 'इन महर्षि के पास कोई महाशक्ति

है, यदि वे यहाँ वापस आयेंगे तो हम उनके शिष्य बनेगें। ऐसा निश्चय करके वे तापस एक ध्यान से उनके वापस लौटने की राह देखने लगे।'

अष्टापद पर्वत पर चौबीस तीर्थंकरो के अनुपम बिंबो की उन्होंने भक्ति से वंदना की। तत्पश्चात् चैत्य में से निकलकर गौतम गणधर एक बड़े अशोकवृक्ष के नीचे बैठे। वहाँ अनेकसुर-असुर और विद्याधरो ने उनकी वंदना की। गौतम गणधर ने उनके योग्य देशना दी। प्रसंगोपात उन्होंने कहा, 'साधुओं के शरीर शिथिल हो गये होते हैं, और वे ग्लानि पा जाने से जीवसत्ता द्वारा काम्पते काम्पते चलनेवाले हो जाते हैं।' उनके ऐसे वचन सुनकर वैश्रवण (कुबेर) उन शरीर की स्थूलता देखकर, ये वचन उनमें ही अघटित जानकर जरा सा हँसा। उस समय मन: पर्यवज्ञानी इन्द्रभूति उनके मनका भाव जानकर बोला, 'मुनिपने में शरीर की कृशता का कोई प्रमाण नहीं परंतु शुभध्यानपने में आत्मा का निग्रह करना ही प्रमाण है।' इस बात के समर्थन में उन्होंने श्री पुंडरीक और कंडरीक का चरित्र सुनाकर उनका संशय दूर किया।

'इस प्रकार गौतम स्वामीने कहा हुआ पुंडरीक - कंडरीक का अध्ययन समीप में बैठे वैश्रवण देव ने एकनिष्ठा से श्रवण किया और उसने समकित प्राप्त किया।

इस प्रकार देशना देकर शेष रात्रि वहाँ व्यतीत करके गौतम स्वामी प्रात:काल में उस पर्वत पर से उतरने लगे, राह देख रहे तापस उनको नजर आये। तापसों ने उनके समीप आकर, हाथ जोड़कर कहा, 'हे तपोनिधि महात्मा! हम आपके शिष्य बनते हैं, आप हमारे गुरु बनो।' गौतम स्वामी बोले, 'सर्वज्ञ परमेश्वर महावीर प्रभु हैं वे ही आपके गुरु बनें।' तत्पश्चात् उन्होंने बडा आग्रह किया तो गौतम ने उन्हें वही पर दीक्षा दी। देवताओं ने तुरतं ही उनको यतिलिंग दिया। तत्पश्चात् वे गौतम स्वामी के पीछे पीछे प्रभु महावीर के पास जाने के लिए चलने लगे।

मार्ग में कोई गाँव आने पर भिक्षा का समय हुआ तो गौतम गणधर ने पूछा, 'आपको पारणा करने के लिये कौनसी इष्ट वस्तु लाऊँ।' उन्होंने कहा, 'पायस लाना।' गौतम स्वामी अपने उदर का पोषण हो सके उतनी खीर एक पात्र में लाये। तत्पश्चात् इन्द्रभूति याने गौतम स्वामी कहने लगे, 'हे महर्षिओं! सब बैठ जाओ और पायसान्न से सर्व पारणा करें।' तब सबको मन में ऐसा लगा कि 'इतने

पायसान्न से क्या होगा?' यद्यपि हमारे गुरु की आज्ञा हमें माननी चाहिये।' ऐसा मानकर सब एक साथ बैठ गये। तत्पश्चात् इन्द्रभूति ने अक्षीण महानस लब्धि द्वारा उन सर्व को पेट भर कर पारणा करवाया और उन्हें अचरज में छोडकर स्वयं आहार करने बैठे। जब तापस भोजन करने बैठे थे तब, 'हमारे पूरे भाग्ययोग से श्री वीर परमात्मा जगदगुरू हमें धर्मगुरू के रूप में प्राप्त हुए हैं व पितातुल्य बोध करने वाले मुनि भी मिलना दुर्लभ है, इसलिये हम सर्वथा पुण्यवान है।' इस प्रकार की भावना करने से शुष्क काई भक्षी पाँचसौं तापसों को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। दत्त वगैरह अन्य पाँचसौं तापसों को दूर से प्रभु के प्रातिहार्य को देखकर उज्जवल केवलज्ञान प्राप्त हुआ। और कौडीन्य वगैरह बाकी के पांचसौं तापसों को दूर से भगवंत के दर्शन होते ही केवलज्ञान प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने श्री वीर प्रभु की प्रदक्षिणा की और वे केवली की सभा की ओर चले। गौतम स्वामी ने कहा, 'इन वीर प्रभु की वंदना करो।' प्रभु बोले, 'गौतम! केवली की आशातना मत करो।' गौतम ने तुरंत ही मिथ्या दुष्कृत देकर उनसे क्षमापना की। उस समय गौतम ने पुन: सोचा, 'जरूर मै इस भव में सिद्धि नहीं प्राप्त करूंगा। क्योंकि में गुरुकर्मी हूँ।' इन महात्माओं को धन्य है कि जो मुझसे दीक्षित हुए परंतु जिनको क्षण भर में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। ऐसी चिंता करते हुए गौतम के प्रति श्री वीर प्रभु बोले, 'हे गौतम! तीर्थंकरों का वचन सत्य या अन्य का?' गौतम ने कहा, 'तीर्थंकरों का' तो प्रभु बोले, 'अब अधैर्य रखना मत। गुरु का स्नेह शिष्यों पर द्विदल पर के छिलके समान होता है। वह तत्काल दूर हो जाता है और गुरु पर शिष्य का स्नेह है तो तुम्हारी तरह ऊन की कडाह जैसा दृढ है। चिरकाल के संसर्ग से हमारे पर आपका स्नेह बहुत दृढ हुआ है। इस कारण आपका केवलज्ञान रूक गया है। जब उस स्नेह का अभाव होगा तब केवल ज्ञान जरूर पाओगे।' प्रभु से दीक्षा लेने के ३० वर्ष के बाद एक दिन प्रभु ने उस रात्रि को अपना मोक्ष ज्ञात करके सोचा, 'अहो! गौतम को मेरे पर अत्यंत स्नेह है और वही उनको केवलज्ञान प्राप्ति में रूकावट बन रहा है, इस कारण मुझे उस स्नेह को छेद डालना चाहिये।' इसलिए उन्होंने गौतम स्वामी को बुलाकर कहा, 'गौतम! यहाँ से नज़दीक के दूसरे गाँव में देवशर्मा नामक ब्राह्मण है। वह तुमसे प्रतिबोध पायेगा, इसलिये आप वहाँ जाओ।' यह सुनकर 'जैसी आपकी आज्ञा' ऐसा कहकर गौतम स्वामी प्रभु को वन्दन करके वहाँ गये और प्रभु का वचन सत्य

किया, अर्थात् देवशर्मा को प्रतिबोधित किया। यहाँ कार्तिक मास की अमावास्या की (हमारे देश के रिवाज अनुसार अश्वीन कृष्ण अमावास्या) पीछली रात्रि को चन्द्र स्वाति नक्षत्र में आते ही जिन्होने छठ्ठ का तप किया है वे वीरप्रभु अंतिम प्रधान नामक अध्ययन कहने लगे। उस समय आसन कम्प से प्रभु का मोक्ष समय जानकर सुर और असुर के इन्द्र परिवार सहित वहाँ आये। शक्रेन्द्रने प्रभु को हाथ जोड़कर संभ्रम के साथ इस प्रकार कहा, 'नाथ! आपके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान हस्तोत्तरा नक्षत्र में हुए है, इस समय स्वाति नक्षत्र में मोक्ष होगा परंतु आपकी जन्मराशि पर भस्मग्रह संक्रांत होनेवाला है, जो आपके संतानों (साधु-साध्वी) को दो हजार वर्ष तक बाधा उत्पन्न करेगा, इसलिये वह भस्मक ग्रह आपके जन्म नक्षत्र संक्रमित हो तब तक आप राह देखे, इस कारण प्रसन्न होकर पल भर के लिए आयुष्य बढ़ा लो जिससे दुष्टग्रह का उपशम हो जावे।' प्रभु बोले, 'हे शक्रेन्द्र! आयुष्य बढाने के लिए कोई भी समर्थ नहीं है।' ऐसा कहकर समुच्छित क्रिय चौथे शुक्ल ध्यान को धारण किया और यथा समय ऋजु गति से ऊर्ध्वगमन करके मोक्ष प्राप्त किया।

श्री गौतम गणधर देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध प्राप्त कराकर वापिस लौटे, मार्ग में देवताओं की वार्ता से प्रभु के निर्वाण के समाचार सुने और एकदम भडक उठे और बडा दु:ख हुआ। प्रभु के गुण याद करके 'वीर! हो वीर!' ऐसे बिलबिलाहट के साथ बोलने लगे, और अब मैं किसे प्रश्न पूछूंगा? मुझे कौन उत्तर देगा? अहो प्रभु! आपने यह क्या किया? आपके निवार्ण समय पर मुझे क्यों दूर किया? क्या आपको ऐसा लगा कि यह मुझसे केवलज्ञान की मांग करेगा? बालक बेसमझ से माँ के पीछे पडे वैसे ही मैं क्या आपका पीछा करता? परंतु हाँ प्रभु! अब मैं समझा। अब तक मैंने भ्रांत होकर निरोगी और निर्मोही ऐसे प्रभु में राग और ममता रखी। ये राग और द्वेष तो संसार भ्रमण का हेतु है। उनका त्याग करवाने के लिए ही परमेष्ठी ने मेरा त्याग किया होगा। ममतारहित प्रभु में ममता रखने की भूल मैंने की क्योंकि मुनियों को तो ममता में ममत्व रखना युक्त नहीं हैं। इस प्रकार शुभध्यान परायण होते ही गौतम गणधर क्षपक श्रेणी में पहुँचे और तत्काल घाति कर्म का क्षय होते ही उनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। बारह वर्ष केवलज्ञान पर्याय के साथ बानवे वर्ष की उम्र में राजगृही नगरी में एक माह का अनशन करके सब कर्मों का नाश करते हुए अक्षय सुखवाले मोक्षपद को प्राप्त किया।

●

आधार ग्रंथ

- श्री त्रिपष्टि शलाका पुरुष चरित्र पर्व १ से १०
- उपदेश प्रासाद भाषान्तर भाग १-२-४-५
- प्राचीन सज्जाय महोदधि भाग १-२
- आचार्य श्री भद्रगुप्त विजयजी के गुजराती ग्रंथ जैसे कि 'जीवन अंजलि थाजो,' भवना फेरा,' 'श्रद्धा सरगम' वगैरह।
- भरत बाहुबलि भाग २-३ पंन्यास श्री चिदानन्द मुनि कृत
- पंन्यासजी म. श्री कनकविजयजी कृत 'वीती रात ने प्रगट्यु प्रभात' (गुजराती)

जिन शासन के चमकते हीरे

मंगलपाठ

चत्तारि मंगलं—
अरिहंता मंगलं,
सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं,
केवलि-पन्नत्तो-धम्मो-मंगलं ॥ १ ॥

चत्तारि लोगुत्तमा—
अरिहंता लोगुत्तमा
सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू - लोगुत्तमा,
केवलि-पन्नत्तो-धम्मो लोगुत्तमो ॥ २ ॥

चत्तारि सरणं पवज्जामि—
अरिहंते सरणं पवज्जामि,
सिद्धे सरणं पवज्जामि,
साहू सरणं पवज्जामि,
केवलि-पन्नत्तं-धम्मं सरणं पवज्जामि ॥ ३ ॥

卐

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं, गौतमप्रभुः।
मंगलं स्थूलभद्राद्या, जैनधर्मोऽस्तु मंगलं॥

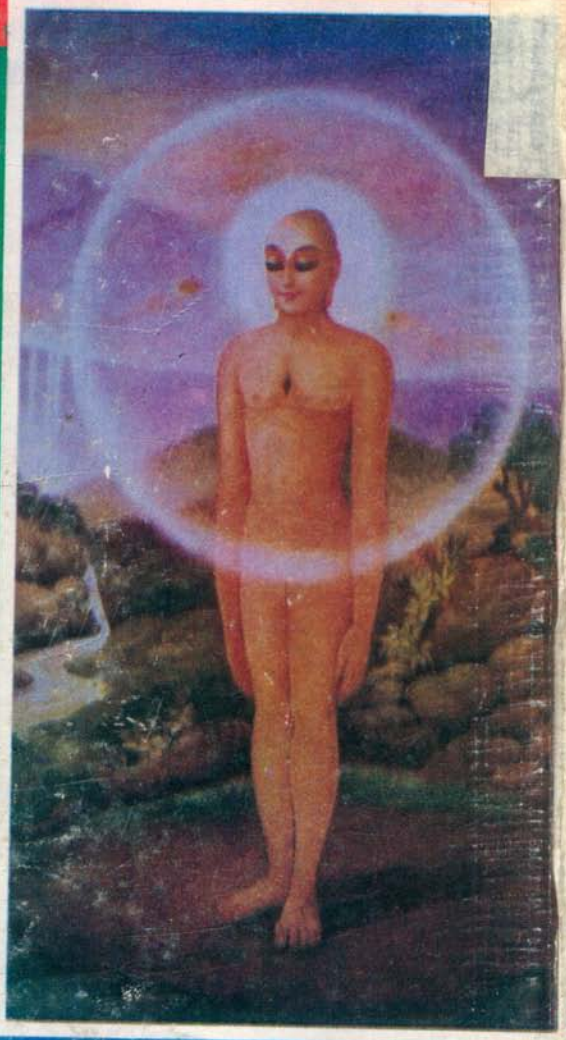

प्रकाशक : वरजीवनदास वाडीलाल शाह
४१, नरसिंहमहाराजा रोड़, पो.बो. नं. ६६९५, बैंग्लोर ५६० ००२
टे. नं. २२३९५८०, २२३९५२२ ● फेक्स : ०८०-२२२५९७९